लिङ्ग पुराण

(द्वितीय खण्ड)

(सरल भाषानुवाद सहित)

★

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट-दर्शन
२० स्मृतियों और १८ पुराणों
के प्रसिद्ध भाष्यकार

★

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान–

बरेली (उ० प्र०)

भूमिका

"लिङ्ग पुराण" के द्वितीय खण्ड मे शिव-तत्त्व की गम्भीर आलोचना की गई है। इस समग्र जगत के परम कारण को 'शिव' का नाम देकर उनकी विविध 'मूर्तियो' (रूपो) द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और सहार का वर्णन दार्शनिक दृष्टि से किया गया है। ससार के समस्त मनीषियो की तरह भारतीय विद्वान् भी जगत के निर्माता अथवा 'कारण' परमात्मा को 'एक' और 'अद्वितीय' ही मानते हैं। पर वह परमात्म-शक्ति किस प्रकार अव्यक्त से व्यक्त रूप मे प्रस्फुटित होती है और इस बहुरूपात्मक ससार को प्रकट करने का मूल-स्रोत बन जाती है, इस विषय मे भारतीय तत्त्व ज्ञाताओ के अतिरिक्त और सब देशो के 'धर्मज्ञ' मौन हो रह जाते हैं। यह ज्ञान केवल भारतीय दार्शनिको के ही हिस्से मे आया है कि वे अव्यक्त से व्यक्त—सूक्ष्म से स्थूल के परिवर्तन की स्पष्ट रूप से व्याख्या करके ससार को चमत्कृत कर चुके हैं। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है और विज्ञान प्रकृति की तह मे पहुँचता जाता है, वैसे वैसे ही भारत के योग शक्ति सम्पन्न मनीषियो की व्याख्या यथार्थ सिद्ध होती जा रही है। यह बात दूसरी है कि प्रत्येक सम्प्रदाय के मनीषियो की शब्दावली एक दूसरे से भिन्न है और जब वे अपने पक्ष को निर्बल पडता देखते हैं, तो वाद विवाद मे विजयी होने के लिये कुछ सत्य असत्य मिश्रित तर्क भी उपस्थित करने लग जाते हैं।

'शिव' के सर्व तत्त्वात्मक रूप का विवेचन करते हुए लिङ्ग पुराणकार ने कहा है कि "एक 'शिव' ही पच ब्रह्माओ के रूप मे प्रकट होते हैं। उनमे से एक समस्त लोको का सहार करने वाला, एक रक्षा करने वाला और एक सब का निर्माण करने वाला होता है। परमेष्ठी शिव की प्रथम मूर्ति 'क्षेत्रज्ञ' है। इनका नाम ईशान है और ये प्रकृति के भोक्ता हैं। द्वितीय 'मूर्ति' स्थाणु की है, जो 'तत्पुरुष' कही जाती है। उस परमात्मा को अधिकरणभूत जाननी चाहिये। 'अघोर' नाम वाली तीसरी मूर्ति 'बुद्धि' की कही जाती है। चौथी 'वामदेव' अहङ्कारात्मा

कही गई है, जिससे वह समस्त जगत मे व्याप्त है। पाँचवी मूर्ति 'सद्योजाता' नाम वाली है जो मनस तत्वात्मक होने से सम्पूर्ण प्राणियो मे स्थित रहा करती है। इनमे से ईशान को आकाश का, तत्पुरुष को वायु का, अघोर को अग्नि का, वामदेव को जल का तथा सद्योजात को भूमि का उत्पन्न करने वाला कहा गया है। इस प्रकार इस पंच भूतात्मक दृश्य जगत के जनक परमात्मा शिव ही हैं।"

भारतीय दार्शनिकों ने दैवी सत्ता को दो विभागो मे बाँटा है और भिन्न भिन्न नामो से उसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या की है। इन विभागो को कही सत् और असत् कहीं क्षर और अक्षर, कही अव्यक्त और व्यक्त, कही विद्या और अविद्या आदि नामो से पुकारा गया है। पर सब का अतिम निष्कर्ष यही है कि विश्व का मूल कारण एक ही अव्यक्त तत्त्व है जो सृष्टि क्रम के नियमानुसार स्वयम् ही व्यक्त रूप ग्रहण करता रहता है। उसका व्यक्त रूप ग्रहण करना ही 'एक से बहुत' होना है, क्योंकि दृश्य पदार्थों की आकृति और गुणो मे विविधता दिखलाई पडने के कारण मानव बुद्धि उसमे भिन्नता की कल्पना ही करती है। पर साथ ही विचारक-गण यह भी जानते और कहते रहते हैं कि इन भिन्न-भिन्न रूपो का आधार केवल हमारी दृष्टि और भावना है, अन्यथा जगत मे एक तत्त्व के अतिरिक्त सत्य कुछ भी नहीं है। इसी सिद्धान्त के आधार पर वेदान्त के 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' वाली मान्यता का जन्म होता है। इसी कारण ब्रह्मवादी व्यक्ति ससार के समस्त पदार्थों और व्यवहारो को 'माया' बतलाने लगते हैं। 'लिंग पुराण' के लेखक ने इस सिद्धान्त को साम्प्रदायिक रूप देते हुये लिखा है—

"महा मनीषीगण तो यही कहते हैं कि शिव के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु है ही नही। उसी को शब्द ब्रह्मादि और परब्रह्मात्मक कहा जाता है। कुछ लोग उन्हीं शिव को अनादि निधन अर्थात् आदि तथा अन्त से रहित महान् देव-प्रभु और प्राणियो की इन्द्रियो तथा अन्तःकरण से ग्रहण किये जाने वाले शब्दादिक विषयो के रूप मे मानते हैं। अपर-ब्रह्म और परब्रह्म भी उन्ही को कहा जाता है। अन्य लोग शङ्कर

को विद्या और अविद्या रूप वाला कहते हैं। 'विद्या' शब्द का आशय समस्त लोको के धाता-विधाता तथा आदि देव महेश्वर से ही है। कुछ मुनिगण उसे योग द्वारा ग्रहण किया करते हैं और कुछ आगमो के आधार पर उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। जो आत्माकार स स ित्ति होती है उसे बुधजनो द्वारा 'विद्या' के नाम से पुकारा जाता है और जो विकल्प से सर्वथा रहित तत्त्व होता है उसे परम' शब्द द्वारा कथित किया जाता है। इन दो के अतिरिक्त उस ईश का तीसरा रूप कुछ भी नही होता। सम्पर्ण लोको का विधाता (रचयिता) और धाता पोषक) एव परमेश्वर तथा तेईस तत्त्वो का समुदाय, ये सब कुछ शिव के लिये ही कहा गया है। इन तीनो का समुदाय ही शङ्कर का स्वरूप होता है 'अशाकर' अर्थात् शङ्कर से भिन्न तो कुछ है ही नही।"

इस प्रकार 'लिङ्ग पुराण' मे जो कुछ कहा गया है वह चाहे अन्य विचार वालो को 'शैव-सम्प्रदाय' का मत ही जान पडे, पर तत्त्वत वह समस्त विद्वानो द्वारा स्वीकृत ब्रह्म की एकता का सिद्धा त ही है। यह बात कुछ आगे चल कर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओ द्वारा की गई भगवान् शिव की स्तुति मे और भी स्पष्टता से वर्णित की गई है—

ब्रह्मादि देवो ने कहा--जो यह भगवान् रुद्र हैं वही ब्रह्मा विष्णु तथा महेश्वर हैं, और वही स्कन्द, इन्द्र और चौदह भुवन हैं। अश्विनीकुमार ग्रह, तारा, नक्षत्र, अ तरिक्ष दिशाएँ पचभूत सूय, सोम अ ठ-ग्रह, प्राण, काल, यम, मृत्यु अमृत, परमेश्वर, भूत, भव्य और वर्तमान आदि सम्पूर्ण विश्व एव समस्त जगत भगवान् शिव का ही स्वरूप है। उस सत्य रूप के लिये हमारा सब का नमस्कार और प्रणाम है। हे ! ह-श्वर देव ! आप ही आदि हैं तथा भूर्भुव स्व भी आप ही हैं। आप अन्त मे विश्वरूप हैं और सर्वदा इस जगत के शीर्ष हैं। आप अद्वितीय ब्रह्म हैं जिनके कि प्रकृति और पुरुष तथा ब्रह्मा विष्णु महेश आदि विभिन्न रूप हाते हैं। अर्थात् ये समस्त रूप उसी अद्वितीय ग्रह शक्ति के हैं। हे सुरेश्वर ! आप ही सब के आधार शांति, पुष्टि, तुष्टि हुत अहुत, विश्व अविश्व, दत्त अदत्त हो। आप कृत-अकृत, पर अपर, ध्रुव, सत्पुरुषो

के परायण और असत्पुरुषों के परायण शंकर हो। हमने इस शिव स्वरूप का अमृत पान किया है, उससे हम मुक्त हो गये।"

इस प्रकार 'लिङ्ग पुराण' ने भगवान् शिव के विश्व रूप की बहुत स्पष्ट रूप में व्याख्या की करके यह समझा दिया है कि अनेक देवी-देवताओं की उपासना का विधान और प्रचार होने पर भी सब का मूल एक ही है। अगर मनुष्य अपनी रुचि तथा योग्यता के अनुरूप किसी विशेष सम्प्रदाय का अनुगमन करते हैं तो इसमें कोई दोष नहीं। प्रत्येक सामान्य मनुष्य की यह सामर्थ्य नहीं कि वह परमात्मा के विराट स्वरूप के रहस्य को समझ सके और संसार के समस्त क्रिया-कलापों में परमात्म-शक्ति के अस्तित्व को पहिचान सके। इस लिये यदि वह किसी सीमित रूप में ही भगवान् की उपासना करता है, तो इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टि से विचार करने पर सम्प्रदायों को भी उपयोगी समझा जा सकता है, पर तभी तक जब तक कि वे हानिकारक प्रथाओं तथा रूढियों से बची रहें और विभिन्न सम्प्रदायों के बीच विष के बीज न बोयें।

अगर हम संसार की संचालक शक्ति को शिव के नाम से पुकारते हैं और उनके आदर्श को ध्यान में रख कर त्याग, तपस्या, परोपकार का जीवन बिताते हैं, तो इसे प्रशंसनीय ही माना जायगा। इसी प्रकार यदि दूसरा व्यक्ति उस 'शक्ति' को विष्णु के नाम से यदि करता है और उनके गुणों को हृदयगम करके समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम, भक्ति और मित्रता का भाव रखता है तो उसको भी धन्य कहा जायगा। शुभ कर्म हम किसी भी नाम से करें उनको वन्दनीय ही मानना चाहिये। पर यदि ये व्यक्ति 'शिव' और 'विष्णु' के नाम को लेकर आपस में बुरा-भला कहने लग जायें और परोपकार तथा सेवा को भुला बैठें तो निस्सन्देह यह एक शोचनीय बात होगी और उसे निन्दा के योग्य बताया जायगा। 'लिङ्ग पुराण' की यह विशेषता है कि उसमें सर्वत्र शिव की महिमा गाते हुये अन्य देवताओं की निन्दा नहीं की है और शिव की उपासना के जितने विधान बतलाये हैं उनमें कोई अकल्याण की बात नहीं कही है।

—श्रीराम शर्मा, आचार्य

विषय-सूची

लिङ्ग पुराण

(द्वितीय खण्ड)

५७–शिवपूजन विधि और दीपक दान का पुण्य

कथ पूज्यो महादेवो मर्त्यैर्मंदैर्महामते ।
कल्पायुषैरल्पवीर्यैरल्पसत्त्वैः प्रजापतिः ॥१
संवत्सरसहस्रैश्च तपसा पूज्य शंकरम् ।
न पश्यंति सुराश्चापि कथ देव यजंति ते ॥२
कथितं तथ्य मेवात्र युष्माभिर्मुनिपुंगवाः ।
तथापि श्रद्धया दृश्यः पूज्यः संभाव्य एव च ॥३
प्रसङ्गाच्चैव संपूज्य भक्तिहीनैरपि द्विजाः ।
भावानुरूपफलदो भगवानिति कीर्तितः ॥४
उच्छिष्टः पूजयन्याति पैशाचं तु द्विजाधमः ।
संक्रुद्धो राक्षस स्थान प्राप्नुयान्मूढधीर्द्विजाः ॥५
अभक्ष्यभक्षी सपूज्य याक्ष प्राप्नोति दुर्जनः ।
गानशीलश्च गाधर्वं नृत्यशीलस्तथैव च ॥६
ख्यातिशीलस्तथा चाद्र स्त्रीषु सक्तो नराधमः ।
मदार्त. पूजयन् रुद्रं सोमस्थानमवाप्नुयात् ॥७

इस अध्याय मे उच्छिष्टादिक पूजन से उन्यासी प्रकार का लिङ्ग होता है उसके पूजा और दर्शन का फल तथा दीपदान का फल निरूपित किया जाता है । ऋषियो ने कहा—हे महामतिमान् ! मन्द मनुष्यो के द्वारा शिव का पूजन किस प्रकार से करना चाहिए ? क्योकि कल्पायु वाले सहस्रो वर्षों तक तप के द्वारा शिव का पूजन करके भी देवगण शङ्कर का दर्शन प्राप्त नही किया करते हैं तो फिर अल्प वीर्य वाले और अत्यल्प सत्त्व वाले विचारे मानव कैसे उनका यजन कर सकते हैं तथा अत्यन्त कल्याण प्राप्त करते हैं ? ॥१॥२॥ सूतजी ने कहा—हे मुनि-

श्रेष्ठो ! आप लोगों ने यह पूर्णतया सत्य कहा है तो भी श्रद्धा एक ऐसी वस्तु है कि उसके द्वारा भगवान् शिव मानवों के दर्शन के योग्य-पूज्य और सम्भाव्य हो जाया करते हैं ।।३।। हे द्विजो ! भक्ति से रहित लोगों के द्वारा भी प्रसङ्ग वश भली-भाँति पूज्य होकर भगवान् शङ्कर भावानुरूप फल के प्रदान करने वाले हो जाते हैं—ऐसा बताया गया है ।।४।। नीच द्विज उच्छिष्ट होते हुए शिव का पूजन करके पैशाच पद को प्राप्त करता है और मूढ बुद्धि वाला सक्रुद्ध होकर राक्षसों का स्थान पाया करता है ।।५।। जो अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करने वाला है वह दुर्जन पूजन करके यक्ष पद को प्राप्त करता है । गायन के तथा नृत्य के स्वभाव वाला द्विजाधम गान्धर्व स्थान को पाता है । स्त्रियों में आसक्त अधम मनुष्य ख्याति के शील वाला चान्द्र स्थान को प्राप्त करता है । जो मदार्त होता है वह रुद्र का पूजन करता हुआ सोम के स्थान की प्राप्ति किया करता है ।।६।।७।।

गायत्र्या देवमभ्यर्च्य प्राजापत्यमवाप्नुयात् ।
ब्राह्मं हि प्रणवेनैव वैष्णवं चाभिनद्य च ।।८
श्रद्धया सकृदेवापि समभ्यर्च्य महेश्वरम् ।
रुद्रलोकमनुप्राप्य रुद्रैः सार्धं प्रमोदते ।।९
संशोध्य च शुभं लिंगममरासुरपूजितम् ।
जलैः पूतैस्तथा पीठे देवमावाह्य भक्तितः ।।१०
दृष्ट्वा देवं यथान्यायं प्रणिपत्य च शंकरम् ।
कल्पिते चासने स्थाप्य धर्मज्ञानमये शुभे ।।११
वैराग्यैश्वर्यसंपन्ने सर्वलोकनमस्कृते ।
ओंकारपद्ममध्ये तु सोमसूर्याग्निसंभवे ।।१२
पाद्यमाचमनं चार्घ्यं दत्वा रुद्राय शंभवे ।
स्नापयेद्दिव्यतोयैश्च घृतेन पयसा तथा ।।१३
दध्ना च स्नापयेद्रुद्रं शोधयेच्च यथाविधि ।
ततः शुद्धाम्बुना स्नाप्य चन्दनाद्यैश्च पूजयेत् ।।१४

गायत्री के द्वारा जो देव की अभ्यर्चना करता है वह प्राजापत्य पद

की प्राप्ति करता है । प्रणव के द्वारा पूजन करके ब्राह्म तथा वैष्णव पद को प्राप्त होता है ॥८॥ श्रद्धा से एक बार भी महेश्वर भगवान् का पूजन करके रुद्र लोक की प्राप्ति करता है और वहाँ रुद्रों के साथ प्रमोद वाला हुआ करता है । ६॥ सुर और असुरों के द्वारा पूजित शिव लिङ्ग का सशोधन करके अर्थात् पूत जल से भली-भाँति शुद्धि करके फिर पीठ पर देव की भक्ति से उनका आवाहन करे ॥१०॥ यथा न्याय देव का दर्शन कर शङ्कर को प्रणाम करे और कल्पित आसन पर उनकी स्थापना करनी चाहिए। वह आसन धर्म और ज्ञान से परिपूर्ण एवं शुभ होना चाहिए तथा वैराग्य एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न हो और सर्व लोकों के द्वारा नमस्कृत होवे । सोम सूर्याग्नि सम्भव पद्म का आसन ऐसा होवे जिसके मध्य में ओङ्कार होवे उसी पर स्थापना करे ॥११॥१२॥ आसन पर सस्थापित करने के पश्चात् शम्भु रुद्र के लिये अर्घ्य पाद्य और आचमन समर्पित करे । तथा दिव्य भागीरथी आदि के जलों से स्नान करावे । घृत-दूध और दधि से रुद्र का स्नपन करावे और विधि के अनुसार शोधन करना चाहिए। इन सब स्नपनों के अनन्तर शुद्ध जल से पुन स्नान कराकर चदनादि के द्वारा पूजन करे ॥१३॥१४॥

रोचनाद्यैश्च सपूज्य दिव्यपुष्पैश्च पूजयेत् ।
बिल्वपत्रैरखण्डैश्च पद्मैर्नानाविधैस्तथा ॥१५
नीलोत्पलैश्च राजीवैर्नद्यावर्तैश्च मल्लिकैः ।
चपकैर्जातिपुष्पैश्चवकुलैः करवीरकैः ॥१६
शमीपुष्पैर्बृहत्पुष्पैरुन्मत्तागस्त्यजैरपि ।
अपामार्गकदबैश्च भूषणैरपि शोभनैः ॥१७
दत्त्वा पचविध धूप पायस च निवेदयेत् ।
दधिभक्त च मध्वाज्यपरिप्लुतमत परम् ॥१८
शुद्धान्न चैव मुद्गान्न षड्विध च निवेदयेत् ।
अथ पचविध वापि सघृत विनिवेदयेत् ॥१६
केवल चापि शुद्धान्नमाढक तडुल पचेत् ।
कृत्वा प्रदक्षिण चाते नमस्कृत्य मुहुर्मुहु ॥२०

स्तुत्वा च देवमीशान पुन· संपूज्य शकरम् ।
ईशानं पुरुष चैव अघोर वाममेव च ॥२१
सद्योजात जपश्चापि पचभिः पूजयेच्छिवम् ।
अनेन विधिना देव. प्रसीदति महेश्वर. ॥२२

रोचना आदि से भली-भाँति पूजन करके पुनः दिव्य रूपों के द्वारा पूजन करना चाहिए। अखण्डित विल्व के पत्रों से तथा नाना प्रकार के पद्मों से नीलोत्पल-राजीव नद्यावर्त्त-मल्लिक-चम्पक-जातिपुष्प-वकुल-करवीर के पुष्प शमी के पुष्प वृहत्पुष्प-उन्मत्त (धतूरा) पुष्प अगस्त्य के पुष्प-अपामार्ग और कदम्ब के पुष्पों से भगवान् का अर्चन करना चाहिए। तथा फिर सुन्दर भूषणों से देव को समलङ्कृत करे ॥१५॥१६॥१७॥ इसके उपरान्त पाँच प्रकार का धूप समर्पित करके भगवान् को पायस समर्पित करना चाहिए। इसके अनन्तर दधिभात और मधु तथा घृत से परिप्लुत शुद्ध अन्न और छै प्रकार का मुद्गान्त निवेदित करना चाहिए। इसके अनन्तर पाँच प्रकार का घृत के सहित समर्पित करे ॥१८॥१९॥ अथवा केवल शुद्ध अन्न एक आटक तन्दुल का पाक करे। अन्त मे प्रदक्षिणा करे और वारम्वार नमस्कार करे ॥२०॥ ईशानदेव का स्तवन करके फिर शङ्कर का पूजन करे और ईशान पुरुष अघोर-वाम और सद्योजात-इनका जप करते हुए पाँचों से शिव का पूजन करना चाहिए। इस विधि से महेश्वर देव परम प्रसन्न होते हैं ॥२१॥२२॥

वृक्षा पुष्पादिपत्राद्यैरुपयुक्ता शिवार्चने ।
गावश्चैव द्विजश्रेष्ठा. प्रयाति परमा गतिम् ॥२३
पूजयेद्यः शिव रुद्र शर्वं भवमज सकृत् ।
स याति शिवसायुज्य पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥२४
अर्चितं परमेशान भव शर्वमुमापतिम् ।
सकृत्प्रसंगाद्वा दृष्ट्वा सर्वपापै· प्रमुच्यते ॥२५
पूजित वा महादेव पूजयमानमथापि वा ।
दृष्ट्वा प्रयाति वै मर्त्यो ब्रह्मलोक न सशय. ॥२६
श्रुत्वानुमोदयेच्चापि स याति परमा गतिम् ।

यो दद्याद्घृतदीपं च सक्रुल्लिगस्य चाग्रतः ।।२७
स तां गतिमवाप्नोति स्वाश्रमैर्दुर्लभां स्थिराम् ।
दीपवृक्षं पार्थिवं वा दारवं वा शिवालये ।।२८

शिवार्चन में पुष्प और पत्र आदि से जो वृक्ष उपयुक्त होते हैं तथा जो गौएँ हैं,जिनके दूध-घृत आदि का उपयोग शिवार्चन में हुआ करता है वे सब हे द्विजगण ! परमगति को प्राप्त हो जाते हैं ।।२३।। जो शिव-रुद्र-भव और अज का पूजन एकबार भी करता है वह शिव के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है जहाँ पहुँच कर पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती है ।।२४।। परमेशान-भव-शर्व और उमापति का अर्चन चाहे वह प्रसङ्ग से एकबार ही किया गया हो, इनका दर्शन करके मनुष्य सब तरह के पापों से मुक्त हो जाता है ।।२५।। महादेव का पूजन करने से अथवा पूज्यमान शिव का दर्शन करने से मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त हो जाता है—इसमें संशय नहीं है ।।२६।। शिवार्चन के विषय में श्रवण करके जो अनुमोदन करता है वह परम गति को प्राप्त हो जाता है । जो एकबार भी लिङ्ग के आगे घृत का दीपक रखता है वह उस स्थिर उत्तम गति को प्राप्त करता है जो अपने वर्णाश्रम के धर्मों के द्वारा अत्यन्त दुर्लभ होती है । शिवालय में दीप वृक्ष-पार्थिव अथवा काष्ठ का दीप देता है वह अपने सौ कुल को शिवलोक में प्रतिष्ठित किया करता है ।।२७।।२८।।

दत्त्वा कुलशतं साग्रं शिवलोके महीयते ।
आयसं ताम्रजं वापि रौप्यं सौवर्णिकं तथा ।।२९
शिवाय दीपं यो दद्याद्विधिना वापि भक्तितः ।
सूर्यायुतसमैः शुभ्रैर्यानैः शिवपुरं व्रजेत् ।।३०
कार्तिके मासि यो दद्याद् घृतदीपं शिवाग्रतः ।
सपूज्यमानं वा पश्येद्विधिना परमेश्वरम् ।।३१
स याति ब्रह्मणो लोकं श्रद्धया मुनिसत्तमा ।
आवाहनं सुसान्निध्यं स्थापनं पूजनं तथा ।।३२
संप्रोक्तं रुद्रगायत्र्या आसनं प्रणवेन वै ।
पचभिः स्नपनं प्रोक्तं रुद्राद्यैश्च विशेषतः ।।३३

एव सपूजयेन्नित्यं देवदेवमुमापतिम् ।
ब्रह्माणं दक्षिणे तस्य प्रणवेन समर्चयेत् ॥३४
उत्तरे देवदेवेशं विष्णुं गायत्रिया यजेत् ।
वह्नौ हुत्वा यथान्यायं पञ्चभि. प्रणवेन च ॥३५
स याति शिवसायुज्यमेवं सपूज्य शंकरम् ।
इति सक्षेपत: प्रोक्तो लिगार्चनविधिक्रमः ॥३६
व्यासेन कथितः पूर्वं श्रुत्वा रुद्रमुखात्स्वयम् ॥३७

आयस (लोहे का निर्मि त)–ताम्रज-रौप्य (चांदी का)–तथा सुवर्ण का बना हुआ दीप शिव के लिये विधि के सहित समर्पित करता है तथा भक्ति-भाव से देता है वह दश सहस्र सूर्य के समान शुद्धगण यानों के द्वारा शिवपुर को चला जाया करता है ॥३०॥ कार्तिक के मास मे जो कोई घृत का दीपक भगवान् शिव के आगे जाकर रखता है अथवा विधि-विधान से सम्पूज्य मान परमेश्वर का दर्शन किया करता है वह पुरुष हे मुनिगण ! निश्चय ही ब्रह्मलोक को श्रद्धा से प्राप्त हो जाता है । शिव का आवाहन-सन्निधीकरण-स्थापन तथा पूजन रुद्र गायत्री के द्वारा कहा गया है और आसन प्रणव के द्वारा तथा विशेष रूप से रुद्रादि पांच प्रणवो के द्वारा स्नपन कहा गया है ॥३१॥३२॥३३॥ इस प्रकार एवं विधि से देवो के देव उमापति का नित्य ही पूजन करना चाहिए । उनके दक्षिण मे प्रणव के द्वारा ब्रह्मा का पूजन करे ॥३४॥ उत्तर भाग मे गायत्री के द्वारा देव देवेश विष्णु का यजन करना चाहिए । विधि के अनुसार पांच प्रणवो के द्वारा अग्नि मे हवन करे । इस विधि से भगवान् शङ्कर का पूजन करके मानव शिव के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है । यह हम ने सक्षेप से शिव के लिङ्ग की अर्चना की विधि का क्रम बता दिया है । पहिले स्वयं रुद्र के मुख से श्रवण करके विस्तार के साथ कह दिया था ॥३५॥३६॥३७॥

५८–पशुपाश से मुक्तिदाता लिंगपूजा व्रत

व्रतमेतत्त्वया प्रोक्तं पशुपाशविमोक्षणम् ।
व्रतं पाशुपतं लैंगं पुरा देवैरनुष्ठितम् ॥१

वक्तुमर्हसि चास्माकं यथापूर्वं त्वया श्रुतम् ।
पुरा सनत्कुमारेण पृष्टः शैलादिरादरात् ॥२
नंदी प्राह वच स्तस्मै प्रवदामि समासतः ।
देवैर्दैत्यैस्तथा सिद्धै र्गंधर्वैः सिद्धचारणैः ॥३
मुनिभिश्च महाभागैरनुष्ठितमनुत्तमम् ।
व्रत द्वादशलिगाख्यं पशुपाशविमोक्षणम् ॥४
भोगद योगदं चैव कामद मुक्तिद शुभम् ।
अवियोगकरं पुण्यं भक्तानां भयनाशनम् ॥५
षडङ्गसहितान् वेदान्मथित्वा तेन निर्मितम् ।
सर्वदानोत्तम पुण्यमश्वमेघायुताधिकम् ॥६
सर्वमगलद पुण्य सर्वशत्रुविनाशनम् ।
ससारार्णवमग्नानां जंतूनामपि मोक्षदम् ॥७

इस अध्याय मे शिव के द्वारा कहा हुआ पशु पाश का विमोचन करने वाले लिङ्ग पूजा के व्रत का भली-भांति निरूपण किया गया है । ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आपने यह पशु-पाश के विमोचन करने वाला पाशुपत व्रत बतलाया है जो कि पहिले लैङ्ग पाशुपत व्रत देवों ने किया था ॥१॥ आप ने जैसा भी पूर्व मे श्रवण किया था वह पूर्वानुक्रम के अनुसार अब हमको बताने के योग्य होते हैं । सूतजी ने कहा—पहिले सनत्कुमार ने आदर के साथ शैलादि से पूछा था ॥२॥ नन्दी ने उनसे जो वचन कहे थे उन्हे मैं सक्षेप मे तुमको बताता हूँ । देवों ने-दैत्यों ने-सिद्ध और गन्धर्वों ने सिद्ध चारणों ने तथा महाभाग मुनियों ने उस परमोत्तम व्रत को किया था । पशुपाश से विमुक्त कराने वाला द्वादश लिङ्ग नाम वाला व्रत होता है । ॥३॥४॥ यह व्रत भोगों का देने वाला-कामद-शुभ मुक्तिद अवियोग के करने वाला-परम पुण्य और भक्तों के भय का नाश करने वाला है ॥५॥ छः अङ्गों के सहित वेदों का मथन करके उसने इसका निर्माण किया है । यह समस्त दानों से उत्तम दश सहस्र अश्वमेधों के पुण्य से अधिक पुण्य युक्त होता है ॥६॥ यह व्रत समस्त मङ्गलों का प्रदान करने वाला परम पुण्य और सब शत्रुओं का नाश

करने वाला होता है । जो जन्तु इस संसार रूपी सागर में मग्न हो रहे हैं उनको भी मोक्ष प्रदान करने वाला है ॥७॥

सर्वव्याधिहर चैव सर्वज्वरविनाशनम् ।
देवैरनुष्ठित पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुना तथा ॥८
कृत्वाऽकनीयसं लिगं स्नाप्य चदनवारिणा ।
चैत्रमासादि विप्रेंद्राः शिवलिगव्रत चरेत् ॥९
कृत्वा हैमं शुभ पद्मं कर्णिकाकेसरान्वितम् ।
नवरत्नैश्च खचितमष्टपत्र यथाविधि ॥१०
कर्णिका या न्यसेल्लिग स्फाटिक पीठसंयुतम् ।
तत्र भक्त्या यथान्यायमर्चयेद्बिल्वपत्रकैः ॥११
सितै. सहस्रकमलै रक्तैर्नीलोत्पलैरपि ।
श्वेतार्ककर्णिकारैश्च करवीरैर्बकैरपि ॥१२
एतैरन्यैर्यथालाभ गायत्र्या तस्य सुव्रताः ।
सपूज्य चैव गंधाद्यैर्धूपैर्दीपैश्च मगलै. ॥१३
नीराजनाद्यैश्च न्यैश्च लिगमूर्ति महेश्वरम् ।
अगरुं दक्षिणे दद्यादघोरेण द्विजोत्तमाः ॥१४

यह पाशुपत व्रत समस्त व्याधियों के हरण करने वाला तथा समस्त ज्वरों के विनाश करने वाला है । इस महाव्रत को पहिले देवों ने-ब्रह्मा ने तथा विष्णु ने किया था ॥८॥ एक विशाल लिङ्ग की रचना करके फिर चन्दन जल के द्वारा स्नपन कराना चाहिए । हे विप्र वृन्द ! इस व्रत अर्थात् शिव लिङ्ग व्रत को चैत मास के आदि मे करना चाहिए ॥९॥ सुवर्ण का अत्यन्त शुभ कर्णिका और केसरों से समन्वित पद्म की रचना करे और उसे आठ पत्रों वाला यथा विधि नौ प्रकार के रत्नों से रचित कराना चाहिए ॥१०॥ स्फटिक की पीठ से सयुक्त लिङ्ग को कर्णिका मे व्यस्त करना चाहिए । वहाँ पर भक्ति के भाव से यथा विधि बिल्व पत्रों के द्वारा अर्चन करना चाहिए ॥११॥ श्वेत सहस्र कमलों से-रक्त तथा नील कमलों से श्वेत अर्क के कर्णिकारों से-करवीर और बकों से तथा अन्यों के द्वारा यथा लाभ गायत्री से उसका पूजन करना चाहिए।

इस प्रकार से गन्धादि धूप और दीपादि के मंगल उपचारों के द्वारा भली-भाँति पूजन करके तथा अन्य नीराजन आदि लिङ्ग मूर्त्ति महेश्वर का अर्चन करे। हे द्विजोत्तमो! इसके उपरान्त अघोर मन्त्र के द्वारा दक्षिण भाग मे अगरु देना चाहिए ॥१२॥१३॥ ४॥

पश्चिमे सद्यमन्त्रेण दिव्या चैव मन.शिलाम् ।
उत्तरे वामदेवेन चदन वापि दापयेत् ॥१५
पुरुषेण मुनिश्रेष्ठा हरिताल च पूर्वत ।
सितागरूद्भव विप्रास्तथा कृष्णागरूद्भवम् ॥१६
तथा गुग्गुलुधूप च सौगधिकमनुत्तमम् ।
सितार नाम धूप च दद्यादीशाय भक्तित ॥१७
महाचरुनिवेद्य स्यादाढकान्नमथापि वा ।
एतद्व कथित पुण्यं शिवलिंगमह व्रतम् ॥१८
सर्वमासेषु सामान्य विशेषोपि च कीर्त्यते ।
वैशाखे वज्रलिंग च ज्येष्ठे मारकतं तथा ॥१६
आषाढे मौक्तिकं लिंग श्रावण नीलनिर्मितम् ।
मासि भाद्रपदे लिंग पद्मरागमय शुभम् ॥२०
आश्विने चव विप्रेन्द्रा गोमेदकमय शुभम् ।
प्रवालेनैव कार्तिक्या तथा वै मार्गशीर्षके ॥२१
वैडूर्यनिर्मितं लिंग पुष्परागेण पुष्यके ।
माघे च सूर्यकातेन फाल्गुने स्फाटिकेन च ॥२२

पश्चिम मे सद्य मन्त्र के द्वारा दिव्य मैनसिल तथा उत्तर मे वामदेव मन्त्र के द्वारा चन्दन देना चाहिए ॥१५॥ हे मुनिश्रेष्ठो! याजक पुरुष को पूर्व मे हरिताल देवे और श्वेत चन्दन से समुत्पन्न एव कृष्ण अगरु से निर्मित तथा गूगल की अत्युत्तम धूप जो कि अति सुगन्धि से युक्त हो, और सितार नामक धूप ईश को आघ्राण करने के लिये भक्ति पूर्वक देनी चाहिए। ॥ ६॥१७॥ इसके अनन्तर महाचरु को निवेदन करना चाहिए अथवा आढक अन्न निवेदित करे। यह परम पुण्य शिव लिङ्ग का महाव्रत मैंने आपको बतला दिया है ॥१८॥ यह समस्त मासो मे

साधारण होता है । इसकी जो कुछ विशेषता होती है वह भी बतलाई जाती है । वैशाख मास मे वज्र लिङ्ग और ज्येष्ठ मास मे मरकतमणि से निर्मित लिङ्ग का पूजन करना चाहिए ॥१६॥ आषाढ मास में मुक्ताओं से निर्मित लिङ्ग का यजन करे और श्रावण मे नीलमणि के लिङ्ग का अर्चन करना चाहिए । भाद्रपद मास मे पद्मराग के शुभ शिव लिङ्ग के पूजन का विशेष फल होता है ॥२०॥ आश्विन मे हे विप्रगण ! गोमेद नामक रत्न से निर्मित शिव लिङ्ग का पूजन करे । कार्तिक मास मे प्रवाल (मूंगा) के लिङ्ग का तथा मार्गशीर्ष मे वैडूर्य रचित लिङ्ग का यजन करना चाहिए । पौष मास मे पुण्य राग रत्न द्वारा निर्मित लिङ्ग का और माघ मे सूर्यकान्त मणि के लिङ्ग का एवं फागुन मे स्फटिक रत्न से विरचित लिङ्ग का यजन करने से विशेष फल प्राप्त होता है ॥२१॥२२॥

सर्वमासेषु कमलं हैममेकं विधीयते ।
अलाभे राजतं वापि केवलं कमलं त वा ॥२३
रत्नानामप्यलाभे तु हेम्ना वा राजतेन वा ।
रजतस्याप्यलाभे तु ताम्रलोहेन कारयेत् ॥२४
शैलं वा दारुजं वापि मृन्मयं वा नवेदिकम् ।
सर्वगंधमयं वापि क्षणिकं परिकल्पयेत् ॥२५
हैमंतिके महादेवं श्रीपत्रेणैव पूजयेत् ।
सर्वमासेषु कमलं हैममेकमथापि वा ॥२६
राजतं वापि कमलं हैमकर्णिकमुत्तमम् ।
राजतस्याप्यभावे तु बिल्वपत्रैः समर्चयेत् ॥२७
सहस्रकमलालाभे तदर्धेनापि पूजयेत् ।
तदर्धार्धेन वा रुद्रमष्टोत्तरशतेन वा ॥२८

समस्त मासों मे कमल और एक हेम निर्मित शिव लिङ्ग के पूजन का विधान होता है । यदि सुवर्ण निर्मित का लाभ न हो सके तो चाँदी से बनाये हुए लिङ्ग का या केवल कमल का ही अर्चन करे ॥२३॥ कोई भी उपर्युक्त रत्नों की प्राप्ति न होवे तो रजत का और चाँदी का भी

लाभ न होवे तो ताम्र अथवा लौह निर्मित लिङ्ग का ही पूजन करना चाहिए। ॥२४॥ अथवा शैल दारुज (काष्ठ से निर्मित -मृन्मय (मिट्टी से रचित)-सर्व वैदिक सर्व गन्धमय अथवा क्षणिक लिङ्ग की रचना कर लेनी चाहिए ॥२५॥ हेमन्त ऋतु मे बिल्वदल के द्वारा ही महादेव का पूजन करना चाहिए। समस्त मासों मे कमल अथवा एक हैम लिङ्ग का यजन करे। रजत अथवा कमल उत्तम हैम कर्णिका से युक्त का पूजन करना चाहिए। यदि राजत का भी अभाव हो तो बिल्व पत्रो से अर्चन करे ॥२६॥२७॥ एक सहस्र कमलो का लाभ न हो सके तो इससे आधी सख्या से और इतने भी न मिलें तो इसकी भी आधी सख्या वाले कमलो से अथवा अष्टोत्तरशत से ही रुद्र की अर्चना करनी चाहिए ॥२८॥

विल्वपत्रे स्थिता लक्ष्मीर्देवी लक्षणसयुता ।
नीलोत्पलेम्बिका साक्षादुत्पले षण्मुखः स्वयम् ॥२९
पद्माश्रितो महादेवः सर्वदेवपति शिव ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीपत्र न त्यजेद्बुध ॥३०
नीलोत्पल चोत्पल च कमल च विशेषत ।
सर्ववश्यकर पद्म शिला सर्वार्थसिद्धिदा ॥३१
कृष्णागरुसमुद्भूत सर्वपापनिकृन्तनम् ।
गुग्गुलु प्रभृतीना च दीपाना च निवेदनम् ॥३२
सर्वरोगक्षय चैव चदन सर्वसिद्धिदम् ।
सौगधिक तथा धूप सर्वकामार्थसाधकम् ॥३३
श्वेतागरूद्भव चैव तथा कृष्णागरूद्भवम् ।
सौम्य सीतारिधूप च साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम् ॥३४
श्वेतार्ककुसुमे साक्षात्तत्ववक्त्र प्रजापति ।
कर्णिकारस्य कुसुमे मेधा साक्षाद्व्यवस्थिता ॥३५

विल्व पत्र मे लक्षण से समन्वित लक्ष्मी देवी स्थित रहती है। नीलोत्पल मे साक्षात् अम्बिका विराजमान रहा करती है। उत्पल में षण्मुख विराजमान रहा करते हैं। पद्म मे समस्त देवों के स्वामी महादेव विराजमान हैं। इसलिये समस्त प्रयत्नों के साथ

बुद्धिमान् याजक के द्वारा कभी नहीं त्यागना चाहिए ।।२६।।३०।। नीलोत्पल-उत्पल और विशेषकर कमल तथा पद्म सब को वश्य करने वाला होता है । शिला समस्त अर्थों के प्रदान करने वाली बताई गई है ।।३१।। कृष्णागरु से समुद्भूत धूप समस्त पापों का छेदन करने वाला होता है । गुग्गुलु आदि दीपों का निवेदन भी पाप नाशक होता है ।।३२।। समस्त सिद्धियों का प्रदान करने वाला चन्दन होता है और सम्पूर्ण रागों का क्षय करने वाला होता है । सौगन्धिक अर्थात् सुगन्ध से समन्वित धूप समग्र काम तथा अर्थों का साधक होता है । ।।३ ।। श्वेत अगरु से उत्पन्न किया हुआ तथा कृष्ण अगरु से बनाया हुआ और सौम्य सितारी धूप साक्षात् निर्वाण के देने वाला होता है अर्थात् इससे निर्वाण की सिद्धि होती है ।।३४।। श्वेत आक के पुष्प म साक्षात् चतुर्मुख प्रजापति स्थित रहा करते हैं । कर्णिकार के पुष्प मे साक्षात् मेधा व्यवस्थित है ।।३५।।

करवीरे गणाध्यक्षो बके नारायण. स्वयम् ।
सुगधिषु च सर्वेषु कुसुमेषु नगात्मजा ।।३६
तस्मादेतैयथालाभ पुष्पधूपादिभि शुभै ।
पूजयेद्देवदेवेश भक्त्या वित्तानुसारतः ।।३७
निवेदयेत्ततो भक्त्या पायस च महाचरुम् ।
सघृत सोपदश च सर्वद्रव्यसमन्वितम् ।।३८
शुद्धान्न वापि मुद्गान्नताढक चार्धक तु वा ।
चामर तालवृ त च तस्मै भक्त्या निवेदयेत् ।।३६
उपहाराणि पुण्यानि न्यायेनैवार्जितान्यपि ।
नानाविधानि चार्हाणि प्रोक्षितान्यभसा पुन ।।४०
निवेदयेच्च रुद्राय भक्तियुक्तेन चेतसा ।
क्षीराद्वं सर्वदेवाना स्थित्यर्थममृत ध्रुवम् ।।४१
विष्णुना जिष्णुना साक्षादन्ने सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
भूतानामन्न दानेन प्रीतिर्भवति शकरे ।।४२

करवीर के पुष्प मे गणो के स्वामी विराजमान हैं और बक पुष्प मे स्वय नारायण स्थित होते हैं । जितने भी अन्य सुगन्धित पुष्प हैं उन सब

मे नगात्मजा देवी समास्थित रहा करती हैं ॥३६॥ अतएव इन पुष्पों के द्वारा जो भी जिस समय मे प्राप्त हो सकें लाभानुसार पुष्प दीप आदि शुभ उपचारो से अपने चित्त के अनुकूल भक्ति-भाव पूर्वक देवदेवेश का पूजनार्चन करना चाहिए ॥३७॥ इसके अनन्तर भक्ति से पायस और महाचरु का समर्पण करना चाहिए । घृत के सहित तथा उपदंश से समन्वित एव अन्य समस्त द्रव्यो से सयुत शुद्धान्न अथवा मुद्‌गान्न एक आढक अथवा आधा आढक देव की सेवा मे समर्पित करे । फिर चामर और ताल वृन्त महेश्वर को भक्ति के साथ निवेदित करे ॥३८॥३९॥ पवित्र उपहार जो न्याय पूर्वक अर्चित किये गये हो और अनेक प्रकार के हो तथा अर्पण करने के योग्य हो, फिर शुद्ध जल से प्रोक्षित हो, उन्हे भक्ति युक्त चित्त से भगवान् रुद्र के लिये समर्पित करे । भगवान् विष्णु ने तो सब देवो की स्थिति के लिये क्षीर सागर से अमृत को उद्धृत किया था ॥४०॥४१॥ अब अन्न का माहात्म्य बताते हुए कहते हैं कि अन्त मे सभी प्रतिष्ठित होते हैं । प्राणियो को अन्न का दान करने से शकर मे प्रीति होती है ॥४२॥

तस्मात्सपूजयेद्देवमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिता ।
उपहारे तथा तुष्टिर्व्यजने पवन स्वयम् ॥४३
सर्वात्मको महादेवो गधतोये ह्यपापतिः ।
पीठे वै प्रकृति साक्षान्महदाद्यैर्व्यवस्थिता ॥४४
तस्माद्देव यजेद्भक्त्या प्रतिमास यथाविधि ।
पौर्णमास्या व्रत कार्यं सर्वकामार्थसिद्धये ॥४५
सत्य शौच दया शांतिः सन्तोषो दानमेव च ।
पौर्णमास्याममावास्यामुपवास च कारयेत् ॥४६
सवत्सरान्ते गोदान वृषोत्सर्ग विशेषत ।
भोजयेद्ब्राह्मणान्भक्त्या श्रोत्रियान् वेदपारगान् ॥४७
तल्लिंग पूजित तेन सर्वद्रव्यसमन्वितम् ।
स्थापयेद्वा शिवक्षेत्रे दापयेद्ब्राह्मणाय वा ॥४८
य एव सर्वमासेषु शिवलिंगमहाव्रतम् ।

कुर्याद्भक्त्या मुनिश्रेष्ठा स एव तपता वर ।।४६

इसलिये अन्न का समर्पण करके ही देव का पूजन करना चाहिए। अन्न मे प्राण प्रतिष्ठित होते हैं। उसी प्रकार से उपहार मे तुष्टि होती है। व्यन्जन मे पवन स्वय है ।।४३।। महादेव सर्वात्मक हैं, गन्धतोय मे अपायति है। पीठ मे महद् आदि से व्यवस्थित साक्षात् प्रकृति है ।।४४।। इसलिये इस प्रकार से भक्ति भाव से प्रतिमास मे यथा विधि यजन करना चाहिए और समस्त कार्यो की सिद्धि के लिये पौर्णमासी मे व्रत करना चाहिए ।।४५।। व्रत मे सत्य शौच दया शान्ति सन्तोष और दान के नियमो का पालन करे तथा पौर्णमासी और अमावास्या मे उपवास करे ।।४६।। जब एक सम्वत्सर पूरा हो जावे तो उसके अन्त मे गो दान करे और विशेष रूप से वृष का उत्सर्ग करे अर्थात् सांड बनाकर छोडना चाहिए। जो वेदो के पारगामी अर्थात् पूर्ण पण्डित हो और श्रोत्रिय हो ऐसे ब्राह्मणो को भक्तिपूर्वक भोजन कराना चाहिए ।।४७।। उसके द्वारा समस्त द्रव्यो से समन्वित सम्पित उस शिव लिङ्ग को किसी शिव के क्षेत्र मे अर्थात् देवालय मे स्थापित कर देवे अथवा किसी यजन करने वाले योग्य ब्राह्मण को दे देना चाहिए ।।४८।। हे श्रेष्ठ मुनिवृन्द ! जो इस रीति एव विधि विधान से समस्त मासो मे भक्तिपूर्वक इस शिव लिङ्ग के महाव्रत को किया करता है वह ही तपस्या करने वालो मे परमश्रेष्ठ होता है ।।४६।।

सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानै रत्नभूषितै ।
गत्वा शिवपुर दिव्य नेहायाति कदाचन ।।५०
अथवा ह्येकमास वा चरेदेव व्रतोत्तमम् ।
शिवलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा । ५१
अथवा सक्तचित्तश्चेद्यान्यान् सचिंतयेद्वरान् ।
वषमेक चरेदेव तांस्तान्प्राप्य शिव व्रजेत् ।।५२
देवत्व वा पितृत्व वा देवराजत्वमेव च ।
गाणपत्यपद वापि सक्तोपि लभते नर ।।५३
विद्यार्थी लभते विद्या भोगार्थी भोगमाप्नुयात् ।
द्रव्यार्थी च निधि पश्येदायु कामश्चिरायुषम् ।।५४

यान्यांश्चिन्तयते कामांस्तांस्तान्प्राप्येह मोदते ।
एकमासव्रता देव सोते रुद्रत्वमाप्नुयात् । ५५
इदं पवित्र परम रहस्य व्रतोत्तम विश्वसृजापि सृष्टम् ।
हिताय देवासुरसिद्धमर्त्यविद्याधराणा परमं शिवेन ॥५६

वह अति श्रेष्ठ तपस्वी करोडो सूर्यों के समान तेज वाले तथा विविध रत्नो से समलङ्कृत विमानो के द्वारा अन्त मे दिव्य शिवलोक मे चला जाता है जहाँ से फिर इस ससार मे कभी भी वापिस नही आता है ॥५०॥ अथवा एक ही मास पर्यन्त इस परम उत्तम महाव्रत को इस विधि से कोई करता है तो उसे भी निश्चित शिवलोक की प्राप्ति होती है—इसमे कोई विचार एव सशय के करने की आवश्यकता नही है ॥५१॥ अथवा शिव लिङ्ग की समाराधना मे आसक्त चित्त वाला पुरुष अन्य सकाम श्रेष्ठ पुरुषो को इस महाव्रत को बताकर उनसे कराता है और पूर्ण वर्ष पर्यन्त इस प्रकार से समाचरण किया करता है तो वह पुरुष भी उन सबको प्राप्त कराकर स्वय भी शिव के सान्निध्य को प्राप्त किया करता है ॥५२॥ सक्त नर भी देवत्व अर्थात् देवता का पद पितृत्व-देवराज का स्थान और गाणपत्य को प्राप्त कर लेता है ॥५३॥ जो कोई विद्या की चाहना करने वाला है वह लिङ्ग व्रत के प्रभाव से विद्या की प्राप्ति करता है और जो सासारिक भोगो के उपभोग करने की कामना करता है वह भोगो को प्राप्त कर लेता है । द्रव्य की इच्छा रखने वाला पुरुष निधि को पा लेता है तथा जिसकी अपनी आयु के बढाने की कामना होती है वह चिरायुता का लाभ पाता है ॥५४॥ जिन-जिन कामनाओ की पूर्ति मनमे सोचता है उन उन कामनाओ को प्राप्त करके यहाँ लोक मे प्रसन्न होता है । यह एक मास के व्रत का ही इतना फल होता है और अन्त मे यह रुद्रत्व की प्राप्ति करता है ॥५५॥ यह परम उत्तम परम रहस्य (गोप्य) व्रत है जिसको विश्व के स्रष्टा ने सृष्ट किया है । इसे परम भगवान् शिव ने देव असुर-सिद्ध-विद्याधर और मनुष्यो के हित के लिये ही बनाया है । यह परम पवित्र व्रत है ॥५६॥

॥ ५६-शिवमहापंचाक्षर-मंत्रविधि निरूपण ॥

सर्वव्रतेषु सपूज्य देवदेवमुमापतिम् ।
जपेत्पंचाक्षरी विद्यां विधिनैव द्विजोत्तमाः ॥१
जपादेव न सदेहो व्रताना वै विशेषतः ।
समाप्तिर्नान्यथा तस्माज्जपेत्पंचाक्षरी शुभाम् ॥२
कथं पंचाक्षरी विद्या प्रभावो वा कथं वद ।
क्रमोपाय महाभाग श्रोतु' कौतूहलं हि नः ॥३
पुरा देवेन रुद्रेण देवदेवेन शंभुना ।
पार्वत्या· कथितं पुण्यं प्रवदामि समासतः ।।४
भगवन्देवदेवेश सर्वलोकमहेश्वर ।
पंचाक्षरस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥५
पंचाक्षरस्य माहात्म्यं वर्षकोटिशतैरपि ।
न शक्यं कथितु' देवि तस्मात्संक्षेपत· शृणु ॥६
प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजंगमे ।
नष्टे देवासुरे चैव नष्टे चोरगराक्षसे ॥७

इस अध्याय मे शुभ पञ्चाक्षर विधि शिव के द्वारा बताई हुई विनियोग आदि के सहित निरूपित की जाती है। सूतजी ने कहा—हे द्विजोत्तमगण ! समस्त व्रतो मे देवो के देव उमा के पति शिव का भली-भाँति अर्चन करके विधिपूर्वक पञ्चाक्षरी विद्या का जप करना चाहिए ॥१॥ इसमे कुछ भी सन्देह नही है कि व्रतो की विशेष रूप से समाप्ति जप से ही होती हैं। अन्यथा व्रतो की पूर्णता नही होती है। इसलिये शुभ पञ्चाक्षरी विद्या का जप अवश्य ही करना चाहिए ॥२॥ ऋषियो ने कहा—पचाक्षरी विद्या का प्रभाव किस प्रकार से होता है और वह कैसा प्रभाव है—यह हे महाभाग ! आप उसका क्रम एव उपाय बतलाने की कृपा करें, हमको इसके श्रवण करने की बडी लालसा है ॥३॥ सूतजी ने कहा—पहिले समय मे देवो के देव भगवान् शम्भु रुद्र ने इसे पार्वती से कहा था। उस पुण्यमय विद्या के प्रभाव को मैं सक्षेप मे बतलाता हूँ ॥४॥ श्रीदेवी ने कहा था—हे भगवन् ! हे देवदेवेश्वर ! हे समस्त लोको

के महेश्वर ! मैं पचाक्षर का माहात्म्य का तत्त्व पूर्वक श्रवण करना चाहती हूँ। श्री भगवान् ने कहा—हे देवि ! इस पचाक्षर का माहात्म्य इतना विशाल एव महान् है कि सैकडो करोड वर्षो मे भी कहा नही जा सकता है। इसलिये इसका माहात्म्य सुनना चाहती हो तो सक्षेप मे ही सुनलो ॥५॥६॥ महाप्रलय के प्राप्त होने पर जब कि समस्त यह स्थावर और जङ्गम जगत् नष्ट हो गया था तथा देव सौर असुर-उरग और राक्षस सब नष्ट हो गये थे ॥७॥

सर्वं प्रकृतिमापन्नं त्वया प्रलयमेष्यति ।
एकोहं सस्थितो देवि न द्वितीयोस्ति कुत्रचित् ॥८
तस्मिन्वेदाश्च शास्त्राणि मंत्रे पंचाक्षरे स्थिताः ।
ते नाशं नैव सप्राप्ता मच्छक्त्या ह्यनुपालिता' ॥९
अहमेको द्विधाऽभवासं प्रकृत्यात्मप्रभेदत ।
स तु नारायण· शेते देवो मायामयी तनुम् ॥१०
आस्थाय योगपर्यंकशयने तोयमध्यग ।
तन्नाभिपंकजाज्जात पंचवक्त्र· पितामहः ॥११
सिसृक्षमाणो लोकान्वै श्रीनशक्तोऽसहायवान् ।
दश ब्रह्मा ससर्जादौ मानसानमितौजसः ॥१२
तेपा सृष्टिप्रसिद्धयर्थं मां प्रोवाच पितामह ।
मत्पुत्राणा महादेव शक्ति देहि महेश्वर ॥१३
इति तेन समादिष्ट पंचवक्त्रधरो ह्यहम् ।
पंचाक्षरा·पचमुखै प्रोक्तवान् पद्म योनये ॥१४

यह समस्त जगत् प्रकृति मे लीन हो गया था और तुम्हारे साथ महाप्रलय काल मे चला जायगा। उस समय मैं एक अकेला ही सस्थित रहता हूँ। मेरे सिवाय दूसरा कोई भी कही नहीं रहता है ॥८॥ उस समय मे वेद और समस्त शास्त्र पचाक्षर मन्त्र मे अवस्थित हो जाते हैं। ये सब मेरी शक्ति से अनुपालित होकर नाश को प्राप्त नही होते हैं। ॥९॥ मैं एक आत्मा के प्रभेद से प्रकृति से दो प्रकार का भी था। वह नारायण देव मायामयी तनु मे आस्थित होकर जल के मध्य मे रहते हुए

योग के पर्यङ्क शयन में सोया करते हैं। उनकी नाभि से समुत्पन्न पङ्कज से पंच वक्त्र पितामह उत्पन्न हुए थे ॥१०॥११॥ तीन लोकों की सृष्टि करने की इच्छा रखते हुए भी सहायता से रहित होकर अशक्त हो गये थे। फिर ब्रह्मा ने आदि में अपरिमित ओज से संयुक्त दश को मन से उत्पन्न किया था ॥१२॥ उनकी सृष्टि की प्रसिद्धि के लिये पितामह ने मुझसे कहा—हे महेश्वर ! हे महादेव ! मेरे पुत्रों को शक्ति प्रदान करो ॥१३॥ इस तरह से पितामह के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाले मैंने जो कि मैं पाँच मुखों को धारण करने वाला था अपने पाँच मुखों से पाँच अक्षरों को पद्म योनि को बताया था ॥१४॥

तान्पंचवदनैर्गृह्णन् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
वाच्यवाचकभावेन ज्ञातवान्परमेश्वरम् ॥१५
वाच्यः पंचाक्षरैर्देवि शिवस्त्रैलोक्यपूजितः ।
वाचकः परमो मंत्रस्तस्य पंचाक्षरः स्थितः ॥१६
ज्ञात्वा प्रयोगं विधिना च सिद्धिं लब्ध्वा तया पंचमुखो महात्मा ।
प्रोवाच पुत्रेषु जगद्धिताय मंत्रं महार्थं किल पंचवर्णम् ॥१७
ते लब्ध्वा मंत्ररत्नं तु साक्षाल्लोकपितामहात् ।
तमाराधयितुं देवं परात्परतरं शिवम् ॥१८
ततस्तुतोष भगवान् त्रिमूर्तीनां परः शिवः ।
दत्तवानखिलं ज्ञानमणिमादिगुणाष्टकम् ॥१९
तेपि लब्ध्वा वरान्विप्रास्तदाराधनकांक्षिणः ।
मेरोस्तु शिखरे रम्ये मुंजवान्नाम पर्वतः ॥२०
मत्प्रियः सततं श्रीमान्मद्भूतैः परिरक्षितः ।
तस्याभ्याशे तपस्तीव्रं लोकसृष्टिसमुत्सुकाः ॥२१

लोकों के पितामह ने उन पाँच अक्षरों को अपने पाँच मुखों से ग्रहण करते हुए वाच्य-वाचक भाव से परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त किया था ॥१५॥ हे देवि ! त्रैलोक्य के द्वारा पूजित शिव तो पंचाक्षरों के द्वारा वाच्य था और वाचक परम मन्त्र पंचाक्षर स्वरूप में स्थित था ॥१६॥ विधि के सहित प्रयोग को जानकर तथा सिद्धि को प्राप्त करके पंचमुख महान्

आत्मा वाले ने उस महान् अर्थ वाले पाँच वर्णों से युक्त मन्त्र को जगत् के हित के लिये पुत्रों को बताया था। ॥१७॥ उन दश ब्रह्मा के मानस पुत्रों ने साक्षात् लोक पितामह से उस मन्त्र रत्न की प्राप्ति करके परात्पर देव शिव की आराधना करने लगे थे ॥१८॥ इसके उपरान्त त्रिमूर्त्तियों पर प्रधानदेव शिव भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे। फिर उन्होंने सन्तुष्ट होकर अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों का पूर्ण ज्ञान उन्हे प्रदान कर दिया था ॥१९॥ वे सब भी हे विप्रो ! उनके आराधना की आकाङ्क्षा वाले वरों को प्राप्त करके पर्वत पर चले गये थे। मेरु पर्वत के शिखर पर एक अत्यन्त रमणीय मुञ्जवान् नामक पर्वत है ॥२०॥ वह पर्वत मेरा अत्यन्त सर्वदा प्रिय है और श्री सम्पन्न वह मेरे भूतगणों के द्वारा परिरक्षित भी है। उसके ही समीप मे लोकों की सृष्टि करने के लिये परम उत्सुक उन्होंने तीव्र तपस्या की थी ॥२१॥

दिव्यवर्षसहस्रं तु वायुभक्षाः समाचरन् ।
तिष्ठंतोनुग्रहार्थाय देवि ते ऋषयः पुरा ॥२२
तेषां भक्तिमहं दृष्ट्वा सद्यः प्रत्यक्षतामयाम् ।
पंचाक्षरमृषिच्छन्दो दैवतं शक्तिबीजवत् ॥२३
न्यासं षडंगं दिग्बंधं विनियोगमशेषतः ।
प्रोक्तवानहमार्याणां लोकानां हितकाम्यया ॥२४
तच्छ्रुत्वा मंत्रमाहात्म्यमृषयस्ते तपोधनाः ।
मंत्रस्य विनियोगं च कृत्वा सर्वमनुष्ठिता ॥२५
तन्माहात्म्यात्तदालोकान्सदेवासुरमानुषान् ।
वर्णान्वर्णविभागाश्च सर्वधर्मांश्च शोभनान् ॥२६
पूर्वकल्पसमुद्भूताञ्छ्रुत्वंतो यथा पुरा ।
पंचाक्षरप्रभावाच्च लोका वेदा महर्षयः ॥२७

वहाँ पर एक सहस्र दिव्य वर्षों तक वायु का भक्षण करते हुए उग्र तप किया था। हे देवि ! पहिले उस समय मे वे ऋषिगण अनुग्रह की प्राप्ति के प्रयोजन से वहाँ तप मे स्थित रहे थे ॥२२॥ उनकी अति तीव्र भक्ति को देखकर मैं तुरन्त ही प्रत्यक्ष हो गया था। उस पंचाक्षर मन्त्र

योग के पर्यङ्क शयन में सोया करते हैं। उनकी नाभि से समुत्पन्न पङ्कज से पंच वक्त्र पितामह उत्पन्न हुए थे ॥१०॥११॥ तीन लोकों की सृष्टि करने की इच्छा रखते हुए भी सहायता से रहित होकर अशक्त हो गये थे। फिर ब्रह्मा ने आदि में अपरिमित ओज से संयुक्त दश को मन से उत्पन्न किया था ॥१२॥ उनकी सृष्टि की प्रसिद्धि के लिये पितामह ने मुझसे कहा — हे महेश्वर ! हे महादेव ! मेरे पुत्रों को शक्ति प्रदान करो ॥१३॥ इस तरह से पितामह के द्वारा आज्ञा प्राप्त करने वाले मैंने जो कि मैं पाँच मुखों को धारण करने वाला था अपने पाँच मुखों से पाँच अक्षरों को पद्म योनि को बताया था ॥१४॥

तान्पंचवदनैर्गृह्णन् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
वाच्यवाचकभावेन ज्ञातवान्परमेश्वरम् ॥१५
वाच्यः पंचाक्षरैर्देवि शिवस्त्रैलोक्यपूजितः ।
वाचकः परमो मन्त्रस्तस्य पंचाक्षरः स्थितः ॥१६
ज्ञात्वा प्रयोगं विधिना च सिद्धिं लब्ध्वा तथा पंचमुखो महात्मा ।
प्रोवाच पुत्रेषु जगद्धिताय मंत्रं महार्थं किल पंचवर्णम् ॥१७
ते लब्ध्वा मंत्ररत्नं तु साक्षाल्लोकपितामहात् ।
तमाराधयितुं देवं परात्परतरं शिवम् ॥१८
ततस्तुतोष भगवान् त्रिमूर्तीनां परः शिवः ।
दत्तवानखिलं ज्ञानमणिमादिगुणाष्टकम् ॥१९
तेपि लब्ध्वा वरान्विप्रास्तदाराधनकाङ्क्षिणः ।
मेरोस्तु शिखरे रम्ये मुंजवान्नाम पर्वतः ॥२०
मत्प्रियः सततं श्रीमान्मद्भूतैः परिरक्षितः ।
तस्याभ्याशे तपस्तीव्रं लोकसृष्टिसमुत्सुकाः ॥२१

लोकों के पितामह ने उन पाँच अक्षरों को अपने पाँच मुखों से ग्रहण करते हुए वाच्य-वाचक भाव से परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त किया था ॥१५॥ हे देवि ! त्रैलोक्य के द्वारा पूजित शिव तो पचाक्षरों के द्वारा वाच्य था और वाचक परम मन्त्र पचाक्षर स्वरूप में स्थित था ॥१६॥ विधि के सहित प्रयोग को जानकर तथा सिद्धि को प्राप्त करके पचमुख महान्

आत्मा वाले ने उस महान् अर्थ वाले पाँच वर्णों से युक्त मन्त्र को जगत् के हित के लिये पुत्रों को बताया था। ॥१७॥ उन दश ब्रह्मा के मानस पुत्रों ने साक्षात् लोक पितामह से उस मन्त्र रत्न की प्राप्ति करके परात्पर देव शिव की आराधना करने लगे थे ॥१८॥ इसके उपरान्त त्रिमूर्त्तियों पर प्रधानदेव शिव भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे। फिर उन्होंने सन्तुष्ट होकर अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों का पूर्ण ज्ञान उन्हे प्रदान कर दिया था ॥१९॥ वे सब भी हे विप्रो ! उनके आराधना की आकाङ्क्षा वाले वरों को प्राप्त करके पर्वत पर चले गये थे। मेरु पर्वत के शिखर पर एक अत्यन्त रमणीय मुञ्जवान् नामक पर्वत है ॥२०॥ वह पर्वत मेरा अत्यन्त सर्वदा प्रिय है और श्री सम्पन्न वह मेरे भूतगणों के द्वारा परि-रक्षित भी है। उसके ही समीप में लोकों की सृष्टि करने के लिये परम उत्सुक उन्होने तीव्र तपस्या की थी ॥२१॥

दिव्यवर्षसहस्रं तु वायुभक्षाः समाचरन् ।
तिष्ठंतोनुग्रहार्थाय देवि ते ऋषय पुरा ॥२२
तेषां भक्तिमहं दृष्ट्वा सद्य प्रत्यक्षतामयाम् ।
पंचाक्षरमृषिच्छन्दो दैवतं शक्तिबीजवत् ॥२३
न्यास षडंगं दिग्बधं विनियोगमशेषतः ।
प्रोक्तवानहमार्याणा लोकाना हितकाम्यया ॥२४
तच्छ्रुत्वा मंत्रमाहात्म्यमृषयस्ते तपोधनाः ।
मंत्रस्य विनियोगं च कृत्वा सर्वमनुष्ठता ॥२५
तन्माहात्म्यात्तदालोकान्सदेवासुरमानुषान् ।
वर्णान्वर्णविभागाश्च सर्वधर्माश्च शोभनान् ॥२६
पूर्वकल्पसमुद्भूताञ्छ्रुतवंतो यथा पुरा ।
पचाक्षरप्रभावाच्च लोका वेदा महर्षयः ॥२७

वहाँ पर एक सहस्र दिव्य वर्षों तक वायु का भक्षण करते हुए उग्र तप किया था। हे देवि ! पहिले उस समय मे वे ऋषिगण अनुग्रह की प्राप्ति के प्रयोजन से वहाँ तप मे स्थित रहे थे ॥२२॥ उनकी अति तीव्र भक्ति को देखकर मैं तुरन्त ही प्रत्यक्ष हो गया था। उस पचाक्षर मन्त्र

को ऋषि छन्द-देवता-बीज और शक्ति सबसे युक्त-षडङ्गन्यास-दिग्बन्ध और विनियोग इन सबके सहित पूर्ण रूप मे लोको के हित की कामना से उन आर्यों को मैंने बतला दिया था ॥२३॥२४॥ तप के घम वाले अर्थात् परम तपस्वी उन ऋषियो ने मन्त्र का माहात्म्य श्रवण करके और मन्त्र का विनियोग करके उन्होने पूर्णतया अनुष्ठान किया था ॥२५॥ उसके माहात्म्य से उस समय मे देव-असुर और मनुष्यो के सहित समस्त लोक-वर्ण-आश्रय के विभाग और समस्त शोभन धर्म जो कि पहले कल्प मे समुद्भूत थे इस पचाक्षर के प्रभाव से लोक-वेद तथा महर्षि सब ज्ञाता हो गये थे ॥२६॥२७॥

॥ ६०—ध्यानयज्ञ माहात्म्य-वर्णन ॥

जपाच्छ्रेष्ठतमं प्राहुर्ब्राह्मणा दग्धकिल्बिषाः ।
विरक्ताना प्रवुद्धाना ध्यानयज्ञं सुशोभनम् ॥१
तस्माद्वदस्व सूताद्य ध्यानयज्ञमशेषतः ।
विस्तरात्सर्वयत्नेन विरक्तानां महात्मनाम् ॥२
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मुनीना दीर्घसत्रिणाम् ।
रुद्रेण कथितं प्राह गुहा प्राप्य महात्मनाम् ॥३
संहृत्य कालकूटाख्यं विष वै विश्वकर्मणा ।
गुहा प्राप्य सुखासीनं भवान्या सह शंकरम् ॥४
मुनयः संशितात्मानः प्रणेमुस्तं गुहाश्रयम् ।
पस्तुवंश्च ततः सर्वे नीलकंठमुमापतिम् ॥५
अत्युग्रं कालकूटाख्यं संहृतं भगवंस्त्वया ।
अतः प्रतिष्ठितं सर्वं त्वया देव वृषध्वज ॥६
तेषा तद्वचनं श्रुत्वा भगवान्नीललोहितः ।
प्रहसन्प्राह विश्वात्मा सनंदनपुरोगमान् ॥७

इस अध्याय मे कालकूट नाम वाला समस्त दुःखों का निवारक ध्यान तथा शिव के द्वारा वर्णित ज्ञान का माहात्म्य निरूपित किया जाता है। ऋषियो ने कहा—अपने किल्विषो को दग्ध कर देने वाले

ब्राह्मण प्रबुद्ध अर्थात् ज्ञानी विरक्तो का परम शोभन ध्यान यज्ञ को जप से अधिक श्रेष्ठ बताते हैं। इसलिये हे सूतजी ! आप हमको वह ध्यान यज्ञ पूर्ण रूप से बताने की कृपा करें जिसको महान् आत्मा वाले विरक्त लोग किया करते हैं। ॥१॥२॥ दीर्घसत्र करने वाले उन मुनियो के इस वचन को सुनकर विश्व कर्मा भगवान् रुद्र ने कालकूटाख्य विष को सहृत करके महात्माओ की गुहा मे जाकर कहा था उसे कहा। सूतजी ने कहा—गुहा में जाकर भगवान् शङ्कर भवानी के साथ सुख पूर्वक विराजमान थे ॥३॥४॥ सदय से पूर्ण आत्मा वाले मुनिगण ने वहाँ गुहा मे आश्रय ग्रहण करने वाले भगवान् शकर को प्रणाम किया था। फिर सब ने उमा के स्वामी नील कण्ठ की स्तुति की थी ॥५॥ मुनियो ने कहा—हे भगवन् ! आपने अत्यन्त उग्र कालकूट विष को सहृत किया है। हे वृषध्वजदेव ! इससे आपने सब की रक्षा कर प्रतिष्ठित करने की कृपा की है। ॥६॥ उन सबके इस वचन का श्रवण कर विश्व की आत्मा भगवान् नील लोहित हँसकर उनसे बोले जिनमे कि सनन्दन प्रमुख थे ॥७॥

किमनेन द्विजश्रेष्ठा विष वदये सुदारुणम् ।
साहरेत्तद्विष यस्तु स समर्थो ह्यनेन किम् ॥८
न विष कालकूटाख्य ससारो विषमुच्यते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सहरेत सुदारुणम् ॥९
ससारो द्विविध प्रोक्त स्वाधिकारानुरूपत ।
पु सा समूढचित्तानामसक्षीण सुदारुण ॥१०
ईर्षणारागदोषेण सर्गो ज्ञानेन सुव्रता ।
तद्वशादेव सर्वेषां धर्माधर्मौ न सशय ॥११
असन्निकृष्टे त्वर्थेपि शास्त्र तच्छ्रवणात्सताम् ।
बुद्धिमुत्पादयत्येव ससारे विदुषा द्विजा ॥१२
तस्माद् दृष्टानुश्रविकं दुष्टमित्युभयात्मकम् ।
सत्यजेत्सर्वयत्नेन विरक्त सोभिधीयते ॥१३
शास्त्रमित्युच्यतेऽमार्ग श्रुते धर्मसु तद्द्विजा ।
मूर्धानं ब्रह्मण मात्मपृथ्वीणां कर्मण फलम् ॥१४

शिव ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो ! इससे क्या विष को मैं सुदारुण कहूँगा। जो इस विष का संहार करने वाला है वह परम समर्थ है। इसलिये इससे क्या होता है ॥८॥ कालकूट नाम वाला विष नहीं है। यह संसार ही महाविष है। इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा इस सुदारुण विष का संहरण करना चाहिए ॥९॥ अपने अधिकार के अनुरूप यह संसार दो प्रकार का बताया गया है जो कि समूढ चित्त वाले पुरुषों का असंक्षीण और अत्यन्त दारुण होता है। ॥१०॥ अब संसार का मूल बताते हैं। आप लोग तो ज्ञान से सुव्रत वाले हो—यह इच्छा और विषयों मे प्रीति जो है यही इसका सर्ग है। इन्ही के कारण से सब का धर्म और अधर्म होता है—इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥११॥ अप्रत्यक्ष स्वर्गादि अर्थ मे आस्तिक जीवो को श्रवण करने से उसके धर्म का प्रतिपादक शास्त्र संसार मे बुद्धि को उत्पन्न कर ही देता है ॥१२॥ इसलिये यह विष रूप होने से दो प्रकार का होता है। एक तो दृष्ट जो ऐहिक है अर्थात् इसी लोक मे होने वाला है और दूसरा पारलौकिक है जिसका अनुश्रवण किया करते हैं। ये दोनो ही प्रकार का दोष युक्त है—ऐसा समझ कर जो इसे पूर्ण प्रयत्न से त्याग देता है वही विरक्त कहा जाया करता है ॥१३॥ श्रुति के प्रतिपादित कर्मों मे अनेक देशों वेद का मस्तक स्वरूप अतीन्द्रिय दृष्टि वाले ऋषियो का सार निष्काम कर्म का फल जो अध्यात्म शास्त्र है वह ही शास्त्र कहा जाता है ॥१४॥

ननु स्वभ व सर्वेषा कामो दृष्टो न चान्यथा ।
श्रुतिः प्रवर्तिका तेषामिति कर्मण्यतद्विदः ॥१५
निवृत्तिलक्षणो धर्म समर्थाना मिहोच्यते ।
तस्माज्ज्ञानमूलो हि ससार सवदेहिनाम् ॥१६
कला संशोप्रमायाति कर्मणान्यस्वभावत ।
सकलस्त्रिविधो जीव। ज्ञानहीनस्त्वविद्यया ॥१७
सारको प पक्व -अर्थी पुण्यकृत् पापकृत् ।
व्यतिमिश्रेण वै जोवश्चतुर्धा सव्यवस्थित ॥१८
उद्भिज. स्वेदजश्चैव अंडजो वै जरायुजः ।

एष व्यवस्थितो देही कर्मणाज्ञो ह्यनिर्वृतः ॥ १९
प्रजया कर्मणा मुक्तिर्धनेन च सतां न हि ।
त्यागेनैकेन मुक्तिः स्यात्तदभावाद्भ्रमत्यमौ ॥२०
एवमज्ञानदोषेणनानाकर्मवशेन च ।
षट्कौशिक समुद्भूतं भजत्येष कलेवरम् ॥२१

सब का स्वभाव काम देखा जाता है। इसके विपरीत नहीं देखा जाता है। उनमें श्रुति प्रवृत्त कराने वाली होती है किन्तु कर्म में जो ज्ञाता नहीं होते हैं वे ही अन्यथा कहा करते हैं ॥१५॥ जो समर्थ अर्थात् विरक्त हैं उनका धर्म निवृत्ति के लक्षण वाला होता है और वही धर्म-इस नाम से कहा जाया करता है। इसलिये समस्त देहधारियों को यह संसार अज्ञान के मूल वाला होता है ॥१६॥ अन्य स्वभाव से काम्य कर्म के वशीभूत होकर यह जीव कला सदोष को प्राप्त हो जाती है अर्थात् सकल हो जाता है। वह सकल जीव तीन प्रकार का है जो अविद्या से ज्ञान हीन होता है ॥१७॥ पापों के करने वाला नारकी-पुण्य कर्म करने वाला स्वर्गी होता है क्योंकि यह पुण्य के गौरव से होता है। पुण्य तथा पाप स्वरूप व्यति मिश्रित कर्म से युक्त होता है। उद्भिजादि देह से युक्त चार प्रकार का जीव संव्यवस्थित होता है ॥१८॥ उद्भिज-स्वेदज-अण्डज और जरायुज-इन प्रकारों से कर्म से यह अज्ञ और अनिर्वृत देही व्यवस्थित होता है ॥१९॥ सत्पुरुषों की मुक्ति प्रजा से, कर्म से और धन से मुक्ति नहीं होती है। केवल एक त्याग ही ऐसा है जिससे जन्म-मरण रूपी आवागमन के भव बन्धन से छुटकारा होता है। इसके अभाव होने पर यह जीव भ्रमता रहा करता है ॥२०॥ इस प्रकार से अज्ञान के दोष से तथा अनेक प्रकार के कर्मों के कारण से स्नायु आदि छै कोशों से युक्त इस कलेवर को धारण कर समुत्पन्न हुआ करता है और उसका सेवन किया करता है ॥२१॥

गर्भे दुःखान्यनेकानि योनिमार्गे च भूतले ।
कौमारे यौवने चैव वार्धके मरणेऽपि वा ॥२२
विचारतः सतां दुःख स्त्रीसंसर्गादिभिर्द्विजाः ।

दु.खेनैकेन वै दु.खं प्रशाम्यतीह दु.खिन· ॥२३
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥२४
तस्माद्विचारतो नास्ति संयोगादपि वै नृणाम् ।
अर्थानामर्जनेप्येवं पालने च व्यये तथा ॥२५
पैशाचे राक्षसे दुःखं याक्षे चैव विचारतः ।
गाधर्वे च तथा चाद्रे सौम्यलोके द्विजोत्तमाः ॥२६
प्राजापत्ये तथा ब्राह्मे प्राकृते पौरुषे तथा ।
क्षयसातिशयाद्यैस्तु दु खैर्दु :खानि सुव्रताः ॥२७
तानि भाग्यान्यशुद्धानि मत्यजेन्न घनानि च ।
तस्मादष्टगुण भोग तथा षोडशधा स्थितम् ॥२८

यह ससार पूर्ण रूप से दुःखमय है । पहिले जब यह जीव गर्भावास मे आता है तो वहाँ पर नौमास तक रहने में बडी पीडा का अनुभव होता है । गर्भ की अन्ध कोठरी मे एक ही नही अनेको दु खो को सहना पडता है । फिर योनि द्वारा तन्त्री के द्वारा तार की भाँति जन्म धारण करने मे बडी वेदना हुआ करती है । भूतल मे आने पर बहुत से शारीरिक कष्ट सहता है बचपन-यौवन और वार्धक्य मे अगणित सासारिक कष्ट भोगता है और अन्त मे मरने का भी महान् दु ख होता है क्योकि इस शरीर का त्याग करने मे जीव को बडी वेदना हुआ करती है । ॥२२॥ हे द्विजवृन्द ! विचार किया जावे तो सत्पुरुषो को स्त्री के ससर्ग आदि मे बडा दु ख होता है । यहाँ ससार मे ये दु खित प्राणी एक दु ख से दूसरे दु ख को प्रशमित करने की चेष्टा किया करते हैं ॥२३॥ कामनाओ की उपभोग द्वारा पूर्त्ति कर देने पर शान्ति नही हुआ करती है । काम पूर्ति से तो वह कामना हवि के जलने से अग्नि की भाँति अत्यधिक बढ जाया करती हैं ॥२४॥ इसलिये विचार से तथा मानवो के सयोग होने से दु खो से छुटकारा नही होना है । धन के अर्जन मे बहुत कष्ट होता है फिर उसकी रक्षा करने मे तथा व्यय करने मे भी महान् दु ख होता है ॥२५॥ विचार किया जावे तो पैशाच-राक्षस और यक्ष इन सभी

पदो मे दु ख भरा हुआ है । हे द्विजवृन्द ! गान्धर्व-चान्द्र और सौम्य लोक मे तथा प्राजापत्य-ब्राह्म प्राकृत और पौरुष म सर्वत्र क्षय, अति श्रेष्ठता कारण वाले दु खो से भी अनेक दु'ख हुआ करते हैं ॥२६॥२७॥ पूर्वोक्त ससार से सम्बन्ध रखने वाले भाग्य अशुद्ध होते हैं । अतएव धनो का भली भाँति त्याग कर देना चाहिए क्योकि धन मे कष्ट के अतिरिक्त कोई भी कल्याण नही होता है । पार्थिवादि ऐश्वय अष्टगुण दु खरूप होता है और आप्य ऐश्वर्य सोलह गुना दु ख स्वरूप होता है ॥ २८॥

चतुर्विंशत्प्रकारेण सस्थित चापि सुव्रता ।
द्वात्रिंशद्भेदमनघाश्चत्वारिंशद्गुण पुन ॥२६
तथाष्टचत्वारिंशच्च पट्पचाशत्प्रकारतः ।
चतु पष्टिविध चैव दु खमेव विवेकिन ॥३०
पार्थिव च तथाप्य च तैजस च विचारत ।
वायव्य च तथा व्योम मानस च यथाक्रमम् ॥३१
अभिमानिकमप्येव बौद्ध प्राकृतमेव च ।
दु खमेव न सदेहो योगिना ब्रह्मवादिनाम् ॥३२
गौण गणेश्वराणा च दु खमेव विचारत ।
आदौ मध्ये तथा चाते सर्वलाकेपु सर्वदा ॥३३
वतमानानि दु खानि भविष्याणि यथानथम् ।
दोषदुष्टेपु देशेपु दुःखानि विविधानि च ॥३४
न भावयत्यतीतानि ह्यज्ञाने ज्ञानमानिन ।
क्षुध्याधे परिहारार्थं न सुखायान्नमुच्यते ॥३५

इस प्रकार से आठ-आठ की सख्या वृद्धि करने पर चौबीस गुना-बत्तीस गुना चालीस गुना अडतालीस छप्पन तथा चौंसठ प्रकार का दु ख विवेकी को होता है ॥२६॥३०॥ इन आठ से गुणित दु खो का क्रम पार्थिव आप्य तैजस वायव्य व्योम और मानस-आभिमानिक-बौद्ध और प्राकृत इस रीति से है । जो ब्रह्मवादी योगी पुरुष हैं उनको दु ख ही दु ख होता है-इसमे कुछ भी सन्देह नही है ॥३१॥३२॥ जो गणेश्वर हैं अर्थात् शिवगण के स्वामी हैं उनको गौण दु ख होता है । इस प्रकार से

विचार किया जावे तो सभी लोकों मे सर्वदा यथातथ दु.खं ही हैं—ऐसा जान लेना चाहिए ॥३३॥ दोषो से दूषित देशो मे विविध भाँति के दु ख हुआ करते हैं। कुछ दु ख वर्त्तमान होते हैं और कुछ भविष्य मे होने वाले दु'ख हुआ करते हैं ॥३४॥ जो अतीत अर्थात् अति क्रान्त हुए दु ख हैं वे अज्ञान मे ज्ञान के मानी को भावित नही होते हैं। क्षुधा की व्याधि के परिहार के लिये और सुख प्राप्त करने के वास्ते अन्त नही कहा जाता है ॥३५॥

यथेतरेषां रोगाणामौषध न सुखाय तत् ।
शीतोष्णवातवर्षाद्यैस्तत्तत्कालेपु देहिनाम् ॥३६
दु खमेव न सदेहो न जानंति ह्यपंडिताः ।
स्वर्गेप्येव मुनिश्रेष्ठा ह्यविशुद्धक्षयादिभिः ॥३७
रोगैर्नानाविधैर्ग्रस्ता रागद्वेषभयादिभिः ।
छिन्नमूलतरुर्यद्वदवशः पतति क्षितौ ॥३८
पुण्यवृक्षक्षयात्तद्वद्गा पतंति दिवौकसः ।
दुःखाभिलाषनिष्ठाना दु खभोगादिसंपदाम् ॥३६
अस्मात्तु पतता दु खं कष्टं स्वर्गाद्दिवौकसाम् ।
नरके दुःखमेवात्र नरकाणा निषेवणात् ॥४०
विहिताकरणाच्चैव वर्णिना मुनिपु गवा. ॥४१

जिस प्रकार से शीत, उष्ण, वात और वर्षा आदि से तत्तत्काल मे देहधारियों के अन्य रोगो के लिये जो औषध है वह सुख के लिये नहीं होती है ॥३६॥ वह भी दु ख ही होता है किन्तु जो पण्डित नही होते है वे इसे जानते नहीं हैं। हे श्रेष्ठ मुनिगण ! स्वर्ग मे भी विशुद्ध ज्ञान-अविशुद्ध पुण्य और उसके क्षय आदि से होने वाले राग-द्वेष-भय आदि नाना दु ख तथा रोगों से जीव ग्रस्त होते हैं और वहाँ से अर्थात् स्वर्ग से छिन्न मूल वाले वृक्ष की भाँति वश रहित होकर पुण्य के क्षीण होने पर पुनः पृथ्वी पर आकर गिरता है। पुण्य की समाप्ति होते ही स्वर्गीय सुखोपभोग समाप्त होकर पुनः भूलोक मे जीवो को जन्म ग्रहण करना पड़ता है ॥३७॥३८॥ पुण्य रूपी वृक्ष मे क्षय हो जाने पर अर्थात् जितना

पुण्य होता है उसका स्वर्ग में सुख भोगने पर दिवौकस (स्वर्गवासी) भी इस भूमि पर आकर गिरा करते हैं। दुःखो के अभिलाप की निम्न वाले दुःखभोग आदि की सम्पदा वाले स्वर्गवासियों को वहाँ से गिरते हुए महान् कष्ट एवं दुःख होता है। नरको के निषेवण से यहाँ नरक में दुःख ही होता है ॥३९॥४०॥ हे मुनि पुङ्गवो ! ब्रह्मचारियों को विदित के प्रकरण से ही होता है ॥४१॥

यथा मृगो मृत्युभयस्य भीतो उच्छिन्नवासो न लभेत निद्राम्।
एवं यतिर्ध्यानपरो महात्मा संसारभीतो न लभेत निद्राम् ॥४२
कीटपक्षिमृगाणां च पशूना गजवाजिनाम्।
दृष्टमेवासुख तस्मात्त्यजतः सुखमुत्तमम् ॥४३
वैमानिकानामप्येव दु.ख कल्पाधिकारिणाम्।
स्थानाभिमानिनां चैव मन्वादीनां च सुव्रताः ॥४४
देवानां चैव दैत्यानामन्योन्यविजिगीषया।
दुःखमेव नृपाणां च राक्षसानां जगत्त्रये ॥४५
श्रमार्थमाश्रमश्चापि वर्णानां परमार्थतः।
आश्रमैर्न च देवैश्च यज्ञैः सांख्यैर्व्रतैस्तथा ॥४६
उग्रैस्तपोभिर्विविधैर्दानैर्नानाविधैरपि।
न लभते तथात्मानं लभंते ज्ञानिनः स्वयम् ॥४७
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन चरेत्पाशुपतव्रतम्।
भस्मशायी भवेन्नित्य व्रते पाशुपते बुधः ॥४८
पंचार्थज्ञानसपन्नः शिवतत्त्वे समाहितः।
कैवल्यकरण योगविधिकमच्छिद्रं बुधः ॥४९

जिस तरह से मृत्यु के भय से मृग उच्छिन्न निवास वाला होकर निद्रा नहीं लेता है। इसी प्रकार से ध्यान मे परायण यति भी संसार से भयभीत होकर निद्रा अर्थात् मोह को प्राप्त नहीं किया करता है ॥४२॥ कीड़े-पक्षी और मृगों का तथा हाथी और घोड़े आदि पशुओं का दुःख देखा ही हुआ है अर्थात् सबको दिखलाई दिया ही करता है। इसलिये इस सांसारिक उत्तम सुख को त्याग देना चाहिए ॥४३॥ यहाँ के मानवों

को ही नहीं किन्तु कल्प पर्यन्त स्वर्ग में निवास करने के अधिकारी वैमानिकों (देवों) को भी दुःख होता है । तथा स्थानाभि मानी मनु आदि को भी हे सुव्रतो ! दुःख हुआ करता है ॥४४॥ देवता आदि और दैत्यों को परस्पर में एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से दुःख होता है । इस त्रैलोक्य में राजाओं को तथा राक्षसों को भी दुःख हुआ करता है । ॥४५॥ आश्रम भी श्रम के लिये ही होते हैं और परमार्थ से वर्णों का भी श्रम ही होता है । आश्रमों के द्वारा-देवों के द्वारा-यज्ञों से सांख्य से तथा व्रतों से-उग्र तपो के द्वारा और नाना प्रकार के दानों से उस प्रकार का आत्मोत्थान प्राप्त नही होता है जैसा कि ज्ञानी लोग स्वयं आत्मा का उत्थान किया करते हैं ॥४६॥४७॥ इसलिये सम्पूर्ण प्रयत्नों के द्वारा पाशुपत महाव्रत को करना चाहिए । बुद्धिमान् पुरुष को पाशुपत व्रत मे नित्य भस्म मे शयन करने वाला होकर रहना चाहिए ॥४८॥ पञ्चार्थ ज्ञान से युक्त अर्थात् पंचाक्षरी मन्त्र के अर्थ के ज्ञान से युक्त पुरुष शिव तत्त्व मे समाहित होता है । ऐसा विद्वान् योग की विधि से कर्मों का छेदन करने वाला कैवल्य करण को अर्थात् मोक्ष को प्राप्त किया करता है ॥४९॥

पंचार्थयोगसंपन्नो दुःखांतं व्रजते सुधीः ।
परया विद्यया वेद्य विदद्यपरया न हि ॥५०
द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा तथा ।
अपरा तत्र ऋग्वेदो यजुर्वेदो द्विजोत्तमाः ॥५१
सामवेदस्तथाऽथर्वो वेदः सर्वार्थसाधकः ।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छंद एव च ॥५२
ज्योतिषं चापरा विद्या पराक्षरमिति स्थितम् ।
तदद्दश्य तदग्राह्यमगोत्रं तदवर्णकम् ॥५३
तदचक्षुस्तदश्रोत्रं तदपाणि अपादकम् ।
तदजातमभूतं च तदशब्दं द्विजोत्तमाः ॥ ५४
अस्पर्शं तदरूपं च रसगंध विवर्जितम् ।
अव्ययं चाप्रतिष्ठं च तन्नित्यं सर्वगं विभुम् ॥५५

महांतं तद्गृह तं च तदज चिन्मयं द्विजाः ।
अप्राणममनस्कं च तदस्निग्धमलोहितम् ॥५६
अप्रमेयं तदस्थूलमदीर्घ तदनुल्बणम् ।
अह्रस्व तदपार च तदानद तदच्युतम् ॥५७

पञ्चाक्षरी के अर्थ के योग से सम्पन्न सुधी सम्पूर्ण दुःखो का अन्त कर देता है । वह परा विद्या से वेद्य (जानने के योग्य) होता है अर्थात् उस वेद्य को जानते हैं । आध्यामिकी विद्या को परा विद्या कहते हैं । अपरा विद्या से नही जानते हैं ॥५०॥ दो विद्या जानने के योग्य होती हैं । एक परा विद्या है और दूसरी का नाम अपरा विद्या कहा जाता है । द्विजोत्तमो ! उन दोनो विद्याओ मे जो अपरा विद्या है वह ऋग्वेद-यजुर्वेद है ॥५१॥ सामवेद और समस्त अर्थों का साधक अथर्ववेद है । शिक्षा-कल्प-व्याकरण निरुक्त छन्द ये सभी अपरा विद्या मे वेद तथा वेदाङ्ग आते हैं ॥५२॥ ज्योतिष भी अपरा विद्या है । परा विद्या अक्षर है—वह अदृश्य है अग्राह्य अगोत्र-अवर्णक-अव्यय-अप्रतिष्ठ-नित्य-सर्वत्र और विभ्र है । महान्-गृह-अज चिन्मय-अप्राण-अमनस्क-अस्निग्ध-अलोहित-अप्रमेय अस्थूल अदीर्घ अनुल्वण-आह्रस्व-अपार-अच्युत है ॥५३॥५४॥ ५५॥५६॥५७॥

अनपावृतमद्वैतं तदनतमगोचरम् ।
असंवृतं तदात्मैकं परा विद्या न चान्यथा ॥५८
परापरेति कथिते नैवेह परमार्थतः ।
अहमेव जगत्सर्वं मय्येव सकल जगत् ॥५९
मत्त उत्पद्यते तिष्ठन्मयि मय्येव लीयते ।
मत्तो नान्यदितीक्षेत मनोवाक्पाणिभिस्तथा ॥६०
सर्वमात्मनि सपश्येत्सच्चासच्च समाहितः ।
सर्वं ह्यात्मनि सपश्यन्नबाह्ये कुरुते मनः ॥६१
अधोदृष्ट्या वितस्त्यां तु नाभ्यामुपरितिष्ठति ।
हृदय तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतन महत् ॥६२
हृदयस्यास्य मध्ये तु पुंडरीकमवस्थितम् ।

धर्मकंदसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम् ॥६३

वह अनपावृत-अद्वैत-अनन्त-अगोचर-असवृत और वह आत्मैक है। वह परा विद्या अन्य किसी भी प्रकार से वर्णन नहीं की जा सकती है ॥५८॥ परा और अपरा ये कही तो गई हैं किन्तु परमार्थतः यहाँ पर नहीं हैं। मैं ही यह समस्त जगत् के स्वरूप वाला हूँ और मुझमें ही यह समस्त जगत् विद्यमान रहता है ॥५९॥ यह मुझसे ही उत्पन्न होता है, मुझमे स्थित रहता है और मुझमे ही अन्त में लीन हो जाया करता है। मुझसे अन्य को मन वाणी और याणि से नहीं देखना चाहिए ॥६०॥ समाहित होकर सत् और असत् सबको आत्मा मे देखना चाहिए सबको आत्मा मे देखते हुए बाहिर में मन को न लगावे ।६१। अघोमुख से नाभि मे ऊपर वितस्ति मे जो स्थित रहता है उसे इस विश्व का महान् आयतन हृदय जानना चाहिए ॥६२॥ इस हृदय के मध्य मे पुण्डरीक (कमल) अवस्थित है। वह धर्म कन्द से समुत्पन्न हुआ है और ज्ञान की नाल से सुन्दर शोभा वाला है ॥६३॥

ऐश्वर्याष्टदलं श्वेतं परं वैराग्यकर्णिकम् ।
छिद्राणि च दिशो यस्य प्राणाद्याश्च प्रतिष्ठिताः ॥६४
प्राणाद्यैश्चैव संयुक्तं पश्यते बहुधा क्रमात् ।
दशप्राणवहा नाड्यः प्रत्येकं मुनिपुंगवाः ॥६५
द्विसप्ततिसहस्राणि नाड्यः संपरिकीर्तिताः ।
नेत्रस्थं जाग्रतं विद्यात्कंठे स्वप्नं समादिशेत् ॥६६
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्धनि स्थितम् ।
जाग्रे ब्रह्मा च विष्णुश्च स्वप्ने चैव यथाक्रमात् ॥६७
इत्थं प्रसन्नं विज्ञानं गुणमपर्कजं ध्रुवम् ।
रागद्वेषानृतक्रोधकामतृष्णादिभिः सदा । ६८
अपरामृष्टमद्वैतं विज्ञेयं मुक्तिदं त्विदम् ।
अज्ञानमलपूर्वत्वात्पुरुषो मलिनः स्मृतः ॥६९
तत्क्षयाद्धि भवेन्मुक्तिर्नान्यथा जन्मकोटिभिः ।
ज्ञानमेकं विना नास्ति पुण्यपापपरिक्षयः ॥७०

आठ ऐश्वर्य उसके आठ दल हैं और वैराग्य ही परम श्वेत कर्णिका है। जिसके छिद्र अर्थात् पत्रान्तर दिशायें हैं। प्राणादि वायु प्रतिश्रित हैं ॥६४॥ प्राणादि के सयोग से विशिष्ट होता हुआ जीव क्रम से बहुत प्रकार देखता है। हे मुनि पुङ्गवो ! प्रत्येक मे दश प्राण वह नाडियाँ हैं ॥६५॥ बहत्तर हजार नाडियाँ बताई गई हैं। जब-जब नेत्रस्थ होता है तो उसे जाग्रत समझना चाहिए और जब कण्ठ मे स्थित होता है तो स्वप्नावस्थ होता है। जब हृदयस्थ होता है तो सुपुप्त होता है और मूर्धा मे स्थित होने पर तुरीय अवस्था वाला होता है। ब्रह्मा-विष्णु-ईश्वर और महेश्वर ये चारो अवस्थाओ के देवता होते हैं ॥६६॥६७॥ इस प्रकार से प्रसन्न विज्ञान गुरु के सम्पर्क से उत्पन्न होता है और वह ध्रुव है। वह सदा राग-द्वेष-अनृत-क्रोध-काम और तृष्णा आदि से अपरामृष्ट होता है अर्थात् रहित रहता है। इसको अब ही विशेष रूप से समझ लेना चाहिए। यह मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है। अज्ञान मूल होने से पहिले पुरुष मलिन कहा गया है ॥६८॥६९॥ उस अज्ञान के नाश होने से मुक्ति होती है। अन्यथा करोडो जन्मो मे भी मुक्ति नही हो सकती है। एव ज्ञान के बिना कभी भी पुण्य और पाप का परिक्षय नही होता है ॥७०॥

ज्ञानमेवाभ्यसेत्तस्मान्मुक्त्यर्थं ब्रह्मवित्तमाः।
ज्ञानाभ्यासाद्धि वै पु सा बुद्धिर्भवति निर्मला ॥७१
तस्मात्सदाभ्यसेज्ज्ञानं तन्निष्ठस्तत्परायण ।
ज्ञानेनैकेन तृप्तस्य त्यक्तसगस्य योगिन ॥७२
कर्तव्यं नास्ति विप्रेन्द्रा अस्ति चेत्तत्त्वविन्न च ।
इह लोके परे चापि कर्तव्य नास्ति तस्य वै ॥७३
जीवन्मुक्तो यतस्तस्माद्ब्रह्मवित्परमार्थत: ।
ज्ञानाभ्यासरतो नित्य ज्ञानतत्त्वार्थवित्स्वयम् ॥७४
कर्तव्याभ्यासमुत्सृज्य ज्ञानमेवाधिगच्छति ।
वर्णाश्रमाभिमानी यस्त्यक्तक्रोधो द्विजोत्तमा ॥७५
अन्यत्र रमते मूढः सोऽज्ञानी नात्र सशयः ।

संसारहेतुरज्ञानं संसारस्तनुसंग्रहः ॥७६
मोक्षहेतुस्तथा ज्ञानं मुक्तः स्वात्मन्यवस्थितः ।
अज्ञाने सति विप्रेन्द्राः क्रोधाद्या नात्र संशयः ॥७७

हे ब्रह्मवित्तमो ! इसलिये मुक्ति के पाने के वास्ते ज्ञान का ही अभ्यास करना चाहिए। ज्ञान के अभ्यास से पुरुषों की बुद्धि निर्मल हो जाया करती है ॥७१॥ ज्ञान में निष्ठा रखते हुए और तत्परायण होकर इसलिये सदा ज्ञान का ही अभ्यास करना चाहिए। एक ज्ञान से सन्तृप्त और सङ्ग के त्याग करने वाले योगी का कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है। यदि कुछ कर्त्तव्य शेष है तो समझ लो वह तत्त्व वेत्ता नहीं हैं। ज्ञान वाले योगी को इस लोक में और परलोक में कुछ भी फिर कर्त्तव्य शेष नहीं रहता है ॥७२॥७३॥ ब्रह्म का वेत्ता जिससे परमार्थ रूप से जीवन्मुक्त हो जाता है और ज्ञानाभ्यास में रत होने वाला स्वयं ज्ञान के तत्वार्थ का ज्ञाता होता है ॥७४॥ जो वर्णाश्रम का अभ्यास या अभिमान रखने वाला है उसे क्रोध को त्याग कर कर्त्तव्य के अभ्यास का त्याग कर देना चाहिए तब वह ज्ञान को ही प्राप्त कर लेता है ॥७५॥ जो मूढ अन्यत्र रमण करता है वह महाज्ञानी है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यह संसार तनु का संग्रह होता है और यह संसार ही अज्ञान का हेतु है ॥७६॥ मोक्ष का हेतु ज्ञान होता है और जो मुक्त होता है वह अपनी आत्मा ही में स्थित रहता है। हे विप्रेन्द्रगण ! अज्ञान के रहने पर ही क्रोध आदि होते हैं—इसमें सन्देह नहीं है ॥७७॥

क्रोधो हर्षस्तथा लोभो मोहोदम्भो द्विजोत्तमाः ।
धर्माधर्मौ हि तेषां च तद्वशात्तनुसंग्रहः ॥७८
शरीरे सति वै क्लेशः सोविद्यां सत्यजेद्बुधः ।
अविद्यां विद्यया हित्वा स्थितस्यैव च योगिनः ॥७९
क्रोधाद्या नाशमायाति धर्माधर्मौ च वै द्विजाः ।
तत्क्षयाच्च शरीरेण न पुनः संप्रयुज्यते ॥८०
स एव मुक्तः संसाराद्दुःखत्रयविवर्जितः ।
एवं ज्ञानं विना नास्ति ध्यानं ध्यातुर्द्विजर्षभाः ॥८१

ज्ञानं गुरोर्हि संपर्कान्न वाचा परमार्थतः ।
चतुर्व्यूहमिति ज्ञात्वा ध्याता ध्यानं समभ्यसेत् ॥८२
सहजागंतुकं पापमस्थिवागुद्भवं तथा ।
ज्ञानाग्निर्दहते क्षिप्रं शुष्केंधनमिवानलः ॥८३

क्रोध-हर्ष-लोभ-मोह-दम्भ-धर्म और अधर्म उनको होते हैं और इनके वश में होने से तनु का संग्रह हुआ करता है ।७८॥ इस शरीर के होने पर ही क्लेश होता है । इसलिये बुध को इस अविद्या का त्याग कर देना चाहिए । विद्या के द्वारा अविद्या का त्याग करके योगी को स्थित रहना चाहिए ॥७९॥ ऐसे योगी के क्रोधादि तथा धर्माधर्म नाश को प्राप्त हो जाया करते हैं । हे द्विजो ! इन सब के नाश होने से फिर वह शरीर से सम्प्रयुक्त नहीं हुआ करता है ।८०॥ ऐसा ही पुरुष तीनों प्रकार के दुःखों से मुक्त होता हुआ इस संसार से छुटकारा पा जाता है । हे द्विजर्षभगण ! इस प्रकार से ज्ञान के बिना ध्याता का ध्यान नहीं होता है ॥८१॥ ज्ञान गुरु के सम्पर्क से ही होता है जो कि पारमार्थिक है केवल वचन से नहीं होता है । गुरु के प्रसाद रूपी हेतु से तैजस विश्व प्राज्ञ तुरीय रूप चतुर्व्यूह को जानकर ही ध्याता को ध्यान का अभ्यास करना चाहिए ।८२॥ सहज-आगन्तुक और अस्थि तथा वाणी से उद्भव वाला पाप जो होता है उसे सूखे हुए ईंधन को अग्नि के समान यह ज्ञान रूपी अग्नि जला दिया करती है ॥८३॥

ज्ञानात्परतरं नास्ति सर्वपापविनाशनम् ।
अभ्यसेच्च सदा ज्ञानं सर्वसङ्गविवर्जितः ॥८४
ज्ञानिनः सर्वपापानि जीर्यंते नात्र संशयः ।
क्रीडन्नपि न लिप्येत पापैर्नानाविधैरपि ॥८५
ज्ञानं यथा तथा ध्यानं तस्माद्ध्यानं समभ्ययेत् ।
ध्यानं निर्विषयं प्रोक्तमादौ सविषयं तथा ॥८६
षट्प्रकारं समभ्यस्य चतुःषट्दशभिस्तथा ।
तथा द्वादशधा चैव पुनः षोडशधा क्रमात् ॥८७
द्विधाभ्यस्य च योगीन्द्रो मुच्यते नात्र संशयः ।

शुद्धजांबूनदाकारं विधूमांगारसन्निभम् ॥८८
पीत रक्तं सितं विद्युत्कोटिकोटिसमप्रभम् ।
अथवा ब्रह्मरंध्रस्थं चित्तं कृत्वा प्रयत्नतः ॥८९
न सितं वासितं पीतं न स्मरेद्ब्रह्मविद्भवेत् ।
अहिंसकः सत्यवादी अस्तेयी सवयत्नतः ॥९०

ज्ञान से पर तर सब प्रकार के पापो को विनाश करने वाला अन्य कोई भी साधन नही है । इसलिये सम्पूर्ण सङ्ग का त्याग करके सदा ज्ञान का ही अभ्यास करना चाहिए । ॥८४॥ ज्ञानी पुरुष के समस्त पाप जीर्ण हो जाते हैं—इसमे कुछ भी संशय नही है । ज्ञानी पुरुष क्रीड़ा करता हुआ भी नाना प्रकार के पापो से लिप्त नही होता है ॥८५॥ ज्ञान जैसा होता है वैसा ही ध्यान होता है इसलिये ध्यान का अभ्यास करे । ध्यान निर्विषय कहा गया है जो कि आदि म सविषय हुआ करता है । ॥८६॥ छे प्रकार का अभ्यास करके चार छे और दश के द्वारा बारह प्रकार से और फिर क्रम से सोलह प्रकार से अभ्यास करे ॥८७॥ योगीन्द्र दो प्रकार से अभ्यास करके मुक्त हो जाता है—इसमे संशय नहीं है । अब ध्यान मे शिवाकार को बताते हुए कहते हैं—वह परम शुद्ध सुवर्ण के आकार वाला बिना धूम वाले अङ्गार के तुल्य है । पीत-रक्त और सित करोडो विद्युत् की प्रभा के समान है । अथवा चित्त को ब्रह्म रन्ध्रस्थ करके प्रयत्न पूर्वक ब्रह्म वेत्ता सित-असित और पीत का स्मरण न करे । ब्रह्म वेत्ता को अहिंसक-सत्यवादी-स्तेय (चोरी) से रहित सब यत्नो से होना चाहिए ॥८८॥८९॥९०॥

परिग्रहविनिर्मुक्तो ब्रह्मचारी दृढव्रतः ।
सतुष्टः शौचसंपन्नः स्वाध्यायनिरतः सदा ॥९१
मद्भक्तश्चाभ्यसेद्धचानं गुरुसंपर्कजं ध्रुवम् ।
न बुध्यति तथा ध्याता स्थाप्य चित्तं द्विजोत्तमाः ॥९२
न चाभिमन्यते योगी न पश्यति समततः ।
न घ्राति न शृणोत्येव लीनः स्वात्मनि य. स्वयम् ॥९३
भीमः सुषिरनाकेऽसौ भास्करे मंडले स्थितः ।

ईशानः सोमबिंबे च महादेव इति स्मृतः ॥६४
पुंसां पशुपतिर्देवश्चाष्टधाहं व्यवस्थितः ।
काठिन्यं यत्तनौ सर्वं पार्थिवं परिगीयते ॥६५
आप्यं द्रवमिति प्रोक्तं वर्णाख्यो वह्निरुच्यते ।
यत्संचरति तद्वायुः सुषिरं यद्द्विजोत्तमाः ॥६६
तदाकाशं च विज्ञानं शब्दजं व्योमसंभवम् ।
तथैव विप्रा विज्ञानं स्पर्शाख्यं वायुसंभवम् ॥६७

समस्त प्रकार के परिग्रह से निर्मुक्त-ब्रह्मचर्य धारण करने वाला-दृढ व्रत से युक्त-सन्तोष रखने वाला-शौच से सम्पन्न और सदा स्वाध्याय करने मे निरत रहे। ॥६१॥ मेरे भक्त को गुरु के सम्पर्क से प्राप्त ध्रुव ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान करने वाला अन्य किसी का ज्ञान ही नही रखता है क्योंकि वह ध्यान में ही चित्त को स्थापित कर देता है ॥६२॥ योगी को ध्यान की स्थिति मे कुछ भी भान अन्य का नही होता है और न कुछ देखता ही है-न सूंघता है और न कुछ सुनता ही है। वह तो स्वयं अपनी आत्मा में ही लीन रहता है। ॥६३॥ वह सुषिर संज्ञा वाले आकाश मे भीम है-भास्कर मण्डल में स्थित ईशान है और सोम के बिम्ब में महादेव कहा गया है ॥६४॥ पुरुषो का वह पशुपति देव आठ प्रकार से स्थित रहता है। जो इसके तनु मे सब प्रकार काठिन्य है वह पार्थिव कहा जाता है ॥६५॥ द्रव स्वरूप इसका आप्य रूप है और वर्णाख्य वह्नि कहा जाता है। जो सञ्चरण किया करता है वह वायु है जो कि सुषिर में स्थित रहता है ॥६६॥ आकाश का विज्ञान व्योम सम्भव शब्दज होता है। हे विप्र-वृन्द! वायु से समुत्पन्न स्पर्श नाम वाला विज्ञान है ॥६७॥

रूपं वाह्नेय मित्युक्तमाप्यं रसमयं द्विजाः ।
गंधाख्यं पार्थिवं भूयश्चिन्तयेद्रूपतः क्रमात् ॥६८
नेत्रे च दक्षिणे वामे सोमं हृदि विभुं द्विजाः ।
आजानु पृथिवीतत्त्वमानाभेर्वारिमंडलम् ॥६९
आकंठं वह्नितत्त्वं स्याल्ललाटांतं द्विजोत्तमाः ।

वायव्य वै ललाटार्धं व्योमाख्यं वा शिवाग्रकम् ॥१००
हंसाख्य च ततो ब्रह्म व्योमनश्चोर्ध्वं तत परम् ।
व्योमाख्यो व्योममध्यस्थो ह्यय प्राथमिकः स्मरेत् ॥१०१
न जीव. प्रकृति. सत्त्व रजश्चाथ तम. पुनः ।
महान्तथाभिमानश्च तन्मात्राणीद्रियाणि च ॥१०२
व्योमादीनि च भूतानि नैवेह परमार्थतः ।
व्याप्य तिष्ठयतो विश्वं स्थाणुरित्यभिधीयते ॥१०३
उदेति सूर्यो भीतश्च पवते वात एव च ।
द्योतते चंद्रमा वह्निर्ज्वलत्यापो वहति च ॥१०४
दधाति भूमिराकाशमवकाश ददाति च ।
तदाज्ञया तत सर्वं तस्माद्वं चितयेद्द्विज. ।१०५
तेनैवाधिष्ठितं तस्मादेतत्सर्वं द्विजोत्तमा ।
सर्वरूपमय शर्व इति मत्वा स्मरेद्भवम् ॥१०६

रूप अग्नि का तथा रसमय जल का और गन्धमय पार्थिव इस क्रम से भास्कर का चिन्तन करना चाहिए। दक्षिण नेत्र मे सूर्य-वाम नेत्र मे सोम और हृदय मे विभु का ध्यान करे । जानु पर्यन्त पृथिवी तत्त्व है और नाभि तक बारि मण्डल है ॥९८॥९९॥ कण्ठ तक वह्नि तत्त्व है और ललाटान्त तक वायव्य तत्त्व है। ललाट से आदि लेकर शिखाग्र पर्यन्त व्या`ख्य तत्त्व होना है। इसके ऊपर हसाख्य ब्रह्म तत्त्व होता है। व्योम के मध्य मे स्थित व्योमाख्य है। यह प्राथमिक है—इसका स्मरण करना चाहिए ॥१००॥१०१॥ जीव-प्रकृति-सत्त्व-रज-तम-महान्-अहङ्कार-पञ्च तन्मात्रा-इन्द्रियाँ व्योमादि भूत ये सब यहाँ परमार्थतः नही है। जो इस विश्व को व्याप्त होकर स्थित है वह स्थाणु-इस नाम से कहा जाता है। ॥१०२॥ सूर्य भीत होता हुआ उदय होता है। वायु वहन करता हुआ पवित्र किया करता है। चन्द्रमा प्रकाश फैलाकर चमकता है। अग्नि जलता है और जल बहते हैं। भूमि धारण करती है और आकाश अवकाश प्रदान करता है—ये सब उसी की आज्ञा विस्तार हुआ है इसलिये हे द्विजगण ! उसका चिन्तन करना चाहिए ॥१०३॥

२०४।। यह सब उसी के द्वारा अधिष्ठित है और सबके स्वरूप वाला यह शर्व ही है–ऐसा मानकर भव का स्मरण करना चाहिए ।।१०५।।१०६।।

संसारविषतप्तानां ज्ञानध्यानामृतेन वै ।
प्रतीकारः समाख्यातो नान्यथा द्विजसत्तमाः ।।१०७
ज्ञानं धर्मोद्भव साक्षाज्ज्ञानाद्वैराग्यसंभवः ।
वैराग्यात्परम ज्ञानं परमार्थप्रकाशकम् ।।१०८
ज्ञानवैराग्ययुक्तस्य योगसिद्धिर्द्विजोत्तमाः ।
योगसिद्ध्या विमुक्तिः स्यात्सत्त्वनिष्ठस्य नान्यथा ।।१०६

इस संसार रूपी विष से संतप्त जीवों को ज्ञान ध्यान रूपी अमृत से ही प्रतीकार बताया गया है और अन्य कोई प्रतीकार नहीं होता है ।।१०७।। ज्ञान साक्षात् धर्म से उत्पन्न होने वाला है और ज्ञान से ही वैराग्य की उत्पत्ति होती है। वैराग्य से परम ज्ञान होता है जो कि परमार्थ को प्रकाशित करने वाला होता है ।।१०८।। जो ज्ञान और वैराग्य से युक्त होता है हे द्विजगण ! उसी को योग की सिद्धि हुआ करती है। योग की सिद्धि से जो सत्त्व मे निष्ठ होता है उसी की मुक्ति होती है अन्यथा मुक्ति नहीं हुआ करती है ।।१०६।।

।। ६१–सदाचार शौच निरूपण ।।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम् ।
यदनुष्ठाय शुद्धात्मा परेत्य गतिमप्नुयात् ।।१
ब्रह्मणा कथित पूर्वं सर्वभूतहिताय वै ।
संक्षेपात्सर्ववेदार्थं संचयं ब्रह्मवादिनाम् ।।२
उदयार्थं तु शौचानां मुनीनामुत्तमं पदम् ।।
यस्तत्राथाप्रमत्तः स्यात्स मुनिर्नावसीदति ।।३
मानावमानौ द्वावेतौ तावेवाहुर्विषामृते ।
अवमानोऽमृत तत्र सन्मानो विषमुच्यते ।।४
गुरोरपि हिते युक्तः स तु संवत्सरं वसेत् ।
नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत् ।।५

प्राप्यानुज्ञां ततश्चैव ज्ञानयोगमनुत्तमम् ।
अविरोधेन धर्मस्य चरेत पृथिवीमिमाम् ॥६
चक्षु पूत चरेन्मार्गं वस्त्रपूत जलं पिवेत् ।
सत्यपूतं वदेद्वाक्यं मनःपूतं समाचरेत् ॥७

इस अध्याय मे योगियो का सदाचार-द्रव्यशुद्धि-शौच और स्त्री धर्म का निरूपण किया जाता है। सूतजी ने कहा—इससे आगे मैं शौचाचार का लक्षण बताता हूँ जिसका अनुष्ठान करके शुद्ध आत्मा वाला मरकर सद्गति को प्राप्त करता है ॥१॥ यह सब ब्रह्मा ने समस्त प्राणियो के हित के लियें सम्पूर्ण वेदो का अर्थ सक्षेप मे कहा है जो कि ब्रह्मवादियों के लिये एक सचय है ॥२॥ मुनियो के उदय के लिये शौचो का उत्तम पद है। इन शौचो के करने मे जो सदा सावधान रहा करता है वह मुनि कभी भी दु खित नहीं होता है। ३॥ मान और अवमान ये दोनों विष तथा अमृत बताये गये हैं। इनमे जो अवमान होता है वह अमृत होता है। सम्मान विष कहा जाता है ॥४॥ गुरु के हित मे युक्त होता हुआ भी गुरु के समीप मे एक वर्ष पर्यन्त निवास करना चाहिए। जो नियम हैं उनमे तथा जो यम हैं उनमे सदा अप्रमत्त होता हुआ वहाँ पर निवास करे ॥५॥ सर्वोत्तम ज्ञान योग को गुरु से प्राप्त करके उनकी आज्ञा ग्रहण कर धर्म का विरोध न करते हुए इस भूमण्डल मे विचरण करना चाहिए ॥६॥ मार्ग मे अपनी आँख से भली-भाँति देखकर ही चलना चाहिए और सर्वदा वस्त्र से छानकर पवित्र जल का पान करे। सदा सचाई के द्वारा परम पवित्र वचन ही बोलने चाहिए एव मन से खूब विचार कर जिसे पवित्र समझे उसे ही करना चाहिए ॥७॥

मत्स्यगृह्यस्य यत्र पं वणनास म्थतरे भवेत् ।
एकाहं तत्सम ज्ञेयमपूतं यज्जल भवेत् ॥८
अपूतोदकपाने तु जपेद्व शतपवकम् ।
अघोरलक्षणं मंत्रं ततः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥९
अथवा पूजयेच्छम्भु घृतस्नानादिविस्तरैः ।
त्रिधा प्रदक्षिणीकृत्य शुद्धचते नात्र सशयः ॥१०

आतिथ्य श्राद्धयज्ञेपु न गच्छेद्योगवित्क्वचित् ।
एवं ह्यहिंसको योगी भवेदिति विचारितम् ॥११
वह्नौ विधूमेऽत्यंगारे सर्वस्मिन्भुक्तवज्जने ।
चरेत्तु मतिमान् भैक्ष्य न तु तेष्वेव नित्यश. ॥१२
अथैनमवमन्यते परे परिभवति च ।
तथा युक्त' चरेद्भैक्ष्यं सतां धर्ममदूषयन् ॥१३
भैक्ष्य चरेद्वनस्थेपु यायावरगृहेपु च ।
श्रेष्ठा तु प्रथमा ह्यीयं वृत्तिरस्योपजायते ॥१४

मत्स्यो के ग्रहण करने वाले को छै मासो में जो पाप होता है उतना पाप एक दिन वस्त्र से पवित्र नही किये हुए जल के पान करने से होता है ॥८॥ यदि प्रमाद वश अपूत जल को पी लेवे तो पाँच सौ वार अघोर मन्त्र के जाप करने से शुद्धि को प्राप्त करता है ॥९॥ अथवा दूसरा प्रायश्चित्त अपूत जलपान करने का यह है कि घृत के स्नानादि से विस्तार के साथ शिव का पूजन करे और फिर तीन प्रदक्षिणा शिव की करे तब शुद्धि होती है—इसमे सशय नही है ॥१०॥ योग के वेत्ता को किसी आदर पूर्वक दिये हुए निमन्त्रण मे—श्राद्ध मे और अन्य यज्ञादि मे भोजन नहीं करना चाहिए। इस पूर्वोक्त प्रकार से योगी अहिंसक होता है—यह निश्चित है ॥११॥ वह्नि के विधूम तथा अङ्गारो से रहित होने पर अर्थात् शीतल हो जाने पर और घर के समस्त सदस्यो के भोजन कर लेने पर मतिमान् योगी को घर घर जाकर भिक्षा करनी चाहिए। वह भी उन्ही घरो मे नित्य भिक्षा न करे ॥१२॥ जिस तरह से इसका दूसरे लोग अवमान करें और परिभूत करें उस तरह से मुक्त होकर ही भैक्ष्य करे और सत्पुरुषो का जो धर्म होता है उसे कभी भी दूषित नही करे ॥१३॥ भिक्षा वन मे स्थितो के यहाँ तथा यया घरो के घरो मे जाकर भिक्षा करे। इस योगी पुरुष की यह सर्वश्रेष्ठ वृत्ति होती है ॥१४॥

अत ऊर्ध्वं गृहस्थेपु शालीनेपु चरेद्द्विजाः ।
श्रद्दधानेपु दान्तेपु श्रोत्रियेपु महात्मसु ॥१५
अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टापतितेपु च ।

भैक्ष्यचर्या हि वर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते ॥१६
भैक्ष्य यवागूस्तक्रं वा पयो यावकमेव च ।
फलमूलादि पक्वं वा कणपिण्य क सक्तव ॥१७
इत्येव ते मया प्रोक्ता योगिनां सिद्धिवर्द्धना. ।
आहारास्तेषु सिद्धेषु श्रेष्ठं भैक्ष्यमिति स्मृतम् ॥१८
अब्बिदुं यः कुशाग्रेण मासिमासि समश्नुते ।
न्यायतो यश्चरेद्भैक्ष्य पूर्वोक्तारस विशिष्यते ॥१६
जरामरणगर्भेभ्यो भीतस्य नरकादिषु ।
एव दाययते तस्मात्तद्भैक्ष्यमिति सस्मृतम् ॥२०
दधिभक्षा पयोभक्षा ये च न्ये जीवक्षोणकाः ।
सर्वे ते भैक्ष्यभक्षस्य कला नार्हंति षोडशीम् ॥२१

इसके बाद शील वाले एव श्रेष्ठ सदाचारी जो गृहस्थ हो उनके यहाँ भिक्षा करनी चाहिए। जो गृहस्थ श्रद्धा रखने वाले-दम। शील-श्रोत्रिय और महान् आत्मा वाले हो उनके यहाँ भिक्षा करे ॥१५॥ इसके अनन्तर जो दुष्ट और पतित न हो उन वर्णों के यहाँ भैक्ष्यचर्या करे-यह जघन्य वृत्ति कही जाती है ॥१६॥ भिक्षा मे पवागू-तक्र-पय-यावक फल और मूल-पक गोधूमान्न कण तिल चूर्ण और मत्तू ये सब भैक्ष्य मे प्राप्त होते हैं तो वे योगियो की सिद्धि के बढाने वाले होते हैं। इसलिये मैंने इनको बताया है। इनके सिद्ध होने पर जो आहार हैं वे परम श्रेष्ठ भैक्ष्य होता है—ऐसा कहा गया है ॥१७।१८॥ जो कुशा के अग्र भाग से जल की बूँदें मास-मास मे अशन किया करता है और जो न्याय पूर्वक भिक्षा का चरण किया करता है वह पूर्व मे कहे हुए से विशिष्ट होता है ॥१६॥ जरा-मरण और गभ से नरक आदि मे जो यति भीत होता है उसका पूर्व मे कहा हुआ भैक्ष्य भिक्षा) दाय भाग की भाँति ही होता है। इसलिये भैक्ष्य को कहा गया है ॥२०॥ जो दधि के भक्षण करने वाले तथा दूध के ऊपर ही रहने वाले हैं अथवा कृच्छ्र आदि के द्वारा देह का शोषण करने वाले हैं वे सभी इस भिक्षा चरण की सोलहवी कला के योग्य नहीं होते हैं ॥२१॥

भस्मशायी भवेन्नित्यं भिक्षाचारी जितेंद्रियः ।
य इच्छेत्परमं स्थानं व्रतं पाशुपतं चरेत् ॥२२
योगिनां चैव सर्वेषां श्रेष्ठं चांद्रायणं भवेत् ।
एकं द्वे त्रीणि चत्वारि शक्तितो वा समाचरेत् ॥२३
अस्तेय ब्रह्मचर्यं च अलोभस्त्याग एव च ।
व्रतानि पंच भिक्षूणामहिंसा परमा त्विह ॥२४
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् ।
नित्यं स्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्तिताः । २५
बीजयोनिगुणा वस्तुबन्धः कर्मभिरेव च ।
यथा द्विप इवारण्ये मनुष्याणां विधीयते ।२६
देवैस्तुल्याः सर्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञाज्जाप्य ज्ञानमाहुश्च जाप्यात् ।
ज्ञानाद्ध्यानं सगरागादपेतं तस्मिन्प्राप्ते शाश्वतस्योपलभः ॥२७
दमः शमः सत्यमकल्मषत्व मौनं च भूतेष्वखिलेषु चार्जवम् ।
अतीद्रियं ज्ञानमिदं तथा शिवं प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धबुद्धयः ॥२८

जो भिक्षा चरण करने वाला है उसे जितेन्द्रिय और नित्य भस्म मे शयन करने वाला होना चाहिए । जो सर्वोपरि वर्त्तमान परम स्थान प्राप्त करने की इच्छा रखता है उसे पाशुपत महाव्रत का समाचरण करना चाहिए ॥२२॥ समस्त योगियो के लिये चान्द्रायण व्रत अति श्रेष्ठ होता है । इस चान्द्रायण व्रत को क्रम से एक-दो-तीन या चार अपनी शक्ति के अनुसार करना चाहिए ॥२३॥ भिक्षुओ के पाँच परम व्रत होते हैं—अस्तेय ब्रह्मचर्य-अलोभ त्याग और अहिंसा, इनमे अहिंसा सब मे परम श्रेष्ठ बताई गई है ॥२४॥ क्रोध न करना-गुरु की सेवा करना-शुद्धता और आहार का हलकापन ये स्वाध्याय मे नित्य नियम बताये गये हैं ॥२५॥ बीजयोनि के गुण अर्थात् पिता और माता के स्वाभाविक गुण-वस्तु धनादि का बन्धन तथा सचित कर्मों के द्वारा बन्धन वन मे हाथी के समान मनुष्यो मे दुःखग्रह देवो के द्वारा किये जाते हैं ॥२६॥ समस्त यज्ञो की क्रिया देवो के तुल्य अर्थात् स्वर्ग के प्राप्त कराने वाली होती है । यज्ञ से जाप्य श्रेष्ठ होता है । जप से भी श्रेष्ठ ज्ञान को

बताया गया है और ज्ञान से भी उत्तम ध्यान होता है जो राग और राग से अपेत होता है। इसके प्राप्त हो जाने पर शाश्वत पद की प्राप्ति हो जाती है ॥२७॥ शम-दम-सत्य-अकल्मषत्व-मौन और समस्त भूतों में सरलता तथा अतीन्द्रिय ज्ञान अर्थात् आत्म-ज्ञान इसको विशुद्ध बुद्धि वाले शिव कहते हैं ॥२८॥

समाहिता ब्रह्मपरोप्रमादी शुचिस्तथैकातरतिर्जितेंद्रियः ।
समाप्नुयाद्योगमिमं महात्मा महर्षयश्चैवमनिंदितामला ॥२९
प्राप्यतेऽभिमतान् देशानकुशेन निवारितः ।
एनन्मार्गेण शुद्धेन दग्धबीजो ह्यकल्मषः ॥३०
सदाचारता शाताः स्वधर्मपरिपालकाः ।
सर्वाल्लोकान् विनिर्जित्य ब्रह्मलोकं व्रजति ते ॥३१
पितामहेनोपदिष्टो धर्मः साक्षात्सनातनः ।
सर्वलोकोपकारार्थं शृणुध्वं प्रवदामि व ॥३२
गुरूपदेशयुक्तानां वृद्धाना क्रमवर्तिनाम् ।
अभ्युत्थानादिक सर्वं प्रणामं चैव कारयेत् ॥३३
अष्टागप्रणिपातेनत्रिधा न्यस्तेन सुव्रता ।
त्रिःप्रदक्षिणयोगेन वद्यो वै ब्राह्मणो गुरुः ॥३४
ज्येष्ठान्येपि च ते सर्वे वंदनोया विजानता ।
आज्ञ भंग न कुर्वीत यदीच्छेत्सिद्धिमुत्तमाम् ॥३५

समाहित अर्थात् शान्त चित्त वाला-ब्रह्म के चिन्तन मे परायण-आलस्य रहित-शौच से युक्त विविक्त का सेवन करने वाला-जितेन्द्रिय और प्रसन्न चित्त वाला महात्मा इस पाशुपत व्रत के योग को प्राप्त किया करता है-यह अनिन्दित एवं अमल महर्षिगण कहते हैं ॥२९॥ जिस तरह अङ्कुश के द्वारा गज निवारित होता हुआ अपने अभिमत देशों को प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार से परम शुद्ध इस योगमार्ग के द्वारा दग्ध बीज वाला तथा कल्मष रहित हो जाता है। ॥३०॥ सदाचार मे रति रखने वाले परम शान्त प्रकृति वाले और अपने धर्म के पूर्ण पालन करने वाले योगी समस्त लोकों को विनिर्जित करके ब्रह्मलोक को चले

जाते हैं ॥३१॥ यह धर्म पितामह के द्वारा उपदिष्ट हुआ है। यह साक्षात् सनातन धर्म है। समस्त लोकों के उपकार करने के लिये इसका आप लोग श्रवण करें। मैं आपको इसे बतलाता हूँ ॥३२॥ गुरु के उपदेश में युक्त-वृद्ध और क्रमवर्ती जो मानव हैं उनके समागत होने पर अभ्युत्थान आदि देकर उन्हें प्रणाम करना चाहिए ॥३३॥ प्रणाम ऐसा हो जिसमें आठों अङ्गों के द्वारा प्रणिपात किया जावे और वह भी तीन बार होना चाहिए। ब्राह्मण गुरु को तीन बार प्रदक्षिणा करके वन्दना करनी चाहिए ॥३४॥ अन्य जो भी ज्येष्ठ हों उन्हे भली-भाँति जानते हुए सब की वन्दना करनी चाहिए। यदि अपूर्व उत्तम सिद्धि की चाह हो तो बड़ों की आज्ञा का भङ्ग कभी नहीं करना चाहिए ॥३५॥

धातुशून्यबिलक्षेत्रक्षुद्रमंत्रोपजीवनम् ।
विषग्रहविद्वंवादोन्वर्जयेत्सर्वयत्नतः ॥३६
कैतवं वित्तशाठ्यं च पैशुन्यं वर्जयेत्सदा ।
अतिहासमवष्टंभं लीलास्वेच्छाप्रवर्तनम् ॥३७
वर्जयेत्सर्वयत्नेन गुरूणामपि सन्निधौ ।
तद्वाक्यप्रतिकूलं च अयुक्तं वै गुरोर्वचः ॥३८
न वदेत्सर्वयत्नेन अनिष्टं न स्मरेत्सदा ।
यतीनामासनं वस्त्रं दंडाद्य पादुके तथा ॥३९
माल्यं च शयनस्थानं पात्रं छायां च यत्नतः ।
यज्ञोपकरणांगं च न स्पृशेद्वै पदेन च ॥४०
देवद्रोहं गुरुद्रोहं न कुर्यात्सर्वयत्नतः ।
कृत्वा प्रमादतो विप्राः प्रणवस्यायुतं जपेत् ॥४१
देवद्रोहगुरुद्रोहात्कोटिमात्रेण शुध्यति ।
महापातकशुद्धयर्थं तथैव च यथाविधि ॥४२

धातुवाद-नास्तिकवाद-ऊपरभूमि भूतप्रेतादि के क्षुद्र मन्त्र इनके द्वारा अपनी वृत्ति करना तथा विष से युक्त सर्पादिका मन्त्र द्वारा पकड़ना अर्थात् अन्यानुकरण करना इन समस्त निन्दनीय कर्मों को प्रयत्न पूर्वक वर्जित कर देना चाहिए ॥३६॥ कैतव-वित्तशाठ्य और पिशुनता इन बुरे

कर्मों का भी सर्वदा त्याग कर देना चाहिए। अत्यन्त हास करना-असतों का सा आरम्भ अर्थात् किसी बुरे कर्म को करना और लीला से स्वेच्छाचार मे प्रवृत्ति करना इन समस्त कार्यों का गुरुगण की सन्निधि में यत्न पूर्वक वर्जित करना चाहिए। गुरु वर्ग के प्रतिकूल-उनके वचन के विरुद्ध एवं अयुक्त वचन कभी नही बोलना चाहिए। सम्पूर्ण यत्न के द्वारा कभी भी अनिष्ट का स्मरण नही करे तथा यतियों के आसन-वस्त्र-दण्ड आदि और पादुका तथा यज्ञ के उपकरणाङ्गों का पैर आदि से कभी स्पर्श नही करना चाहिए माल्य-शयन स्थान-पात्र और छाया का भी स्पर्श नही करे। ॥३६॥३७॥३८॥३९॥४०॥ साधना करने वाले मानव को देवता से द्रोह तथा गुरु से द्रोह नही करना चाहिए और ऐसा पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए कि द्रोह का भाव कभी होवे ही नही और प्रमाद से ऐसा हो भी जाय तो दश सहस्र प्रणव का जाप प्रायश्चित्त के लिये करे ॥४१॥ यदि यह देव और गुरु के साथ बुद्धि पूर्वक जान-बूझकर किया जाता है तो एक करोड प्रणव के जप से शुद्धि होती है। महापातक की शुद्धि के लिये जो विधि है वैसी ही विधि इस द्रोह मे भी होती है ॥४२॥

पातकी च तदर्धेन शुध्यते वृत्तवान्यदि ।
उपपातकिनः सर्वे तदर्धेनैव सुव्रताः ॥४३
संध्यालोपे कृते विप्रः त्रिरावृत्त्यैव शुद्धयति ।
आह्निकच्छेदने जाते शतमेकमुदाहृतम् ॥४४
लघने समयानां तु अभक्ष्यस्य च भक्षणे ।
अवाच्यवाचनं चैव सहस्र च्छुद्धिरुच्यते ॥४५
काकोलूककपोतानां पक्षिणामपि घातने ।
शतमष्टोत्तरं जप्त्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥४६
यः पुनस्तत्त्ववेत्ता च ब्रह्मविद्ब्राह्मणोत्तमः ।
स्मरणाच्छुद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥४७
नैवमात्मविदामस्ति प्रायश्चित्तानि चोदना ।
विश्वस्यैव हि ते शुद्धा ब्रह्मविद्याविदो जनाः ॥४८

योगध्यानैकनिष्ठाश्च निर्लेपाः कांचनं यथा ।
शुद्धानां शोधन नास्ति विशुद्धा ब्रह्मविद्यया ।।४६

पातकी पुरुष उसकी आधी प्रायश्चित्त की विधि से भी शुद्ध हो जाता है अगर वह पुरुष चरित्रवान् होता है । हे सुव्रतो ! जो उपपातक करने वाले हैं वे उसके भी आधे प्रायश्चित्त से शुद्ध हो जाया करते हैं ।।४३।। विप्र यदि सन्ध्या का लोप कर देता है अर्थात् सन्ध्या वन्दना नही करता है तो तीन रात्रि मे ही शुद्ध हो जाता है । दैविक कर्म का छेदन होने पर शुद्धि के लिये एक शत वार जाप से ही शुद्धि कही गई है ।।४४।। समय जो नियत है उसके लघन होने पर तथा अभक्ष्य पदार्थ के खा लेने पर और जो नही कहना चाहिए उसके कथन करने पर एक सहस्र जाप से शुद्धि कही जाती है ।।४५।। कौआ उल्लू और कबूतर पक्षियों के घात करने पर एकसौ आठ बार जप से पाप से मुक्त हो जाया करता है—इसमे कुछ भी सशय नही है ।।४६।। जो तत्त्व वेत्ता ब्रह्म का ज्ञाता उत्तम ब्राह्मण हो तो केवल प्रणव के स्मरण करने ही से शुद्धि प्राप्त कर लेता है—इस विषय मे कुछ भी अधिक विचार करने की आवश्यकता नही है ।।४७।। जो आत्म वेत्ता पुरुष होते हैं उनके लिये यह प्रायश्चित्त करने की प्रेरणा नही होती है क्योंकि वे ब्रह्म विद्या के विद्वान् तो विश्वम्भर के लिये ही शुद्ध होते है ।।४८।। योग और ध्यान मे निष्ठा रखने वाले पुरुष तो सुवर्ण की भांति सर्वदा निर्लेप हुआ करते हैं क्योंकि वे तो पहिले ही ब्रह्म विद्या के द्वारा विशुद्ध हुआ करते हैं । उन विशुद्धों का कोई भी शोधन नही होना है ।।४६।।

उद्धृतानुष्णफेनाभिः पूताभिर्वस्त्रचक्षुषा ।
अद्भिः समाचरेत्सर्वं वर्जयेत्कलुषोदकम् ।।५०
गन्धवर्णरसैर्दुष्टमशुचिस्थानसंस्थितम् ।
पंकाश्मदूषितं चैव सामुद्रं पल्वलोदकम् ।।५१
सशैवालं तथान्यैर्वा दोषदुष्टं विवर्जयेत् ।
यस्तु दोषान्वितः कुर्यात्सर्वकार्याणि वै द्विजाः ।।५२
नमस्कारादिकं सर्वं गुरुशुश्रूषणादिकम् ।

वस्त्रशौचविहीनात्मा ह्यशुचिर्नात्र संशय ॥५३
देवकार्योपयुक्तानां प्रत्यहं शौचमिष्यते ।
इतरेषां हि वस्त्राणां शौचं कार्यं मलागमे ॥५४
वर्जयेत्सर्वयत्नेन वासो यत्रिधृतं द्विजाः ।
कौशेयाविकयो रूक्षं. क्षौमाणां गौरसर्षपैः ॥५५
श्रीफलैरंशुपट्टानां कुतपानामरिष्टकैः ।
चर्मणां विदलानां च वेत्राणां वस्त्रवन्मतम् ॥५६

मनुष्य केशों के सहित उद्धृत जल को वस्त्र तथा चक्षु से पूत करके ही सब क्रिया करनी चाहिए और जो जल कलुषित हो उसको वर्जित कर देना चाहिए ॥५०॥ जो जल किसी भी तरह गन्ध तथा वर्ण एवं रस से दूषित हो तथा किसी अपवित्र स्थान में रखा हुआ हो एवं कीच-पत्थर से दोष युक्त हो वह समुद्र का हो या किसी सरोवर का हो-शैवाल वाला हो या किसी अन्य दोषों से पूर्ण हो तो उसका त्याग कर देना चाहिए। हे द्विजो ऐसे दूषित जल को वस्त्र के द्वारा शौच से युक्त कर लेवे तभी उससे समस्त कार्यों का सम्पादन करे ॥५१॥५२॥ समस्त नमस्कारादिक कार्य तथा गुरु की सेवा आदि के कार्य सर्वदा शुद्ध होकर ही करने चाहिए। वस्त्र और शौच से जो हीन होता है वह अशुचि होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥५३॥ देवों के कोई भी कार्य हों उनके करने के उपयुक्त होने के लिये प्रतिदिन शौच (शुद्धि) की आवश्यकता होती है। अन्य वस्त्रों की शुद्धि मैल के छूट जाने पर करनी चाहिए ॥५४॥ हे द्विजो ! दूसरों के द्वारा धारण किये गये वस्त्रों को सभी प्रयत्नों के द्वारा वर्जित रखना चाहिए। जो कौशेय (रेशमी) वस्त्र हों तथा ऊनी वस्त्र हों उनकी शुद्धि रूक्ष वायु से ही हो जाती है। जो क्षौम अर्थात् अतसी वस्त्र हों उनकी शुद्धि गौर सरसों से होती है। जो अंशु पट्ट अर्थात् सूर्य किरण युक्त हों उनकी शुद्धि बिल्व फलों से होती है। जो कुतुप-कुशास्तरण या छाग कम्बल हो उनकी शुद्धि तक्र सेचन से हो जाती है। जो विदल अर्थात् सन के वस्त्र हों तथा चर्म वस्त्र एवं वेत्र निर्मित हों उन सब की शुद्धि वस्त्र की भाँति होती है ॥५५॥५६॥

वल्कलानां तु सर्वेषां छत्रचामरयोरपि ।
चैलवच्छौचमाख्यातं ब्रह्मविद्भिर्मुनीश्वरैः ।।५७
भस्मना शुद्धयते कांस्य क्षारेणायसमुच्यते ।
ताम्रमम्लेन वै विप्रास्त्रपुसीसकयोरपि ।।५८
हैममद्भिः शुभ पात्र रौप्यपात्र द्विजोत्तमाः ।
मण्यश्मशङ्खमुक्तानां शौचं तैजसवत्स्मृतम् ।।५६
अग्नेरपां च संयोगादत्यंतोपहतस्य च ।
रसानामिह सर्वेषां शुद्धिरुत्प्लवनं स्मृतम् ।।६०
तृणकाष्ठादिवस्तूनां शुभेनाभ्युक्षणं स्मृतम् ।
उष्णेन वारिणा शुद्धिस्तथा स्रुक्स्रुवयोरपि ।।६१
तथैव यज्ञपात्राणां मुशलोलूखलस्य च ।
शृंगास्थिदारुदतानां तक्षणेनैव शोधनम् ।।६२
सहतानां महाभागा द्रव्याणां प्रोक्षणं स्मृतम् ।
असंहतानां द्रव्याणा प्रत्येकं शौचमुच्यते ।।६३

वल्कल वस्त्रो की तथा छत्र और चामरों की शुद्धि ब्रह्म वेत्ता मुनीश्वरो ने चैल वस्त्र की भाँति ही बताई है ।।५७।। अब पात्र-शुद्धि बताते हैं —काँसे का पात्र भस्म से शुद्ध होता है । क्षार से लोह पात्र की शुद्धि होती है । ताम्र पात्र की खटाई से शुद्धि है तथा रांग और शीशा के पात्र की भी खटाई से शुद्धि बताई गई है ।।५८।। सुवर्ण के पात्र और रौप्य (चाँदी के पात्र की शुद्धि केवल जल से ही हो जाती है । जो मणि-अश्म-शख-और मुक्ता के पात्रादि होते हैं उन सब की शुद्धि सुवर्ण की ही भाँति होनी है ।।५६।। सब रसो की शुद्धि उत्प्लवन बताई गई है तथा अग्नि और जल के सयोग से और अत्यन्त उपहत करने से होती है ।।६०।। तृण और काष्ठादि वस्तुओ की शुद्धि पवित्र जल के द्वारा अभ्युक्षण से होती है । स्रुक और स्रुवा की शुद्धि गर्म पानी से हुआ करती है । ।।६१।। इसी भाँति अन्य यज्ञ के पात्रो की तथा मूसल और उलूखल की और सीग-अस्थि काष्ठ और दाँत की वस्तुओ की शुद्धि तक्षण (छिलाई) कर देने से ही जाती है । ६२।। हे महाभागो ! जो पदार्थ

सहत अर्थात् मिले-जुले हो उन सब की शुद्धि केवल प्रोक्षण मात्र से ही हो जाया करती है। जो असहत द्रव्य हो उनकी प्रत्येक की अलग २ शुद्धि हुआ करती है ॥६३॥

अमुक्तराशि धान्यानामेकदेशस्य दूषणे ।
तावन्मात्र समुद्धृत्य प्रोक्षयेद्व कुशामसा । ६४
शाकमूलफलादीना धान्यवच्छुद्धिरिष्यते ।
माजनोन्मार्जनर्वेश्म पुन पाकेन मृन्मयम् ॥६५
उल्लेखनेनाजनेन तथा समार्जनेन च ।
गोनिवासेन व शुद्धा सेचनेन धरा स्मृता ॥६६
भूमिस्थमुदकं शुद्धं वैतृष्ण्यं यत्र गोर्व्रजेत् ।
अव्याप्तं यदमेध्येन गधवर्णरसान्वितम् ॥६७
स्तन: शुचि: प्रस्तवणे शकुनि फलपातने ।
स्वदारास्य गृहस्थाना रतौ भार्याभिकांक्षया ॥६८
हस्ताभ्या क्षालितं वस्त्रं कारुणा च यथाविधि ।
कुशाबुना सुमप्रोक्ष्य गृह्णीयाद्धर्मवित्तम ॥६९
पण्यं प्रसारित चैव वर्णाश्रमविभागश. ।
शुचिराकरज तेषा श्वा मृगग्रहणे शुचि ॥७०

जो अभुक्त धान्य की राशि हो और उसका एक भाग दूषित हो गया हो तो उसमे से उतना ही दूषित भाग निकाल कर शेष को कुशा द्वारा जल से प्रोक्षण कर देने पर शुद्धि हो जाती है ॥६४॥ शाक-मूल और फलो की शुद्धि भी धान्य के समान ही होती है। घर की शुद्धि मार्जन और जल के द्वारा उन्मार्जन अर्थात् सेचन करने से होती है। मृन्मय । मिट्टी के) पात्रो की शुद्धि दुबारा अग्नि मे पाक कर देने से होती है ॥६५॥ भूमि की शुद्धि खनन (खोदने) से-गोमय के द्वारा लेपन से भली-भाँति मल के अपकरण से-गाय के निवास करा देने से और जल के द्वारा सेचन कर देने से हो जाती है ॥६६॥ भूमि मे रहने वाला-जल उतनी मात्रा में होना चाहिए जिससे एक गाय की प्यास शान्त हो जावे तो वह शुद्ध माना गया है। जो अमेधा (अपवित्र)

पदार्थ से व्याप्त न हो और गन्ध-वर्ण तथा रस से अन्वित न हो ॥६७॥ दोहन के समय में वत्स (बछड़ा) शुद्ध होता है और फल के गिराने के समय में पक्षी शुद्ध माना जाता है। अपनी स्त्री का मुख गृहस्थों के यहाँ भार्या की अभिकाङ्क्षा से रति के समय मे शुद्ध माना गया है ॥६८॥ कारु (कारीगर) के द्वारा विधिपूर्वक हाथो से धोया हुआ वस्त्र कुशा के जल से सम्प्रोक्षण करने के पश्चात् धर्म वेत्ता पुरुष को ग्रहण कर लेना चाहिए ॥६६॥ बाजार की दूकानों फैलाई हुई वस्तु वर्णाश्रम के विभाग से शुद्ध होती हैं जो कि आकरज हों। मृग के ग्रहण करने के समय में कुत्ता शुद्ध माना गया है ॥७०॥

छाया च विप्लुषो विप्रा मक्षिकाद्या द्विजोत्तमाः।
रजोभूर्वायुरग्निश्च मेध्यानि स्पर्शने सदा ॥७१
सुप्त्वा भुक्त्वा च वै विप्राः क्षुत्वा पीत्वा च वै तथा।
ष्ठ्'विस्वाध्ययनादौ च शुचिरप्याचमेत्पुनः ॥७२
पादौ स्पृशंति ये चापि पराचमनबिंदवः।
ते पार्थिवैः समा ज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत् ॥७३
कृत्वा च मैथुनं स्पृष्ट्वा पतितं कुक्कुटादिकम्।
सूकरं चैव काकादि श्वानमुष्ट्रं खरं तथा ॥७४
यूप चांडालकाद्यांश्च स्पृष्ट्वा स्नानेन शुध्यति।
रजस्वलां सूतिकां च न स्पृशेदंत्यजामपि ॥७५
सूतिकाशौचसंयुक्तः शावाशाचसमन्वितः।
संस्पृशेन्न रजस्तासां स्पृष्ट्वा स्नात्वैव शुध्यति ॥७६
नैवाशौचं यतीनां च वनस्थब्रह्मचारिणाम्।
नैष्ठिकानां नृपाणां च मडलीनां च सुव्रताः ॥७७

छाया और वेद-पठन के समय में मुख से निर्गत-बिन्दु-विप्र-मक्षिका आदि तथा रज-भूमि-वायु और अग्नि स्पर्श करने मे सदा शुद्ध होते हैं ॥७१॥ शयन करके-भोजन करके-क्षुत करके अर्थात् जँभाई लेकर-पेय पदार्थ पीकर थूककर और अध्ययन के आदि में शुचि होते हुए भी पुनः आचमन करना चाहिए ॥७२॥ जो परके आचमन की बिन्दुएँ पैरो का

स्पर्श करती हैं वे पार्थिवों के समान ही जानने चाहिए। उनसे अप्रयत नहीं होना चाहिए ॥७३॥ मैथुन करके—पतित का स्पर्श करके तथा कुक्कुट आदि—सूकर कौआ आदि—कुत्ता ऊँट-गधा-यूप और चाण्डाल आदि को छूकर स्नान करना चाहिए तभी शुद्धि होती है। रजस्वला स्त्री सूतिका स्त्री और अन्त्यजा स्त्री का भी कभी स्पर्श नहीं करना चाहिए ॥७४॥७५। सूतिका का जननाशौच और मृताशौच इनसे युक्त को भी अपनी रजस्वला स्त्री का स्पर्श नहीं करना चाहिए और यदि स्पर्श कर लेता है तो स्नान करके ही शुद्ध होता है ॥७६॥ पति-वन में स्थित ब्रह्मचारी-नैष्ठिक नियम वाला-राजा और राजा के अमात्य आदि को आशौच नहीं होता है ॥७७॥

ततः कार्यविरोधाद्धि नृपाणां नान्यथा भवेत् ।
वैखानसानां विप्राणां पतितानामसम्भवात् ॥७८
असचयद्विजानां च स्नानमात्रेण नान्यथा ।
तथा संनिहितानां च यज्ञार्थं दीक्षितस्य च ॥७९
एकाहाद्यज्ञयाजीनां शुद्धिरुक्ता स्वयंभुवा ।
ततस्त्वधीतशाखानां चतुर्भि सर्वदेहिनाम् ॥८०
सूतकं प्रेतकं नास्ति त्र्यहादूर्ध्वममुत्र वै ।
अवर्गिकादशाहातं बाधवानां द्विजोत्तमा ॥८१
स्नानमात्रेण वै शुद्धिर्मरणे समुपस्थिते ।
तत ऋतुत्रयादर्वागेकाह परिगीयते ॥८२
सप्तवर्षात्ततश्चार्वाक् त्रिरात्रं हि ततः परम् ।
दशाहं ब्राह्मणानां वै प्रथमेऽह्नि वा पितु ॥८३

राज्य के कार्यों के विरोध होने राजाओं को आशौच नहीं हुआ करता है। वैखानस (यायावर)-विप्र और पतितों का असम्भव होने से आशौच नहीं होता है ॥७८॥ नित्य ही अर्जित कर वृत्ति वाले द्विजों को तथा अज्ञाता शौच वालों को और यज्ञार्थ दीक्षा ग्रहण कर लेने वालों में जो असचय वृत्ति वाले हैं उनको स्नान मात्र से ही शुद्धि होती है। यज्ञयाजी को एक दिन में ही शुद्धि स्वयम्भू ने बताई है। अधीत

शाखा वालो को अर्थात् वेद की शाखा के अध्ययन करने वालो एकाह से ही शुद्धि हो जाती है। अन्य जो असगोत्र हैं उनको तीन दिन मे शुद्धि होती है, जातक और मृतक दोनो ही चतुर्थ दिन मे शुद्ध हो जाते हैं। जो बान्धव हैं उनको एकादश दिन पर्यन्त आशौच रहता है ॥७६॥८०॥ ८१॥ बान्धवो को एकादश दिन के बाद स्नान करने पर शुद्धि हो जाया करती है। बन्निमरण समुपस्थित होता है। जनन के दश दिन के पश्चात् शुद्धि होती है। ऋतु त्रय के पश्चात् मरण मे भी एकाह मरण-शुद्धि के लिये बताया गया है ॥८२॥ छै मास के अनन्तर सात वर्ष पर्यन्त मृताशौच तीन रात्रि का होता है। इससे आगे ब्राह्मणो के यहाँ जिनका कि उपनयन संस्कार हो गया है दशाह मृताशौच होता है। यदि जनन होते ही मृत हो जाने पर माता को तो सूतिका शौच और मृताशौच पूरा होता है किन्तु पिता को केवल एक पहिले ही दिन का आशौच होता है—ऐसा भी एक विकल्प है ॥८३॥

दशाहं सूतिकाशौच मातुरप्येवमव्ययाः।
अर्वाक् त्रिवर्षात्स्नानेन बांधवानां पितु सदा ॥८४
अष्टाब्दादेकरात्रेण शुद्धि स्याद्बांधवस्य तु।
द्वादशाब्दात्ततश्चार्वाक् त्रिरात्रं स्त्रीषु सुव्रता. ॥८५
सपिंडता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते।
अतिक्रांते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥८६
तत सन्निहितो विप्रश्चार्वाक् पूर्व तदेव वै।
संवत्सरे व्यतीते तु स्नानमात्रेण शुध्यति ॥८७
स्पृष्ट्वा प्रेत त्रिरात्रेण धर्मार्थं स्नानमुच्यते।
दाहकानां च नेतॄणां स्नानमात्रमबांधवे ॥८८
अनुगम्य च ये स्नात्वा घृत प्राश्य विशुध्यति।
आचार्ये मरणे चैव त्रिरात्र श्रोत्रिये मृते ॥८९
पक्षिणी मातुलानां च सोदराणां च या द्विजा।
भूपानां मडलीना च सद्यो नीराष्ट्रगामिनाम् ॥९०
केवल द्वादशाहेन क्षत्रियाणां द्विजोत्तमा।

नाभिषिक्तस्य चाशौच संप्रमादेषु वै रणे ॥६१

दश दिन तक सूतिका शौच माता ही को होता है। तीन वर्ष के बाद बान्धवो को स्नान से ही शुद्धि हो जाती है और पिता को सदा तीन रात्रि का आशौच होता है ॥८४॥ हे सुव्रतो ! स्त्रियो के मरने पर बान्धवो की आठ वर्ष तक एक रात्रि मे शुद्धि हो जाती है और आठ वर्ष से बाद मे बारह वर्ष के बाद तीन रात्रि का आशौच होता है ॥८५॥ सात पुरुष अर्थात् पीढी तक एक ही गोत्र मे सपिण्डता रहा करती है फिर सात पुरुष तक कोई लगाव न होने पर सपिण्डता समाप्त हो जाया करती है। दश दिन अति क्रान्त हो जाने पर तीन रात्रि का ही आशौच हुआ करता है ॥८६॥ ब्राह्मण सन्निहित्य हो तो तीन ऋतु के बाद मे वही आशौच पूर्व की भाँति होता है। एक वर्ष पूरा ० त न हो जाने पर यदि आशौच का ज्ञान हो तो केवल स्नान कर लेने से शुद्ध हुआ करती है ॥८७॥ प्रेत का स्पर्श करने से तीन रात्रि के बाद शुद्ध होती है और धर्मार्थ स्नान ही शुद्धि के लिये कहा जाता है। बान्धव न होने पर दाह करने वाले नेताओ की स्नान मात्र से शुद्धि होती है। ॥८८॥ प्रेत के साथ श्मशान यात्रा मे जाकर धृत के प्राशन करने और स्नान करने से शुद्धि होती है। आचार्य और श्रोत्रिय क मरने पर तीन रात्रि मे शुद्धि होती है ॥८९॥ माता के भाइयो क मरने पर पक्षिणी अर्थात् त्रिरात्र का आशौच होना है अथवा सोदर उपकारियो के मृत होने पर भी तीन रात्रि का आशौच होता है। राजाओ और सामन्ता या जो देशान्तर वासी हो तुरन्त स्नान से आशौच चला जाता है ॥९०॥ हे द्विजोत्तमो ! केवल क्षत्रियो को बारह दिन का आशौच होता है। अभिषिक्त भी हो और रण मे सप्रमाद होने पर आशौच नही होता है ॥९१॥

वैश्य पचदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति।
इ त सक्षेपत. प्रोक्ता द्रव्यशुद्धिरनुत्तमा ॥९२
अशौच चानुपूर्व्येण यतीना नैव विद्यते।
नेताप्रभृति नारीणां मासि मास्यार्तव द्विजा ॥९३

कृते सकृद्युगवशाज्जायंते वै सहैव तु ।
प्रयांति च महाभागा भार्याभिः कुरवो यथा ॥६४
वर्णाश्रमव्यवस्था च त्रेताप्रभृति सुव्रताः ।
भारते दक्षिणे वर्ष व्यवस्था नेतरेष्वथ ॥६५
महावीते सुवीते च जंबूद्वीपे तथाष्टसु ।
शाकद्वीपादिषु प्रोक्तो धर्मो वै भारते यथा ॥६६
रसोल्लासा कृते वृत्तिस्त्रेतायां गृहवृक्षजा ।
सैव.तेवकृताद्दोषाद्रागद्वेषादिभिर्नृणाम् ॥६७
मैथुनात्कामतो विप्रास्तथैव परुषादिभिः ।
यवाद्याः संप्रजायते ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥६८

वैश्य वर्ण की शुद्धि पन्द्रह दिन मे होती है और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है। इस प्रकार से यह द्रव्य शुद्धि सक्षेप से बतादी गई है ॥६२॥ यतियो को यह आशौच अनुपूर्वी से कभी होता ही नहीं है। अब स्त्रियों मे रजो धर्म की प्रवृत्ति का क्रम बताते हैं—त्रेता से लेकर यह रजो दर्शन प्रत्येक मास मे स्त्रियो को होता है ॥६३॥ कृत युग मे एक वार ही होता था। अब युग के कारण स्त्रियो के साथ ही होता है जैसे महाभाग कुरु वर्षीय भार्या के साथ ही जाते हैं ॥६४॥ हे सुव्रतो! दक्षिण भारतवर्ष में यह वर्णों और आश्रमो की व्यवस्था त्रेता से लेकर ही है। दूसरे जो किम्पुरुषादि वर्ष हैं उनमे यह व्यवस्था नहीं है ॥६५॥ महातीत और सुवीत मे भी नही है। जम्बू द्वीप मे तथा आठ शाकद्वीपादि मे भारत मे जैसा धर्म है वैसा ही वहा गया है ॥६६॥ कृत युग मे रस के उल्लास वाली वृत्ति थी। त्रेता मे गृह और वृक्ष से उत्पन्न होने वाली थी। यह ही मनुष्यो के रागद्वेष आदि से मार्त्तव कृत दोष से हो गई है ॥६७॥ हे विप्रगण! परुष आदि के साथ काम वासना से मैथुन होने से यव आदि ग्राम्य एव आरण्य चोदह उत्पन्न होते हैं ॥६८॥

ओषध्यश्च रजोदोषाः क्षीर्णा रागादिभिर्नृणाम् ।
अकालदृष्टा विध्वस्ताः पुनरुत्पादितास्तथा ॥६६
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन न संभाष्या रजस्वला ।

प्रथमेऽहनि चांडाली यथा वज्या तथांगना ॥१००
द्वितीयेऽहनि विप्रा हि यथा वै ब्रह्मघातिनी ।
तृतीयेऽह्नि तदर्धेन चतुर्थेऽहनि सुव्रता ॥१०१
स्नात्वार्धमासात्संशुद्धा ततः शुद्धिर्भविष्यति ।
आपोडशात्ततः स्त्रीणां मूत्रवच्छौचमिष्यते ॥१०२
पंचरात्रं तयास्पृश्या रजसा वर्तते यदि ।
सा विंशद्दिवसादूर्ध्वं रजसा पूर्ववत्तथा ॥१०३
स्नाने शौचं तथा गान रोदनं हसनं तथा ।
यानमभ्यञ्जनं नारी द्यूतं चैवानुलेपनम् ॥१०४
दिवास्वप्नं विशेषेण तथा वै दंतधावनम् ।
मैथुनं मानसं वापि वाचिकं देवतार्चनम् ॥१०५
वर्जयेत्सर्वयत्नेन नमस्कार रजस्वला ।
रजस्वलांगना स्पर्शसभापे च रजस्वला ॥१०६

ओषधियों और मनुष्यों के रागादि से स्त्रियों को रजोदोष होते हैं। जो कि अकाल में दृष्ट-विध्वस्त और पुनः उत्पादित हुए हैं ॥६६॥ इस लिये पूर्णतया प्रयत्न के साथ रजस्वला जो स्त्रियाँ हों उनसे सम्भाषण नहीं करना चाहिए। जिस दिन रजो दर्शन होता है उस प्रथम दिन में तो वह एक चाण्डाली के ही समान वर्जित होने के योग्य होती है ॥१००॥ दूसरे दिन में ब्रह्मघातिनी के तुल्य उसे वर्जित कर देना चाहिए। तीसरे दिन में उसमें आधी अशुद्धि स्त्री में विद्यमान रहा करती है। चतुर्थ दिन में स्नान करके भी स्त्री को आधे मास पर्यन्त रज की अशुद्धि रहा करती है। इसके अनन्तर उसे शुद्धि होती है। पाँचवें दिन से लेकर सोलहवें दिन तक स्त्रियों को रजोदोष रहा करता है। उसका शौच मूत्र की भाँति अभीष्ट होता है ।१०१॥१०२॥ यदि स्त्री रज से युक्त है तो पाँच रात्रि पर्यन्त स्पर्श करने के अयोग्य होती है अर्थात् गमन करने के योग्य नहीं होती है। वह बीस दिन के ऊपर रज से पूर्ववत् हुआ करती है ॥१०३॥ रजस्वला स्त्री को स्नान-शौच-गान-रोदन-हास्य-यान-अभ्यञ्जन-नारीद्यूत-अनुलेपन-दिन में शयन दन्तधावन-मैथुन-मानस अथवा

याचिक भी मैथुन नही होना चाहिए। देवार्चन और नमस्कार ये सब काम रजस्वला स्त्री को पूर्णतया तथा विशेष रूप से त्याग ही देने चाहिए। रजस्वला स्त्री के अङ्ग के स्पर्श से तथा उसके साथ सम्भाषण से भी रजस्वला के दोष आ जाते हैं ॥१०४॥१०५॥१०६॥

संत्यागं चैव वस्त्राणां वर्जयेत्सर्वयत्नतः ।
स्नात्वान्यपुरुषं नारी न स्पृशेत्तु रजस्वला ॥१०७
ईक्षयेन्द्रास्करं देवं ब्रह्मकूर्चं ततः पिवेत् ।
केवलं पचगव्यं वा क्षीरं वा चात्मशुद्धये ॥१०८
चतुर्थ्यां स्त्री न गम्या तु गतोल्पायुः प्रसूयते ।
विद्याहीन व्रतभ्रष्टं पतितं पारदारिकम् ॥१०९
दारिद्यार्णवमग्नं च तनयं सा प्रसूयते ।
कन्यार्थिनैव गतव्या पंचम्यां विधिवत्पुनः ॥११०
रक्ताधिक्याद्भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेत्पुमान् ।
समे नपुंसकं चैव पंचम्यां कन्यका भवेत् ॥१११
षष्ठ्यां गम्या महाभागा सत्पुत्रजननी भवेत् ।
पुत्रत्वं व्यंजयेत्तस्य जातपुत्रो महाद्युतिः ॥११२

रजस्वला स्त्री को सर्वयत्नों से वस्त्रो का त्याग एवं स्पर्श का त्याग कर देना चाहिए। वह जब शुद्धि स्नान करे तो उसे अन्य पुरुष का स्पर्श नही करना चाहिए ॥१०७॥ शुद्धिस्नान करने के अनन्तर स्त्री को सूर्य का दर्शन करना चाहिए और ब्रह्म कूर्चक पान करे। आत्म शुद्धि के लिये केवल पञ्चगव्य अथवा क्षीर लेना चाहिए ॥१०८॥ चतुर्थ दिन मे स्त्री का गमन नही करे इस दिन गमन से अल्पायु विद्याहीन-व्रतभ्रष्ट-पतित पारदिक-दरिद्रता के सागर मे मग्न पुत्र का प्रसव हुआ करता है। पुरुष को, जिसे सुसन्तति की इच्छा हो, पाँचवे दिन विधि वत कन्या का गमन करना चाहिए ॥१०९॥११०॥ रक्त की अधिकता से स्त्री की उत्पत्ति होती है वीर्य की अधिकता होने से पुरुष की उत्पत्ति होती है। दोनो ही यदि समान मात्रा मे रहकर गर्भाशय मे स्थित होते हैं तो नपुंसक की उत्पत्ति हुआ करती है। पाँचवे दिन गमन से कन्या होती

है । छटे दिन गमन करने से स्त्री सत्पुत्र के जनन करने वाली होती है। उसका वह पुत्र पुत्रत्व को प्रकट किया करता है और महान् द्युति वाला होता है ॥१११॥११२॥

पुमिति नरकस्याख्या दुःख च नरकं विदुः ।
पुंसस्त्राणान्विर्तं पुत्रं तथाभूतं प्रसूयते ॥११३
सप्तम्या चैव कन्यार्थी गच्छेत्सैव प्रसूयते ।
अष्टम्यां सर्वसपन्नं ननयं सप्रसूयते ॥११४
नवम्या दारिकायार्थी दशम्या पडितो भवेत् ।
एकादश्या तथा नारी जनयेत्सैव पूर्ववत् ॥११५
द्वादश्यां धर्मतत्त्वज्ञ श्रौतस्मार्तप्रवर्तकम् ।
त्रयोदश्या जडां नारी सर्वसंकरकारिणीम् ॥११६
जनयत्यंगना यस्मान्न गच्छेत्सर्वयत्नतः ।
चतुर्दश्या यदा गच्छेत्सा पुत्रजननी भवेत् । ११७

पुम यह नरक का नाम है और नरक दुःख पूर्ण होता है । उस नरक से जो त्राण करने वाला हो वही पुत्र उत्पन्न होता है ॥११३॥ सातवी रात्रि मे कन्या की इच्छा रखने वाले को गमन करना चाहिए । आठवी रात्रि मे सर्व गुण सम्पन्न पुत्र का प्रसव होता है । नवम रात्रि मे दारिका-दशमी मे पण्डित-ग्यारहवी मे पूर्व की भाँति नारी का जन्म होता है ॥११४॥११५॥ बारहवी रात्रि मे गमन से धर्म के तत्त्वो का ज्ञाता श्रौत-स्मार्त्त धर्म को प्रवृत्त करने वाला पुत्र होता है । त्रयोदशी रात्रि मे अत्यन्त जड और सब को सकट बना देने वाली नारी उत्पन्न होती है इसलिये इस रात्रि मे पूर्ण प्रयत्न से गमन नही करना चाहिए । चतुर्दशी रात्रि मे पुत्र का जनन होता है ॥११६॥११७॥

पंचदश्या च धर्मिष्ठा षोडश्या ज्ञानपारगम् ।
स्त्रीणां वै मैथुने काले वामपार्श्वे प्रभंजन. ॥११८
चरेद्यदि भवेन्नारी पुमासं दक्षिणे लभेत् ।
स्त्रीणा मैथुनकाले तु पापग्रहविवर्जिते ॥११९
उक्तकाले शुचिर्भूत्वा शुद्धां गच्छेच्छुचिस्मिताम् ।

इत्येवं सप्रसङ्गेन यतीनां धर्मसंग्रहे ॥१२०
सर्वेषामेव भूतानां सदाचारः प्रकीर्तित ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सदाचार शुचिर्नर ॥१२१
श्रावयेद्वा यथान्याय ब्राह्मणान् दग्धकिल्बिषान् ।
ब्रह्मलोकमनुप्राप्य ब्रह्मणा सह मोदते ॥१२२

पन्द्रहवी रात्रि मे धर्मिष्ठा कन्या और सोलहवी रात्रि मे धर्म ज्ञान का पारगामी पुत्र प्रसूत होता है। मैथुन के समय मे स्त्रियो के वाम पार्श्व मे प्रभञ्जन चरण करता है तो नारी और दक्षिण मे चरण करने से पुरुष का लाभ होता है। मैथुन का काल ऐसा होना चाहिए जिसमे कोई भी पाप ग्रह न हो ॥११८॥११६॥ ऐसे उत्तम समय मे स्वय शुचि होकर शुद्ध एव शुचिस्मित वाली नारी का गमन करना चाहिए। इस प्रकार से यतियो के धर्म सग्रह के प्रसङ्ग से समस्त प्राणियो का सदाचार बता दिया गया है। जो इस सदाचार का पठन या श्रवण करता है वह नर शुचि होता है और जो इसको यथा न्याय ब्राह्मणो को श्रवण कराता है जो कि दग्ध किल्विष वाले हैं वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होकर ब्रह्मा के साथ प्रसन्नता का आनन्द प्राप्त किया करता है ॥१२०॥१२१॥१२२॥

॥ ६२–यतियों के दोषों का प्रायश्चित्त ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतीनामिह निश्चितम् ।
प्रायश्चित्तं शिवप्रोक्तं यतीनां पापशोधनम् ॥१
पाप हि त्रिविधं ज्ञेय वाङ्मनःकायसंभवम् ।
सतत हि दिवा रात्रौ येनेद वेष्टयते जगत् ॥२
तत्कर्मणा विनाप्येव तिष्ठतीति परा श्रुति ।
क्षणमेव प्रयोज्यं तु आयुष्य तु विधारणम् ॥३
भवेद्योगोऽप्रमत्तस्य योगो हि परमं बलम् ।
न हि योगात्परं किचिन्नराणा दृश्यते शुभम् ॥४
तस्माद्योगं प्रशंसति धर्मयुक्ता मनीषिणः ।
अविद्यां विद्यया जित्वा प्राप्यैश्वर्यमनुत्तमम् ॥५

दृष्ट्वापरावर धीराः परं गच्छन्ति तत्पदम् ।
व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च ॥६
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ।
उपेत्य तु स्त्रियं कामात्प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥७

इस अध्याय मे यतियो के दोपो के दूर करने के लिये शिवोक्त प्रायश्चित्त की विधि भली भाँति निरूपित की गई है । सूतजी ने कहा—इससे आगे मैं यतियो का पापो का शोधन करने वाला निश्चित प्रायश्चित्त बतलाता हूँ ॥१॥ वाणी-मन और शरीर से होने के कारण पाप तीन प्रकार का होता है । यह तीनो तरह का पाप दिन-रात मे निरन्तर इस जगत् को वेष्टित किया करता है ॥२॥ यह यति कर्म के बिना भी स्थित रहता है–यह ओप निप ही श्रुति है । अब एव क्षण मात्र समय का योग द्वारा प्रयोग करना चाहिए क्योकि आयुष्य अत्यन्त चल होती है ॥३॥ योग प्रमाद से रहित को होता है । योग बहुत बडा बल हुआ करता है । योग से बढकर मनुष्यो के लिये अन्य शुभ कर्म कुछ भी नही होता है ॥४॥ इस कारण से धर्म से युक्त मनीषी गण योग की प्रशसा किया करते हैं । विद्या के द्वारा अविद्या पर विजय प्राप्त करके और सर्वश्रेष्ठतम ऐश्वर्य की प्राप्ति करके तथा परावर को भली-भाँति देखकर धीर पुरुष उस परम पद को प्राप्त किया करते है । यति एव भिक्षुओ के लिये जिस प्रकार से व्रत होते हैं उसी प्रकार से ही उप व्रत भी हुआ करते हैं ॥५॥६॥ एक भी व्रतोपव्रत का अतिक्रमण करने पर उनके प्रायश्चित्त का विधान होता है । स्वेच्छा से स्त्री का उपगमन करके प्रायश्चित्त का विशेष निर्देश करना चाहिए ॥७॥

प्राण यामसमायुक्तं चरेत्सांतपनं व्रतम् ।
ततश्चरति निर्देशात्कृच्छ्रं चांते समाहितः ॥८
पुनराश्रममागत्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रित ।
न धर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनोषिणः ॥९
तथापि न च कर्तव्य प्रसङ्गो ह्येष दारुण ।
अहोरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा ॥१०

असद्वादो न कर्तव्यो यतिना धर्मलिप्सुना ।
परमापद्गतेनापि न कार्यं स्तेयमप्युन ॥११
स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्य धर्म इति श्रुतिः ।
हिंसा ह्येषा परा सृष्टा स्तैन्यं वै कथितं तथा ॥१२
यदेतद्द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः ।
स तस्य हरते प्राणान्यो यस्य हरते धनम् ॥१३
एवं कृत्वा सुदुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्च्युतः ।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चांद्र यणं व्रतम् ॥१४

प्राणायाम से समायुक्त सान्तपन व्रत करे । इसके अनन्तर अन्त में समाहित होकर निर्देश से कृच्छ्र सान्तपन करना चाहिए ॥८॥ फिर अपने आश्रम मे आकर भिक्षु को अतन्द्रित होकर चरण करना चाहिए । मनीषी लोग कहते हैं कि धर्मयुक्त अमृत हिंसा नही किया करता है ॥९॥ तो भी यह दारुण अनृत का प्रसङ्ग नही करना चाहिए। यदि किसी समय हो जावे तो उसका प्रायश्चित्त कहते हैं एक अहोरात्र का उपवास तथा सौ बार प्राणायाम करे ॥१०॥ धर्म के इच्छुक यति को असद्वाद कभी नही करना चाहिए। परमाधिक आपत्ति मे ग्रस्त हो जाने पर भी स्तेय (चोरी) कर्म नही करे ॥११॥ स्तेय से अधिक अधर्म या बुरा काम कोई नही होता है ऐसा श्रुति प्रतिपादन करती है। यह स्तेय जिसे कहा गया है यह भी एक दूसरे प्रकार की हिंसा ही सृजन की गई है ॥१२॥ जो यह धन होता है वह मानव के बाहिर चरण करने वाले प्राण ही होते हैं अर्थात् प्राणों के ही तुल्य हैं। जो उसके धन का हरण किया करता है वह उसके प्राणो का ही एक प्रकार से हरण करने वाला होता है ॥१३॥ इस प्रकार का कर्म करके वह दुष्ट आत्मा वाला पुरुष चरित्र से भिन्न और व्रत से च्युत हो जाया करता है। फिर वैराग्य को प्राप्त होकर उसे शुद्धि के लिये चान्द्रायण व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥१४॥

विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः ।
ततः संवत्सरस्यांते भूयः प्रक्षीणकल्मषः ।

पुनर्निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥१५
अहिंसा सर्वभूतानां कर्मणा मनसा गिरा ।
अकामादपि हिंसेत यदि भिक्षुः पशून् कृमीन् ॥१६
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत चांद्रायणमथापि वा ।
स्कदेदिंद्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ॥१७
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ।
दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥१८
त्रिरात्रमुपवासाश्च प्राणायामशतं तथा ।
रात्रौ स्कन्नः शुचिः स्नात्वा द्वादशैव तु धारणाः ॥१९
प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विजाः ।
एकान्नं मधुमांसं वा अश्रुतान्नं तथैव च ॥२०
अभोज्यानि यतीनां तु प्रत्यक्षलवणानि च ।
एकैकातिक्रमात्तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ॥२१

शास्त्र मे जो विधि दृष्ट हो उसी के अनुसार एक वर्ष तक चान्द्रायण व्रत करे – ऐसी वेद की आज्ञा है । इसके पश्चात् एक सम्वत्सर के अन्त मे प्रक्षीण पाप वाला होकर फिर निर्वेद को प्राप्त होता हुआ भिक्षु अतन्द्रित होकर चरण करे ॥१५॥ समस्त प्राणियों की कर्म मन और वाणी से हिंसा नही करनी चाहिए । बिना इच्छा के भी अर्थात् अनजान मे भी यदि भिक्षु पशु और कृमियो की हिंसा कर देवे तो उसे उस पाप की निवृत्ति के लिये कृच्छ्राति कृच्छ्र व्रत अथवा चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । यदि यति अपनी इन्द्रियो के सयम मे दुर्बलता होने के कारण स्त्री को देखकर स्कन्दन करे तो उसे सोलह प्राणायाम धारण करने चाहिए । अब दिन मे स्कन्न विप्र का प्रायश्चित्त बताया जाता है ॥१६॥१७॥१८॥ ऐसे दिवा स्कन्न विप्र को तीन रात्रि तक उपवास और सौ प्राणायाम करने चाहिए । रात्रि में स्कन्न हो तो स्नान करके बारह प्राणायामो से ही शुद्धि हो जाया करती है ॥१९॥ हे द्विजगण ! प्राणायाम में बड़ा गुण है । इस प्राणायाम से विप्र शुद्ध आत्मा वाला होकर विरजा हो जाता है । एक ही स्वामी का अन्न-मधु-मांस और अश्रुत

अर्थात् अपक्व अन्त तथा प्रत्यक्ष लवण ये सब यति को अभोज्य होते है। इनमे एक-एक के अतिक्रम करने से प्रायश्चित्त का विधान बताया जाता है ॥२०॥२१॥

प्राजापत्येन कृच्छ्रेण ततः पापात्प्रमुच्यते ।
ऽतिक्रमाश्च ये कचिद्वाङ्मनःकायसंभवाः ॥२२
सद्भिः सह विनिश्चित्य यद्ब्रूयुस्तत्समाचरेत् ॥२३
चरेद्धि शुद्धः समलोष्ठकांचनः समस्तभूतेषु च सत्समाहितः ।
स्थानं ध्रुवं शाश्वतमव्ययं तु परं हि गत्वा न पुनर्हि जायते।२४

उक्त अतिक्रमो के होने पर प्राजापत्य कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। इसके करने से वह यदि पाप से मुक्त हो जाता है। ये व्यतिक्रम जो कोई भी हों मन-वाणी और कर्म के द्वारा उत्पन्न होने वाले समझे जाते हैं ॥२२॥ सत्पुरुषों के साथ इनके प्रायश्चित्तो के विषय मे विशेष निश्चय करके जो भी कुछ वे कहे उसे ही करना चाहिए ॥२३॥ मिट्टी का ढेला और सुवर्ण इन दोनों को समान ही समझ कर शुद्ध स्वरूप में आस्थित होता हुआ आचरण करें और समस्त प्राणियों के विषय मे सत्समाहित रहना चाहिए। इस प्रकार के समाचरण करने वाला यति परम शाश्वत-ध्रुव और अव्यय पर स्थान को जाकर फिर यहाँ ससार मे जन्म ग्रहण नही किया करता है ॥२४॥

॥ ६३—वाराणसी माहात्म्य और विश्वेश्वरपूजा विधि ॥

एवं वाराणसी पुण्या यदि सूत महामते ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं तत्प्रभाव हि सांप्रतम् ॥१
क्षेत्रस्यास्य च माहात्म्य मविमुक्तिस्य शोभनम् ।
विस्तरेण यथान्यायं श्रोतुं कौतूहल हि नः ॥२
वक्ष्ये संक्षेपतः सम्यक् वाराणस्याः सुशोभनम् ।
अविमुक्तस्य माहात्म्यं यथाह भगवान् भवः ॥३
विस्तरेण मया वक्तुं ब्रह्मणा च महात्मना ।
शक्यते नैव विप्रेद्रा वर्षकोटि शतैरपि ॥४

देवः पुरा कृतोद्वाहः शंकरो नीललोहितः ।
हिमवच्छिखराद्देव्या हैमवत्या गरोश्वरैः ॥५
वाराणसीमनुप्राप्य दर्शयामास शकरः ।
अविमुक्तेश्वर लिंगं वासं तत्र चकार सः ॥६
वाराणसीकुरुक्षेत्रश्रीपर्वमहालये ।
तु ंगेश्वरे च केदारे तत्स्थाने यो यतिर्भवेत् ॥७
योगे पाशुपते सम्यक् दिनमेक यतिर्भवेत् ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य चरेत्पाशुपतं व्रतम् ॥८

इस अध्याय मे वाराणसी की अद्भुत महिमा और स्थान के सहित पूजा आदि की विधि निरूपित की गई है—ऋषियो ने कहा—हे महान् मति वाले सूतजी, यदि वाराणसी पुरी यदि ऐसी परम पुण्य है तो अब आप हम लोगो को उसका पूर्ण प्रभाव बताने की कृपा करें। इस वाराणसी के क्षेत्र का माहात्म्य जो इस अविमुक्त क्षेत्र का अत्यन्त शोभन है उसे यथा विधि कृपया विस्तार के साथ वर्णन करियेगा-हमको मन मे इनके श्रवण करने का बहुत अधिक कौतूहल हो रहा है ॥१॥२॥ सूतजी ने कहा—अब मैं इस वाराणसी के अविमुक्त क्षेत्र का परम सुशोभन माहात्म्य सम्यक् रूप से सक्षेप मे कहता हूँ जैसा कि भगवान् भव ने कहा है ॥३॥ इसको विस्तार के साथ तो मैं और महात्मा ब्रह्मा भी हे विप्रवृन्द ! सैकडो करोड वर्षो मे भी नही कह सकते हैं ॥४॥ पहिले देव नील लोहित शकर ने विवाह करके हिमवान् के शिखर से देवी हैमवती और गरोश्वरो के सहित वाराणसी पुरी मे पहुँच कर उसे देखा था। वहाँ पर उसने अविमुक्तेश्वर लिङ्ग का वास किया था अर्थात् विश्वेश्वर विश्वनाथ इस नाम से प्रसिद्ध लिङ्ग स्वरूप वहाँ स्थित हुए थे ॥५॥६॥ वाराणसी-कुरुक्षेत्र-श्री पर्वत-महालय-तुङ्गेश्वर-केदार ये उसके स्थान हैं। इनमे जो यति होता है और एक दिन पर्यन्त पाशुपत योग मे भली-भाँति यति रहता है। इसका महान् पुण्य है। इसलिये अन्य समस्त धर्म कलाप का त्याग कर पाशुपत व्रत का ही समाचरण करना चाहिए ॥७॥८॥

देवोद्याने वसेत्तत्र शर्वोद्यानमनुत्तमम् ।
मनसा निर्ममे रुद्रो विमानं च सुशोभनम् ॥६
दर्शयामास च तदा देवोद्यानमनुत्तमम् ।
हैमवत्याः स्वयं देवः सनंदी परमेश्वर. ॥१०
क्षेत्रस्यास्य च माहात्म्यमविमुक्तस्य शंकरः ।
उक्तवान्परमेशानः पार्वत्याः प्रीतये भवः ॥११
प्रफुल्लनानाविधगुल्म शोभितं लताप्रतानादिमनोहरं बहिः ।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियंगुभिः सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः ॥१२
तमालगुल्मैर्निचितं सुगंधिभिर्निकामपुष्पैर्वकुलैश्च सर्वतः ।
अशोकपुन्नागशतैः सुपुष्पितैर्द्विरेफमालाकुलपुष्पसंचयैः ॥ ३
क्वचित्प्रफुल्लाम्बुजरेणुभूषितैर्विहंगमैश्चानुकलप्रणादिभिः ।
विनादितं सारसचक्रवाकैः प्रमत्तदात्यूहवरैश्च सर्वत. ॥१४

वहाँ पर देवोद्यान मे अतिश्रेष्ठ शर्वोद्यान है वहाँ निवास करे। भगवान् रुद्र ने मन से परम शोभन विमान का निर्माण किया था ॥६॥ उस समय मे नन्दी के सहित परमेश्वर ने स्वय हैमवती को वह परमोत्तम देवोद्यान दिखाया था। ॥१०॥ परमेशान भगवान् शङ्कर ने पार्वती की प्रीति के लिये इस अविमुक्त क्षेत्र के माहात्म्य को कहा था ॥११॥ वह देवोद्यान खिले हुए अनेक तरह के गुल्मो से शोभा युक्त था। इसके बाहिर लताओ के प्रतानो की बडी ही सुन्दरता विद्यमान थी। चारो ओर विरूढ पुष्पो वाले प्रियगु के वृक्ष थे और सुन्दर पुष्पो से समन्वित काँटे वाले केतकी के वृक्ष लगे हुए थे ॥१२॥ यह देवोद्यान सुगन्ध से युक्त तमाल की झाडियो से घिरा हुआ था। बहुत से पुष्पो से सयुत बकुल के वृक्ष इसके सब ओर खडे हुए थे। सैंकडो अशोक और पुन्नाग के वृक्ष थे जो फूलो से खिले हुए थे और उन पर भ्रमरो की पक्तियाँ भँडरा रही थी ॥१३॥ इस देवोद्यान मे किसी स्थान पर कमल खिले हुए थे जिनके पराग से विभूषित पक्षीगण अपनी परम सुन्दर ध्वनि कर रहे थे। यह देवोद्यान सब ओर से सारस-चक्र वाक और प्रमत्त दात्यूह अर्थात् कैनत सज्ञा वाले पक्षियो के शब्दो से मुखरित हो रहा था ॥१४॥

क्वचिच्च केकारुतनादितं शुभं क्वचिच्च कारंडवनादनादितम् ।
क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृत मदाकुलाभिर्भ्रमरांगनादिभिः।१५
निपेवितं चारुसुगंधिपुष्पकैः क्वचित्सुपुष्पैः सहकारवृक्षैः ।
लतोपगूढैस्तिलकैश्च गूढ प्रगीतविद्याधरसिद्ध-चारणम् ॥१६
प्रवृत्तनृत्तःसुराप्सरोगण प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितम् ।
प्रनृत्तहारीतकुलोपनादित मृगेन्द्रनादाकुलमत्तमानसैः ॥१७
क्वचित्क्वचिद्गंधवद्वकैर्मृगैर्विलूनदर्भाकुरपुष्प संचयम् ।
प्रफुल्लनानाविधचारुपकजैः सरस्तडागैरुपशोभितं क्वचित् ॥१८
विटपनिचयलीनं नीलकंठाभिरामंमदमुदितविहंगप्रामनादाभिरामम्
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफंनवकिसलयशोभाशोभितप्रांशुशाखम्
क्वचिच्च दतक्षतचारुवीरुधं क्वचिल्लतालिंगितचारुवृक्षकम् ।
क्वचिद्विलासालसगामिनीभिर्निषेवितं किंपुरुषांगनाभिः ॥२०
पारावतध्वनिविकूजितचारुशृंगैरभ्रंकषैः सितमनोहर चारुरूपैः ।
आकीर्णपुष्पनिकरप्रविभक्तहर्म्यैर्विभ्राजितं त्रिदशदिव्यकुलैरनेकैः।२१

इसमे कही पर मयूरों की वाणी गूंज रही थी तो किसी स्थान पर कारण्डवों की ध्वनि श्रूयमाण हो रही थी । किसी स्थल पर मद से आकुल भ्रमरों की अङ्गनाओं के साथ अत्युन्मत्त भौंरो के द्वारा गुञ्जायमान हो रहा था और घिरा हुआ था ॥१५॥ यह देवोद्यान परम सुन्दर सुगन्ध से युक्त पुष्पों से सेवित था और किसी स्थान पर सुपुष्पों से समन्वित आम के वृक्षों से युक्त था। लताओं से उपगूढ़ तिलक के वृक्षों से भरा-पूरा था जिसमे विद्याधर-सिद्ध तथा चारणों का गायन हो रहा था ॥१६॥ इस देवोद्यान में अप्सरा गण अपना नृत्य करने मे प्रवृत्त हो रही थी । परम प्रसन्न पक्षियो से यह सेवित था । नाचने वाले हारीत पक्षियो के समूह से शब्दायमान था तथा इसमें प्रमत्त मृगेन्द्रों के नाद से एक मन को मस्त करने वाली अद्भुत शोभा हो रही थी ॥१७॥ किसी स्थान पर सुरयुक्त गन्ध से युक्त मृगों के समुदाय द्वारा कुशा के अकुर तथा पुष्पों का सचय विलून होता हुआ दिखाई दे रहा था । कोई २ स्थान खिले हुए नाना प्रकार के सुन्दर कमलों से समन्वित थे और सरोवर

तथा तडागों से उप शोभित थे ॥१८॥ यह देवोद्यान विटपो के समुदाय से लीन था । नीलकण्ठ पक्षियों के द्वारा यह अत्यन्त सुन्दर था। इसमें मद से परम प्रसन्न पक्षीगण विद्यमान थे। चारों ओर से सुन्दर ध्वनि के कारण यह अत्यन्त सुरम्य दिखाई दे रहा था। खिले हुए पुष्पों से युक्त वृक्षों की शाखाएँ थीं जिन पर मस्त भौंरे लीन हो रहे थे। यह उद्यान नूतन किसलयों की शोभा से प्राशु शाखा वाला परम शोभित हो रहा था ॥१९॥ किसी स्थल पर दलों के क्षत वाली सुन्दर लताऐं हैं तो किसी स्थान पर लताओं के द्वारा वृक्षों का आलिङ्गन किया जा रहा है अर्थात् लताऐं वृक्षों से लिपटी हुई हैं। किसी स्थान में इस उद्यान मे रति विलास के कारण मन्द गमन करने वाली किम्पुरुषों की अङ्गनाऐं इसका निषेवण कर रही हैं ॥२०॥ पारावतों की ध्वनि से विकूजित सुन्दर चोटियों वाले सफेद एवं सुन्दर मन के हरण करने वाले रूप से युक्त फैंले हुए पुष्पों के समूह के समान प्रविभक्त हसों से समन्वित और देवा क अनेक दिव्य कुलों से युक्त होकर भ्राजमान यह उद्यान है ॥२१॥

फुल्लोत्पलाबुजवितानसहस्रयुक्त तोयाशयं समनुशोभितदेवमार्गम् ।
मार्गातराकलितपुष्पविचित्रपक्तिसबद्धगुल्मविटपैर्विविधंरुपेतम्॥२२
तुङ्गाग्रनीलपुष्पस्तबकभरनतप्राशुशाखरशोकैर्दोलाप्राताललीनश्रु-
तिसुखजनकैर्भासिताता मनोज्ञं ।
रात्रौ चद्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकता मप्रयात छायासुप्तप्रबु-
द्धस्थित हरिणकुलालुनदूर्वाकुराग्रम् ॥२३

तत्र पिना सुशैलेन स्थापित त्वचलेश्वरम् ।
अलकृत मया ब्रह्मपुरस्नान्मुनिभिः सह ॥२४
चडिकेश्वरक देवि चडिकेशा तवात्मजा ।
चडिकानिर्मित स्थानमविकातीर्थमुत्तमम् ॥२५
रुचिरेश्वरक चैव धारेया कपिला शुभा ।
एतेषु देवि स्थानेषु तीर्थेषु विविधेषु च ॥२६
पूजयेन्मा सदा भक्त्या मया सार्धं हि मोदते ।
श्रीशैले सत्यजेद् देह ब्राह्मणो दग्धकिल्विष ॥२७

मुच्यते नात्र संदेहो ह्यविमुक्ते यथा शुभम् ।
महास्नान च यः कुर्याद्घृतेन विधिनैव तु ॥२८
स याति मम सायुज्यं स्थानेष्वेतेषु सुव्रते ।
स्नान पलशत ज्ञेयमभ्यगं पचविंशति ॥२९

यह उद्यान खिले हुए उत्पल तथा अम्बुजो के सहस्रो वितान से युक्त है और जलाशयो से भली-भाँति शोभा युक्त देव मार्गो से समन्वित है । मार्गान्तर मे लगी हुई पुष्पो की विचित्र पक्तियो से सम्बद्ध नाना भाँति के गुल्म और विटपों से युक्त है ॥२२॥ ऊँचे अग्र भाग वाले नील पुष्पो के स्तवको (गुच्छको) क भार से झुकी हुई ऊँची शाखाग्रो वाले तथा दोला प्रान्तान्त से लीन और कानो को सुख देने वाले एव अत्यन्त सुन्दर अशोक के वृक्षो के द्वारा इसका मध्य भाग भासित हो रहा था । रात्रि मे चन्द्रमा की दीप्ति से कुसुमित तिलको से एकता को प्राप्त हुआ एव छाया मे सोये हुए प्रबुद्ध एव स्थित हिरणो के समुदाय से आलुप्त दूभ के अ कुरों वाला था ॥२३॥ ऐसे परम रमणीय उद्यान मे वहाँ पर सुशैल पिता ने अचलेश्वर को स्थापित किया था । और ब्रह्मादि ऋषियो के साथ मैंने उसे अलकृत किया था ॥२४॥ हे देवि ! देव चण्डिकेश्वर हैं और तुम्हारी आत्मजा चण्डिकेशा है । चण्डिका के द्वारा निर्मित उत्तम स्थान अम्बिका तीर्थ है ॥२५॥ और रुचिकेश्वर देव हैं। यह धारा कपिला एव परम शुभ है। हे देवि ! इन विविध तीर्थ स्थानो मे जो सदा भक्ति से मेरी पूजा करता है वह फिर मेरे साथ मोह प्राप्त किया करता है । श्री शैल मे जो देह का त्याग किया करता है वह ब्राह्मण दग्ध किल्विष अर्थात् पापो से मुक्त हो जाता है ॥२६॥२७॥ वह मुक्त हो हो जाता है—इस म तनिक भी सन्देह नही है । जिस तरह अविमुक्त मे शुभ होता है । जो विधि के साथ घृत से महास्नान करता है हे सुव्रते ! इन स्थानो मे वह मेरा साम्राज्य प्राप्त कर लेता है । सौ पल का स्नान जानना चाहिए और पचीस पल का अभ्यङ्ग होता है ॥२८॥२९॥

पलाना द्वे सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्तितम् ।
स्नाप्य लिग मदीय तु गव्येनैव घृतेन च ॥३०

विशोध्य सर्वद्रव्यैस्तु वारिभिरभिषिञ्चति ।
सायुज्यं शतयज्ञाना स्नानेन प्रयुतं तथा ॥३१
पूजया शतसाहस्रमनन्तं गीतवादिनाम् ।
महास्नाने प्रसक्तं तु स्नानमष्टगुणं स्मृतम् ॥३२
जलेन केवलेनैव गन्धतोयेन भक्तितः ।
अनुलेपनं तु तत्सर्वं पंचविंशत्पलेन वै ॥३३
शमीपुष्पं च विधिना बिल्वपत्रं च पंकजम् ।
अन्यान्यपि च पुष्पाणि बिल्वपत्रं न संत्यजेत् ॥३४
चतुर्द्रोणैर्महादेवमष्टद्रोणैरथापि वा ।
दशद्रोणैस्तु नैवेद्यमष्टद्रोणैरथापि वा ॥३५

दो सहस्र पलों का महास्नान कहा गया है। मेरे लिङ्ग का स्नान अभ्यङ्ग आदि गाय के घृत से ही करना चाहिए ॥३०॥ स्नान कराने के पश्चात् समस्त द्रव्य शर्करादि से युक्त जल से जो अभिषिञ्चन करता है वह सायुज्य पाता है। लिङ्ग के शोधन से सौ यज्ञों का और स्नान से एक लक्ष यज्ञों का फल प्राप्त होता है। पूजा से सौ सहस्र का तथा गीत वादियों को अनन्त फल होता है। महास्नान में स्नान से आठ गुना फल हुआ करता है ॥३१॥३२॥ केवल गन्ध युक्त जल से भक्ति व भाव से युक्त होकर महास्नानीय शर्करादि का अनुलेपन पचीस पल से कहा गया है ॥३३॥ शमी के पुष्प हों जो कि विधि सहित समर्पित किये जावें—बिल्वपत्र हो तथा पङ्कज हों अथवा अन्य भी कोई पुष्प हों किन्तु बिल्व-पत्र अवश्य ही होने चाहिए। इनका कभी भी लिङ्ग के पूजन में त्याग नहीं करना चाहिए ॥३४॥ महादेव को चार द्रोण अथवा आठ द्रोण परिमित तण्डुल आदि धान्यों से अर्चित करना चाहिए। आठ द्रोण अथवा दश द्रोण लड्डुओं से नैवेद्य बनाकर समर्पित करना चाहिए ॥३५॥

शतद्रोणमयं पुण्यम् दर्शयेत् शिवोदये ।
निवेदनस्य विप्रस्य नात्र कार्या विचारणा ॥३६
भेरीमृदङ्गमुरजतिमिरापटहादिभिः ।

वादित्रैर्विविधैश्चान्यैर्निनादैर्विविधैरपि ॥३७
जागरं कारयेद्यस्तु प्रार्थयेच्च यथाक्रमम् ।
स भृत्यपुत्रदारैश्च तथा संबंधिबान्धवैः ॥३८
सार्धं प्रदक्षिणं कृत्वा प्रार्थयेल्लिंगमुत्तमम् ।
द्रव्यहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं सुरेश्वर ॥३६
कृतं वा न कृतं वापि क्षंतुमर्हसि शंकर ।
इत्युक्त्वा वै जपेद्रुद्रं त्वरितं शांतिमेव च ॥४०
जपित्वैव महाबीजं तथा पंचाक्षरस्य वै ।
स एव सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ॥४१
तत्फलं समवाप्नोति वाराणस्यां यथा मृतः ।
तथैव मम सायुज्यं लभते नात्र संशयः ॥४२
मत्प्रियार्थमिदं कार्यं मद्भक्तैर्विधिपूर्वकम् ।
ये न कुर्वंति ते भक्ता न भवंति न संशयः ॥४३

एक आढक में भी शत द्रोण को तुल्य पुण्य का विधान होता है। जो ब्राह्मण वित्त हीन हो उसको इसका विचार नहीं करना चाहिए ॥३६॥ भेरी-मृदङ्ग-मुरज-तिमिठ-पटह आदि वादित्रों के द्वारा तथा अन्य अनेक निनादों के द्वारा वादन करके जागरण जो करता है और यथा क्रम प्रार्थना करता है। उसे भृत्य-पुत्र और स्त्री के साथ तथा सम्बन्धी एवं बान्धवों के सहित आधी प्रदक्षिणा करके उत्तम शिव लिङ्ग की प्रार्थना करनी चाहिए—प्रार्थना का स्वरूप यह है—हे देव शङ्कर ! हे सुरों के स्वामिन् ! मैंने जो यह आपका अर्चन मन्त्रों से रहित और समस्त अत्यावश्यक द्रव्यों से हीन एवं श्रद्धा से भी शून्य जो कुछ भी जैसा किया है और जो आवश्यक छूट गया है उसे आप क्षमा कर देने के योग्य हैं ॥३७॥३८॥ इस तरह क्षमा प्रार्थना करके रुद्र का जप करे और शीघ्र ही शान्ति जाप करे ॥३६॥४०॥ इस प्रकार से पञ्चाक्षर के महाबीज का जाप करे। वह इस तरह से समस्त तीर्थों में और सम्पूर्ण यज्ञों में जो फल होता है उसे प्राप्त कर लेता है ॥४१॥ उसी फल को वाराणसी में जो मृत्यु को प्राप्त किया करता है वह प्राप्त करता है और

उसी प्रकार से मेरा सायुज्य भी प्राप्त करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।४२।। मेरे भक्तों को मेरी प्रीति के लिये विधि पूर्वक यह करना चाहिए । जो इस तरह नहीं किया करते हैं वे मेरे भक्त नहीं होते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।४३।।

।। ६४—अन्धकदैत्य को गाणपत्य की पदवी ।।

अंधको नाम दैत्येंद्रो मंदरे चारुकंदरे ।
दमितस्तु कथं लेभे गाणपत्यं महेश्वरात् ।।१
वक्तुमर्हसि चास्माकं यथावृत्तं यथाश्रुतम् ।
अंधकानुग्रहं चैव मंदरे शोपणं तथा ।।२
वरलाभमशेष च प्रवदामि समासतः ।
हिरण्याक्षस्य तनयो हिरण्यनयनोपमः ।।३
पुरांधक इति ख्यातस्तपसा लब्धविक्रमः ।
प्रसादाद्ब्रह्मणः साक्षादवध्यत्वमवाप्य च ।।४
त्रैलोक्यमखिलं भुक्त्वा जित्वा चेंद्रपुरं पुरा ।
लीलया चाप्रयत्नेन त्रासयामास वासवम् ।।५
बाधितास्ताडिताबद्धाः पातितास्तेन ते सुराः ।
विविशुर्मंदरं भीता नारायणपुरोगमाः ।।६
एव संपीड्य वै देवानंधकोपि महासुरः ।
यदृच्छया गिरिं प्राप्तो मंदरं चारुकंदरम् ।।७

इस अध्याय में देवताओं के शत्रु अन्धक का निग्रह वरदान की प्राप्ति और गाणपत्य का निरूपण किया जाता है । ऋषियों ने कहा—अन्धक नाम वाले दैत्य को सुन्दर कन्दरा वाले मन्दराचल पर किस प्रकार दमित किया था और उसने महेश्वर से गाणपत्य पद की कैसे प्राप्ति की थी ।।१।। आपने इस विषय में जो भी सुना है और जैसा भी हुआ है उसे आप वर्णन करने के योग्य होते हैं । सूतजी ने कहा—अन्धक के ऊपर जो अनुग्रह और मन्दर में शोषण तथा वरदान का लाभ—ये सम्पूर्ण मैं तुम को संक्षेप में बतलाता हूँ । हिरण्याक्ष-पुत्र हिरण्य नयन

की उपमा वाला था। वह पहिले अन्धक इस नाम से विख्यात था और तपस्या के द्वारा उसने पराक्रम की प्राप्ति की थी। ब्रह्मा के प्रसाद से वह साक्षात् अवध्यता को प्राप्त हो गया था ॥२॥३॥४॥ उसने समस्त त्रैलोक्य का उपभोग किया था और पहिले इन्द्र के पुर पर विजय प्राप्त करली थी। उसने यों ही लीला से बिना ही किसी प्रयत्न के इन्द्र को त्रस्त कर दिया था ॥५॥ उसके द्वारा बाधा पहुँचाये गये-पीटे गये बाँधे गये और गिराये गये समस्त देवगण नारायण को पुरोगामी बनाकर मन्दराचल के गुफाओं मे अत्यन्त भयभीत होकर प्रविष्ट हो गये थे ॥६॥ महान् असुर अन्धक देवगण को इस प्रकार से सपीडित करके स्वेच्छा से रम्यतम कन्दराओं वाले मन्दर पर्वत पर पहुँच गया था ॥७॥

ततस्ते समस्ता सुरेन्द्रा ससाध्याः सुरेश महेश पुरेत्याहुरेवम्।
द्रुत चाल्पवीर्यप्रभिन्नाङ्गभिन्ना वय दैत्यराजस्य शस्त्रैर्निकृत्ता ॥८
इतीदमखिल श्रुत्वा दैत्यागममनौपमम्।
गणेश्वरैश्च भगवानंधकाभिमुख ययौ॥९
तनेद्रपद्मोद्भव विष्णुमुख्या. सुरेश्वरा विप्रवराश्च सर्वे।
जयेति वाचा भगवतमूचु किरीटबद्धाञ्जलय. समतात् ॥१०
अथाशेषासुरांस्तस्य कोटिकोटिशतंस्तत.।
भस्मीकृत्य महादेवो निर्बिभेदांधक तदा ॥११
शूलेन शूलिना प्रोत दग्धकल्मषकंचुकम्।
दृष्ट्वांधकं ननादेश प्रणम्य स पितामह. ॥१२
तन्नादश्रवणान्नेदुर्देवा देव प्रणम्य तम्।
ननृतुर्मुनय सर्वे मुमुदुर्गणपुंगवा ॥१३
ससृजु पुष्पवर्षाणि देवा शंभोस्तदोपरि।
त्रैलोक्यमखिल हर्षान्ननंद च ननाद च ॥१४

उस समय म वे सम्पूर्ण सुरेन्द्र साध्य वर्ग के सहित देवों के स्वामी महेश्वर के सामने उपस्थित होकर इस प्रकार से कहने लगे—हे देव! हम लोग अत्यल्प पराक्रम वाले हैं और इस दैत्यराज के शस्त्रों से प्रभिन्न अङ्गों वाले एव निकृत्त शीघ्र ही हो गये हैं ॥८॥ इस प्रकार से उस दैत्य

के आगमन का सम्पूर्ण समाचार श्रवण करके भगवान् शिव गणेश्वरों को साथ में लेकर उस अन्धक दैत्य के सामने प्राप्त हुए थे ॥९॥ वहां पर इन्द्र-ब्रह्मा और विष्णु जिनमें प्रमुख थे ऐसे सब सुरेश्वर और विप्रवर जय-जयकार करके सभी ओर से किरीट पर्यन्त बद्धाञ्जलि वाले होकर भगवान् शिव से बोले थे ।।१०।। इसके अनन्तर भगवान् महादेव ने उस अन्धक दैत्य के जो सैकड़ो करोड़ असुर थे उनको भस्म करके अन्धक को निर्भिन्न कर दिया था ।।११।। भगवान् शूली ने अपने शूल से उसका छेदन किया था जिसके कारण वह दग्ध कल्मष रूपी कञ्जुक वाला हो गया था। ऐसा उस अन्धक को देखकर पितामह ब्रह्मा ने शिव को प्रणाम करके नाद किया था ।।१२।। उसके नाद (ध्वनि) को सुनकर समस्त देवों ने भी महादेव को प्रणाम करके हर्ष की ध्वनि की थी । समस्त मुनिगण नृत्य करने लगे थे और श्रेष्ठ गण परम प्रसन्न हो गये थे ॥१३॥ उस समय मे देवगण भगवान् शम्भु के ऊपर पुष्पों की वृष्टि करने लगे थे । पूरा त्रैलोक्य हर्षातिरेक से आनन्द से भरा गया था और हर्ष की ध्वनि करने लगा था ।।१४।।

दग्धोऽग्निना च शूलेन प्रोत. प्रेत इवांधक' ।
सात्त्विक भावमास्थाय चिंतयामास चेतसा ।।१५
जन्मांतरेपि देवेन दग्धो यस्माच्छिवेन वै ।
आराधितो मया शम्भुः पुरा साक्षान्महेश्वरः ।।१६
तस्मादेतन्मया लब्धमन्यथा नोपपद्यते ।
य. स्मरेन्मनसा रुद्र प्राणांते सकृदेव वा ।।१७
स याति शिवसायुज्यं किं पुनर्बहुश. स्मरन् ।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णु सर्वे देवा. सवासवा. ।।१८
शरण प्राप्य तिष्ठ ति तमेव शरण व्रजेत् ।
एव सचिंत्य तुष्टात्मा सोधकश्चांधकार्दनम् ।।१९
सगण शिवमीशानमस्तुवत्पुण्यगौरवात् ।
प्रार्थितस्तेन भगवान् परमार्तिहरो हरः ।।२०
हिरण्यनेत्रतनयं शूलाग्रस्थं सुरेश्वर. ।

की उपमा वाला था। वह पहिले अन्धक इस नाम से विख्यात था और तपस्या के द्वारा उसने पराक्रम की प्राप्ति की थी। ब्रह्मा के प्रसाद से वह साक्षात् अवध्यता को प्राप्त हो गया था ॥२।।३॥४॥ उसने समस्त त्रैलोक्य का उपभोग किया था और पहिले इन्द्र के पुर पर विजय प्राप्त करली थी। उसने यों ही लीला से बिना ही किसी प्रयत्न के इन्द्र को त्रस्त कर दिया था ॥५॥ उसके द्वारा बाधा पहुँचाये गये-पीड़े गये बांधे गये और गिराये गये समस्त देवगण नारायण को पुरोगामी बनाकर मन्दराचल के गुफाओं मे अत्यन्त भयभीत होकर प्रविष्ट हो गये थे ॥६॥ महान् असुर अन्धक देवगण को इस प्रकार से सपीडित करके पट्टच्छा से रम्यतम कन्दराओं वाले मन्दर पर्वत पर पहुँच गया था ॥७॥

ततस्ते समस्ता सुरेंद्रा ससाध्या सुरेश महेश पुरेत्याहुरेवम्।
द्रुत चाल्पवीर्यप्रभिन्नागभिन्ना वय दैत्यराजस्य शस्त्रैर्निकृत्ता ॥८

इतीदमखिल श्रुत्वा दैत्यागममनोपमम्।
गणेश्वरैश्च भगवानधकाभिमुख ययौ ॥९
तत्रेन्द्रपद्मोद्भव विष्णुमुख्या सुरेश्वरा विप्रवराश्च सर्वे।
जयेति वाचा भगवतमूचु किरीटबद्धाजलय समतात् ॥१०
अथाशेषासुरांस्तस्य कोटिकोटिशतैस्तत ।
भस्मीकृत्य महादेवो निर्बिभेदाधक तदा ॥११
शूलेन शूलिना प्रोत दग्धकल्मषकंचुकम्।
दृष्ट्वाधकं ननादेश प्रणम्य स पितामह ॥१२
तन्नादश्रवणाद्देवा देव प्रणम्य तम्।
ननृतुर्मु नय सर्वे मुमुदुर्गणपु गवा ॥१३
ससृजु पुष्पवर्षाणि देवा शभोस्तदोपरि।
त्रैलोक्यमखिल हर्षान्ननद च ननाद च ॥१४

उस समय मे वे सम्पूर्ण सुरेन्द्र साध्य वर्ग के सहित देवों के स्वामी महेश्वर के सामने उपस्थित होकर इस प्रकार से कहने लगे—हे देव! हम लोग अत्यल्प पराक्रम वाले हैं और इस दैत्यराज के शस्त्रों से प्रभिन्न अङ्गों वाले एव छिन्न शीघ्र ही हो गये हैं ॥८॥ इस प्रकार से उस दैत्य

के आगमन का सम्पूर्ण समाचार श्रवण करके भगवान् शिव गणेश्वरों को साथ में लेकर उस अन्धक दैत्य के सामने प्राप्त हुए थे ॥६॥ वहाँ पर इन्द्र-ब्रह्मा और विष्णु जिनमें प्रमुख थे ऐसे सब सुरेश्वर और विप्रवर जय-जयकार करके सभी ओर से किरीट पर्यन्त बद्धाञ्जलि वाले होकर भगवान् शिव से बोले थे ॥१०॥ इसके अनन्तर भगवान् महादेव ने उस अन्धक दैत्य के जो सैंकड़ों करोड़ असुर थे उनको भस्म करके अन्धक को निर्भिन्न कर दिया था ॥११॥ भगवान् शूली ने अपने शूल से उसका छेदन किया था जिसके कारण वह दग्ध कल्मष रूपी कञ्चुक वाला हो गया था। ऐसा उस अन्धक को देखकर पितामह ब्रह्मा ने शिव को प्रणाम करके नाद किया था ॥१२॥ उसके नाद (ध्वनि) को सुनकर समस्त देवों ने भी महादेव को प्रणाम करके हर्ष की ध्वनि की थी। समस्त मुनिगण नृत्य करने लगे थे और श्रेष्ठ गण परम प्रसन्न हो गये थे ॥१३॥ उस समय में देवगण भगवान् शम्भु के ऊपर पुष्पों की वृष्टि करने लगे थे। पूरा सैनालय हर्षातिरेक से आनन्द से भरा गया था और हर्ष की ध्वनि करने लगा था ॥१४॥

दग्धाग्निना च शूलेन प्रोतः प्रेत इवान्धकः ।
सात्त्विकं भावमास्थाय चिंतयामास चेतसा ॥१५
जन्मान्तरेपि देवेन दग्धो यस्माच्छिवेन वै ।
आराधितो मया शम्भुः पुरा साक्षान्महेश्वरः ॥१६
तस्मादनन्यया लब्धमन्यथा नापपद्यते ।
य स्मरेन्मनसा रुद्रं प्राणांते सकृदेव वा ॥१७
स याति शिवसायुज्यं कि पुनर्बहुशः स्मरन् ।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः सर्व देवाः सवासवाः ॥१८
शरणं प्राप्य तिष्ठन्ति तमेव शरणं व्रजेत् ।
एवं संचित्य सुष्टात्मा सोऽन्धकश्चान्धकादनम् ॥१९
भगवन् निवसीन नमस्तुष्टस्तुभ्यगोचरः ।
प्रार्थितस्तेन भगवान् परमात्तिहरो हरः ॥२०
हिरण्यनेत्रतनयं शूलाग्रस्थं सुरेश्वरः ।

की उपमा वाला था। वह पहिले अन्धक इस नाम से विख्यात था और तपस्या के द्वारा उसने पराक्रम की प्राप्ति की थी। ब्रह्मा के प्रसाद से वह साक्षात् अवध्यता को प्राप्त हो गया था ॥२॥३॥४॥ उसने समस्त त्रैलोक्य का उपभोग किया था और पहिले इन्द्र के पुर पर विजय प्राप्त करली थी। उसने यो ही लीला से बिना ही किसी प्रयत्न के इन्द्र को त्रस्त कर दिया था ॥५॥ उसके द्वारा बाधा पहुँचाये गये-पीटे गये बाँधे गये और गिराये गये समस्त देवगण नारायण को पुरोगामी बनाकर मन्दराचल के गुफाओं में अत्यन्त भयभीत होकर प्रविष्ट हो गये थे ॥६॥ महान् असुर अन्धक देवगण को इस प्रकार से संपीडित करके पट्टच्छा से रम्यतम कन्दराओं वाले मन्दर पर्वत पर पहुँच गया था ॥७॥

ततस्ते समस्ता. सुरेंद्राः ससाध्याः सुरेश महेशं पुरेत्याहुरेवम् ।
द्रुतं चाल्पवीर्यप्रभिन्नागभिन्ना वय दैत्यराजस्य शस्त्रैर्निकृत्ताः ॥८
इतीदमखिलं श्रुत्वा दैत्यागममनौपमम् ।
गणेश्वरैश्च भगवानंधकाभिमुख ययौ ॥६
तत्रेंद्रपद्मोद्भव विष्णुमुख्याः सुरेश्वरा विप्रवराश्च सर्वे ।
जयेति वाचा भगवंतमूचुः किरीटबद्धाजलयः समंतात् ॥१०
अथाशेपासुरांस्तस्य कोटिकोटिशतैस्तत: ।
भस्मीकृत्य महादेवो निर्बिभेदाधक तदा ॥११
शूलेन शूलिना प्रोत दग्धकल्मपकंचुकम् ।
दृष्ट्वांधकं ननादेश प्रणम्य स पितामहः ॥१२
तन्नादश्रवणात्देवा देव प्रणम्य तम् ।
ननृतुर्मुनय. सर्वे मुमुदुर्गणपुंगवाः ॥१३
ससृजु पुष्पवर्षाणि देवा. शभोस्तदोपरि ।
त्रैलोक्यमखिलं हर्षान्ननंद च ननाद च ॥१४

उस समय मे वे सम्पूर्ण सुरेन्द्र साध्य वर्ग के सहित देवों के स्वामी महेश्वर के सामने उपस्थित होकर इस प्रकार से कहने लगे—हे देव ! हम लोग अत्यल्प पराक्रम वाले हैं और इस दैत्यराज के शस्त्रों से प्रभिन्न अङ्गों वाले एव निकृत्त शीघ्र ही हो गये हैं ॥८॥ इस प्रकार से उस दैत्य

के आगमन का सम्पूर्ण समाचार श्रवण करके भगवान् शिव गणेश्वरों को साथ में लेकर उस अन्धक दैत्य के सामने प्राप्त हुए थे ॥६॥ वहाँ पर इन्द्र-ब्रह्मा और विष्णु जिनमें प्रमुख थे ऐसे सब सुरेश्वर और विप्रवर जय जयकार करके सभी ओर से किरीट पर्यन्त बद्धाञ्जलि वाले होकर भगवान् शिव से बोले थे ॥१०॥ इसके अनन्तर भगवान् महादेव ने उस अन्धक दैत्य के जो सैकड़ों करोड़ असुर थे उनको भस्म करके अन्धक को निर्भिन्न कर दिया था ॥११॥ भगवान् शूली ने अपने शूल से उसका छेदन किया था जिसके कारण वह दग्ध कल्मष रूपी कज्जुल वाला हो गया था। ऐसा उस अन्धक को देखकर पितामह ब्रह्मा ने शिव को प्रणाम करके नाद किया था ॥१२॥ उसके नाद (ध्वनि) को सुनकर समस्त देवों ने भी महादेव को प्रणाम करके हर्ष की ध्वनि की थी। समस्त मुनिगण नृत्य करने लगे थे और श्रेष्ठ गण परम प्रसन्न हो गये थे ॥१३॥ उस समय में देवगण भगवान् शम्भु के ऊपर पुष्पों की वृष्टि करने लगे थे। पूरा त्रैलोक्य हर्षातिरेक से आनन्द से भरा गया था और हर्ष की ध्वनि करने लगा था ॥१४॥

दग्धोऽग्निना च शूलेन प्रोतः प्रेत इवाधिपः ।
सात्त्विकं भावमास्थाय चिंतयामास चेतसा ॥१५
जन्मांतरेऽपि देवेन दग्धो यस्माच्छिवेन वै ।
आराधितो मया शंभुः पुरा साक्षान्महेश्वरः ॥१६
तस्मादेतन्मया लब्धमन्यथा नोपपद्यते ।
यः स्मरेन्मनसा रुद्रं प्राणांते सकृदेव वा ॥१७
स याति शिवसायुज्यं किं पुनर्बहुशः स्मरन् ।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः सर्वे देवाः सवासवाः ॥१८
शरणं प्राप्य तिष्ठंति तमेव शरणं व्रजेत् ।
एवं संचिंत्य दुष्टात्मा सोंऽधकश्चांधकादनम् ॥१९
सगणं शिवमीशानमस्तुवत्पुण्यगौरवात् ।
प्रार्थितस्तेन भगवान् परमार्तिहरो हरः ॥२०
हिरण्यनेत्रतनयं शूलाग्रस्थं सुरेश्वरः ।

प्रोवाच दानवं प्रेक्ष्य घृणया नीललोहितः ॥२१

शूल के द्वारा प्रोत और शूल की अग्नि से दग्ध अन्धक प्रेत की भाँति सात्विक भाव से समास्थित होकर चित्त से चिन्तन करने लगा था ॥१५॥ मुझे जन्म जन्म मे भी देव शिव ने ही दग्ध किया था। पहिले मैंने साक्षात् महेश्वर शम्भु की आराधना की थी ॥१६॥ इस कारण से मैंने इसे प्राप्त किया है, अन्यथा ऐसा उपपन्न नही होना है। जो प्राणी के अन्त समय मे एकबार भी मन से रुद्र का स्मरण करता है। वह शिव के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है। और यदि बहुत बार शिव का स्मरण करे तो उस पुण्य-फल का तो कहना ही क्या है। ब्रह्मा-भगवान् विष्णु और इन्द्र के सहित सम्पूर्ण देवगण शिव की शरण प्राप्त करके ही स्थित हुआ करते हैं। इसलिये उसी की शरण मे जाना चाहिए। इस प्रकार से चिन्तन करके वह अन्धक दैत्य अपने मर्दन करने वाले ईशान शिव की गणो के सहित पुण्य के गौरव से स्तवन करने लगा था। उस के द्वारा परम आर्त्ति के हरण करने वाले भगवान् हर प्रार्थित किये गये थे ॥१७॥१८॥१९॥२०॥ शूल के अग्र भाग मे स्थित हिरण्याक्ष के पुत्र दानव को देखकर सुरो के ईश्वर भगवान् नील लोहित घृणा (दया) से युक्त होकर बोले ॥२१॥

तुष्टोऽस्मि वत्स भद्रं ते कामं किं करवाणि ते।
वराग्वरय दैत्येद्र वरदोह तवान्धक ॥२२
श्रुत्वा वाक्य तदा शर्वोर्हिरण्यनयनात्मज ।
हर्षगद्गदया वाचा प्रोवाचेद महेश्वरम् ॥२३
भगवन्देवदेवेश भक्तार्तिहर शकर।
त्वयि भक्तिः प्रसीदेश यदि देयो वरश्च मे ॥२४
श्रुत्वा भवोऽपि वचनमन्धकस्य महात्मन।
प्रददौ दुर्लभा श्रद्धा दैत्येद्राय महाद्युति ॥२५
गाणपत्य च दैत्याय प्रददौ चावरोप्यतम्।
प्रणेमुस्तं सुरेंद्र द्या गाणपत्ये प्रतिष्ठितम् ॥२६

हे वत्स! मैं तुझसे अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। तेरा कल्याण हो, अब बोल,

तेरा क्या कार्य करूँ। हे अन्धक ! हे दैत्येन्द्र ! वरदान माँग ले। मैं तुझे वरदान देने वाला उपस्थित हूँ ॥२२॥ उस समय मे हिरण्याक्ष के पुत्र ने भगवान् शम्भु के इस वाक्य का श्रवण कर हर्ष से अत्यन्त गदगद हो जाने वाली वाणी से महेश्वर से यह कहा था ॥२३॥ हे देवो के भी देवेश्वर ! आप तो अपने भक्तो की पीडा का हरण करने वाले हैं। हे शङ्कर ! हे ईश ! यदि आप मुझे कोई वरदान देने की कृपा करते हैं तो मैं यही चाहता हूँ कि मेरी आप मे दृढ भक्ति होवे ॥२४॥ भगवान् भव ने महान् आत्मा वाले अन्धक का यह वचन सुनकर महान् द्युति वाले शङ्कर ने उस दैत्येन्द्र को अपनी अति दुर्लभ श्रद्धा-भक्ति प्रदान करदी थी ॥२५॥ और उस दैत्य को अपरोपित करके गाणपत्य पद को भी प्रदान किया था। जब वह गाणपत्य पद पर प्रतिष्ठित हो गया तो फिर सुरेन्द्र आदि सब देवो ने उसे प्रणाम किया था ॥२६॥

॥ ६५—जालंधर वध ॥

जलंधरं जटामौलिः पुरा जंभारिविक्रमम् ।
कथं जघान भगवान् भगनेत्रहरो हरः ॥१
वक्तुमर्हसि चास्माकं रोमहर्षण सुव्रत ।
जलंधर इति ख्यातो जलमंडलसभवः ॥२
आसीदतकसंकः शस्तपसा लब्धविक्रम. ।
तेन देवाः सगंधर्वा सयक्षोरगराक्षसाः ॥३
निर्जिताः समरे सर्वे ब्रह्मा च भगवानज ।
जित्वैव देवसंघातं ब्रह्माणं वै जलधरः ॥४
जगाम देवदेवेशं विष्णुं विश्वहर गुरुम् ।
तयो ममभवद्युद्ध दिवारात्रमविश्रमम् ॥५
जलंधरेशयोस्तेन निर्जितो मधुसूदनः ।
जलंधरोपि त जित्वा देवदेवं जनार्दनम् ॥६
प्रोवाचेदं दितेः पुत्रान् न्यायधीर्जेतुमीश्वरम् ।
सर्वे जिता मया युद्धे शकरो ह्यजितो रणे ॥७

इस अध्याय मे शिव के अतिरिक्त अवध्य जलधर का रुद्र कृत सुदर्शन से वध का निरूपण किया जाता है । ऋषियो ने कहा—मस्तक पर जटा धारण करने वाले तथा भग के नेत्रो का हरण करने वाले भगवान् हर ने जम्भारि विक्रम वाले जलन्धर का किस प्रकार से वध किया था हे रोम हर्षण ! हे सुन्दर व्रत वाले सूतजी ! यह आप हमको बताने के लिये परम योग्य हैं । सूतजी ने कहा—जलमण्डल से उत्पन्न होने वाला जलन्धर-इस नाम से ख्यात था ॥१॥२॥ तपश्चर्या के द्वारा विक्रम को प्राप्त कर लेने वाला यह अन्तक के समान था । उसने समस्त देवता गन्धर्वो के सहित तथा यक्ष-राक्षस-उरग गण के सहित युद्ध स्थल मे जीत लिये थे । उस जलन्धर ने भगवान् अज ब्रह्मा को भी विजित कर लिया था तथा सम्पूर्ण देवो के समुदाय को पराजित कर दिया था ॥३॥४॥ इसके अनन्तर देवदेवेश विश्वहर गुरु विष्णु के समीप मे यह गया था । उन दोनो का रात दिन निरन्तर महान् युद्ध हुआ था ॥५॥ जलन्धर और ईश के इस युद्ध मे उस जलन्धर ने मधुसूदन को भी निर्जित कर दिया था । जलन्धर ने देवो के देव उस जनार्दन को जीत कर न्याय की बुद्धि वाले उसने ईश्वर को जीतने के लिये दिति के पुत्रो से यह कहा था । मैंने युद्ध भूमि मे सभी को जीत लिया है । अब तो केवल रण मे अजित एक शङ्कर ही रह गये हैं ॥६॥७॥

त जित्वा सर्वमीशानं गणपर्नंदिना क्षणात् ।
अहमेव भवत्वं च ब्रह्मत्व वैष्णवं तथा ॥८
वासवत्व च युष्माक दास्ये दानवपु गवाः ।
जलंधरवचः श्रुत्वा सर्वे ते दानवाधमा. ॥९
जगर्जु रुच्चै पापिष्ठा मृत्युदर्शनतत्पराः ।
दैत्यैरेतैस्तथान्यैश्च रथनागतुरंगमै. ॥१०
सन्नद्धे. सह सन्नह्य शर्वं प्रति ययौ बली ।
भवोपि दृष्ट्वा दैत्येंद्रं मेरुकूटमिव स्थितम् ॥११
अवध्यत्वमपि श्रुत्वा तथान्यैर्भगनेत्रहा ।
ब्रह्मणो वचन रक्षन् रक्षको जगता प्रभुः ॥१२

साव. सनंदी सगणः प्रोवाच प्रहसन्निव ।
किंकृत्यमसुरेशान युद्धेनानेन साप्रतम् ॥१३
मद्‌बाणैभिन्नसर्वांगो मर्तुमभ्युद्यते मुदा ।
जलधरोपि तद्वाक्यं श्रुत्वा श्रोत्रविदारणम् ॥१४

ईशान शर्व को युद्ध मे जीतकर तथा गणाय और नन्दी के साथ एक क्षण मात्र मे अब मैं ही भवत्व का पद तथा ब्रह्मा और विष्णु का स्थान प्राप्त करने वाला हो जाऊँगा ।।८।। हे दानव श्रेष्ठो ! मैं इन्द्र का पद तो आप लोगो को दे दूँगा । इस जलन्धर के वचन का श्रवण करके वे समस्त अधम दानव एव पापिष्ठ मृत्यु के दर्शन करने मे तत्पर होते हुए बहुत ही ऊँचे स्वर से गर्जने लगे थे । वह बलवान् जलन्धर इन दैत्यो तथा अन्य रथ-नाग और तुरङ्गमो से के सहित पूर्णतया सन्नद्ध होकर वह भगवान् शङ्कर की ओर गया था । भगवान् भव ने भी मेरु की शिखर की भाँति स्थित उस दैत्य को देखा था ।।९।।१०।।११।। भग के नेत्रो को हरण करने वाले महेश्वर ने दूसरो के द्वारा उस दैत्य की अवध्यता को सुनकर जगत् के स्वामी प्रभु ने ब्रह्मा के वचन की रक्षा करते हुए अम्बा के-नन्दी के और गणो के सहित भगवान् शम्भु ने हँसते हुए उस दैत्य से कहा था । हे असुरो के स्वामिन् ! अब इस युद्ध से तुझे क्या करना अभीष्ट है ।।१२।।१३।। मेरे बाणो के द्वारा भिन्न समस्त अङ्गों वाला तू क्या आनन्द के साथ मरने के लिये प्रस्तुत हो रहा है ? जालन्धर शिव के इस श्रोत्रो के विदारण करने वाले वचनो को सुना था ।।१४।।

सुरेश्वरमुवाचेद मुरेतरबलेश्वर ।
वाक्येनाल महाबाहो देवदेव वृषध्वज ।।१५
चद्रांशुसन्निभै. शस्त्रैर्हर योद्धुमिहागत. ।
निशम्यास्य वच. शूली पादांगुष्ठेन लीलया ।
महाभसि चकाराशु रथांगं रौद्रमायुधम् ।।१६
कृत्वार्णवाम्भसि सितभगवान्रथाग स्मृत्वा जगत्त्रय मनेनहता सुराश्च। दक्षाध्वरांतकपुरत्रययज्ञहर्ता लोकत्रयान्तककरः प्रहसंस्तदाह ।।१७

पादेन निर्मित दैत्य जलधर महार्णवे ।
बलवान् यदि चोद्धतुं तिष्ठ योद्धु न चान्यथा ॥१८
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधेनादीप्तलोचन ।
प्रदहन्निव नेत्राभ्या प्राहालोक्य जगत्त्रयम् ॥१९
गदामुद्धृत्य हत्वा च नंदिन त्वा च शकर ।
हत्वा लोकान्सुरैं सार्धं डुंडुभान् गरुडो यथा ॥२०
हर्तुं चराचर सर्वं समर्थोह सवासवम् ।
को महेश्वर मद्बाणैश्च्छेद्यो भुवनत्रये ॥२१

सुरेतर अर्थात् दैत्यो के बल का स्वामी सुरो के स्वामी भगवान् शम्भु से यह बोला—हे देवो के देव ! हे महा बाहुओ वाले ! हे वृषध्वज ! ऐसा वाक्य मत बोलो ॥१५॥ हे हर ! आप यहाँ चन्द्र किरणो के समान शस्त्रो के द्वारा युद्ध करने के लिये आये हैं । इस दैत्य के वचन का श्रवण करके भगवान् शूली ने लीला से ही पैर के अँगूठे से शीघ्र ही महाम्भर्यें रौद्र रथाङ्ग आयुध को बना दिया था ॥१६॥ भगवान् ने अर्णाव के जल मे सित रथाङ्ग को करके जगत् त्रय का स्मरण किया और इसने सुरो का हनन किया था । उस समय दक्ष और अन्धक के अन्त करने वाले तथा पुर त्रय के यज्ञ का हरण करने वाले एव तीनो लोको का अन्त कर देने वाले हँसते हुए बोले ॥१७॥ हे दैत्य जलन्धर ! मैंने पाद से महार्णव मे निर्मित कर दिया है । यदि इसका उद्धार करने के लिये तू बलवान् है तो युद्ध करने के वास्ते यह ठहर जा, अन्यथा नही । ॥१८॥ देव के यह वचन श्रवण करके क्रोध से लाल नेत्र वाला जगत् त्रय को नेत्रो से दग्ध होते हुए देखकर बोला ॥१९॥ जलन्धर ने कहा—हे शकर ! गदा को उठाकर तुमको और नन्दी को मारकर और समस्त सुरो के साथ लोको का हनन करता हूँ जिस तरह निर्विष सर्पो का हनन किया करता है ॥२०॥ मैं इस सम्पूर्ण चराचर को इन्द्र के सहित हनन करने म समर्थ हूँ । हे महेश्वर ! इस भुवन त्रय मे कौन ऐसा है जो मेरे बाणों के द्वारा छेदन करने के योग्य नही है ? ॥२१॥

बालभावे च भगवान् तपसैव विनिर्जित ।

ब्रह्मा बली यौवने वै मुनग सुरपु गर्व ।।२२
दग्ध क्षणेन सकल त्रैलोक्य सचराचरम् ।
तपमा किं त्वया रुद्र निर्जितो भगवानपि ।।२३
इन्द्राग्नियमवित्तेशवायुवारीश्वरादय ।
न सेहिरे यथा नागा गध पक्षिपतेरिव ।।२४
न लब्ध्वा दिवि भूमौ च बाहवो मम शकर ।
समस्तान्पर्वतान्प्राप्य घर्षिताश्च गणेश्वर. ।।२५
गिरीन्द्रो मदर श्रीमान्नीलो मेरुः सुशोभन ।
घर्षितो बाहुदडेन कडूनोदार्थमापतत् । २६
गगा निरुद्धा बाहुम्या लीलार्थं हिमवद्गिरौ ।
नारीणा मम भृत्यैश्च वज्रो बद्धो दिवौकसाम् । २७
वडवाया मुख भग्न गृहीत्वा वै करेण तु ।
तत्क्षणादेव सकल चैकार्णवमभूदिदम् ।। २८

बाल भाव मे भगवान को तप क द्वारा ही विनिर्जित कर दिया था । बल वाले ब्रह्मा को समस्त मुनि और देव श्रेष्ठों के सहित यौवन म जीत लिया था । एक ही क्षण म इस समस्त चराचर त्रैलोक्य को दग्ध कर दिया था । हे रुद्र ! तपश्चर्या से भगवान को भी विनिर्जित कर दिया था अब तुम से क्या है ।।२२।।२३।। इन्द्र अग्नि यम कुबेर-वायु और वरुण आदि देवगण पक्षिराज गरुड की गन्ध को नागों की भाँति मेरी गन्ध को भी सहन नहीं करते हैं ।।२४।। दिविलोक और भूमण्डल मे हे शङ्कर ! मेरे बाहुओं के जोड के कोई भी न प्राप्त कर हे गणेश्वर ! मैंने समस्त पर्वतो मे जाकर उन्हे घर्षित किया था ।।२५।। गिरिओं का स्वामी मन्दराचल श्री सम्पन्न लीलागिरि और परम शोभन मेरु पर्वत को मैंने अपनी भुजाओं की खुजलाहट मिटाने के लिये बाहु दण्ड से घर्षित किया था तो गिर पडा था ।।२६।। हिमालय पर्वत म बाहुओं से लीला के ही लिये मैंने गङ्गा नदी को रोक दिया था । मेरी नारियो के भृत्यो के द्वारा देवताओं का वज्र बद्ध कर दिया था ।।२७।। हाथ से ग्रहण करके

वडवा का मुख भानकर दिया था। उसी क्षण मे यह समस्त एकार्णव हो गया था ॥२८॥

ऐरावतादयो नागाः क्षिप्ताः सिंधुजलोपरि ।
सरथो भगवानिंद्रः क्षिप्तश्च शतयोजनम् ॥२६
गरुडोपि मया बद्धो नागपाशेन विष्णुना ।
उर्वश्याद्या मया नीता नार्यः कारागृहांतरम् ॥३०
कथंचिल्लब्धवान् शक्रः शचीमेका प्रणम्य माम् ।
मा न जानासि दैत्येंद्रं जलंधरमुमापते ॥३१
एवमुक्तो महादेवः प्रादहद्रं रथं तदा ।
तस्य नेत्राग्निभागैककलार्धार्धेन चाकुलम् ॥३२
दैत्यानामतुलबलैर्हयैश्च नागैर्दैत्येंद्राखिपुररिपोर्निरीक्षणेन ।
नागाद्वैशसमनुसवृतश्च नागंदवेश वचनमुवाच चाल्पबुद्धिः ॥३३
किं कार्यं मम युधि देवदैत्यसंघैर्हंतुं यत्सकलमिदं क्षणात्समर्थः ।
यत्तस्माद्भयमिह नास्ति योद्धुमीश वाञ्छैषा विपुलतरा न संशयोत्र३४
तस्मात्त्वं मम मदनारिदक्षशत्रो यज्ञारे त्रिपुररिपो ममैव वीरैः ।
भूलेंद्रं हरिं वदनेन देवसंघैर्योद्धुं ते बलमिह चास्ति चेद्धि तिष्ठ॥३५

ऐरावत आदि नाग (गज) समुद्र के जल में फेंक दिये गये थे और रथ के सहित इन्द्रदेव सौ योजन तक दूर फेंक दिया गया था ॥२६॥ मैंने गरुड को भी बांध दिया था और विष्णु की नाग पाश से उसका बन्धन किया था। उर्वशी आदि नारियाँ मैंने ग्रहण कर कारागृह के अन्दर बन्द करदी थी। इन्द्र ने किसी प्रकार से मुझे प्रणाम करके अपनी पत्नी शची को प्राप्त कर लिया था। हे उमा के पतिदेव! क्या आप दैत्यों के स्वामी जलधर मुझ को नहीं जानते हैं ॥३०॥३१॥ सूतजी ने कहा – इस तरह से कहे हुए महादेव ने उस समय में उसके नेत्राग्नि की कला के अर्धार्ध भाग से आकुल उस जलन्धर का रथ जला दिया था। ॥३२॥ उस समय मे त्रिपुर के रिपु महादेव के निरीक्षण से दैत्यों के अतुल बल-हय और गजो के सहित समस्त दैत्येन्द्र क्षणभर मे दग्ध हो गये थे। गजों से अनुगवृत अल्प बुद्धि वाला जलन्धर नाग से वेशश पर

देवेश से यह वचन बोला। हे देव ! मुझे क्या करना चाहिए, मैं दैत्य सघो के द्वारा क्षण भर मे इन सब को मारने के लिये समर्थ हूँ। यहाँ पर मुझे उससे हे ईश ! युद्ध करने मे कुछ भी भय नही है। मेरी सबसे बडी यही इच्छा है-इसमे सशय नही है ॥३३॥३४॥ हे मदन के शत्रु शिव ! हे दक्ष के शत्रु ! हे त्रिपुर के रिपु ! यदि आपका भूतेन्द्रो के द्वारा, नन्दी के द्वारा और देव सघो के द्वारा मेरे ही वीरो के साथ युद्ध करने का बल है तो युद्ध करने को यहाँ रुक जाओ ॥३५॥

इत्युक्त्वाथ महादेवं महादेवारिनंदन ।
न चचाल न सस्मार निहतान्बांधवान् युधि ॥३६
दुर्मदेनाविनीतात्मा दोर्भ्यामास्फोट्य दोर्बलात् ।
सुदर्शनाख्य यच्चक्रं तेन हतुं समुद्यत. ॥३७
दुर्धरेण रथागेन कृच्छ्रेणापि द्विजोत्तमाः ।
स्थापयामास वै स्कंधे द्विधाभूतश्च तेन वै ॥३८
कुलिशेन यथा छिन्नो द्विधा गिरिवरो द्विजा ।
पपात दैत्यो बलवानजनाद्रिरिवापर. ॥३९
तस्य रक्तेन रौद्रेण सपूर्णमभवत्क्षणात् ।
तद्रक्तमखिल रुद्रनियोगान्मासमेव च ॥४०
महारौरवमासाद्य रक्तकुंडमभूद्द्विजो ।
जलधरं हत दृष्ट्वा देवगधर्वपार्षदा. ॥४१
सिहनाद महत्कृत्वा साधु देवेति चाब्रुवन् ।
यः पठेच्छ्रणुयाद्वापि जलधरविमर्दनम् ॥४२
श्रावयेद्वा यथान्याय गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥४३

महादेव से इस प्रकार से कहकर वह महादेव का अरिनन्दन नही हिला और युद्ध मे अपने निहत हुए बान्धवो का भी उसने स्मरण नही किया था। दुर्मद से अविनीत आत्मा वाले उसने अपनी बाहुओ से शब्द करके रुद्र के द्वारा निर्मित जो सुदर्शन नाम वाला चक्र था उसे बडी कठिनाई से बाहुओ से स्थापित किया था और उसने हनन करने को समुद्यत हुआ था किन्तु उससे स्कन्ध मे दो टुकडे हो गया था ॥३६॥३७

॥३८॥ हे द्विजगण ! जिस तरह वज्र के द्वारा छिन्न हुआ गिरि गिरा करता है उसी भाँति वह बलवान् दैत्य दूसरे अञ्जन गिरि की भाँति दो टुकडे होकर गिर गया था ॥३९॥ उसके रक्त से जो कि बहुत ही रौद्र था, सम्पूर्ण भूमण्डल भर गया था । वह सम्पूर्ण रक्त शिव के नियोग से मांस हो गया था ॥४०॥ और वह सब महा रौरव नामक नरक में जाकर वहाँ पर एक रक्त का कुण्ड बन गया था । उस जलन्धर दैत्य को मृत देखकर समस्त देव-गन्धर्व और पार्षद महान् हर्ष सूचक सिंहनाद करके हे देव ! बहुत अच्छा किया है–ऐसा कहने लगे थे । इस जलन्धर के मर्दन की कथा को जो पढता है अथवा श्रवण करता है या यथा विधि इस का श्रवण कराता है वह गाणपत्य पद की प्राप्ति किया करता है ॥४१॥ ॥४२॥४३॥

॥ ९९–शिव के वामांग से शिवानी उत्पत्ति ॥

सभवः सूचितो देव्यास्त्वया सूत महामते ।
सविस्तर वदस्वाद्य सतीत्वे च यथातथम् ॥१
मेनाजत्वं महादेव्या दक्षयज्ञविमर्दनम् ।
विष्णुना च कथं दत्ता देवदेवाय शंभवे ॥२
कल्याणं वा कथं तस्य वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः ॥३
सभवं च महादेव्याः प्राह तेषां महात्मनाम् ।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं दण्डिने तत्सुविस्तरम् ॥४
युष्माभिर्वै कुमाराय तेन व्यासाय धीमते ।
तस्मादहमुपश्रुत्य प्रवदामि सुविस्तरम् ॥५
वचनाद्वो महाभागाः प्रणम्योमां तथा भवम् ।
सा भगाख्या जगद्धात्री लिंगमूर्तेस्त्रिवेदिका ॥६
लिंगस्तु भगवान्द्वाभ्या जगत्सृष्टिर्द्विजोत्तमाः ।
लिंगमूर्तिः शिवो ज्योतिस्तमसश्चोपरि स्थितः ॥७
इस अध्याय में महादेवी का जन्म वामाङ्ग से और दक्ष पुत्री का

होना और पार्वती का होना वर्णित किया जाता है। ऋषियों ने कहा—हे महान् मति वाले सूतजी! आपने देवी के जन्म की सूचना मात्र तो दी थी किन्तु अब उनके सतीत्व होने का पूर्ण चरित ठीक २ हमारे सामने वर्णन विस्तार के सहित कीजिए ॥१॥ महादेवी का मेना से समुत्पन्न होना और दक्ष के यज्ञ का ध्वंस करना निरूपित करिये। उसको देवों के देव शम्भु के लिये विष्णु के द्वारा कैसे प्रदान किया गया था? ॥२॥ उन विष्णु का कन्यादान किस प्रकार से हुआ—यह सब इस समय बताने को योग्य हैं। उन ऋषियों के इस वचन का श्रवण कर पौराणिकों में सर्वश्रेष्ठ सूतजी ने उन महात्मा ऋषियों से महादेवी का जन्म कहा था। सूतजी ने कहा—पहिले समय में ब्रह्माजी ने इस चरित को इन्हीं सनत्कुमार से सुविस्तृत रूप में कहा था। सनत्कुमार ने व्यास जी को कहा था और उन व्यासदेव से मैंने श्रवण किया था। उसे मैं विस्तार के सहित आपको बताता हूँ ॥३॥४॥५॥ सूतजी ने कहा हे महाभाग आर्यो! आपके वचन से उमादेवी और देव शिव को प्रणाम करके मैं वर्णन करता हूँ। वह महादेवी भग संज्ञा वाली और इस जगत् की धात्री हैं तथा लिङ्ग रूप वाले शिव की त्रिगुणा प्रकृति रूप वाली हैं ॥६॥ हे द्विजोत्तमो! लिङ्ग रूप वाले भगवान् शिव [illegible] करते हैं और इन्हीं दोनों से इस जगत् की सृष्टि होती है। [illegible] शिव स्वतः प्रकाश रूप वाले हैं और यह माया [illegible] मान रहा करता है ॥७॥

विभजस्वेति विश्वेशं विश्वात्मानमजो विभुः ।
ससर्जदेवी वामांगात्पत्नी चैवात्मनः समाम् ॥१२
श्रद्धा ह्यस्य शुभा पत्नी ततः पुंसः पुरातनी ।
सैवाज्ञया विभोर्देवी दक्षपुत्री बभूव ह ॥१३
सतीसंज्ञा तदा सा वै रुद्रमेवाश्रिता पतिम् ।
दक्षं विनिंद्य कालेन दत्री मैना ह्यभूत्पुनः ॥१४

लिङ्ग और वेदी इन दोनो का नित्य समायोग होता है अतएव सृष्टि के आदि मे अर्ध नारीश्वर अर्थात् माया शवल ब्रह्मरूप अर्ध स्त्री पुमान् स्वरूप वाले साकार हुए थे । सबसे प्रथम चतुर्मुख ब्रह्मा को पुत्र रूप मे समुत्पन्न किया था ॥८॥ विश्वाधिक अर्ध नारीश्वर ज्ञानमय विभु हर ने उस ब्रह्मा को ज्ञान का प्रदान किया था ॥९॥ देव ने उत्पन्न हुए हिरण्य गर्भ को देखा था । उस हिरण्य गर्भ ने भी रुद्र महादेव शङ्कर का दर्शन किया था ॥१०॥ उन अर्ध नारीश्वर देव प्रभु को सस्थित देखकर कमल से उद्भव प्राप्त करने वाले ब्रह्मा ने उस वरद प्रभु का परमाभीष्ट वाणि-यो के द्वारा स्तवन किया था ॥११॥ विश्व के ईश तथा विश्व की आत्मा का विभाग करिये—तब अजन्मा विभु ने अपने वामाङ्ग से अपने ही समान पत्नी देवी का सृजन किया था ॥१२॥ इस पुरुष की परम पुरातन पत्नी शुभो श्रद्धा है । वह ही विभु की आज्ञा से अब दक्ष प्रजापति की पुत्री हुई थी ॥१३॥ उस समय इसकी सती-यह सज्ञा थी और उस सती नाम धारिणी देवी ने रुद्रदेव को ही अपना पति स्वीकार कर उसके आश्रित हुई थी । कुछ काल के पश्चात् देवी ने दक्ष को विनिन्दित करके मैना के यहाँ उद्भव ग्रहण किया था ॥१४॥

नारदस्यैव दक्षोपि शापादेवं विनिंद्य च ।
अवज्ञ दुर्मदो दक्षो देवदेवमुमापतिम् ॥१५
अनादृत्य कृति ज्ञात्वा सती दक्षेण तत्क्षणात् ।
भस्मीकृत्वात्मनो देह योगमार्गेण सा पुनः ॥१६
बभूव पार्वती देवी तपसा च गिरेः प्रभोः ।
ज्ञात्वैतद्भगवान्भर्गो ददाह रुपितः प्रभुः ॥१७

दक्षस्य विपुलं यज्ञं च्यावनेर्वचनादपि ।
च्यवनस्य सुतो धीमान् दधीच इति विश्रुतः ॥१८
विजित्य विष्णुं समरे प्रसादात् त्र्यंबकस्य च ।
विष्णुना लोकपालांश्च शशाप च मुनीश्वरः ॥१९
रुद्रस्य क्रोधजेनैव वह्निना हविषा सुराः ।
विनाशो वै क्षणादेव मायया शंकरस्य वै ॥२०

दक्ष प्रजापति भी नारद देवर्षि के शाप से विनिन्दित करके अयज्ञा से दुर्मद हो गया था और देवों के देव उमा के पति का अनादर किया था। १५। शिव के अनादर करने के इस दक्ष की कृति का ज्ञान प्राप्त करके सती ने उसी समय मे योग मार्ग के द्वारा देवों ने अपना शरीर भस्म कर दिया था ॥१६॥ यह देवी फिर गिरिओं के राजा हिमवान् के तप से उसके यहाँ पार्वती हुई थी। इस सती के देह-त्याग का समाचार जान कर क्रोध उत्पन्न होने वाले भर्ग ने दक्ष के विस्तृत यज्ञ का ध्वंस करके दग्ध कर दिया था ॥१७॥ इस दक्ष के यज्ञ का ध्वस को च्यावनि के वचन से भी किया था। च्यवन ऋषि के पुत्र का नाम दधीच-यह प्रसिद्ध था ॥१८॥ भगवान् त्र्यम्बक के प्रसाद से समर मे विष्णु को जीत कर उस मुनीश्वर ने विष्णु के साथ लोक पालो को भी शाप दे दिया था ॥१९॥ रुद्र के क्रोध से समुत्पन्न अग्नि की हवि से शङ्कर की माया से क्षण मात्र मे ही विनाश हो गया था ॥२०॥

॥ ६७—दक्ष-यज्ञ विध्वंस ॥

विजित्य विष्णुना सार्धं भगवान्परमेश्वरः ।
सर्वान्दधीचवचनात्कथं भेजे महेश्वरः ॥१
दक्षयज्ञे सुविपुले देवान् विष्णुपुरोगमान् ।
रुद्रात् भगवान् रुद्रः सर्वान्मुनिगणानपि ॥२
भद्रो नाम गणस्तेन प्रेषितः परमेष्ठिना ।
विप्रयोगेन देव्या वै दुःसहेनैव सुव्रताः ॥३
सोऽसृजद्वीरभद्रश्च गणेशः रोमजान्शुभान् ।

गणेश्वरैः समारुह्य रथं भद्रः प्रतापवान् ॥४
गंतुं चक्रे मतिं यस्य सारथिर्भगवानजः ।
गणेश्वराश्च ते सर्वे विविधायुधपाणयः ॥५
विमानैर्विश्वतो भद्रं स्तमन्वयुरथो सुराः ।
हिमवच्छिखरे रम्ये हेम शृंगे सुशोभने ॥६
यज्ञवाटस्तथा तस्य गगाद्वारसमीपतः ।
तद्देशे चैव विख्य तं शुभ कनखलं द्विजाः । ७

इस अध्याय मे दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विनाश और महादेव से सन्धान का परम अद्भुत निरूपण किया जाता है। ऋषियो ने कहा—भगवान् परमेश्वर महेश्वर ने विष्णु के साथ विजय प्राप्त करके फिर दधीच के वचन से सब का कैसे सेवन किया अर्थात् यज्ञ का सेवन किया था? सूतजी ने कहा—सुमहान् दक्ष के यज्ञ मे विष्णु जिसमे प्रमुख थे ऐसे समस्त देवो को भगवान् रुद्र ने दहन कर दिया था और सम्पूर्ण मुनिगणो को भी दग्ध कर दिया था ॥१॥२॥ हे सुव्रतो ! देवी के दुःसह वियोग से परमेष्ठी ने भद्र नाम वाला गण भेजा था ॥३॥ उस वीरभद्र ने रोमो से समुत्पन्न परम शुभ गणेशो का सृजन वहाँ कर दिया था। उन गणेश्वरो के साथ परम प्रताप वाले उस वीरभद्र ने एक रथ पर समारोहण किया था ॥४॥ और फिर वहाँ जाने का विचार किया था जिसके रथ के सारथि भगवान् अज थे। वे समस्त गणेश्वर अनेक प्रकार के आयुध अपने हाथो मे ग्रहण किये हुए थे। उस वीरभद्र के साथ में पीछे २ देवों के शत्रु होने के कारण वाण आदि असुर भी गये थे। वे असुर भी बडे अच्छे विमानों के द्वारा वहाँ गये थे। सुरगण हिमवान् पर्वत के परम रमणीक सुवर्ण के शृङ्ग पर, जो कि अत्यन्त शोभा से समन्वित था, यज्ञ वाट था उसमे थे। उसके समीप मे गङ्गा द्वार के निकट ही वह देश है जो कि शुभ कनखल इस नाम से विख्यात है ॥५॥ ॥६॥७॥

दग्धुं वै प्रेषितश्चासौ भगवान् परमेष्ठिना ।
तदोत्पातो बभूवाथ लोकाना भयशंसन. ॥८

पर्वताश्च व्यशीर्यंत प्रचकंपे वसुंधरा ।
मरुतश्चाप्यघूर्णंत चुक्षुभे मकरालयः ॥६
अग्नयो नैव दीप्यंति न च दीप्यति भास्कर. ।
ग्रहाश्च न प्रकाश्यंते न देवा न च दानवाः ॥१०
ततः क्षणात् प्रविश्यैव यज्ञवाट महात्मनः ।
रोमजैः सहितो भद्रः कालाग्निरिव चापरः ॥११
उवाच भद्रो भगवान् दक्षं चामिततेजसम् ।
संपर्कादिव दक्षाद्यमुनीन्देवान् पिनाकिना ॥१२
दग्धुं संप्रेषितश्चाहं भवतं समुनीश्वरै ।
इत्युक्त्वा यज्ञशाला ता ददाह गणपुंगवः ॥१३
गणेश्वराश्च संक्रुद्धा यूपानुत्पाटच चिक्षिपुः ।
प्रस्तोत्रा सह होत्रा च दग्धं चैव गणेश्वरैः ॥१४

यह वीरभद्र को तो भगवान् परमेष्ठी ने दग्ध करने को भेजा ही था । उस समय मे लोकों को भय देने वाला वडा भारी उत्पात हो गया था ॥८॥ पर्वत विशीर्ण हो गये थे । भूमि कांप उठी थी । वायु भी घूर्णित हो गया था और मकरालय क्षुब्ध हो गया था । उस समय अग्नि दीप्ति रहित हो गई तथा भास्कर ने प्रकाश देना त्याग दिया था । ग्रह-गण प्रकाशित नही हो रहे थे और वहाँ देव एव दानव सभी तेजहीन-से हो गये थे ॥६॥१०॥ उसी क्षण मे वीरभद्र ने अपने रोमो से उत्पन्न गणेश्वरो के सहित दूसरे कालाग्नि के समान महात्मा के उस यज्ञ वाट मे प्रवेश किया था ॥११॥ वहाँ पर प्रवेश करके वीरभद्र ने अमित तेज वाले दक्ष से कहा – भगवान् पिता को ने मुझे दक्ष जिनमे प्रधान है उन मुनियो को और देवो को स्पर्श मात्र से मुनीश्वरो के साथ आपको दग्ध कर देने के लिये भेजा है । इतना कह कहकर उस श्रेष्ठगण ने उस यज्ञ-शाला दग्ध कर दिया था । ॥१२॥१३॥ गणेश्वरो ने अत्यन्त कुपित होकर यज्ञशाला के यूपो को उखाड कर फैंक दिया था । गणेश्वरो ने होता के साथ प्रस्तोता सब को दग्ध कर दिया था ॥१४॥

गृहीत्वा गणपाः सर्वान् गगाम्भोतसि चिक्षिपुः ।

वीरभद्रो महातेजाः शक्रस्योद्यच्छतः करम् ॥१५
अष्टम्भयददीनात्मा तथान्येषां दिवौकसाम् ।
भगस्य नेत्रे चोत्पाट्य करजाग्रेण लीलया ॥१६
निहत्य मुष्टिना दंतान् पूष्णश्चैव न्यपातयत् ।
तथा चन्द्रमसं देव पादाङ्गुष्ठेन लीलया ॥१७
घर्षयामास भगवान् वीरभद्रः प्रतापवान् ।
चिच्छेद च शिरस्तस्य शक्रस्य भगवान्प्रभो: ॥१८
वह्नेर्हस्तद्वयं छित्वा जिह्वामुत्पाट्य लीलया ।
जघान मूर्ध्नि पादेन वीरभद्रो महाबल ॥१९
यमस्य दंड भगवान् प्रचिच्छेद स्वयं प्रभु ।
जघान देवमीशान त्रिशूलेन महाबलम् ॥२०
त्रयस्त्रिंशत्सुरानेवं विनिहत्याप्रयत्नत. ।
त्रयश्च त्रिंशत तेषां त्रिशतस्त्र च लीलया ॥ १

उन गणेश्वरो ने यज्ञशाला की समस्त वस्तुएँ लेकर गङ्गा के प्रवाह मे डाल दी थी । महान् तेज वाले वीरभद्र ने वज्र से प्रहार करते हुए इन्द्र के हाथ को स्तम्भित कर दिया था अर्थात् जहाँ का तहाँ रोक दिया था । उस अदीन आत्मा वाले भद्र गण ने इसी भाँति अन्य देवो को भी स्तब्धीभूत कर दिया था । लीला पूर्वक हाथ के नाखूनो के अग्रभाग से भग के नेत्रो को निकाल कर विनष्ट कर दिया था । पूषा के दाँतो पर मुष्टि का प्रहार करके उन्हे तोड दिया था । महान् बलवान् वीरभद्र भगवान् ने चन्द्रदेव को लीला के साथ पैर के अँगूठे से घसीट लिया था । इन्द्र के मस्तक को छिन्न कर दिया था ॥१५॥१६॥१७॥१८॥ अग्निदेव के दोनों हाथो को काटकर तथा लीला पूर्वक जीभ को उखाड दिया था । और पैर से उसके मस्तक पर प्रहार किया था ॥१९॥ यमराज के दण्ड को छिन्न कर दिया था । महाबली ईशान देव का त्रिशूल से हनन किया था ॥२०॥ तीन सहस्र तीन सौ तीन देवो के भेद हैं । इन सब को बिना किसी प्रयास एव प्रयत्न के किये लीला ही मे मार गिराया था ॥२१॥

अथ चैव सुरेंद्राणां जघान च मुनीश्वरान्।
अन्यांश्च देवान्देवोसौ सर्वान्युद्धाय संस्थितान् ॥२२
जघान भगवान्रुद्रः खड्गमुद्घादिसायकैः।
अथ विष्णुर्महातेजाश्चक्रमुद्यम्य मूच्छितः ॥२३
युयोध भगवांस्तेन रुद्रेण सह माधवः।
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ॥२४
विष्णोर्योगबलात्तस्य दिव्यदेहाः सुदारुणाः ॥२५
शंखचक्रगदाहस्ता असंख्याताश्च जज्ञिरे।
तान्सर्वानपि देवोसौ नारायणसमप्रभान् ॥२६
निहत्य गदया विष्णुं ताडयामास मूर्धनि।
ततश्चोरसि त देव लोलयैव रणाजिरे ॥२७
पपात च तदा भूमौ विसंज्ञः पुरुषोत्तमः।
पुनरुत्थाय तं हंतुं चक्रमुद्यम्य स प्रभुः ॥२८

इस देव वीरभद्र ने तीन सुरेन्द्रों को मुनीश्वरों को, तथा अन्य समस्त देवों को जो भी वहाँ युद्ध के लिये संस्थित थे मार गिराया था अर्थात् हनन कर दिया था ॥२२॥ इसके अनन्तर महान् तेजस्वी विष्णु अपने चक्र से प्रहार करते हुए मूच्छित हो गये थे ॥२३॥ भगवान् माधव ने उस रुद्र के साथ युद्ध किया था। उन दोनों का बड़ा भारी घोर एवं रोमहर्षण महान् युद्ध हुआ था। भगवान् रुद्र ने खड्ग-मुष्टि तथा सायक आदि से हनन किया था ॥२४॥ विष्णु के योग बल से सुदारुण और दिव्य देह वाले शङ्ख, चक्र और गदा से लिये हुए असंख्यों उत्पन्न कर दिये थे। उन सब नारायण के तुल्य प्रभा वालों को इस देव ने गदा से मारकर फिर विष्णु के मस्तक में प्रहार किया था और फिर विष्णु के वक्ष स्थल में उस रणभूमि में ताड़ित किया था ॥२५॥२६॥ ॥२७॥ उस समय भगवान् पुरुषोत्तम बेहोश होकर भूमि में गिर गये थे और पुनः उठकर प्रभु ने उसको मारने के लिये चक्र उठाया था ॥२८॥

क्रोधरक्तेक्षणः श्रीमानतिष्ठत्पुरुषर्षभः।
तस्य चक्रं च यद्रौद्र कालादित्यसमप्रभम् ॥२६

व्यप्टंभयददीनात्मा कम्स्थं न चचाल सः ।
अतिष्ठत्स्तंभितस्तेन शृंगवानिव निश्चलः ॥३०
त्रिभिश्चधर्षितं शाङ्गं त्रिधाभूतं प्रभोस्तदा ।
शार्ङ्गकोटिप्रसंगाद्वै चिच्छेद च शिरः प्रभोः ॥३१
छिन्नं च निपपाताशु शिरस्तस्य रसातले ।
वायुना प्रे रित चैव प्राणजेन पिनाकिना ॥३२
प्रविवेश त दा चैव नदीयाह्वनीयकम् ।
तत्प्रविध्वस्त कलशं भग्नयूपं सतोरणम् ॥३३
प्रदीपितमहाशालं दृष्ट्वा यज्ञोपि दुद्रुवे ।
ते तदा मृगरूपेण धावतं गगनं प्रति ॥३४
वीरभद्रः समाधाय विशिरस्कमथाकरोत् ।
ततः प्रजापति धर्मं कश्यपं च जगद्गुरुम् ॥३५

विष्णु क्रोध से रक्त नेत्र वाले होकर वहाँ पर पुरुषों मे श्रेष्ठ श्रीमान् खडे हुए थे। उनका जो रौद्र चक्र था जो कि कालाग्नि के समान आदित्य की प्रभा से युक्त था। उसको विष्णु के हाथ मे स्थित ज्यों का त्यों उस अदीनात्मा ने स्तम्भित कर दिया था कि वह फिर नही चला था। वह पर्वत की भाँति निश्चल एवं स्थिर उसके द्वारा किया जाने पर स्तम्भीभूत होकर रुक गया था ॥२६॥३०। तीन के द्वारा धर्षित प्रभु विष्णु का शार्ङ्ग नाम वाला धनुष उस समय त्रिधाभूत हो गया था। शार्ङ्ग के कोटि प्रसङ्ग से प्रभु का शिर छिन्न कर दिया था ॥३१॥ उसका कटा हुआ वह शिर शीघ्र ही रसातल मे गिर कर चला गया था। फिर पिना की वीरभद्र ने अपनी निःश्वास की वायु के द्वारा उसे प्रेरित कर दिया था ॥३२॥ उस समय में ब्रह्म ने फिर उसका जो आह्वनीयक था वहाँ प्रवेश किया था जो कि विध्वस्त कलश वाला था और जिसके यूप का तोरण के सहित भग कर दिया गया था। उस प्रदीपित महाशाक्षा को देखकर यज्ञ भी काँपकर भाग गये थे। वह उस मृग के रूप से आकाश की ओर पलायन कर रहे थे कि वीरभद्र ने पकड़ कर शिर से हीन कर दिया था। इसके पश्चात् उस वीरभद्र ने प्रजापति धर्म-

कश्यप और जगद्गुरु के मस्तक मे प्रहार किया था ।।३३।।३४।।३५।।

अरिष्टनेमिनं वीरो बहुपुत्र मुनीश्वरम् ।
मुनिमंगिरसं चैव कृष्णाश्वं च महाबलः ।।३६
जघान मूर्ध्नि पादेन दक्ष चैव यशस्विनम् ।
चिच्छेद च शिरस्तस्य ददाहाग्नौ द्विजोत्तमाः ।३७
सरस्वत्याश्च नासाग्रं देवमातुस्तथैव च ।
निकृत्य करजाग्रेण वीरभद्रः प्रतापवान् ।।३८
तस्थौ श्रिया वृतो मध्ये प्रेतस्थाने यथा भवः ।
एतस्मिन्नेव काले तु भगवान्पद्मसम्भवः ।।३९
भद्रमाह मह तेजाः प्रार्थयन्प्रणतः प्रभुः ।
अलं क्रोधेन वै भद्र नष्टाश्चैव दिवौकसः ।।४०
प्रसीद क्षम्यतां सर्वं रोमजैः सह सुव्रत ।
सोपि भद्रः प्रभावेण ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।।४१
शम जगाम शनकैः शांतस्तस्थौ तदाज्ञया ।
देवोपि तत्र भगवानंतरिक्षे वृषध्वजः ।।४२

अरिष्ट नेमि-बहुपुत्र मुनीश्वर-अङ्गिरा मुनि और कृष्णाश्व के मस्तको मे महान् बलवान् वीरभद्र ने हनन किया था और परम यशस्वी दक्ष का हनन करते हुए उसका शिर काट डाला था। हे द्विजोत्तमो ! उस शिर को अग्नि मे दग्ध कर दिया था ।३६।।३७।। प्रतापी वीरभद्र ने करज के अग्रभाग मे देवमाता सरस्वती का नासिका का अग्र भाग काट लिया था। श्री से वृत वह प्रेत स्थान के मध्य मे भव की भाँति स्थित था। इसी बीच मे भगवान् पद्म सम्भव ब्रह्माजी बोले। और महान् तेजस्वी प्रभु ने भद्र से प्रणत होकर प्रार्थना की थी। हे भद्र ! अब अधिक क्रोध मत करो, देवगण सब नष्ट हो गये हैं ।।३८।।३९।। ।।४०।। ब्रह्माजी ने वीरभद्र से कहा—हे सुव्रत ! अब आप प्रसन्नता करिए और क्षमा कीजिए। परमेष्ठी ब्रह्म के प्रभाव से रोमजो गणो के साथ वह वीरभद्र भी उनकी आज्ञा से धीरे से शम को प्राप्त हो गया था और नितान्त शान्त होकर स्थित हो गया था। तथा वृषध्वज महादेव

भी अन्तरिक्ष मे उस समय सस्थित हो रहे थे ॥४१॥४२॥

सगण. सर्वद शर्व सर्वलोकमहेश्वर ।
प्रार्थितश्चैव देवेन ब्रह्मणा भगवान् भव ॥४३
हताना च तदा तेषा प्रददौ पूर्ववत्तनुम् ।
इन्द्रस्य च शिरस्तस्य विष्णोश्चैव महात्मन. ॥४४
दक्षस्य च मुनीन्द्रस्य तथान्येषा महेश्वर ।
वागीश्याश्चैव नासाग्र देवमातुस्तथैव च ॥४५
नष्टाना जीवित चैव वराणि विविधानि च ।
दक्षस्य ध्वस्त वक्रस्य शिरसा भगवान्प्रभु ॥४६
कल्पयामास वै वक्र लीलया च महान् भव ।
दक्षोपि लब्धसज्ञश्च समुत्थाय कृताजलि ॥४७
तुष्टाव देवदेवेश शकर वृषभध्वजम् ।
स्तुतस्तेन महातेजा प्रदाय विविधान्वरान् ॥४८
गाणपत्य ददौ तस्मै दक्षायाक्लिष्टकर्मणे ।
देवाश्च सर्वे देवेश तष्टुवु परमेश्वरम् । ४९
नारायणश्च भगवान् तुष्टाव च कृताजलि ।
ब्रह्मा च मुनय सर्वे पृथक्पृथगजोद्भवम् ॥५०
तुष्टुवुर्देवदेवेश नीलकठ वृषध्वजम् ।
तान्देवाननुगृह्यैव भवोप्यन्तरधीयत ॥५१

सभी कुछ प्रदान करने वाले समस्त लोकों के महान् ईश्वर भगवान् शम्भु की भी उनके गणों के सहित ब्रह्माजी ने प्रार्थना की थी ॥४३॥ उस समय मे जो भी देवगण का हनन किया गया था उन सब का शरीर पुन महादेव ने दे दिया था अर्थात् उन्हें जीवित कर दिया था। इन्द्र का और विष्णु का भी शिर जो छिन्न कर दिया था वापिस प्रदान कर दिया था। महेश्वर भगवान् ने मुनीन्द्र दक्ष का तथा अन्य लोगों का कटा हुआ मस्तक दे दिया था और वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी की नासिका ज्यों की त्यों लगादी थी ॥४४।४५॥ जो नष्ट हो गये थे उनका जीवन प्रदान कर अनेक वर भी प्रदान किये थे। ध्वस्त मुख

वाले दक्ष का शिर भगवान् प्रभु ने लीला ही से पुनः कल्पित कर दिया था। फिर वह प्रजापति दक्ष सज्ञा (होश) प्राप्त करके हाथ जोड कर खड़ा हो गया था ॥४६॥४७॥ दक्ष ने वृषभध्वज भगवान् शङ्कर का स्तवन किया था। इस प्रकार से उसके द्वारा स्तुति किये जाने पर मह-तेजस्वी शम्भु ने उसे अनेक वरदान प्रदान किये थे ॥४८॥ उस आक्लिष्ट कर्म वाले दक्ष को शम्भु ने गाणपत्य पद प्रदान किया था। उस समय समस्त देवों ने परमेश्वर शम्भु का स्तवन किया था ॥४९॥ भगवान् नारायण ने हाथ जोडकर महेश्वर का स्तवन किया था। ब्रह्मा और समस्त मुनिगण ने पृथक् २ भगवान् देवदेवेश नीलकण्ठ वृषभ ध्वज का स्तवन किया था। उन सब देवताओं पर अनुग्रह करके भगवान् भव भी फिर अन्तर्धान हो गये थे ॥५०॥५१॥

॥ ६८—मदन-दाह ॥

कथं हिमवतः पुत्री बभूवांबा सती शुभा ।
कथ वा देवदेवेशमवाप पतिमीश्वरम् ॥१
सा मेनानतुमाश्रित्य स्वेच्छयैव वरागना ।
तदा हैमवती जज्ञे तपसा च द्विजोत्तमाः ॥२
जातकर्मादिकाः सर्वाश्च कार च गिरीश्वर ।
द्वादशे च तदा वर्षे पूर्णे हैमवती शुभा ॥३
तपस्तेपे तया सार्धं ानुजा च शुभानना ।
अन्या च देवी ह्यनुजा सर्वलोक नमस्कृता ॥४
ऋषयश्च तदा सर्वे सर्वलोकमहेश्वरीम् ।
तुष्टुवुस्तपसा देवी समावृत्य समंततः ॥५
ज्येष्ठा ह्यपर्णा ह्यनुजा चैकपर्णा शुभानना ।
तृतीया च वरारोहा तथा चैवैकपाटला ॥६
तपसा च महादेव्याः पार्वत्याः परमेश्वरः ।
वशीकृतो महादेवः सर्वभूत पतिर्भवः ॥७
इस अध्याय में पार्वती का तप एवं जन्म और कामदेव

का शिव के द्वारा दाह का वर्णन किया जाता है। ऋषियों ने कहा—सती अम्बा हिमवान् की पुत्री के स्वरूप में कैसे हुई थी और उसने देवेश्वर शम्भु को अपना पति किस प्रकार से प्राप्त किया था ?॥१॥ सूतजी ने कहा हे द्विजोत्तमो ! उस सती देवी ने अपनी ही इच्छा से तप के द्वारा और हिमालय की आराधना से मेना के तनुका आश्रय ग्रहण करके हैमवती प्रादुर्भूत हुई थी ॥२॥ गिरीश्वर हिमवान् ने उस हैमवती देवी के समस्त जात कर्म आदि सस्कार सविधि किये थे। जब वह बारह वर्ष की पूरी अवस्था प्राप्त कर चुकी तो उसने तपस्या की थी। उसके साथ शुभ आनन वाली उसकी अनुजा भी थी। और अन्य भी एक उसकी छोटी बहिन थी जो समस्त लोकों के द्वारा वन्द्यमान थी ॥३॥४॥ उस समय में उस पार्वती के चारों ओर एकत्रित होकर सर्वलोक महेश्वरी का सब ऋषिगणों ने स्तवन किया था ॥५॥ पार्वती की तीन भगिनियाँ थी। उनके नाम बताये जाते हैं—सबसे बड़ी अपर्णा थी और छोटी सुन्दर मुख वाली एकपर्णा थी तथा तीसरी सुन्दर आरोह वाली एक पाटला थी ॥६॥ उस समय में पार्वती के तप से समस्त भूतों के स्वामी भव महादेव वशीकृत हो गये थे ॥७॥

एतस्मिन्नेव काले तु तारको नाम दानवः ।
तारात्मजो महातेजा बभूव दितिनन्दनः ॥८
तस्य पुत्रास्त्रयश्चापि तारकाक्षो महासुरः ।
विद्युन्माली च भगवान् कमलाक्षश्च वीर्यवान् ॥९
पितामहस्तथा चैषां तारो नाम महाबलः ।
तपसा लब्धवीर्यश्च प्रसादाद्ब्रह्मणः प्रभो ॥१०
सोपि तारो महातेजास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
विजित्य समरे पूर्वं विष्णुं च जितवानसौ ॥११
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु दिवारात्रमविश्रमम् ॥१२
सरथं विष्णुमादाय चिक्षेप शतयोजनम् ।
तारेण विजितः सद्ये दुद्राव गरुडध्वजः ॥१३

तारो वराञ्छतगुणं लब्ध्वा शतगुणं बलम् ।
पितामहाज्जगत्सर्वमवाप दितिनंदनः ॥१४

इसी समय मे तारक नाम वाला दानव हुआ था । दिति का पुत्र तारात्मज महान् तेज वाला था ॥८॥ उसके तीन पुत्र थे । तारकाक्ष महान् असुर था-दूसरे का नाम विद्युन्माली था और तीसरा महान् पराक्रमी कमलाक्ष हुआ था ॥६॥ इनका पितामह तार नाम वाला महान् बलवान् था । उसने प्रभु ब्रह्मा के प्रसाद से तपस्या के द्वारा अतुल बल-वीर्य की प्राप्ति की थी । ॥१०॥ वह तार महान् तेजस्वी था और इस समस्त चराचर को जीत कर फिर युद्ध मे विष्णु को भी पराजित कर दिया था । ॥११॥ विष्णु और तार इन दोनो का अतिघोर तथा बहुत ही भयानक रोमहर्षण महान् युद्ध-हुआ था । यह युद्ध लगातार रात दिन एक सहस्र दिव्य वर्षों तक हुआ था ॥१२॥ इसने रथ के सहित विष्णु को पकड कर सौ योजन दूरी पर फैंक दिया था । उस युद्ध मे गरुड-ध्वज विष्णु तार से विजित होकर भाग गये थे ॥१३॥ तार दानव ने पितामह से शतगुण वरो को प्राप्त करके तथा शतगुण बल का लाभ करके उस दिति नन्दन ने समस्त जगत् को प्राप्त कर लिया था ॥१४॥

देवेन्द्रप्रमुखाञ्जित्वा देवान्देवेश्वरेश्वरः ।
वारयामास तैर्देवान्सर्वलोकेषु मायया ॥१५
देवताश्च महेन्द्रेण तारकद्रूयपीडिना ।
न शांति लेभिरेऽसुराः शरणं वा भयार्दिता ॥१६
तदामरपतिः श्रीमान् सन्निपत्यामरप्रभु ।
उवाचांगिरसं देवो देवानामपि सन्निधौ ॥१७
भगवस्तारको नाम तारजो दानवोत्तमः ।
तेन सन्निहता युद्धे वत्सा गोपतिना यथा ॥१८
भयात्तस्मान्महाभाग बृहद्बुद्धे बृहस्पते ।
अनिकेता भ्रमत्येते शकुन्ता इव पञ्जरे ॥१९
यस्माद्यान्यमोघानि आयुधान्यंगिरोवर ।
तानि मोघानि जायते प्रभावादमरद्विषः ॥२०

BHARATIYA VIDYA BHAVAN BOMBAY-7 LIBRARY
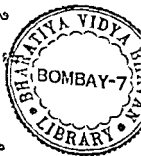
दशवर्षसहस्राणि द्विगुणानि बृहस्पते ।
विष्णुना योधितो युद्धे तेनापि न च सूदितः ॥२१

देवेश्वरेश्वर ने देवेन्द्र प्रमुख देवों को जीत कर माया से देवों को समस्त लोकों में धारण कर दिया था ॥१५॥ इन्द्र के सहित देवताओं ने तारक के भय से उत्पीडित होते हुए कहीं भी शान्ति प्राप्त नहीं की थी और उन भय से दुखियों को कोई भी रक्षा करने वाला नहीं मिला था ॥१६॥ उस समय देवों का स्वामी इन्द्रदेव जो कि अमरों का प्रभु और श्री सम्पन्न था आङ्गिरस मुनि के चरणों में पड़कर देवों की सन्निधि में ही बोला ॥१७॥ हे भगवन् ! तार में उत्पन्न होने वाला दानव शिरोमणि तारक नामधारी दैत्य है और उसने गोपति के द्वारा वत्सों की भाँति हम लोगों को युद्ध में भली-भाँति निहत किया है ॥१८॥ हे महाभाग बृहस्पतिजी ! इस विशाल युद्ध में उसके भय से ये सब देवगण बिना आश्रय वाले पञ्जर में पक्षियों की भाँति भ्रमण किया करते हैं ॥१९॥ हे अङ्गिरोवर ! हमारे जो भी अमोघ आयुध थे वे सब देव शत्रु के प्रभाव से मोघ विफल) हो गये थे ॥२०॥ हे बृहस्पते ! दश हजार से भी दुगुने वर्षों तक विष्णु ने उसके साथ युद्ध किया था किन्तु वह उनके द्वारा भी नहीं मारा गया है ॥२१॥

यस्तेनानिर्जितो युद्धे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
कथमस्मद्विधस्तस्य स्थास्यते समरेऽग्रतः ॥२२
एवमुक्तस्तु शक्रेण जीवः सार्धं सुराधिपैः ।
सहस्राक्षेण च विभुं सम्प्राप्याह कुशध्वजम् ॥२३
सोपि तस्य मुखाच्छ्रुत्वा प्रणायात्प्रणतार्तिहा ।
देवैरशेषैः सेन्द्रैस्तु जीवमाह पितामहः ॥२४
जाने वोर्ति सुरेन्द्राणां तथापि शृणु साम्प्रतम् ।
विनिन्द्य दक्षं या देवी सती रुद्रांगसंभवा ॥२५
उमा हैमवती जज्ञे सर्वलोकनमस्कृता ।
तस्याश्चैवेह रूपेण यूयं देवाः सुरोत्तमाः ॥२६
विभोर्यतध्वमाक्रष्टुं रुद्रस्यास्य मनो महत् ।

तयोर्योगेन सभूतः स्कंदः शक्तिधरः प्रभुः ।।२७
षडास्यो द्वादशभुजः सेनानीः पावकिः प्रभुः ।
स्वाहेयः कार्त्तिकेयश्च गांगेयः शरधामजः ।।२८
देवः शाखो विशाखश्च नैगमेशश्च वीर्यवान् ।
सेनापतिः कुमाराख्यः सर्वलोकनमस्कृतः ।।२९

जो महाबली दानव प्रभविष्णु विष्णु के द्वारा भी युद्ध मे नही निर्जित-हुआ है फिर हमारे जैसा समर मे उसके सामने किस तरह स्थित रहेगा ।।२२।। इन्द्र के द्वारा ऐसे कहे जाने पर वृहस्पति इन्द्र और समस्त देवो को साथ मे लेकर विभु कुश ध्वज के पास पहुँच कर यह बोले ।।२३।। वह भी प्रणय से प्रणतो की पीडा के हरण करने वाले पितामह उस वृहस्पति के मुख से उनकी पीडा का हाल सुनकर सम्पूर्ण देवगण और इन्द्र के सहित वृहस्पति से बोले ।।२४।। मैं सुरेन्द्र आप लोगो की पीडा को जानता हूँ तो भी अब सुनिये। दक्ष प्रजापति को विनिन्दित करके जो रुद्र के अङ्ग से सम्भूत हुई देवी सती है वह सम्पूर्ण लोकों के द्वारा वन्दित होना हुई हेमवती उमा उत्पन्न हुई है। आप सुरो मे श्रेष्ठ देवगण अब उसके रूप-लावण्य के द्वारा विभु इन रुद्रदेव के महान मन को आर्पित करने का यत्न करें। उन दोनो का जब योग होगा तो उससे शक्ति के धारण करने वाले प्रभु स्कन्द उत्पन्न होंगे ।।२५।।२६।।२७।। वह स्कन्द छै मुख वाले-बारह भुजाओं से युक्त-सेनानी (सेना के नायक) और प्रभु एवं पावकि हैं। उनके नाम स्वाहेय-कार्त्तिकेय गाङ्गेय शरधात्मज देव शाख-विशाख-नैगमेश-वीर्यवान्-सेनापति और कुमार य है जो कि सम्पूर्ण लोकों के द्वारा वन्द्यमान हैं ।।२८।।२९।।

लीलयैव महासेन प्रबल तारकासुरम् ।
स लोपि विनिहत्यैको देवान् संतारयिष्यति ।।३०
एवमुक्त स्तदा तेन ब्रह्मणा परमेष्ठिना ।
वृहस्पतिस्तदा सेंद्रं देवदेवं प्रणम्य तम् ।।३१
मेरोः शिखरमासाद्य स्मरं सस्मार सुव्रतः ।
स्मरणाद्देवदेवस्य स्मरोपि सह भार्यया ।।३२

रत्या सम समागम्य नमस्कृत्य कृताजलि ।
सशक्रमाह त जीवं जगज्जीवा द्विजोत्तमा ॥३३
स्मृतो यद्भवता जीव सप्राप्तोह् तवातिकम् ।
ब्रूहि यन्मे विधातव्य तमाह सुरपूजित । ३४
तमाह भगवाञ्छक्र सभाव्य मकरध्वजम् ।
शकरेणाम्बिकामद्य सयोजय यथासुखम् ॥३

वह बालक भी होते हुए महासेन लीला ही से उस प्रबल तारकासुर को एक अकेला ही मार कर सब देवो का सन्तारण कर देंगे ॥३०॥ इस प्रकार से ब्रह्मा के द्वारा कहे हुए वृहस्पति ने इन्द्र के तथा देवो के सहित उनको प्रणाम किया था। फिर सुव्रत ने मेरु पर्वत के शिखर पर पहुँच कर कामदेव का स्मरण किया था। देवो के देव के स्मरण करने से कामदेव भी अपनी भार्या रति को साथ लेकर वहाँ आ गया और उसने हाथ जोड कर गुरु और इन्द्रदेव को नमस्कार किया था। हे द्विजश्रेष्ठो! समस्त जगत् का जीव वह कामदेव इन्द्र के सहित वृहस्पति से बोला। हे वृहस्पति जी! आपके द्वारा स्मरण किये जाने पर मैं यहाँ आपके समीप म उपस्थित हो गया हूँ। अब मुझे आज्ञा दीजिए कि मुझे क्या करना है। तब सुर गुरु ने उससे कहा था ॥३१॥३२॥३३॥३४॥ भगवान् इन्द्रदेव ने उससे कहा और मकरध्वज पूरी प्रशसा की थी। अब तुम सुख पूर्वक अम्बिका देवी का भगवान शङ्कर के साथ सयोग करादो ॥३५॥

तया स रमते यन भगवान् वृषभध्वज ।
तेन मार्गेण मार्गस्व पत्न्या रत्याऽनया सह । ३६
सोऽपि तुष्टो महादव प्रदास्यति शुभा गतिम् ।
विप्रयुक्तस्तया पूर्वं लब्ध्वा ता गिरिजामुमाम् ।.३७
एवमुक्तो नमस्कृत्य देवदव शचीपतिम् ।
दवदवाश्रम गतु मति चक्रे तया सह ॥३८
गत्वा तदाश्रमे शभो सह रत्या महाबल ।
वसतेन सहायेन देव योक्तुमनाभवत् ॥३६
तत सप्रेक्ष्य मदन हसन् देवस्त्रियवक ।

नयनेन तृतीयेन सावज्ञं तमवैक्षत ॥४०
ततोऽस्य नेत्रजो वह्निर्मदनं पार्श्वत. स्थितम् ।
अदहत्तत्क्षणादेव ललाप करुणं रतिः ॥४१
रत्या प्रलापमाकर्ण्य देवदेवो वृषध्वज· ।
कृपया परया प्राह कामपत्नी निरीक्ष्य च ॥४२

ऐसा प्रीति सयोग होना चाहिए कि भगवान् वृपभ ध्वज उस अम्बिका देवी के साथ रमण करने लगें। अब इस अपनी पत्नी रति के साथ वही मार्ग तुम खोज लो ॥३६॥ यह महादेव भी परम सन्तुष्ट होकर तुमको बहुत अच्छी गति प्रदान करेंगे क्योंकि उस उमा से वे इस समय विप्रयुक्त हो रहे हैं। उस गिरिजा उमा को वे पुन. प्राप्त कर लेंगे तो उनको बडा तोष होगा ॥३७॥ इस तरह से कहा हुए कामदेव ने शची के पति देवेन्द्र को नमस्कार किया और फिर देवो के भी देव महादेव के आश्रम मे उस पत्नी रति के साथ जाने का विचार किया था ॥३८॥ उस समय शम्भु के आश्रम मे पहुँच कर महान् बलवान् कामदेव रति के सहित वसन्त की सहायता से उन देव को पार्वती के सङ्गत कर देने का मन किया था ॥३९॥ इसके अनन्तर कामदेव को देखकर भगवान् त्र्यम्बक ने हँसते हुए उसको अवज्ञा पूर्वक अपने तीसरे नेत्र से देखा था ॥४०॥ इसके अनन्तर उस शिव के नेत्र से समुत्पन्न अग्नि ने पास मे स्थित मदन को तुरन्त ही दग्ध कर दिया था। मदन (पति) को दग्ध देखकर उसकी भार्या रति करुणा के साथ रुदन करने लगी ॥४१॥ रति के प्रलाप का श्रवण कर वृषध्वज देव ने परम कृपा से काम की स्त्री को देखकर उससे कहा ॥४२॥

अमूर्त्तोपि ध्रुव भद्रे कार्यं सर्वं पतिस्तव ।
रतिकाले ध्रुव भद्रे करिष्यति न सशय ॥४३
यदा विष्णुश्च भविता वासुदेवो महायशा. ।
शापाद्भृगोर्महातेजाः सर्वलोकहिताय वै ॥४४
तदा तस्य सुतो यश्च स पतिस्ते भविष्यति ।
सा प्रणम्य तदा रुद्रं कामपत्नी शुचिस्मिता ॥४५

जगाम मदनं लब्ध्वा वसंतेन समन्विता ।।४६

हे भद्रे ! यह अब बिना मूर्ति वाला भी तेरा पति तेरा समाज कार्य भली-भांति निश्चित रूप से सम्पादन किया करेगा। जिस समय रति का काल होगा तो हे भद्रे ! यह तेरा पूर्ण तोष करेगा इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।४३।। जिस समय भगवान् विष्णु वासुदेव होंगे अर्थात् महान् यश वाले और वसुदेव के यहाँ जन्म ग्रहण करेंगे जो कि महान् तेजस्वी विष्णु भृगु के शाप से समस्त लोकों के कल्याण के लिये ही अवतीर्ण होंगे ।।४४।। तब तेरा यह पति उनके पुत्र के रूप में समुत्पन्न होगा। तब उस रति कामदेव की पत्नी रुद्र को प्रणाम करके मुस्कराती हुई मदन को प्राप्त कर वसन्त के साथ वहाँ से चली गई थी ।।४५।।४६।।

।। ६६—उमा-स्वयंवर ।।

तपसा च महादेव्याः पार्वत्या वृषभध्वजः ।
प्रीतश्च भगवाञ्छर्वो वचनाद्ब्रह्मणस्तदा ।।१
हिताय चाश्रमाणां च क्रीडार्थं भगवान्भव ।
तदा हैमवती देवीमुपयेमे यथाविधि ।।२
जगाम स स्वयं ब्रह्मा मरीच्याद्यैर्महर्षिभिः ।
तपोवनं महादेव्या पार्वत्या. पद्मसंभवः ।।३
प्रदक्षिणीकृत्य च तां देवीं स जगतोरणीम् ।
किमर्थं तपसा लोकान्संतापयसि शैलजे ।।४
त्वया सृष्टं जगत्सर्वं मातस्त्वं मा विनाशय ।
त्वं हि संधारये लोकानिमान्सर्वान्स्वतेजसा ।।५
सर्वदेवेश्वरः श्रीमान्सर्वलोकपतिर्भवः ।
यस्य वै देवदेवस्य वयं किङ्करवादिनः ।।६
स एवं परमेशानः स्वयं च वरयिष्यति ।
वरदे येन सृष्टासि न विना यस्त्वयाम्बिके ।।७

इस अध्याय में तपश्चर्या से सन्तुष्ट देव शङ्कर से देवी का प्रसाद और स्वयम्वर में देवों का निग्रह आदि का निरूपण किया जाता है।

सूतजी ने कहा—उस समय ब्रह्मा के वचन से महादेवी पार्वती की तप-स्या से भगवान् वृषभध्वज शर्व प्रीति युक्त हो गये थे ॥१॥ समस्त आश्रमों के हित के लिये और क्रीडा करने के लिये भगवान् भव ने हैम-वती देवी को विधि-विधान के साथ विवाह कर लिया था ॥२॥ उस समय ब्रह्मा स्वयं मरीचि आदि महर्षियों को साथ में लेकर महादेवी पार्वती के तपोवन में गये थे । पद्म सम्भव ने उस देवी की परिक्रमा की थी और जगतों की निमित्त कारण भूता उस देवी से प्रणाम पूर्वक कहा था । हे शैलजे ! आप इस कठिन तप के द्वारा लोकों को किस फल की प्राप्ति के लिये सतत कर रही हैं ॥३॥४॥ हे माता ! आपने ही इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया है । अब आप इसका विनाश मत करो । आप ही इन समस्त लोकों को अपने तेज के द्वारा सन्धारण करती है ॥५॥ समस्त देवों के स्वामी और सब लोकों के पति श्रीमान् भव हैं । हम सब तो उस देवों के देव के किङ्कर कहे जाने वाले हैं । वह ही परमे-शान स्वयं आपका वरण करेंगे । हे वरदे ! वे आपके बिना हे अम्बिके ! सृजन का कार्य नहीं करेंगे ॥६॥७॥

वर्त्तते न च सन्देहस्तव भर्त्ता भविष्यति ।
इत्युक्त्वा तां नमस्कृत्य मुहुः सम्प्रेक्ष्य पार्वतीम् ॥८
गते पितामहे देवो भगवान् परमेश्वरः ।
जगामानुग्रहं कर्त्तुं द्विजरूपेण चाश्रमम् ॥९
सा च दृष्ट्वा म [illegible] द्विजरूपेण संस्थितम् ।
प्रतिभार्थं प्रभुं ज्ञात्वा ननाम वृषभध्वजम् ॥१०
संपूज्य वरदं देवं च [illegible] ।
तुष्टाव परमेशानं पार्वती परमेश्वरम् ॥११
अनुगृह्य तदा देवीमुवाच प्रहसन्निव ।
[illegible] भुजस्य महात्मनः ॥१२
[illegible] सर्वदेवादिनिर्भयः ।
स्वयंवरे महादेवि तव दिव्यगुणोभवे ॥१३
[illegible] सह सभा ।

इत्युक्त्वा तां समालोक्य देवो दिव्येन चक्षुषा ॥१४

इसमे कुछ भी सन्देह नही है। वे आपके भर्त्ता अवश्य ही होगे। इतना कहकर उस देवी को नमस्कार करके पुनः उन्होंने उस देवी का दर्शन किया था ॥८॥ पितामह के चले जाने पर देव भगवान् परमेश्वर ने एक द्विज का रूप धारण कर अनुग्रह करने के लिये वे उसी आश्रम मे गये थे ॥६॥ उस देवी ने एक द्विज के स्वरूप मे स्थित महादेव का दर्शन किया था। उनकी प्रतिभा आदि से पार्वती ने अपने प्रभु को पहिचान लिया और फिर उसने वृषभ ध्वज को प्रणाम किया था ॥१०॥ ब्राह्मण के वेष मे छन्न करके समागत वरद देव का पार्वती ने भली-भाँति पूजन किया था और फिर पार्वती परमेशान परमेश्वर का स्तवन किया था ॥११॥ तब तो उस देवी पर अनुग्रह करके शम्भु हँसते हुए उससे बोले। हे महादेवि! महात्मा भूधर के कुल के धर्म की रक्षा करते हुए सब देवो का स्वामी भव क्रीड़ा के लिये सत्पुरुषो के मध्य मे तुम्हारे दिव्य सुशोभन स्वयम्वर मे सौम्य स्वरूप मे समास्थित होकर मैं तेरे साथ आऊँगा। उस देवी से इस प्रकार से यह कहकर देव ने अपनी दिव्य चक्षु से उसे देखा था ॥१२॥१३॥१४॥

जगामेष्टं तदा दिव्यं स्वपुरं प्रययौ च सा।
दृष्ट्वा हृष्टस्तदा देवी मेनया तुहिनाचलः १५
आलिग्याघ्र य संपूज्य पुत्री साक्षात्तपस्विनीम्।
दुहितुर्देवदेवेन न जानन्नभि मंत्रितम् ॥१६
स्वयंवरं तदा देव्याः सर्वलोकेष्वघोपयत्।
अथ ब्रह्मा च भगवान् विष्णुः साक्षाज्जनार्दनः ॥१७
शक्रश्च भगवान् वह्निर्भास्करो भग एव च।
त्वष्टार्यमा विवस्वांश्च यमो वरुण एव च ॥१८
वायुः सोमस्तथेशानो रुद्राश्च मुनय स्तथा।
अश्विनौ द्वादशादित्या गंधर्वा गरुडस्तथा ॥१६
यक्षाः सिद्धास्तथा साध्या दैत्याः किंपुरुषोरगाः।
समुद्राश्च नदा वेदा मंत्राः स्तोत्रादयः क्षणाः ॥२०

नागाश्च पर्वता सर्वे यज्ञाः सूर्यादयो ग्रहा ।
त्रयस्त्रिंशच्च देवाना त्रयश्च त्रिशतं तथा ।।२१
त्रयश्च त्रिसहस्रं च तथान्ये बहवः सुराः ।
जग्मुर्गिरीन्द्रपुत्र्यास्तु स्वयंवरमनुत्तमम् ।।२२

उस समय मे वह देवी अपने अभीष्ट परम दिव्य निज पुर को चली गई थी। तब तुहिनाचल मेना के सहित उस देवी को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ था ।।१५।। हिमवान् ने उस साक्षात् तपस्विनी पुत्री का आलिङ्गन कर सत्कार करके और उसके मस्तक को सूंघ कर देवो के देव शिव द्वारा दुहिता को दिये हुए सकेत को नहीं जानते हुए हिमालय मे देवी का स्वयम्वर समस्त लोकों मे उद्घोषित कर दिया था। इसके अनन्तर वहाँ पर ब्रह्मा-साक्षात् जनार्दन भगवान् विष्णु, इन्द्र-अग्नि-भग-त्वष्टा-अर्यमा विवस्वान् यम-वरुण वायु सोम-ईशान-रुद्र-मुनिगण अश्विनी-कुमार द्वादश आदित्य-गन्धर्व गरुड-यक्ष-सिद्ध-साध्य-दैत्यगण-किम्पुरुष उरग-समुद्र-नद-वेद-मन्त्र मण्डल स्तोत्रादि-क्षण नाग पर्वत-समस्त यज्ञ सूर्य प्रभृति ग्रह-तीन सहस्र तीन सौ तैतीस देवताओ के भेद तथा अन्य बहुत से सुरगण गिरि शिरोमणि हिमवान् की पुत्री के परम श्रेष्ठतम इस स्वयम्वर मे गये थे ।।१६।।१७।।१८।।१९।।२०।।२१।।२२।।

अथ शैलसुता देवी हैमम रुह्य शोभनम् ।
विमानं सर्वतोभद्रं सर्वरत्नैरलंकृतम् ।।२३
अप्सरोभिः प्रनृत्ताभि सर्वाभरणभूषितैः ।
गन्धर्वसिद्धैर्विविधैः किन्नरैश्च सुशोभनैः ।।२४
वादिभि स्तूयमाना च स्थिता शैलसुता तदा ।
सितातपत्रं रत्नांशुमिश्रितं चारुहस्तया ।।२५
मालिनी गिरिपुत्र्यास्तु संध्यापूर्णेन्दुमंडलम् ।
चामरासक्तहस्ताभिर्दिव्यस्त्रीभिश्च संवृता ।।२६
मालां गृह्य जया तस्थौ सुरद्रुमसमुद्भवाम् ।
विजया व्यजनं गृह्य स्थिता देव्याः समीपगा ।।२७
मालां प्रगृह्य देव्या तु स्थितायां देवसंसदि ।

शिशुर्भूत्वा महादेवः क्रीडार्थं वृषभध्वजः ॥२८
उत्सङ्गतलसंसुप्तो बभूव भगवान्भवः ।
अथ दृष्ट्वा शिशुं देवास्तस्या उत्सङ्गवर्त्तिनम् ॥२६

इसके अनन्तर शैलराज की पुत्री देवी पार्वती सुवर्ण से निर्मित परम शोभा से समन्वित विमान में समारूढ हुई थी। वह विमान सभी प्रकार से बहुत ही भद्र था और समस्त प्रकार के रत्नों से समलङ्कृत हो रहा था ॥२३॥ सम्पूर्ण आभरणों से विभूषित नृत्य करती हुई अप्सराओं के द्वारा-गन्धर्व तथा सिद्धों के द्वारा-सुशोभन किन्नरों के द्वारा और वन्दीगणों के द्वारा स्तवन की जाने वाली शैलराज की पुत्री पार्वती उस पर समारूढ हो रही थी। सित वर्ण का रत्नों की किरणों से मिश्रित एक छत्र उसके ऊपर लगा हुआ था। ॥२४.२५॥ माला धारण कर रही थी और गिरिवर की पुत्री का मुख सन्ध्या के समय में पूर्ण चन्द्र मण्डल के समान सुशोभित हो रहा था। चमर हाथों में लेकर दिव्य अङ्गनाओं के द्वारा वह देवी सुसंवृत हो रही थी ॥२६॥ जया नाम धारिणी उस देवी के ही समीप में देव द्रुम क पुष्पों द्वारा निर्मित माला को लिये हुए खड़ी थी। विजया हाथ में व्यजन लिये हुए थी ॥२७॥ इसके अनन्तर समस्त देवगण ने उसके उत्सङ्ग (गोद में) में एक शिशु को देखा था। जिस समय वरमाला लेकर वह देवी देवों की सभा में स्थिता थी महादेव वृषभध्वज क्रीड़ा करने के लिये एक छोटा सा शिशु होकर उस पार्वती के उत्सङ्ग भाग में सोया हुआ था ॥२८॥२६॥

कोयमत्रेति संमंत्र्य चुक्षुभुश्च समागताः ।
वज्रमाहारयत्तस्य बाहु मुद्यम्य वृत्रहा ॥३०
स बाहुरुद्यतस्तस्य तथैव समुपस्थित. ।
स्तंभितः शिशुरूपेण देवदेवेन लीलया ॥३१
वज्रं क्षेप्तुं न शशाक बाहुं चालयितुं तथा ।
वह्निः शक्ति तथा क्षेप्तुं न शशाक तथा स्थितः ॥३२
यमोपि दंडं खड्गं च निऋतिर्मुनिपुंगवा. ।
वरुणो नाग पाशं च ध्वजयष्टिं समीरणः ॥३३

सोमो गदा धनेशश्च दड दडभृतां वरः ।
ईशानश्च तथा शूल तीव्रमुद्यम्य संस्थितः ॥३४
रुद्राश्च शूलमादित्या मुशल वसवस्तथा ।
मुद्गरं स्तंभिता सर्वे देवेनाशु दिवौकसः ॥३५

यह इस देवी की गोद मे कौन है – ऐसा विचार कर सभी समागत महानुभावो के हृदय मे बहुत क्षोभ उत्पन्न हो गया था। उसके ऊपर इन्द्रदेव ने बाहु से उठाकर वज्र को चलाना चाहा था किन्तु उसका वह बाहु वहाँ को वहाँ पर ही रह गया था । यह देवों के देव की लीला से स्तम्भित हो गया था जो कि एक शिशु के स्वरूप मे वहाँ पर उपस्थित थे ॥३०॥३१॥ वह इन्द्र अपने उस वज्र को फैंकने मे समर्थ न हो सका था और न वह अपनी बाहु को ही चलाने-डुलाने मे समर्थ हुआ था । अग्नि अपनी शक्ति चलाने मे असमर्थ हो गया था और ज्यों का त्यों स्थित रह गया था ॥३२॥ यम भी अपने दण्ड को-निर्ऋति खड्ग को-वरुण अपने नाग पाश को और वायु अपनी ध्वज यष्टि को हे मुनि-श्रेष्ठो ! वहाँ चलाने मे समर्थ न हो सके थे ॥३३॥ सोम गदा को-धनेश्वर कुबेर दण्ड धारियो मे अति श्रेष्ठ अपने दण्ड को और ईशान अपने तीव्र शूल को उठाकर ही रह गये थे ॥३४॥ रुद्रगण भी शूल को-आदित्य मुसल को और वसुगण मुद्गर को न चला सके थे। देव ने समस्त देवताओ को शीघ्र ही स्तम्भित कर दिया था ॥३५॥

स्तम्भिता देवदेवेन तथान्ये च दिवौकस. ।
शिरः प्रकम्पयन्विष्णुश्चक्रमुद्यम्य संस्थित. ॥३६
तस्यापि शिरसो वालः स्थिरस्य प्रचकार ह ।
चक्रं क्षेप्तुं न शशाक बाहुश्चालयितुं न च ॥३७
पूषा दन्तान्दशन्दंतैर्बालमैक्षत मोहितः ।
तस्य पि दशनाः पेतुर्दृष्टमात्रस्य शभुना ॥३८
बलं तेजश्च योगं च तथैवास्तंभयद्विभुः ।
अथ तेषु स्थितेष्वेव मन्युमत्सु सुरेष्वपि ॥३९
ब्रह्मा परमसंविग्नो ध्यानमास्थाय शंकरम् ।

बुबुधे देवमीशानमुमोत्सङ्गे समास्थितम् ॥४०
स बुद्ध्वा देवमीशानं शीघ्रमुत्थाय विस्मितः ।
ववंदे चरणौ शंभोरस्तुवच्च पितामहः ॥ १
पुराणैः सामसंगीतैः पुण्याख्यैर्गुह्यनामभिः ।
स्रष्टा त्वं सर्वलोकानां प्रकृतेश्च प्रवर्त्तकः ॥४२

देवदेव के द्वारा अन्य दिवौकस भी सम्पूर्ण स्तम्भीभूत हो गये थे। विष्णु भी शिर को प्रकम्पित करते हुए अपने चक्र को उद्यत कर संस्थित हो गये थे। उस काल ने उनके शिर को स्थिर कर दिया था और वह भी चक्र चलाने में तथा अपनी बाहु को हिलाने डुलाने में समर्थ न हो सके थे ॥३६॥३७॥ पूषा ने अपने दाँतों को पीसते हुए ही मोहित होकर उस यज्ञ को देखा था। शम्भु के द्वारा केवल देखने ही से उस पूषा के दाँत गिर पड़े थे ॥३८॥ शम्भु ने सब का बल-तेज और योग उसी प्रकार से स्तम्भित कर दिया था। इसके अनन्तर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए समस्त देवगण उसी प्रकार से स्तम्भीभूत होकर स्थित रह गये थे तब ब्रह्मा ने परम संविग्न होकर भगवान् शङ्कर का ध्यान किया था तो ब्रह्माजी को ज्ञात हुआ कि देवी के उत्सङ्ग में साक्षात् भगवान् शिव ही समास्थित हो रहे थे ॥३९॥४०॥ ब्रह्माजी ने ईशान देव को पहिचान कर विस्मित होते हुए शीघ्र ही उठकर शम्भु के चरणों की वन्दना की थी और पितामह ने उनका स्तवन किया था ॥४१॥ यह स्तुति पुराणों में सामवेद में गीतों और उनके गोपनीय शुभ नामों के द्वारा की गई थी। ब्रह्माजी ने कहा—हे देव! आप तो इन समस्त लोकों के सृजन करने वाले हैं और प्रकृति को प्रवृत्त कराने वाले हैं ॥४२॥

बुद्धिस्त्वं सर्वलोकानामहङ्कारस्त्वमीश्वरः ।
भूतानामिन्द्रियाणां च त्वमेवेश प्रवर्त्तकः ॥४३
तवाहं दक्षिणाद्धस्तात्सृष्टः पूर्वं पुरातनः ।
वामहस्तान्महाबाहो देवो नारायणः प्रभुः ॥४४
इयं च प्रकृतिर्देवी सदा ते सृष्टिकारणम् ।
पत्नीरूपं समास्थाय जगत्कारणमागता ॥४५

नमस्तुभ्यं महादेव महादेव्यै नमोनमः ।
प्रसादात्तव देवेश नियोगाच्च मया प्रजाः ॥४६
देवाद्यास्तु इमाः सृष्टा मूढास्त्वद्योगमोहिताः ।
कुरु प्रसादमेतेषां यथापूर्वं भवंत्विमे ॥४७
विज्ञाप्यैवं तदा ब्रह्मा देवदेवं महेश्वरम् ।
संस्तंभितांस्तदा तेन भगवानाह पद्मजः ॥४८
मूढास्थ देवताः सर्वा नैव बुध्यत शंकरम् ।
देवदेवमिहायातं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥४९

हे ईश्वर ! आप ही समस्त लोकों का ज्ञान हैं । आप ही इन का अहङ्कार है । हे ईश ! समस्त प्राणियों के और इन्द्रियों के प्रवर्त्तक भी आप ही होते हैं ॥४३॥ पहिले आपके ही दाहिने हाथ से पुरातन मैं सृष्ट हुआ हूं । आप बाँये हाथ से हे महाबाहो ! नारायण प्रभु का सृजन हुआ था ॥४४॥ हे सृष्टि के कारण ! यह प्रकृति देवी सदा ही आपकी पत्नी के स्वरूप मे समास्थित होकर जगत् का कारण बनी है । ॥४५॥ हे महादेव ! आपके लिये हम सब का नमस्कार है । इस महादेवी के लिये भी वारम्बार हमारा प्रणाम है । हे देवेश ! आपके ही प्रसाद से और आदेश से मैंने इस प्रजा का और देवगणों का सृजन किया था ॥४६॥ अब ये देवगण सब आपके योग से मोहित होकर मूढता को प्राप्त हो गये हैं । अब आप अनुग्रह करिये जिससे ये सब पूर्व की ही भाँति हो जावें ॥४७॥ सूतजी ने कहा ब्रह्मा ने इस प्रकार से देवों के देव महेश्वर का स्तवन करके फिर उन स्तम्भित हुए देवो से कहा था—हे देवगणो ! आप ऐसे मूढ होकर स्थित हो गये हैं कि आप लोगो ने भगवान् शंकर को नही पहिचाना है । ये देवो के देव और सब के द्वारा परम वन्दित शंकर यहाँ आये हुए हैं । ॥४८॥४९॥

गच्छध्वं शरणं शीघ्रं देवाः शक्रपुरोगमाः ।
सनारायणकाः सर्वे मुनिभिः शंकरं प्रभुम् ॥५०
सार्धं मयैव देवेशं परमात्मानमीश्वरम् ।
अनया हैमवत्या च प्रकृत्या सह सत्तमम् ॥५१

तत्र ते स्तंभितास्तेन तथैव सुरसत्तमाः ।
प्रणेमुर्मनसा सर्वे सनारायणकाः प्रभुम् ॥५२
अथ तेषां प्रसन्नो भूद्देवदेवस्त्रियंबकः ।
यथापूर्वं चकाराशु वचनाद्ब्रह्मणः प्रभुः ॥५३
तत एवं प्रसन्ने तु सर्वदेवनिवारणम् ।
वपुश्चकार देवेशो दिव्यं परममद्भुतम् ॥५४
तेजसा तस्य देवास्ते सेंद्रचंद्रदिवाकराः ।
सब्रह्मकाः ससाध्याश्च सनारायणकास्तथा ॥५५
सयमाश्च सरुद्राश्च चक्षुर प्रार्थयन्विभुम् ।
तेभ्यश्च परमं चक्षुः सर्वदृष्टौ च शक्तिमत् ॥५६
ददौ वंशपतिः शर्वो भवान्याश्च बलस्य च ।
लब्ध्वा चक्षुस्तदा देवा इंद्रविष्णुपुरोगमाः ॥५७
सब्रह्मकाः सशक्राश्च तमपश्यन्महेश्वरम् ।
ब्रह्माद्या नेमिरे तूर्णं भवानी च गिरीश्वरः ॥५८

हे देवगणो ! इन्द्र को साथ मे लेकर आप सब लोग शीघ्र ही भगवान् शङ्कर की शरणागति मे चले जाओ। नारायण को भी साथ मे लेकर समस्त मुनिगण शङ्कर की शरण का आश्रय ग्रहण करो ! मैं भी परमात्मा ईश्वर की शरण मे चलता हूँ जो कि इस हैमवती अपनी प्रकृति के साथ विराजमान हैं । ॥५०॥५१॥ तब वहाँ पर स्तम्भित होते हुए ही नारायण के सहित समस्त देवगण ने मन से ही शङ्कर को प्रणाम किया था । इसके अनन्तर देव देव त्र्यम्बक उन सब पर परम प्रसन्न हो गये थे और ब्रह्मा की प्रार्थना के अनुसार सब को पूर्व की ही भाँति कर दिया था ॥५३॥ इस प्रकार से प्रसन्न हो जाने पर वह जो समस्त देवों के द्वारा नही देखे जाने वाले स्वरूप का त्याग करके देवेश ने परम दिव्य अत्यन्त रमणीय एव अद्भुत शरीर धारण किया था ॥५४॥ उस शंकर के प्रभु के तेज से वे समस्त इन्द्र-चन्द्र-दिवाकर-ब्रह्मा-साध्य यम-रुद्र और नारायण दृष्टि हीन से हो गये थे । उन्होने भगवान् शम्भु चक्षुओं की शक्ति प्राप्त करने की प्रार्थना की थी। तब उन सब को देखने मे समर्थ परम

चक्षु अम्बा के पति ने प्रदान की थी। चक्षु-शक्ति प्राप्त करके समस्त इन्द्र-विष्णु आदि परम प्रधान देवों ने तथा ब्रह्मा ने महेश्वर का दर्शन प्राप्त किया था। ब्रह्मा आदि सब देवों ने महेश्वर को प्रणाम किया था। भवानी और गिरीश्वर ने भी महादेव को प्रणाम किया था ॥५५॥ ५६॥ ॥५७॥५८॥

मुनयश्च महादेव गणेशाः शिवसंमताः ।
ससृजुः पुष्पवृष्टिं च खेचराः सिद्धचारणाः ॥५९
देवदुंदुभयो नेदुस्तुष्टुवुर्मुनयः प्रभुम् ।
जगुर्गंधर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६०
मुमुहुर्गणपाः सर्वे मुमोदांबा च पार्वती ।
तस्य देवो तदा हृष्टा समक्षं त्रिदिवौकसाम् ॥६१
पादयोः स्थापयामास मालां दिव्यां सुगन्धिनीम् ।
साधु साध्विति संप्रोच्य तया तथैव चार्चितम् ॥६२
सह देव्या नमश्चक्रुः शिरोभिर्भूतलाश्रितैः ।
सर्वे सब्रह्मका देवाः सयक्षोरगराक्षसाः ॥६३

॥ ७०—विघ्नेश्वर उत्पत्ति ॥

कथ विनायको जातो गजवक्त्रो गणेश्वर ।
कथप्रभावस्तस्यैव सूत वक्तुमिहार्हसि ॥१
एतस्मिन्नतरे देवा. सेंद्रोपेंद्रा समेत्य ते ।
धर्मविघ्न तदा कर्त्तु दैत्यानामभवन्द्विजा ॥२
असुरा यातुधानाश्च राक्षसा क्रूरकर्मिण ।
तामसाश्च तथा चान्ये राजसाश्च तथा भुवि ॥३
अविघ्न यज्ञदानाद्यै समभ्यर्च्य महेश्वरम् ।
ब्रह्मा ण च हरि विप्रा लब्धेप्सितवरा यत ॥४
ततोऽस्माक सुरश्रेष्ठा सदा विजयसभव ।
तेषा ततस्तु विघ्नार्थमविघ्नाय दिवौकसाम् ॥५
पुत्रार्थं चैव नारीणा नराणा कर्मसिद्धये ।
विघ्नेश शकर स्रष्टु गत्वा स्तोतुमर्हथ ॥६
इत्युक्त्वा न्योन्यमनघ तुष्टुवु शिवमीश्वरम् ।
नम सर्वात्मने तुभ्य सर्वज्ञाय पिनाकिने ॥७

इस अध्याय मे समस्त देवो के द्वारा शिव का स्तव तथा शम्भु से विघ्नेश की सृष्टि के लिये कथन का निरूपण किया जाता है । ऋषियो ने कहा—गज के समान मुख वाले विनायक की कैसे उत्पत्ति हुई थी और उनका इस प्रकार का प्रभाव कैसे हुआ था हे सूतजी ! इस को बताने की कृपा करिये । सूतजी ने कहा — इसी समय म इन्द्र और उपेन्द्र के सहित समस्त देवगण, हे द्विजगणो ! दैत्यो के धम काय मे विघ्न करने के लिय एकत्रित हुए थे ॥१॥२॥ असुर यातुधान क्रूर कर्म करने वाले राक्षस-तामस जीव और रजोगुण वाले जीवगण भूमण्डल म विना ही किसी विघ्न के यज्ञ और दान आदि के द्वारा महेश्वर की अर्चना किया करते हैं तथा ब्रह्मा एव हरि का पूजन कर अपने अभीष्ट वरदान प्राप्त कर लिया करते हैं ॥३॥४॥ इसलिय हे सुरश्रेष्ठो ! तभी हमारा सदा विजय सम्भव हो सकता है जब कि उन दैत्यों के विघ्न करने क लिये और देवो के विघ्नो का नाश करने के लिये स्त्रियो को पुत्र प्राप्ति के लिये

श्रौर पुरुषों के कार्य्यों की सिद्धि के लिये हम सब लोग विघ्नो के स्वामी शङ्कर से गणप का सृजन करने के लिये स्तवन करें ॥५।६॥ ऐसा परस्पर मे कहकर वे सब अनघ ईश्वर शिव की स्तुति करने लगे थे। देवों ने शिव से प्रार्थना की थी — हे देव ! सर्वात्मा सर्वज्ञ और पिनाक धारण करने वाले आपको हमारा सब का नमस्कार है ॥७॥

यदा स्थिताः सुरेश्वरा. प्रणम्य चैवमीश्वरम् ।
तदा विकापतिर्भवः पिनाकधृङ् महेश्वरः ॥८
ददौ निरीक्षण क्षणाद्भव. स तान्सुरोत्तमान् ।
प्रणेमुरादराद्धर सुरा मुदार्द्रलोचनाः ॥६
भवः सुध मृतोपमैनिरोक्षणैनिरीक्षणात् ।
तदाह भद्रमस्तु वः सुरेश्वरान् महेश्वरः ॥१०
वरार्थमीश वीक्ष्यते सुरा गृह गतास्त्विमे ।
प्रणम्य चाह वाक्पति पति निरीक्ष्य निर्भयः ॥११
सुरेतरादिभि. सदा ह्यविघ्नमर्थितो भवान् ।
समस्तकर्मसिद्धये सुरापकारकारिभि. ॥१२
ततः प्रसीदताद्भवान् सुविघ्नकर्मकारणम् ।
सुरापकारकारिणामिहैप एव नो वरः ॥१३

सूतजी ने कहा — जिस समय मे सुरेश्वर इस प्रकार से ईश्वर को प्रणाम करके स्थित हुए थे तब जगदम्बा के पति पिनाक के धारण करने वाले महेश्वर भव ने एक क्षण मात्र के लिये उन सुरश्रेष्ठों को दिव्य चक्षु प्रदान की थी। उस समय देवगण ने आनन्द से आर्द्र नेत्रों वाले होकर बड़े ही आदर के साथ भगवान् हर को प्रणाम किया था ॥८॥६॥ भगवान् शङ्कर ने सुधामृत के समान अपने निरीक्षणों के द्वारा दृष्टि से ही सुरेश्वरों से यह कह दिया था कि तुम्हारा कल्याण होगा। ॥१०॥ इसके अनन्तर सुरारि ने निर्भय होकर शिव का दर्शन कर तथा प्रणाम करके कहा — ये देवगण आपके घर पर गये हुए वरदान प्राप्त करने के लिये इच्छुक होकर आपका दर्शन करते हैं ॥११॥ आप से दैत्यों के द्वारा विघ्न न होने के लिये इन्होंने प्रार्थना की है। जिससे कि

इन देवो के समस्त कार्यों की पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो जावे क्योंकि दैत्यगण देवो के अपकार करने वाले रहा करते हैं ॥१२॥ इसलिये हे देव ! आप प्रसन्न होइये और सुरो के अपकार करने वालो के सुविघ्न कर्म का कारण हो जावें-यही हमारा यहाँ पर वरदान है जिसे हम आप से चाहते हैं ॥१३॥

ततस्तदा निशम्य वै पिनाकधृक् सुरेश्वर ।
गणेश्वर सुरेश्वर वपुदधार स शिव ॥१४
गणेश्वराश्च तुष्टुवु सुरेश्वरा महेश्वरम् ।
समस्तलोकसभव भवात्तिहारिण शुभम् ॥१५
इभाननाश्रितं वर त्रिशूलपाशधारिणम् ।
समस्तलोकसभव गजानन तदाबिका ॥१६
ददु पुष्पवर्षं दि सिद्धा मुनीद्रास्तथा खेचरा देवसघास्तदानीम् ।
तदा तुष्टुवुरुच्चैकदतं सुरेशा प्रणेमुगणेश महेश विसृष्टा ॥१७
तदा तर्यत्रिनिगन सुभैरव समूर्त्तिमान् ।
स्थितो ननर्त्त बालक समस्तमगलालय ॥१८
विचित्रवस्त्रभूपर्णरलकृतो गजाननो महेश्वरस्य पुत्रकोऽभिवद्य तातमबिकास् ॥१९
जातमात्र सुत दृष्ट्वा चकार भगवान्भव ।
गजाननाय कृत्यास्तु सर्वान्सर्वेश्वर स्वयम् ॥२०
आदाय च कराभ्या च सुसुखाभ्या भव स्वयम् ।
आलिग्याघ्राय मूर्धनि महादेवो जगद्गुरु ॥२१

इसके अनन्तर पिनाक के धारण करने वाले सुरेश्वर महेश्वर ने यह श्रवण करके शिव ने गणो के ईश्वर का वपु धारण कर लिया था ॥१४॥ उस समय म गणेश्वर और सुरेश्वरो ने महेश्वर का स्तवन किया था। जो समस्त लोको को जन्म देने वाले-ससार की पीडा को हरण करने वाले-परम शुभ हैं। गज के मुख को धारण करने वाले और वरदान तथा त्रिशूल एव पाश को ग्रहण किये हुए हैं। ऐसे समस्त लोको को जन्म प्रदान करने वाले गजानन को अम्बिका ने प्रसूत किया था।

उस समय सिद्ध-मुनीन्द्र खेचर और देव सघो ने आकाश पुष्पो की वर्षा की थी। उस समय मे सुरेशो ने अति समाहित होकर एक दन्त गणेश महेश की स्तुति की थी ॥१५ ।१६॥१७॥ उस समय उन दोनो से मूर्तिमान् सुगौरव जो समस्त मङ्गलो का आलय है, निकला और वह बालक स्थित होकर नृत्य करने लगा था ॥१८॥ वह गजानन विचित्र वस्त्र और आभूषणो से अलङ्कृत हो रहा था ऐसा यह महेश्वर का पुत्र उत्पन्न हुआ और उसने अपने पिता शिव की तथा माता जगदम्बा की वन्दना की थी ॥१६॥ अपने उत्पन्न होने वाले पुत्र के जात कर्म आदि जो आवश्यक सस्कार थे वे शिव ने स्वय किये थे। और सर्वेश्वर शिव ने सुसुख करो से स्वय उसको लेकर उसका आलिङ्गन करके तथा मस्तक का आघ्राण करके जगद्गुरु महादेव ने गजानन को समस्त कृत्यो को बता दिया था ॥२०॥२१॥

तवावतारो दैत्याना विनाशाय ममात्मज ।
देवानामुपकारार्थं द्विजाना ब्रह्मवादिनाम् ॥२२
यज्ञश्च दक्षिणाहीन कृतो येन महीतले ।
तस्य धर्मस्य विघ्न च कुरु स्वर्गपथे स्थितः ॥२३
अध्यापनं चाध्ययन व्याख्यानं कर्म एव च ।
योऽन्यायत करोत्यस्मिन् तस्य प्राणान्सदा हर ॥२४
वर्णाच्च्युताना नारीणा नराणा नरपुंगव ।
स्वधर्मरहिताना च प्राणानपहर प्रभो ॥२५
या स्त्रियस्त्वा सदा काल पुरुषाश्च विनायक ।
यजंति तासा तेषा च त्वत्साम्यं दातुमर्हसि ॥२६
त्वं भक्तान् सर्वयत्नेन रक्ष बालगणेश्वर ।
यौवनस्थाश्च वृद्धाश्च इहामुत्र च पूजित. ॥२७
जगत्त्रयेऽत्र सर्वत्र त्वं हि विघ्नगणेश्वरः ।
संपूज्यो वदनीयश्च भविष्यसि न सशय ॥२८

महेश्वर ने कहा—हे मेरे पुत्र ! यह तेरा अवतार दैत्यो के विनाश करने के लिये ही हुआ है। तथा द्विजगण और देवो के उपकार के लिये

है ।।२२।। जिसने इस महीतल मे दक्षिणा से रहित यज्ञ किया है आप स्वर्ग के मार्ग मे स्थित होते हुए उसका विघ्न करेंगे ।।२३।। अध्यापन अध्ययन-व्याख्यान और कर्म जो न्याय से हीन कोई भी करे उसके प्राणों का हरण करो ।।२४।। हे नरश्रेष्ठ ! जो नारियाँ या नरगण अपने वर्ण धर्म से च्युत हों और अपने धर्म का समुचित पालन न करें उनके प्राणों का अपहरण करो ।।२५।। जो स्त्रियाँ तथा पुरुष सदा-सर्वदा हे विनायक ! अर्चन-यजन किया करते हैं उन स्त्रियों तथा पुरुषों को अपना साम्य तुमको देना चाहिए ।।२६।। हे बालगणेश्वर ! तुम अपने भक्तों का सभी प्रकार के यत्नों द्वारा रक्षा करना । जो यौवन मे स्थित हों तथा वृद्ध हों और उनके द्वारा तुम्हारा अर्चन किया जावे तो उनकी भी रक्षा करना ।।२७।। इस तीनों जगत् में यहाँ पर विघ्नगणों के ईश्वर आप ही सर्वत्र भली-भाँति पूज्य वन्दनीय होओगे-इसमे कुछ भी संशय नहीं है ।।२८।।

मां च नारायणं वापि ब्रह्माणमपि पुत्रक ।
यजन्ति यज्ञैर्वा विप्रैरग्रे पूज्यो भविष्यसि ।।२६
त्वामनभ्यर्च्य कल्याणं श्रौतं स्मार्तं च लौकिकम् ।
कुर्वते तस्य कल्याणमकल्याणं भविष्यति । ३०
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चैव गजानन ।
संपूज्य सर्वसिद्ध्यर्थं भक्ष्यभोज्यादिभिः शुभैः ।।३१
त्वां गन्धपुष्पधूपाद्यैरनभ्यर्च्य जगत्त्रये ।
देवैरपि तथान्यैश्च लब्धव्यं नास्ति कुत्रचित् ।।३२
अभ्यर्चयंति ये लोका मानवास्तु विनायकम् ।
ते चार्चनीयाः शक्राद्यैर्भविष्यंति न संशयः ।।३३
अज हरिं च मां वापि शक्रमन्यान्सुरानपि ।
विघ्नैर्बाधयसि त्वां चेन्नार्चयंति फलार्थिनः ।।३४
ससर्ज च तदा विघ्नगणं गणपतिः प्रभुः ।
गणैः सार्धं नमस्कृत्वाप्यतिष्ठत्तस्य चाग्रतः ।।३५
तदा प्रभृति लोकेऽस्मिन्पूजयंति गणेश्वरम् ।

दैत्यानां धर्मविघ्नं च चकारासौ गणेश्वरः ।।३६
एतद्वः कथितं सर्वं स्कंदाग्रजसमुद्भवम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा सुखीभवेत् ।।३७

जो भी कोई मुझको-नारायण को और ब्रह्मा को हे पुत्र ! यज्ञों के द्वारा विप्र यजन किया करते हैं उन सभी पूजनार्चनों में तुम्हारी सर्व-प्रथम पूजा होगी ।। १९।। जो कोई तुम्हारी पूजा न करके लौकिक कल्याण के लिये श्रौत तथा स्मार्त्त कर्म करता है उसका वह कल्याण अकल्याण के स्वरूप में परिवर्तित हो जायेगा ।।२०।। हे गजानन ! समस्त कार्यों की सिद्धि के लिये ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और शूद्रों के द्वारा भक्ष्यभोज्य आदि शुभ पदार्थों से भली-भाँति पूजा करने के योग्य होंगे ।।२१।। इस त्रिलोकी में आपकी गन्ध-पुष्प और धूप आदि से अभ्यर्चना न करके देवों तथा अन्य किसी के द्वारा भी कहीं कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता है ।।२२।। जो मानव लोक भगवान् विनायक की अभ्यर्चना किया करते हैं वे इन्द्रादि देवों के द्वारा पूजनीय हुआ करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।।३३।। अज-हरि और मुझको भी तथा शक्र आदि देवों को भी विघ्न बाधा किया करते हैं यदि वे फलार्थी होकर तुम्हारा अर्चन नहीं करते हैं ।।३४।। उस समय गणपति प्रभु ने विघ्नगण का सृजन किया था और वर के लाभ के उसी समय में गणों के साथ नमस्कार करके उसके आगे ही स्थित हो गये थे ।।३५।। उसी दिन से लेकर लोग भगवान् गणपति का इस लोक में पूजन करते हैं। इस गणेश्वर ने दैत्यों के धर्म में विघ्न कर दिया था ।।३६।। यह सम्पूर्ण स्कन्द के अग्रज (बड़े भाई) की उत्पत्ति तुमको बतला दी है। जो इसको पढ़ता है अथवा श्रवण करता है या किसी को इसे श्रवण कराता है वह परम सुख-सम्पन्न हो जाता है ।।३७।।

।। ७१—शिवतांडव नृत्य आरंभ ।।

नृत्यारंभः कथं शंभोः किमर्थं वा यथातथम् ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं श्रुतः स्कंदाग्रजोद्भवः ।।१

दारुकोऽसुरसंभू तस्तपसा लब्धविक्रमः ।
सूदयामास कालाग्निरिव देवान्द्विजोत्तमान् ॥२
दारुकेण तदा देवास्ताडिता पीडिता भृशम् ।
ब्रह्मा णं च तथेशानं कुमार विष्णुमेव च ॥३
यमिन्द्रमनुप्राप्य स्त्रीवध्य इति चासुरः ।
स्त्रीरूपधारिभिः स्तुत्यैर्ब्रह्माद्यैर्युधि संस्थितैः ॥४
बाधितास्तेन ते सर्वे ब्रह्मा णं प्राप्य वै द्विजाः ।
विज्ञाप्य तस्मै तत्सर्वं तेन सार्धमुमापतिम् ॥५
संप्राप्य तुष्टुवु सर्वे पितामहपुरोगमाः ।
ब्रह्मा प्राप्य च देवेशं प्रणम्य बहुधानतः ॥६
दारुणो भगवन्दारु पूर्वं तेन विनिर्जिताः ।
निहत्य दारुकं दैत्यं स्त्रीवध्यं त्रातुमर्हसि ॥७

इस अध्याय मे नृत्यारम्भ के प्रसङ्ग से काली और क्षेत्रपाल का उद्भव निरूपित किया जाता है । ऋषियो ने कहा—स्कन्द के अग्रज के उद्भव का सब हाल भली-भाँति श्रवण कर लिया है । अब कृपा कर यह बताइये और इसके बताने के योग्य भी हैं कि भगवान् शकर के नृत्य का आरम्भ किस कारण से हुआ था और किस लिये हुआ था-इसे ठीक-ठीक बताइये । सूतजी ने कहा—एक दारुक नाम वाला असुर हुआ था जिसने तप करके बहुत भारी पराक्रम प्राप्त कर लिया था । वह कालाग्नि की भाँति देवो को और ब्राह्मणो को मारता था ॥१॥२॥ उस समय मे दारुक के द्वारा देवगण ताडित और अत्यन्त ही उत्पीडित-हुए थे । यह असुर ब्रह्मा-ईशान-कुमार-विष्णु यम और इन्द्र के पास पहुँच कर स्त्री का रूप धारण करने पर भी वध करने वाला हो गया था । स्तुति करने योग्य ब्रह्मादि देव स्त्री का रूप धारण करके युद्ध मे सस्थित हो गये थे तो भी इसने उनको सताया था । हे द्विजो ! इससे दुःखित एव बाधित होकर वे समस्त देवगण ब्रह्माजी के पास जाकर सब दुःख सुनाया और फिर ब्रह्मा को साथ मे लेकर वे सब उमा के पति शिव के समीप मे गये थे ॥३॥४॥५॥ उन सब देवो ने, जिनमे पितामह प्रधान थे, शिव की

स्तुति की थी। ब्रह्मा जी देवेश के निकट आकर प्रणाम करके अत्यन्त विनम्र होकर प्रार्थना करने लगे थे ॥६॥ हे भगवन्! दारु असुर बड़ा भारी दारुण है। उसके द्वारा पहिले ही सब विनिर्जित हो गये हैं। आप उस स्त्री वध्य दारुक दैत्य का वध करके सब की रक्षा करने के लिये समर्थ होते हैं ॥७॥

विज्ञप्ति ब्रह्मणः श्रुत्वा भगवान् भगनेत्रहा।
देवीमुवाच देवेशो गिरिजा प्रहसन्निव ॥८
भवती प्रार्थये त्वद्य हिताय जगतां शुभे।
वधार्थं दारुकस्यास्य स्त्रीवध्यस्य वरानने ॥९
अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतोरणि.।
विवेश देहे देवस्य देवेशी जन्मतत्परा ॥१०
एकेनांशेन देवेशं प्रविष्टा देवसत्तमम्।
न विवेद तदा ब्रह्मा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥११
गिरिजा पूर्ववच्चक्षोदृष्ट्वा पार्श्वस्थिता शुभाम्।
मायया मोहितस्तस्या सर्वज्ञोपि चतुर्मुख ॥१२
सा प्रविष्टा तनुं तस्य देवदेवस्य पार्वती।
कण्ठस्थेन विषेणास्य तनुं चक्रे तदात्मनः। १३
तां च दृष्ट्वा तथाभूता तृतीयेनेक्षणेन वै।
ससर्ज काली कामारि कालकण्ठी कपर्दिनीम् ॥१४

को नहीं जाना था ॥११॥ पूर्व की भाँति शम्भु के समीप में स्थित शुभा गिरिजा को देखकर सर्वज्ञ ब्रह्मा भी उस देवी की माया से मोहित हो गये थे ॥१२॥ वह पार्वती देवों के देव शिव के शरीर में प्रविष्ट हो गई और इनके कण्ठ में स्थित विष से उसने अपना शरीर धारण किया था ॥१३॥ उस देवी को उस स्थिति में जानकर काम के मर्दन करने वाले शिव ने काल कण्ठी कपर्दिनी काली का सृजन किया था ॥१४॥

जाता यदा कालिमकालकंठी जाता तदानी विपुला जयश्रीः ।
देवेतराणामजयस्त्वसिद्धया तुष्टिर्भवान्या परमेश्वरस्य ॥१५
जाता तदानीं सुरसिद्धसघा दृष्ट्वा भयाद्दुद्रुवुरग्निकल्पाम् ।
काली गरालङ्कृतकालकंठीमुपेंद्रपद्मोद्भवशक्रमुख्या ॥१६
तथव जात नयनं ललाटे सिताशुलेखा च शि ःयुदग्रा ।
कठे करालं निशितं त्रिशूलं करे करालं च वि भू णानि ॥१७
सार्धं दिव्यांबरा देव्याः सर्वाभरण भूषिताः ।
सिद्धेंद्रसिद्धाश्च तथा पिशाचा जज्ञिरे पुनः ॥१८
आज्ञया दारुक तस्याः पार्वत्याः परमेश्वरी ।
दानवं सूदयामास सूदयन्तं सुराधिपान् ॥१९
सरंभातिप्रसंगाद्वै तस्याः सर्वमिदं जगत् ।
क्रोधाग्निना च विप्रेंद्राः संबभूव तदातुरम् ॥२०
भवोपि बालरूपेण श्मशाने प्रेतसकुले ।
रुरोद मायया तस्याः क्रोधाग्नि पातुमीश्वरः ॥२१

जिस समय में विष की कालिमा से काले कण्ठ वाली काली उत्पन्न हुई थी उस समय जय श्री बहुत हो गई थी। देवों से इतर जो असुर गण थे उनकी असिद्धि से अजय हो गई और परमेश्वर की भवानी को तुष्टि हुई थी ॥१५॥ महाविष से समलङ्कृत कण्ठ वाली अग्नि के सदृश स्वरूप वाली उस अवतीर्ण भगवती काली को देखकर ब्रह्मा-विष्णु और इन्द्र आदि समस्त देवगण भय से भागने लगे थे ॥१६॥ उस काली भगवती के ललाट में उसी प्रकार का एक शिव की भाँति तीसरा नेत्र था और सिर में अति तीव्र चन्द्र की रेखा थी। उस काली के कण्ठ में महा

कालकूट विष था तथा उसके हाथ मे अति तीक्ष्ण एव कराल त्रिशूल था। वह अनेक भूषण धारण किये हुए थी ॥१७॥ उस देवी के साथ मे दिव्य अम्बर धारण करने वाली तथा समस्त आभूषणो से भूषित अनेक देवियाँ और सिद्ध एव पिशाच भी उत्पन्न हुए थे। ॥१८॥ पार्वती की आज्ञा से उस परमेश्वरी महाकाली ने सुराधियो के मारने वाले उस दारुक दानव को मार डाला था ॥१९॥ उसके वेग के अतिशय से यह सम्पूर्ण जगत् हे विप्रेन्द्रगण ! काली की क्रोधाग्नि से आतुर हो उठा था ॥२०॥ भगवान् भव भी प्रेतो से घिरे हुए काशी के श्मशान मे बाल रूप धारण कर क्रोधाग्नि का पान करने के लिये उस देवी की माया से रुदन करने लगे थे ॥२१॥

त दृष्ट्वा बालमीशान मायया तस्य मोहिता ।
उत्थाप्याघ्राय वक्षोज स्तन सा प्रददौ द्विजा ॥२२
स्तनजेन तदा सार्धं क्रोधमस्या पपौ पुन ।
क्रोधेनानेन वै बाल क्षेत्राणा रक्षकोऽभवत् ॥२३
मूर्तयोऽष्टौ च तस्यापि क्षेत्रपालस्य धीमत ।
एव वै तेन बालेन कृता सा क्रोधमूर्च्छिता ॥२४
कृतमस्या प्रसादार्थं देवदेवेन ताडवम् ।
सध्याया सर्वभुतेन्द्रै प्रेतै प्रीतेन शूलिना ॥२५
पीत्वा नृत्तामृत शम्भोराकठ परमेश्वरो ।
ननर्त सा च योगिन्य प्रेतस्थाने यथासुखम् ॥२६
तत्र सब्रह्मका देवा सेद्रोपेंद्रा समतत ।
प्रणेमुस्तुष्टुवु काली पुनर्देवी च पार्वतीम् ॥२७
एव सक्षेपत. प्रोक्त ताडव शूलिन प्रभो ।
योगानदेन च विभोस्ताडव चेति च परे ॥२८

उस बालस्वरूप ईशान को देखकर उनकी माया मोहित होती हुई देवी ने उस बालरूप को उठा लिया था और उसके मस्तक को सूघकर उसे अपना वक्षोज स्तन दे दिया था। ॥२२॥ उस स्तन के दूध के साथ बाल शिव ने इस काली देवी का क्रोध का पान किया था। इस क्रोध

से वह बाल शिव क्षेत्रों का रक्षक हो गया था ॥२३॥ उस धीमान् क्षेत्र-पाल की आठ मूर्त्तियाँ हुईं थी। इस प्रकार से उस बाल स्वरूप शिव के द्वारा वह मूच्छित हो गई थी ॥२४॥ इसकी प्रसन्नता के लिये उस समय मे देवों के देव महेश्वर ने ताण्डव किया था। वह सन्ध्या का समय था और परम प्रसन्न शूली के साथ समस्त भूतों के स्वामी एवं प्रेतगण थे ॥२५॥ उस परमेश्वरी काली देवी ने कण्ठ पर्यन्त शिव के ताण्डव नृत्य के अमृत का पान किया था और फिर वह भी उस प्रेतो के स्थान श्मशान मे सुखपूर्वक नृत्य करने लगी थी तथा समस्त योगिनियाँ भी उसके साथ नाचने लग गईं थी ॥२६॥ वहाँ पर ब्रह्मा तथा इन्द्र एवं उपेन्द्र के सहित समस्त देवो ने उस काली को और फिर पार्वती को प्रणाम किया था तथा स्तवन किया था ॥२७॥ इस प्रकार से प्रभु शूली का जो ताण्डव नृत्य हुआ था उसका संक्षेप से तुमको सुना दिया है। कुछ लोग भगवान् भव के ताण्डव नृत्य का कारण उनका योगानन्द ही बतलाते हैं ॥२८॥

॥ ७२—उपमन्यु-चरित्र ॥

पुरोमन्युना सूत गाणपत्य महेश्वरात् ।
क्षीरार्णवः कथं लब्धो वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥१
एवं कालो मुपालम्भ गते देवे त्रियम्बके ।
उपमन्युः समभ्यर्च्य तपसा लब्धवान्फलम् ॥२
उपमन्युरिति ख्यातो मुनिश्च द्विजसत्तमाः ।
कुमार इव तेजस्वी क्रीडमानो यदृच्छया ॥३
कदाचित्क्षीरमल्पं च पीतवान्मातुलाश्रमे ।
ईर्ष्यया मातुलसुतो ह्यपिबत् क्षीरमुत्तमम् ॥४
पीत्वा स्थितं यथाकामं दृष्ट्वा प्रोवाच मातरम् ।
मातर्मातर्महाभागे मम देहि तपस्विनि ॥५
गव्यं क्षीरमतिस्वादु नाल्पमुष्णं नमाम्यहम् ।
उपलालितवं पुत्रेण पुत्रमालिंग्य सादरम् ॥६

दुःखिता विललापार्ता स्मृत्वा नैर्धन्यमात्मनः ।
स्मृत्वास्मृत्वा पुनः क्षीरमुपमन्युरपि द्विजा ।
देहिदेहीति तामाह रोदमानो महाद्युतिः ॥७

इस अध्याय में भक्ति से परम प्रसन्न महेश्वर से उपमन्यु के शाश्वत प्रसाद का वर्णन किया जाता है । ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! पहिले उपमन्यु ने महेश्वर से गाणपत्य प्राप्त किया था फिर उसने क्षीरार्णव कैसे प्राप्त किया था इसे आप अब वर्णन कीजिए ॥१॥ सूतजी ने कहा—इस प्रकार से वाली देवी को उत्पन्न करके नियम्यक देव के चले जाने पर-उपमन्यु ने अभ्यर्चना करके फल की प्राप्ति की थी ॥२॥ हे द्विज-वृन्द ! कुमार के समान तेज वाला यदृच्छा से क्रीडा करता हुआ उपमन्यु-इस नाम से मुनि ख्यात हुआ था ॥३॥ किसी समय में मातुल के आश्रम में थोड़ा सा क्षीर का पान कर लिया था फिर ईर्ष्या से मामा के पुत्र ने उस उत्तम क्षीर का पान किया था ॥४॥ इच्छा पूर्वक पान करके फिर माता को देखकर उससे बोला था हे महाभागे ! हे माता ! हे माता ! हे तपस्विनि ! मुझे दे दो ॥५॥ यह गव्यक्षीर अत्यन्त स्वाद वाला है । यह थोड़ा भी कम नहीं है । मैं आपको नमस्कार करता हूँ । सूतजी ने कहा—इस प्रकार से पुत्र के द्वारा उप लालित होती हुई अर्थात् बड़े ही प्यार से कही गई उसने पुत्र का आदर के साथ आलिङ्गन करके वह अत्यन्त दुःखित हुई और अपनी निर्धनता का स्मरण करके आर्त्त यह विलाप करने लगी थी । उपमन्यु बार २ उस क्षीर को याद कर करके वह महान् द्युति वाला रोता हुआ यही कह रहा था हे माता ! मुझे क्षीर दो-क्षीर दो ॥६॥७॥

उञ्छवृत्त्यार्जितान्बीजान्स्वयं पिष्ट्वा च सा तदा ।
बीजपिष्टं तदालोड्य तोयेन कलभाषिणी ॥८
एह्येहि मम पुत्रेति सामपूर्वं ततः सुतम् ।
आलिङ्ग्यादाय दुःखार्ता प्रददौ कृत्रिमं पयः ॥९
पीत्वा च कृत्रिमं क्षीरं मात्रा दत्तं द्विजोत्तमः ।
नैतत्क्षीरमिति प्राह मातरं चातिविह्वलः ॥१०

दु.खिता सा तदा प्राह सप्रेक्ष्याघ्राय मूर्धनि ।
संमार्ज्य नेत्रे पुत्रस्य कराभ्यां कमलायते ॥११
तटिनी रत्नपूर्णास्ति स्वर्गप तालगोचराः ।
भाग्यहीना न पश्यंति भक्तिहीनाश्च ये शिवे ॥१२
राज्यं स्वर्गं च मोक्षं च भोजनं क्षीरसंभवम् ।
न लभंते प्रिय ण्येषां नो तुष्यति सदा भवः ॥१३
भवप्रसादजं सर्वं नान्यदेवप्रसादजम् ।
अन्यदेवेषु निरता दुःखार्त्ता विभ्रमंति च ॥१४

उस समय मे शिलोच्छ वृत्ति से उपार्जित किये हुए बीजों को उसने पीस लिया था और उन बीजो की पिष्टि को उसने जल के साथ आलोडित कर लिया था। मधुर भाषण करने वाली उसने हे बेटा! मेरे पास चले आओ—ऐसे बहुत शान्ति के साथ पुत्र का आलिङ्गन करके दुःख से आर्त्ता उसने अपने पुत्र को वह बनावटी दूध दे दिया था ॥८॥ ॥६॥ हे द्विजोत्तम! उस कृत्रिम (बनावटी) क्षीर को पीकर जो कि माता के द्वारा बना कर दिया गया था। यह क्षीर। नही है—ऐसा अत्यन्त विह्वल होकर वह माता से बोला ॥१०। उस समय अत्यन्त दु.खित होती हुई उसने अपने पुत्र को देखकर तथा उसके मस्तक को सूंघ कर और अपने हाथो से कमल के समान विशाल उसके नेत्रो के आंसुओ को पोंछ कर वह बोली-॥११॥ बेटा, रत्नो से परिपूर्ण रहने वाली और स्वर्ग तथा पाताल मे गोचर-होने वाली है। जो शिव मे भक्ति से रहित होते हैं वे भाग्यहीन पुरुष उसे नही देखते हैं ॥१२॥ जिन पर शिव सर्वदा सन्तुष्ट नही रहते हैं वे राज्य-स्वर्ग-मोक्ष-और क्षीर से बनने वाला भोजन इनकी प्रिय वस्तुऐं नही प्राप्त किया करते हैं ॥१३॥ यह सभी कुछ शिव के ही प्रसाद से प्राप्त हुआ करते हैं और अन्य देवो की प्रसन्नता से नही प्राप्त होते है। जो अन्य देवो मे निरत रहा करते हैं वे दुःख से आर्त्त होकर भ्रमण किया करते है ॥१४॥

क्षीरं तत्र कुतोऽस्माकं महादेवो न पूजितः ।
पूर्वे जन्मनि यद्दत्तं शिवमुद्दिश्य वै सुत ॥१५

तदेव लभ्यं नान्यत्तु विष्णुमुद्दिश्य वा प्रभुम् ।
निशम्य वचनं मातुरुपमन्युर्महाद्युतिः ॥१६
बालोपि मातरं प्राह प्रणिपत्य तपस्विनीम् ।
त्यज शोकं महाभागे महादेवोस्ति चेत्क्वचित् ॥ ७
चिराद्वा ह्यचिराद्वापि क्षीरोदं साधयाम्यहम् ।
ता प्रणम्यैवमुक्त्वा स तपः कर्त्तुं प्रचक्रमे ॥१८
तमाह माता सुशुभं कुर्वीति सुतरां सुतम् ।
अनुज्ञातस्तया तत्र तपस्तेपे सुदुस्तरम् ॥१६
हिमवत्पर्वतं प्राप्य वायुभक्षः समाहितः ।
तपसा तस्य विप्रस्य विधूपितमभूज्जगत् ॥२०
प्रणम्याहुस्तु तत्सर्वे हरये देवसत्तमाः ।
श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान्पुरुषोत्तमः । २१

वहाँ हम लोगों को क्षीर कैसे प्राप्त हो सकता है क्योंकि हमने कभी शिव का पूजन नहीं किया है। हे बेटा, पूर्व जन्म में भगवान् शिव का उद्देश्य करके जो दिया है वह ही मिलता है और विष्णु का उद्देश्य करके जो कुछ किया है उससे अन्य कुछ भी नहीं मिलता है। महान् द्युति वाले उस उपमन्यु ने माता के इस वचन को सुनकर उस बालक ने भी अपनी माता से कहा और उस तपस्विनी को प्रणाम किया था। उपमन्यु ने कहा—हे महाभागे! यदि कहीं पर भी महादेव हैं तो तू अपना शोक त्याग दे ॥१५॥१६॥१७॥ शीघ्रता से या देर से मैं क्षीरोद का अवश्य ही साधन करूँगा। सूतजी ने कहा—उस उपमन्यु ने अपनी माता को प्रणाम करके तपस्या करना प्रारम्भ कर दिया था ॥१८॥ उसकी माता उससे बोली—शिव का आराधन मेरे पुत्र को शुभ कल्याण युक्त करे—इस प्रकार से अपनी माता के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके उसने कठिन तपश्चर्या की थी ॥१६॥ हिमालय पर्वत में जाकर केवल वायु का भक्षण करके बहुत समाहित होते हुए उसने तप किया था। उसके तप से सम्पूर्ण जगत् विधूपित हो गया था ॥२०॥ उस समय सब देवताओं ने प्रणाम करके हरि से कहा था और भगवान् पुरुषोत्तम उसी समय

उनके वाक्य का श्रवण किया था ।।२१।।

किमिदं त्विति संचित्य ज्ञात्वा तत्कारणं च सः ।
जगाम मंदर तूर्णं महेश्वरदिदृक्षया ।।२२
दृष्ट्वा देव प्रणम्यैव प्रोवाचेदं कृतांजलिः ।
भगवन् ब्राह्मणः कश्चिदुपमन्युरितिश्रुतः ।।२३
क्षीरार्थमदहत्सर्वं तपसा तं निवारय ।
एतस्मिन्नतरे देवः पिनाकी परमेश्वरः ।
शक्ररूपं समास्थाय गतुं चक्रे मति तदा ।।२४
अथ जगाम मुनेस्तु तपोवनं गजवरेण सितेन सदाशिवः ।
सह सुरासुरसिद्धमहोरगैरमरराजतनुं स्वयमास्थितः ।।२५
सहैव चारुह्य तदा द्विप तं प्रगृह्य वालव्यजन विवस्वान् ।
वामेन शच्या सहितं सुरेन्द्रं करेण चान्येन सितात पत्रम् ।।२६
रराज भगवान् सोमः शक्ररूपी सदाशिवः ।
सितातपत्रेण यथा चंद्रबिंबेन मंदरः ।।२७
आस्थायैवं हि शक्रस्य स्वरूपं परमेश्वरः ।
जगामानुग्रह कर्त्तुमुपमन्योस्तदाश्रमम् । २८

यह क्या है—ऐसा भली-भाँति विचार करके और उसके कारण को जानकर भगवान् महेश्वर के दर्शन करने की इच्छा से शीघ्र ही मन्दराचल पर गये थे ।।२२।। इसी बीच मे देव परमेश्वर पिनाकी ने शक्र (इन्द्र) के स्वरूप मे समास्थित होकर उस समय मे जाने का विचार किया था । भगवान् देव का दर्शन करके और हाथ जोड करके हरि ने यह कहा था । हे भगवन् ! कोई उपमन्यु नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण है । उसने क्षीर के लिये तप के द्वारा सब का दहन कर दिया है । उसका निवारण करिये ।।२३।।२४।। इसके अनन्तर भगवान् सदा शिव श्वेत श्रेष्ठ गज के द्वारा उस तपोवन मे गये जहाँ वह मुनिवर तपश्चर्या कर रहा था । उनके साथ समस्त सुर-असुर-सिद्ध-महोरग थे और वे स्वयं देवराज के स्वरूप मे समास्थित थे ।।२५।। उनके साथ ही उस समय मे वालव्यजन ग्रहण करके विवस्वान् उस हाथी पर समारूढ़ थे । वाम

भाग मे शची के सहित सुरेन्द्र थे जो अन्य कर से सित आतपत्र (छत्र) ग्रहण किये हुए थे। उस समय मे शक्र के रूप वाले सदा शिव सोम सुशोभित हो रहे थे। जिस तरह चन्द्र के बिम्ब से मन्दर गिरि शोभा युक्त होता है उसी तरह उस श्वेत आत पत्र से भगवान् सदा शिव शोभा सम्पन्न हुए थे ॥२५॥२६॥२७॥ इस प्रकार से परमेश्वर शिव ने इन्द्र का स्वरूप धारण करके उपमन्यु के आश्रम मे उस पर अनुग्रह करने के लिये पदार्पण किया था। ॥२८॥

स दृष्ट्वा परमेशान शक्ररूपधर शिवम् ।
प्रणम्य शिरसा प्राह मुनिमु निवरा. स्वयम् ॥२९
पावितश्चाश्रमश्चाय मम देवेश्वरः स्वयम् ।
प्राप्त शक्रो जगन्नाथो भगवान्भानुना प्रभु ॥३०
एवमुक्त्वा स्थित वीक्ष्य कृताजलिपुट द्विजम् ।
प्राह गभीरया वाचा शक्ररूपधरो हर ॥३१
तुष्टोस्मि ते वर ब्रूहि तपसानेन सुव्रत ।
ददामि चेप्सिता-सर्वान्धौम्याग्रज महामते । ३२
एवमुक्तस्तदा तेन शक्रेण मुनिसत्तमः ।
वरयामि शिवे भक्तिमित्युवाच कृताजलि ॥३३
ततो निशम्य वचन मुने कुपितवत्प्रभु ।
प्राह सव्यग्रमीशान शक्ररूपधर स्वयम् ॥३४
मा न जानासि देवर्षे देवराजानमीश्वरम् ।
त्रैलोक्याधिपति शक्र सर्वदेवनमस्कृतम् ॥३५

उन परमेश को इन्द्र के रूप मे संस्थित देखकर मुनि ने भगवान् शिव को प्रणाम किया था और मुनि श्रेष्ठ स्वयं बोले। मेरा यह आश्रम आज देवेश्वर ने स्वयं पवित्र कर दिया है। जगत् के स्वामी प्रभु भगवान् शक्र भानु के सहित यहाँ पर प्राप्त हुए हैं ॥२९॥३०॥ इस तरह से कहकर हाथ जोड़कर स्थित द्विज को देखकर शक्र के स्वरूप को धारण करने वाले भगवान् शिव गम्भीर वाणी द्वारा बोले। हे सुव्रत ! मैं तुम्हारी इस तपस्या से बहुत ही सन्तुष्ट एवं परम प्रसन्न हो गया हूँ। अब

शुभ वरदान माँग लो । हे धौम्याग्रज महान् मति वाले ! तुमको मैं समस्त अभीष्ट देता हूँ ॥३१॥३२॥ इस प्रकार से उस शक्ररूपी शिव के द्वारा कहे गये उस मुनि श्रेष्ठ ने अपने हाथ जोड़कर कहा था कि मैं शिव में परम भक्ति का वरदान चाहता हूँ ॥३३॥ इसके पश्चात् मुनि के इस वचन को सुनकर शक्र के रूप को धारण करने वाले प्रभु ईशान कुपित की भाँति व्यग्रता के साथ यह वचन बोले ! हे देवर्षे ! देवों के राजा प्रभु मुझको क्या तुम नहीं जानते हो ? मैं त्रैलोक्य का स्वामी हूँ और समस्त देवताओं के द्वारा वन्द्यमान इन्द्रदेव हूँ ॥३४॥३५॥

मद्भक्तो भव विप्रर्षे मामेवार्चय सर्वदा ।
ददामि सर्वं भद्रं ते त्यज रुद्रं च निर्गुणम् ॥३६
ततः शक्रस्य वचनं श्रुत्वा श्रोत्रविदारणम् ।
उपमन्युरिदं प्राह जपन्पञ्चाक्षरं शुभम् ॥३७
मन्ये शक्रस्य रूपेण नूनमत्रागतः स्वयम् ।
कर्त्तुं दैत्याधमः कश्चिद्धर्मविघ्नं च नान्यथा ॥३८
त्वयैव कथितं सर्वं भवनिंदारतेन वै ।
प्रसंगाद्देवदेवस्य निर्गुणत्वं महात्मनः ॥३९
बहुनात्र किमुक्तेन मयाद्यानुमितं महत् ।
भवांतरकृतं पापं श्रुता निंदा भवस्य तु ॥४०
श्रुत्वा निंदां भवस्याथ तत्क्षणादेव सत्यजेत् ।
स्वदेहं तं निहत्याशु शिवलोकं स गच्छति ॥४१
यो वाचोत्पाटयेज्जिह्वां शिवनिंदारतस्य तु ।
त्रिः सप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोकं स गच्छति ॥४२

का स्वरूप धारण करके यहाँ पधारे हो। कोई अधम दैत्य ने धर्म मे विघ्न उत्पन्न करने के लिये ही ऐसा किया है अन्यथा ऐसा नही होता ॥३८॥ भव की निन्दा मे रत आपने ही यह सब कुछ कहा है। आपने ही प्रसङ्ग वश देवो के देव महात्मा की निर्गुणता बताई है ॥३९॥ इस विषय मे मैं अधिक क्या बताऊँ। मैंने आज महान् अनुमान किया है कि निश्चय ही अन्य जन्म का मेरा कोई मेरा पाप है जिससे इस समय मे मैंने शिव की निन्दा का श्रवण किया है ॥४०॥ भगवान् शिव की निन्दा को सुनकर शीघ्र ही उसका हनन कर अपने देह का त्याग कर देना चाहिए वह पुरुष शिव लोक को जाता है ॥४१॥ जो शिव के निन्दक की बोलने वाली जिह्वा को खीच लेता है और उखाड कर फैंक देता है वह पुरुष अपने इक्कीस कुलो का उद्धार करके अन्त मे शिवलोक को चला जाता है ॥४२॥

आस्तां तावन्ममेच्छाया क्षीरं प्रति सुराधमम् ।
निहत्य त्वा शिवास्त्रेण त्यजाम्येतत्कलेवरम् ॥४३
पुरा मात्रा तु कथितं तत्थ्यमेव न सशयः ।
पूर्वजन्मनि चास्माभिरपूजित इति प्रभुः ॥४४
एवमुक्त्वा तु त देवमुपमन्युरभीतवत् ।
शक्रं चक्रे मति हतु मथर्वास्त्रेण मत्रवित् ॥४५
भस्माधारान्महातेजा भस्ममुष्टि प्रगृह्य च ।
अथर्वास्त्रं ततस्तस्मै ससर्ज च ननाद च ॥४६
दग्धुं स्वदेह माग्नेयी ध्यात्वा वै धारणा तदा ।
अतिष्ठद्य महातेजाः शुष्केधनमिवाव्ययः ॥४७
एवं व्यवसिते विप्रे भगवान्भगनेत्रहा ।
वारया मास सौम्येन धारणा तस्य योगिन. ॥४८
अथर्वास्त्रं तदा तस्य सहृत चंद्रिकेण तु ।
कालाग्निसदृश चेदं नियोगान्नंदिनस्तथा ॥४९

मेरी यह क्षीर के प्रति जो इच्छा है उसे यही रहने दिया जावे। मैं सुरो मे अधम तुमको मारकर शिवास्त्र से अपने शरीर का त्याग दिये

देता हूँ ।।४३।। पहिले ही माता ने जो भी कहा था वह बिल्कुल सत्य है–इसमे कुछ भी संशय नही है कि हमने अपने पूर्व जन्म मे प्रभु की पूजा नही की थी ।।४४।। इस तरह कहकर उपमन्यु ने अभीत की भाँति उस देवराज इन्द्र को मन्त्र के वेत्ता ने अथर्वास्त्र मे मार देने का विचार किया था ।।४५।। महान् तेजस्वी ने भस्म के आधार से एक भस्म की मुट्ठी लेकर फिर उसके लिये अथर्वास्त्र का सृजन किया था और जोर से ध्वनि की थी ।।४६।। अपने देह को दग्ध करने के लिये आग्नेयी धारणा का उस समय ध्यान किया था और महान् तेज वाला शुष्क ईंधन की तरह वह अव्यय स्थित हो गया था ।।४७।। इस प्रकार से विप्र के निश्चय कर लेने पर भगवान् भग के नेत्रो के हनन करने वाले शिव ने बडी सौम्यता से उस योगी की धारणा का वारण किया था ।।४८।। उस समय मे नन्दी के वियोग से कालाग्नि के समान जो अथर्वास्त्र था उसको उसके चन्द्रिक नाम वाले गण के द्वारा सहृत कर लिया गया था ।।४९।।

स्वरूपमेव भगवानास्थाय परमेश्वर. ।
दर्शयामास विप्राय बालेंदुकृतशेखरम् ।।५०
क्षीरधारासहस्रं च क्षीरोदार्णवमेव च ।
दध्यादेरर्णव चैव घृ तोदार्णवमेव च ।।५१
फलार्णवं च बालस्य भक्ष्यभोज्यार्णवं तथा ।
अपूप गिरयश्चैव तथातिष्ठन् समंतत. ।।५२
उपमन्युमुवाच सस्मितो भगवान्बंधुजनैः समावृतम् ।
गिरिजामवलोक्य सस्मितां सघृणं प्रेक्ष्य तु तं तदा घृणी ।।५३
भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं बांधवैः पश्य वत्स मे ।
उपमन्यो महाभाग तवांबेया हि पार्वती ।।५४
मया पुत्री कृतोस्यद्य दत्त. क्षीरोदधिस्तथा ।
मधुनश्चार्णवश्चैव दध्नश्चार्णव एव च । ५५
आज्योदनार्णवश्चैव फललेह्यार्णवस्तथा ।
अपूपगिरयश्चैव भक्ष्यभोज्यार्णवः पुनः ।।५६..
पिता तव महादेवः पिता वै जगतां मुने ।

माता तव महाभागा जगन्माता न संशयः ॥५७
अमरत्वं मया दत्तं गाणपत्यं च शाश्वतम् ।
वरान्वरय दास्यामि नात्र कार्या विचारणा ॥५८

इसके अनन्तर भगवान् परमेश्वर ने अपने ही स्वरूप को धारण कर लिया था और बाल चन्द्र द्वारा शेखर से शोभित उस स्वरूप को विप्र के लिये दिखा दिया था ॥५०॥ क्षीर की सहस्र धारा तथा क्षीरोद सागर-दधि आदि का अर्णव-घृतोद अर्णव फलार्णव और बाल का भक्ष्य भोज्य का अर्णव तथा अपूप पर्वत उसके चारों ओर स्थित थे ॥५१॥५२॥ फिर भगवान् मुस्कराहट के साथ बन्धुजनों से समावृत उस उपमन्यु से बोले और स्मित से युक्त गिरिजा को देखकर घृणी ने घृणा से युक्त उसको देखकर कहा था ॥५३॥ हे वत्स उपमन्यु ! हे महाभाग ! बान्धवों के साथ देखो और यथेच्छया भोगों का उपभोग करो। यह पार्वती तेरी अम्बा हैं ॥५४॥ मैंने आज तुझे अपना पुत्र बना लिया है और यह क्षीरोदधि तुझे दे दिया है । इसके अतिरिक्त मधु का अर्णव-दधिका अर्णव आज्योदार्णव-फल लेह्यार्णव अपूप गिरिगण और भक्ष्य भोज्यों का अर्णव भी तुझे दिये हैं । हे मुने ! समस्त जगतों का पिता महादेव तेरे पिता हैं और जगत् की जननी यह महान् भाग वाली पार्वती तेरी माता हैं ॥५५॥५६॥५७॥ इसमें कुछ भी संशय कभी मत करना । मैंने तुझे अमरत्व प्रदान कर दिया है और शाश्वत गाणपत्य पद भी द दिया है। अन्य जो भी तू वरदान चाहता है, माँग ल, मैं सब तुझे दे दूँगा—इसमें कुछ भी विचार मत करना ॥५८॥

एवमुक्त्वा महादेवः कराभ्यामुपगृह्य तम् ।
आघ्राय मूर्ध्नि विभुर्ददौ देव्यास्तदा भवः ॥ ६
देवी तनयमालोक्य ददौ तस्मै गिरीन्द्रजा ।
योगैश्वर्यं तदा तुष्टा ब्रह्मविद्या द्विजोत्तमा ॥६०
सोपि लब्ध्वा वरं तस्याः कुमारत्वं च सर्वदा ।
तुष्टाव च महादेवं हर्षगद्गदया गिरा ॥६१
वरयामास च तदा वरेण्यं विरजेक्षणम् ।

कृतांजलिपुटो भूत्वा प्रणिपत्य पुन पुनः ॥६२
प्रसीद देवदेवेश त्वयि चाव्यभिचारिणी ।
श्रद्धा चैव महादेव सान्निध्य चैव सर्वदा ॥६३
एवमुक्तस्तदा तेन प्रहसन्निव शंकरः ।
दत्वेप्सित हि विप्राय तत्रैवातरधीयत ॥६४

महादेव ने इस प्रकार से उस उपमन्यु से कहा और दोनों अपने हाथों से उसे ग्रहण कर लिया था। शिव ने उसे हाथों से उठाकर उसके मस्तक को सूघा और फिर विभु भव ने उस समय उसे देवी पार्वती को दे दिया था ॥५६॥ गिरि शिरोमणि की तनया देवी पार्वती ने पुत्र को देखकर उस समय मे परम तुष्ट होकर हे द्विजोत्तमो ! उसे योगैश्वर्य और ब्रह्म विद्या प्रदान की थी ॥६०॥ वह उपमन्यु भी उस जगदम्बा के वर को तथा सर्वदा कुमारत्व को प्राप्त कर बडे ही हर्ष से गदगद वाणी के द्वारा उसने महादेव का स्तवन किया था ॥६१॥ उस समय उसने विरजेक्षण वरेण्य का वरदान प्राप्त किया था और हाथ जोडकर वारम्वार प्रणाम किया था। ६२॥ उपमन्यु ने कहा—हे देवो के भी देवेश्वर ! प्रसन्नता कीजिए। मुझे आप अपने मे अव्यभिचारिणी भक्ति प्रदान करें। हे महादेव ! आप मे मेरी अटूट श्रद्धा हो और सदा-सर्वदा आप का ही मुझे सान्निध्य मिलता रहे ॥६३॥ इस तरह से जब शिव से प्रार्थना उपमन्यु ने की तो भगवान् शङ्कर ने हँसते हुए उस विप्र को सम्पूर्ण ईप्सित वर प्रदान कर दिये थे और फिर वही पर अन्तर्हित हो गये ॥६४॥

॥ ७२—उपमन्यु द्वारा श्रीकृष्ण को शिवदीक्षा ॥

दृष्टोऽसौ वासुदेवेन कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।
धौम्याग्रज स्ततो लब्ध दिव्य पाशुपत व्रतम् ॥१
कथ लब्ध तदा ज्ञान तस्मात्कृष्णेन धीमता ।
वक्तुमर्हसि ता सूत कथा पातकनाशिनीम् ॥२
स्वेच्छया ह्यवतीर्णोपि वासुदेव सनातन ।
निंदयन्नेव मानुष्य देहशुद्धिं चकार स. ॥३

पुत्रार्थं भगवांस्तत्र तपस्तप्तुं जगाम च ।
आश्रम चोपमन्योर्वै दृष्टवांस्तत्र त मुनिम् ॥४
नमश्चकार तं दृष्ट्वा धौम्याग्रजमहो द्विजाः ।
बहुमानेन वै कृष्णस्त्रिः कृत्वा वै प्रदक्षिणम् ॥५
तस्यावलोकनादेव मुनेः कृष्णस्य धीमतः ।
नष्टमेव मलं सर्वं कायजं कर्म्मजं तथा ॥६
भस्मनोद्धूलन कृत्वा उपमन्युर्महाद्युतिः ।
तमग्निरिति विप्रेन्द्रा वायुरित्यादिभिः क्रमात् ॥७
दिव्यं पाशुपत ज्ञानं प्रददौ प्रीतमानसः ।
मुनेः प्रसादान्मान्योऽसौ कृष्णः पाशुपते द्विजाः ॥८

इस अध्याय मे उपमन्यु से श्री कृष्ण का शैव विधादि के कथन का वर्णन किया जाता है। ऋषियों ने कहा—अक्लिष्ट कर्म वाले वासुदेव कृष्ण ने इसको देखा था और धौम्याग्रज ने उनसे दिव्य पाशुपत व्रत की प्राप्ति की थी। उस समय धीमान् कृष्ण ने यह ज्ञान कैसे प्राप्त किया था ? हे सूतजी ! आप इस पातको के नाश करने वाली सम्पूर्ण कथा बताने के योग्य होते हैं ॥१॥२॥ सूतजी ने कहा—सनातन वासुदेव भगवान् अपनी ही इच्छा से यहाँ अवतीर्ण हुए थे तो भी मानुष्यता की निन्दा करते हुए उन्होने देह की शुद्धि की थी ॥३॥ भगवान् यहाँ पर पुत्र के लिये तप करने को गये थे। वहाँ पर उनने वह मुनि का आश्रम देखा और मुनि को भी देखा था ॥४॥ हे द्विजगण ! भगवान् ने उस धौम्याग्रज को देखकर प्रणाम किया था। कृष्ण ने बहुमान करने के कारण उस मुनि की तीन प्रदक्षिणाऐं की थी ॥५॥ उस मुनि के अवलोकन मात्र से ही धीमान् कृष्ण का कायज तथा कर्मज मल नष्ट हो गया था ॥६॥ महान् द्युति से समन्वित उपमन्यु ने भस्म से उद्धूलित करके हे विप्रेन्द्रगण ! उस कृष्ण को अग्नि और वायु इस क्रम से प्रसन्न मन वाले मुनि ने परम दिव्य पाशुपत ज्ञान का प्रदान कर दिया था। मुनि के ही प्रसाद से यह कृष्ण भी पाशुपत ज्ञान मे अति मान्य हो गये थे ॥७॥८॥

तपसा त्वेकवर्षान्ते दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ।
साब सगणमव्यग्रं लब्धवान्पुत्रमात्मन. ।।६
तदाप्रभृति तं कृष्णं मुनय. सशितव्रताः ।
दिव्याः पाशुपता. सर्वे तस्थु संवृत्य सर्वदा ।।१०
अन्य च कथयिष्यामि मुक्त्यर्थं प्राणिना सदा ।
सौवर्णी मेखला कृत्वा प्राधारं दण्डधारणम् ।।११
सौवर्णं पिडिकं चापि व्यजन दण्डमेव च ।
नरैं स्त्रियाथ वा कार्यं मषीभाजनलेखनीम् ।।१२
क्षुराकर्त्तरिका चापि अथ पात्रमथापि वा ।
पाशुपताय दातव्य भस्मोद्धूलितविग्रहैः ।। ३
सौवर्णं राजत वापि ताम्र वाथ निवेदयेत् ।
आत्मवित्तानुसारेण योगिनं पूजयेद्बुधः ।।१४

इसके अनन्तर एक वर्ष के पश्चात् अन्त मे तप करने महेश्वर भगवान् का दर्शन प्राप्त किया था जो कि अम्बा के साथ और गणो के साथ साथ विद्यमान थे तथा अव्यग्र स्वरूप वाले थे। उन शिव के दर्शन से कृष्ण न अपना पुत्र भी प्राप्त किया था ।।६।। तभी से लेकर उन कृष्ण को सशित व्रत वाले मुनिगण जो परम दिव्य एव पाशुपत ज्ञान वाले थे सर्वदा उनको सवृत करके स्थित रहा करते थे ।।१०।। इसके अतिरिक्त अन्य भी व्रत मैं बतलाता हूँ जो कि सदा प्राणियो की मुक्ति के लिये उपयुक्त होते हैं। सुवर्ण की मेखला करके और उसका आधार दण्ड की भाँति करे। सुवर्ण का पिडिक-व्यजन-दण्ड और मषी पात्र से युक्त लेखनी करे। स्त्री हो अथवा पुरुष हो सभी को करना चाहिए। क्षुर के सहित कर्त्तरिका (कैंची) तथा जलपात्र भी सुवर्ण निर्मित करके भस्म से उद्धूलित शरीर वालो को पाशुपत व्रत के लिये देना चाहिए। सुवर्ण की य सब उपर्युक्त वस्तुएँ न हो सकें तो चाँदी की हों अथवा ताम्र की होवें। बुध को अपने वित्त के अनुसार ही निवेदन कर योगी की अर्चा करनी चाहिए ।।११।।१२।।१३।।१४।।

ते सर्वे पापनिर्मुक्ता समस्तकुलसंयुता. ।

याति रुद्रपद दिव्यं नात्र कार्या विचारणा ।।१५
तस्मादनेन दानेन गृहस्थो मुच्यते भवात् ।
योगिना सप्रदानेन शिवः क्षिप्र प्रसीदति ।।१६
राज्यं पुत्र धनं भव्यमश्वं यानमथापि वा ।
सर्वस्वं वापि दातव्य यदीच्छेन्मोक्षमुत्तमम् ।।१७
अध्रुवेण शरीरेण ध्रुव साध्यं प्रयत्नत ।
भव्य पाशुपतं नित्य संसारार्णवतारकम् ।।१८
एतद्वः कथित सर्वं संक्षेपान्न च संशयः ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि विष्णुलोक स गच्छति ।।१९

ऐसे समस्त दान करने वाले पुरुष अपने सम्पूर्ण कुल से युक्त पापो से निर्मुक्त होकर परम दिव्य रुद्र भगवान् के पद की प्राप्ति किया करते हैं—इसमे कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है अर्थात् ऐसा फल प्राप्त करना निश्चित एव ध्रुव है ।।१५।। इस लिये इस प्रकार के दान करने से गृहस्थ मे रहने वाला पुरुष ससार के बन्धन से मुक्त हो जाया करता है । योगियो के लिये ऐसा दान देने से भगवान् शिव बहुत ही शीघ्र प्रसन्न हो जाया करते हैं ।।१६।। यदि मोक्ष प्राप्त करने की कोई इच्छा रखना है तो उसे राज्य-धन-भव्य अश्व-यान एव सर्वस्व का दान कर देना चाहिए ।।१७।। यह शरीर तो अनित्य है । इसके द्वारा प्रयत्न पूर्वक ध्रुव एव नित्य वस्तु की साधना करनी चाहिए । पाशुपत परम भव्य-नित्य और ससार रूपी समुद्र से तारण करने वाला व्रत होता है ।।१८।। हमने यह सम्पूर्ण व्रत का विधान सक्षेप से तुमको बतला दिया है—इसमे तनिक भी सशय नही है । जो पुरुष इस विधान का पठन किया करता है अथवा इसका श्रवण करता है वह सीधा विष्णु लोक को चला जाता है ।।१९।।

।। ७३—कौशिक का वैष्णव गायन ।।

कृष्णस्तुष्यति केनेह सर्वदेवेश्वरेश्वरः ।
वक्तुमर्हसि चास्माक सूत सर्वार्थविद्भवान् ।।१

पुरा पृष्टो महातेजा मार्कंडेयो महामुनिः ।
अबरीषेण विप्रेद्रास्तद्वदामि यथातथम् ॥२
मुने समस्तधर्माणां पारगस्त्वं महामते ।
मार्कंडेय पुराणोऽसि पुराणार्थविशारदः ॥३
नारायणाना दिव्याना धर्माणा श्रेष्ठमुत्तमम् ।
तत्कि ब्रूहि महाप्राज्ञ भक्तानामिह सुव्रत ॥४
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा समुत्थाय कृताजलिः ।
स्मरन्नारायणं देवं कृष्णमच्युतमव्ययम् ॥५
शृणु भूप यथान्याय पुण्यं नारायणात्मकम् ।
स्मरणं पूजन चैव प्रणामो भक्तिपूर्वकम् ॥६
प्रत्येकमश्वमेधस्य यज्ञस्य सममुच्यते ।
य एकः पुरुषः श्रेष्ठ परमात्मा जनार्दनः ॥७

इस लिङ्ग महा पुराण के उत्तर भाग के प्रथम अध्याय मे परम साध्य और अत्यन्त प्रियात्मा विष्णु के गान से परम प्रीति होती है— इस कथा का निरूपण किया जाता है। ऋषियो ने कहा—हे सूतजी ! आप तो समस्त अर्थों के परम ज्ञाता हैं। अब कृपा कर हमको यह बताइये कि सम्पूर्ण देवो के भी शिरोभूषण ईश्वर, भगवान् श्रीकृष्ण इस ससार मे किस विधान से परम सन्तुष्ट हुआ करते हैं ? ॥१॥ सूतजी ने कहा—हे विप्रवृन्द ! यही प्रश्न पहिले राजा अम्बरीष ने महा मुनीश्वर मार्कण्डेय जी से पूछा था जो कि महान् तेजस्वी मुनिवर थे। उसी को मैं तुमको ठीक २ बतलाता हूँ। ॥२॥ अम्बरीष ने कहा था—हे महामुने ! आप तो महान् बुद्धिमान् हैं और समस्त धर्मों के भी पारगामी ज्ञाता हैं। आप चिरजीवी होने के कारण बहुत ही पुराने भी हैं तथा पुराणों के अर्थ के ज्ञाता परम पण्डित हैं ॥३॥ सो अब यह बतलाइये कि नारायण के उत्तम एवं दिव्य धर्मों मे परम श्रेष्ठ एवं अत्युत्तम धर्म क्या है। हे महान् प्रज्ञा सम्पन्न पण्डित प्रवर ! हे सुव्रत ! जो भी भक्तों के लिये अति श्रेष्ठ हो उसे बतलाइये ॥४॥ सूतजी ने कहा—राजा अम्बरीष के इस वचन को सुनकर मार्कण्डेय मुनि ने कृताञ्जलि होकर उत्थान

किया और अच्युत अव्यय श्री कृष्ण देव का स्मरण किया था ।।२।। मार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे राजन् ! तुम श्रवण करो । नारायण स्वरूप पुण्य न्याय के अनुसार जो भी होता है । इनका स्मरण करना—पूजन करना और भक्ति भाव के साथ प्रणाम करना—इन मे प्रत्येक का फल अश्वमेध यज्ञ के समान होता है । परमात्मा जनार्दन एक ही श्रेष्ठ पुरुष हैं ।।६।।७।।

यस्माद्ब्रह्मा ततः सर्वं समाश्रित्यैव मुच्यते ।
धर्ममेकं प्रवक्ष्यामि यद्दृष्टं विदितं मया ।।८
पुरा त्रेतायुगे कश्चित् कौशिको नाम वै द्विजः ।
वासुदेवपरो नित्य सामगानरतः सदा ।।६
भोजनासन शय्यासु सदा तद्गतमानसः ।
उदारचरित विष्णोर्गायमानः पुन. पुनः ।।१०
विष्णोः स्थलं समासाद्य हरेः क्षेत्रमनुत्तमम् ।
अगायत हरिं तत्र तालवर्णलयान्वितम् ।।११
मूर्च्छनास्वरयोगेन श्रुतिभेदेन भेदितम् ।
भक्तियोगं समापन्नो भिक्षामान्नं हि तत्र वै ।।१२
तत्रैनं गायमान च दृष्ट्वा कश्चिद्द्विजस्तदा ।
पद्माख्य इति विख्यातस्तस्मै चान्नं ददौ तदा ।।१३
सकुटुंबो महातेजा ह्युष्णमन्नं हि तत्र वै ।
कौशिको हि तदा हृष्टो गायन्नास्ते हरिं प्रभुम् । १४

जिस भगवान् नारायण से ब्रह्मा होते हैं और फिर उस ब्रह्मा का समाश्रय ग्रहण कर सभी हुआ करते हैं । मैं एक धर्म के विषय मे बतलाता हूँ जो मैंने देखा है तथा जिसका मुझे ज्ञान है ।।८।। पहिले त्रेता युग मे कोई एक कौशिक नामधारी ब्राह्मण था । वह नित्य सामगान मे निरत रहकर वासुदेव परायण हुआ था । ।।६।। भोजन-आसन और शय्या के समय में भी वह सदा वासुदेव भगवान् मे ही मन रखा करता था । सर्वदा भगवान् विष्णु के प्रति उदार चरित का बारम्बार गान किया करता था ।।१०।। भगवान् विष्णु के स्थल को प्राप्त होकर जो

कि सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र होता है वहाँ पर वह हरि के गुणानुवाद को ताल तथा वर्णों की लय से युक्त गान किया करता था ॥११॥ मूर्च्छना स्वर के योग से श्रुति के भेद से भेद वाला भक्ति योग को प्राप्त हुआ वह वहाँ पर ही भिक्षा ग्रहण करके बैठ जाया करता था। अर्थात् सकुटुम्ब भिक्षा मात्र लेकर हरि का गान करके वहाँ पर ही परम प्रसन्न होकर रह जाया करता था ॥१२॥ उस समय वहाँ पर इसको गायन करते हुए किसी द्विज ने देखा था जो कि पद्माख्य-इस नाम से विख्यात था। उसने इसको अन्न दिया था ॥१३॥ यह महान् तेजस्वी सपरिवार उस उष्ण अन्न को खाकर प्रभु का गान करता हुआ परम प्रसन्न वहाँ पर ही रह गया था ॥१४॥

शृण्वन्नास्ते स पद्माख्यः काले काले विनिर्गतः।
कालयोगेन संप्राप्ताः शिष्या वै कौशिकस्य च ॥१५
सप्त राजन्यवैश्याना विप्राणा कुलसभवाः।
ज्ञानविद्याधिकाः शुद्धा वासुदेवपरायणा. ॥१६
तेषामविनयाद्य.द्यं पद्माक्ष. प्रददौ स्वयम्।
शिष्यैश्च सहितो नित्य कौशिको हृष्टमानसः ॥१७
विष्णुस्थले हरिं तत्र आस्ते गायन्यथाविधि।
तत्रैव मालवो नाम वैश्यो विष्णुपरायणः ॥१८
दीप माला हरेर्नित्यं करोति प्रीतिम नसः।
मालवी नाम भार्या च तस्य नित्यं पतिव्रता ॥१९
गोमयेन समालिप्य हरे. क्षेत्रं समंतत।
भर्त्रा सहास्ते सुप्रीता शृण्वती गानमुत्तमम् ॥२०
कुशस्थलात्समापन्ना ब्राह्मणाः शसितव्रताः।
पचाशद्वै समापन्ना हरेर्गानार्थमुत्तमाः ॥२१

वह पद्माख्य समय-समय पर विनिर्गत होता हुआ उसके गान का श्रवण किया करता था। समय के योग से उस कौशिक के शिष्य वहाँ पर आ गये थे ॥१५॥ वे सब सात थे जो ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यों के कुल मे उत्पन्न होने वाले थे। वे सब ज्ञान और विद्या में अधिक थे

तथा परम शुद्ध और वासुदेव की भक्ति में परायण रहने वाले थे ॥१६॥ उन सब को परम विशुद्ध अन्न आदि पद्माक्ष ने स्वयं दिया था। शिष्यों के सहित कौशिक नित्य ही परम प्रसन्न चित्त वाला रहता था ॥१७॥ जिस विष्णु के स्थल में यह हरि का गान करता हुआ रहता था वहाँ पर ही मालव नाम वाला एक वैश्य जो कि विष्णु की भक्ति में परायण था आया करता था ॥१८॥ वह प्रीति से युक्त मन वाला नित्य हरि की दीप माला किया करता था। उसकी मालवी नाम वाली भार्या थी जो कि उसकी नित्य पतिव्रता थी ॥१९॥ वह मालवी नित्य ही गोमय से उस हरि के क्षेत्र को सब ओर से लीप दिया करती थी और अपने स्वामी के साथ परम प्रसन्नता से उस हरि के उत्तम गान को श्रवण किया करती थी ॥२०॥ फिर कुश स्थल से व्रत ग्रहण किये हुए पचास ब्राह्मण वहाँ आ गये थे जो कि हरि गान करने में बहुत ही श्रेष्ठ थे और इसी लिये वहाँ उपस्थित भी हुए थे ॥२१॥

साधयतो हि कार्याणि कौशिकस्य महात्मनः ।
ज्ञानविद्यार्थतत्त्वज्ञा शृण्वंतो ह्यवसस्तु ते ॥२२
ख्यातमासीत्तदा तस्य गानं वै कौशिकस्य तत् ।
श्रुत्वा राजा समभ्येत्य कलिंगो वाक्यमब्रवीत् ॥२३
कौशिकाद्य गणैः सार्धं गायस्वेह च मां पुनः ।
शृणुध्वं च तथा यूयं कुशस्थलजना अपि ॥२४
तच्छ्रुत्वा कौशिक. प्राह राजानं सात्वया गिरा ।
न जिह्वा मे महाराजन् वाणी च मम सर्वदा ॥२५
हरेरन्यमपीद्रं वा स्तौति नैव च वक्ष्यति ।
एवमुक्ते तु तच्छिष्यो वासिष्ठो गौतमो हरिः ॥२६
सारस्वतस्तथा चित्रश्चित्रमाल्यस्तथा शिशुः ।
ऊचुस्ते पार्थिवं तद्वद्यथा प्राह च कौशिकः ॥२७
श्रावकास्ते तथा प्रोचुः पार्थिवं विष्णुतत्पराः ।
श्रोत्राणीमानि शृण्वंत रहिरेऽयं न पार्थिव ॥२८

महात्मा कौशिक के कार्यों का साधन करते हुए ज्ञान-विद्या और

अर्थ के तत्वो के ज्ञाता वे श्रवण करते हुए वही पर निवास कर गये थे ॥२२॥ उस समय मे उस कौशिक का गान प्रसिद्ध था । यह सुनकर कलिङ्ग-राजा वहाँ आकर यह वाक्य बोला था । हे कौशिक ! आज अपने गणो के साथ यहाँ पर मेरा गायन करो । और इस समय मे कुश स्थल के समस्त मनुष्य भी श्रवण करेंगे ॥२३॥२४॥ यह श्रवण करके कौशिक ने सान्त्वना पूर्ण वाणी से राजा से कहा था । हे राजन् ! मेरी जिह्वा और वाणी सर्वदा हरि के अतिरिक्त इन्द्र का भी स्तवन नही करती है और न कुछ बोलती है । अत यह कुछ भी नही बोलेगी । उसके ऐसा कहने पर उसके शिष्य वासिष्ठ-गौतम-हरि-सारस्वत-चित्र-चित्रमाल्य और शिशु इन सब ने भी राजा को वैसा ही उत्तर दिया था जैसा कि कौशिक ने उसे दिया था । ॥२५॥२६॥२७॥ श्रावक जो हरि गान के श्रवण करने वाले थे वे सब भी विष्णु भक्ति परायण थे और उन्होने भी राजा से उसी भाँति स्पष्ट कह दिया था कि हमारे श्रोत्र हरि कीर्तन के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नही श्रवण किया करते हैं ॥२८॥

गानकीर्ति वयं तस्य शृणुमोन्या न च स्तुतिम् ।
तच्छ्रुत्वा पार्थिवो रुष्टो गायतामिति चाब्रवीत् ॥२९
स्वभृत्यान्ब्राह्मणा ह्येते कीर्ति शृण्वति मे यथा ।
न शृण्वति कथं तस्मात् गायमाने समततः ॥३०
एवमुक्तास्तदा भृत्या जगुः पार्थिवमुत्तमम् ।
निरुद्धमार्गा विप्रास्ते गाने वृत्ते तु दुःखिता ॥३१
काष्ठशङ्कुभिरन्योन्य श्रोत्राणि विदधुर्द्विजा. ।
कौशिकाद्याश्च ता ज्ञात्वा मनोवृत्ति नृपस्य वै ॥३२
प्रसह्यास्मास्तु गायेत स्वगानेसौ नृप. स्थित ।
इति विप्रा: सुनियता जिह्वाग्रं चिच्छिदुः करैः ॥३३
ततो राजा सुसक्रुद्ध स्वदेशात्तान्यवासयत् ।
आदाय सर्वं वित्त च ततस्ते जग्मुरुत्तराम् ॥३४
दिशमासाद्य कालेन कालधर्मेण योजिता. ।
तानागतान्यमो दृष्ट्वा किं कर्तव्यमिति स्म ह ॥३५

श्रोताओं ने राजा से स्पष्ट कह दिया था कि हे राजन् हम तो केवल भगवान् की ही कीर्त्ति का गायन सुना करते हैं उसके अतिरिक्त अन्य किसी की भी स्तुति कभी नहीं सुनते हैं। यह सुनकर राजा बहुत ही रुष्ट हो गया था और गाने वालों से बोला था कि मेरे भृत्य मेरी कीर्त्ति का गान करें जिससे कि ये ब्राह्मण श्रवण करें। देखता हूँ चारों ओर से गाई गई मेरी कीर्त्ति को कैसे नहीं सुनेंगे ।।२६।३०।। उस समय इस प्रकार से जब भृत्यों से राजा ने कहा तो वे भृत्य राजा की कीर्त्ति का गान करने लगे थे। वे समस्त ब्राह्मण विरुद्ध मार्ग वाले कर दिये गये थे। गान के होने पर वे अत्यन्त दुःखित हुए थे ।।३१।। उस समय ब्राह्मणों ने काठ की खूँटियों से परस्पर में एक दूसरे के कानों को बन्द कर दिया था। कौशिक आदि ने राजा की मनोवृत्ति का समझ लिया था कि यह राजा जबर्दस्ती से हमसे अपना कीर्त्ति गान कराने के लिये स्थित हो गया है अतएव ऐसा सब ने निश्चय करके अपने ही हाथों से जिह्वा का अग्रभाग छिन्न कर दिया था ।।३२।।३३।। इस पर राजा ने बहुत ही अधिक क्रोध किया था और उनको अपने देश से निर्वासित कर दिया था। वे सब ब्राह्मण अपना धन लेकर उत्तर दिशा में चले गये थे ।।३४।। उत्तर दिशा में पहुँच कर इस स्थूल देह के वियोग से जब वे योजित हुए तो आये हुए उनको देखकर यमराज ने विचार किया कि क्या करना चाहिए इस तरह यह सम्भ्रान्त हो गया था ।।३५।।

चेष्टित तत्क्षणे राजन् ब्रह्मा प्राह सुराधिपान् ।
कौशिकादीन् द्विजानद्य वासयध्वं यथासुखम् ।।३६
गानयोगेन ये नित्य पूजयंति जनार्दनम् ।
तानानयत भद्र वो यदि देवत्वमिच्छथ ।।३७
इत्युक्ता लोकपालास्ते कौशिकेति पुन. पुन ।
मालवेति तथा केचित् पद्माक्षेति तथा परे ।।३८
क्रोशमाना समभ्येत्य तानादाय विहायसा ।
ब्रह्मलोकं गताः शीघ्रं मुहूर्तेनैव ते सुरा. ।।३९
कौशिकादींस्ततो दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामह. ।

प्रत्युद्गम्य यथान्याय स्वाग तेनाभ्यपूजयत् ॥४०
तत. कोलाहलमभूदतिगोरवमुल्वणम् ।
ब्रह्मणा चरितं दृष्ट्वा देवाना नृपमत्तम ॥४१
हिरण्यगर्भो भगवास्तान्निवार्य सुरोत्तमान् ।
कौशिकादीन्समादाय मुनीन् देवै समावृत. ॥४२

यमराज के चिन्तन के समय मे ब्रह्माजी ने उनके चरित्र को जानकर सुराधियो से कहा था कि इन कौशिक आदि द्विजो का सुख पूर्वक निवास स्थान दो ॥३६॥ ये अपने गान के योग से नित्य ही भगवान् जनार्दन का अर्चन किया करते हैं । यदि आप लोग अपने देवत्व की इच्छा रखते हैं तो आपका कल्याण होगा, आप उन्हे यहाँ लिवा लाओ ॥३७॥ ब्रह्मा जी के द्वारा ब्राह्मणो के अत्यन्त गौरव के साथ समादर करने पर देव जो लोकपाल थे उनमे बडा भारी कोलाहल उठ खडा हुआ था । वे बार २ कौशिक इस नाम से आह्वान कर रहे थे कुछ मालव इस नाम को लेकर बोल रहे थे और दूसरे पद्माक्ष नाम से पुकार रहे थे ॥३८॥ इस तरह से उनको लेकर आकाश माग से देवगण मुहूर्त मात्र मे अत्यन्त शीघ्र ब्रह्मलोक मे चले गये थे ॥३६॥ इसके अनन्तर लोको के पितामह ब्रह्मा ने कौशिकादि विप्रो को देखकर यथा विधि उनकी आगौनी करके स्वागत किया और उनकी अर्चना की थी ॥४०॥ इस प्रकार से उनका अत्यधिक गौरव देखकर बडा कोलाहल हो गया था । ब्रह्मा के द्वारा ऐसा गौरवमय व्यवहार देखकर देवो को बडा विस्मय हुआ था ॥४१ । हिरण्यगर्भ भगवान् ने उन देवो का निवारण करके कौशिकादि मुनियो को लेकर देवो से समावृत होते हुए शीघ्र ही विष्णु लोक को गये थे ॥४२॥

विष्णुलोक ययौ शीघ्र वासुदेवपरायणः ।
तत्र नारायणो देव श्वेतद्वीपनिवासिभि ॥४३
ज्ञानयोगेश्वरै· सिद्धैर्विष्णुभक्तैः समाहितै ।
नारायणसमैर्दिव्यैश्चतुर्बाहुधरै शुभै ॥४४
विष्णु चिह्नसमापन्नैर्दीप्यमानैरकल्मषै ।
अष्टाशीतिसहस्रैश्च सेव्यमानो महाजनै ॥४५

अस्माभिर्नारदाद्यैश्च सनकाद्यैरकल्मषैः ।
भूतैर्नानाविधैश्चैव दिव्यस्त्रीभिः समंततः ॥४६
सेव्यमानोथ मध्ये वै सहस्रद्वारसंवृते ।
सहस्रयोजनायामे दिव्ये मणिमये शुभे ॥४७
विमाने विमले चित्रे भद्रपीठासने हरिः ।
लोककार्ये प्रसक्तानां दत्तदृष्टिश्च माधवः ॥४८
तस्मिन्कालेऽथ भगवान् कौशिकाद्यैश्च संवृतः ।
आगम्य प्रणिपत्याग्रे तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥४९

वासुदेव भगवान् मे परायण ब्रह्मा विष्णु लोक मे पहुचे थे । वहां पर नारायण देव श्वेत द्वीप निवासियो के द्वारा परिसेवित हो रहे थे । ज्ञान योगेश्वर सिद्ध और समाहित विष्णु के भक्तो के द्वारा नारायण से व्यमान हो रहे थे । जिनका स्वरूप भी बिल्कुल नारायण के ही समान था । सब के परम शुभ एव दिव्य चार भुजाऐ थी । समस्त भगवान् के समान ही उनके चिह्न थे परम दीप्यमान एव कल्मष से रहित अट्ठासी सहस्र महान् पुरुषो के द्वारा भगवान् नारायण सेवित हो रहे थे ॥४३॥ ॥४४॥४५॥ मध्य मे हम सबसे-नारदादि-सनकादि और नाना प्रकार के कल्मष रहित प्राणियो से सेवित थे तथा सब ओर से दिव्य स्त्रियों के द्वारा से व्यमान हो रहे थे । एक सहस्र द्वारो से सवृत और सहस्र योजन के आयाम वाला-अत्यन्त दिव्य एव मणिमय परम शुभ विमान था । उस विमल एव चित्र भद्रपीठासन पर हरि विराजमान थे । माधव लोक कार्य मे प्रसक्त होने वालो पर दृष्टि दिये हुए माधव सुशोभित हो रहे थे । उस समय मे कौशिकादि से घिरे हुए भगवान् ब्रह्मा ने वहाँ आकर नारायण को प्रणाम किया और गरुड ध्वज भगवान् का स्तवन किया था ॥४६॥ ॥४७॥४८॥४९॥

ततो विलोक्य भगवान् हरिर्नारायणः प्रभुः ।
कौशिकेत्याह संप्रीत्या तान्सर्वांश्च यथाक्रमम् ॥५०
जयघोषो महानासीन्महाश्चर्ये समागते ।
ब्रह्माणमाह विश्वात्मा शृणु ब्रह्मन् मयोदितम् ॥५१

कौशिकस्य इमे विप्राः साध्यसाधनतत्पराः ।
हिताय सप्रवृत्ता वै कुशस्थलनिवासिनः ॥५२
मत्कीर्तिश्रवणे युक्ता ज्ञानतत्त्वार्थतोविदः ।
अनन्यदेवताभक्ताः साध्या देवा भवंत्विमे ॥५३
मत्समीपे तथान्यत्र प्रवेशं देहि सर्वदा ।
एवमुक्त्वा पुनर्देवः कौशिकं प्राह माधवः ॥५४
स्वशिष्यैस्त्वं महाप्राज्ञ दिग्बंधो भव मे सदा ।
गणाधिपत्यमापन्नो यत्राहं त्वं समास्व वै ॥५५
मालव मालवी चैव प्राह दामोदरो हरिः ।
मम लोके यथाकामं भार्यया सह मालव ॥५६
दिव्यरूपधरः श्रीमान् शृण्वन्गानमिहाधिप. ।
आस्व नित्य यथाकामं यावल्लोका भवंति वै ॥५७

इसके अनन्तर प्रभु भगवान् नारायण हरि ने इनको देखा और बडी प्रीति के साथ उन सब को यथा क्रम कौशिक—यह कहा था ॥५०॥ उस समय मे महान् आश्चर्य हुआ था और महान् जय-जय कार का घोष हुआ था । विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा से बोले—हे ब्रह्मन् ! आप मेरे कथन का श्रवण करो ॥५१॥ कौशिक के ये ब्राह्मण हैं वे सभी साध्य के साधन करने मे परायण रहने वाले हैं । ये सब कुशस्थल के निवासियो के हित के लिये सप्रवृत्त हुए थे ॥५२॥ ये लोग मेरी ही कीर्त्ति के श्रवण करने मे तत्पर रहा करते थे और ज्ञान के तत्त्वार्थ के पण्डित थे । ये अनन्य देव भक्त थे । ये सब मेरे साध्य देव होगे ॥५३॥ इनका प्रवेश मेरे समीप मे तथा अन्यत्र सर्वदा दे दो । इस तरह ब्रह्मा से कहकर फिर माधव भगवान् कौशिक से बोले ॥५४॥ हे महाप्राज्ञ ! तुम अपने शिष्यो के सहित सदा मेरा दिग्बन्ध हो जाओ । गणाधिपत्य को प्राप्त होते हुए जहाँ पर मैं रहूँ वहाँ पर ही तुम भी मेरे साथ मे रहो ॥५५॥ फिर दामोदर हरि मालव और मालवी से बोले – हे मालव ! तुम अपनी स्त्री के साथ यथेच्छया दिव्यरूप धारण कर यहाँ पर गान का श्रवण करते हुए अधिप जाओ । नित्य अपनी इच्छा के अनुसार यहाँ पर रहो जब तक ये

लोक हैं ॥५६॥५७॥

पद्माक्षमाह भगवान् धनदो भव माधव. ।
धनानामीश्वरो भूत्वा यथाकाल हि मा पुनः ॥५८
आगम्य दृष्ट्वा मा नित्य कुरु राज्य यथासुखम् ।
एवमुक्त्वा हरिर्विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥५६
कौशिकस्यास्य गानेन योगनिद्रा च मे गता ।
विष्णुस्थले च मा स्तौति शिष्यैरेष समन्वत ॥६०
राज्ञा निरस्त क्रूरेण कलिंगेन महीयसा ।
स जिह्वाच्छेदन कृत्वा हरेरन्य कथचन ॥६१
न स्तोष्यामीति नियत प्राप्तोसौ मम लोकताम् ।
एते च विप्रा नियता मम भक्ता यशस्विन ॥६२
श्रोत्रच्छिद्रमथाहृत्य शकुभिर्वै परस्परम् ।
श्रोष्यामो नैव चान्यद्वै हरे कीर्तिमिति स्म ह ॥६३

इसके पश्चात् भगवान् माधव पद्माक्ष से बोले तुम धनद हो जाओ। सम्पूर्ण धनो के स्वामी बनकर यथा समय मेरे पास आकर मेरा दर्शन करके सुखपूर्वक राज्य के सुख का आनन्द प्राप्त करो। इस प्रकार से हरि विष्णु भगवान् ने फिर ब्रह्मा जी से यह कहा था ॥५८॥५६॥ इस कौशिक के गान से मेरी योग निद्रा समाप्त हो गई है। यह शिष्यो से समन्वित होकर विष्णुस्थल मे मेरा स्तवन करता है ॥६०॥ क्रूरकलिङ्ग राजा के द्वारा यह निरस्त हुआ था। इसने अपनी जिह्वा का उच्छेदन कर लिया था और इसने दृढ निश्चय कर लिया था कि मैं हरि के अतिरिक्त अन्य किसी का भी स्तवन नही करूँगा। यह परम नियत था। अतएव यह मेरे लोक को प्राप्त हुआ है। ये अन्य विप्र भी नियत और मेरे भक्त हैं तथा यशस्वी हैं ॥६०॥६१॥६२॥ इन सब ने परस्पर मे अपने कानो के छिद्रो को काष्ठ की खूँटियो से आहत किया था और प्रतिज्ञा की थी कि हरि की कीर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी की भी कीर्ति को नही सुनेंगे ॥६३॥

एते विप्राश्च देवत्व मम सान्निध्यमेव च ।

केनाहं हि हरेर्यास्ये योगं देवीसमीपतः ।
अहो तुंबरुणा प्राप्तं धिङ्मां मूढं विचेतसम् ॥७८
योहं हरेः सन्निकाशं भूतैर्निर्यापितः कथम् ।
जीवन्यास्यामि कुत्राहमहो तु बरुणा कृतम् ॥७९
इति संचिंतयन् विप्रस्तप आस्थितवान्मुनिः ।
दिव्य वर्ष सहस्रं तु निरुच्छ्वाससमन्वितः ॥८०
ध्यायन्विष्णुमथाध्यास्ते तुंबरोः सत्क्रियां स्मरन् ।
रोदमानो मुहुर्विद्वान् धिङ्मामिति च चिंतयन् ॥८१
तत्र यत्कृतवान्विष्णुस्तच्छृणुष्व नराधिप ॥८२

मैं किस प्रकार से देवी के समीप से हरि के योग को प्राप्त करूँगा । अहो ! इस तुम्बरु ने उसे प्राप्त कर लिया है । मुझ मूढ़ विचेता को धिक्कार है ॥७८॥ जो मैं भूतों के द्वारा हरि के सन्निकाश को कैसे निर्यापित कर दिया गया ? मैं जीवित रहता हुआ कहाँ जाऊँगा ? अहो ! तुम्बरु ने यह किया है ॥७९॥ इस तरह से चिन्तन करते हुए वह विप्र मुनि तपश्चर्या में समास्थित हो गया था । एक सहस्र दिव्य वर्ष तक प्राणायाम में युक्त हो गया था ॥८०॥ तुम्बरु की सत्क्रिया का स्मरण करते हुए वहाँ पर ध्यान करते २ विष्णु में अधिष्ठित हो जाता है । वह विद्वान् बार-बार रुदन करता हुआ 'मुझे धिक्कार है'—ऐसी चिन्ता करता रहता था ॥८१॥ हे नराधिप ! वहाँ पर विष्णु भगवान् ने जो कुछ भी किया था अब तुम उसका श्रवण करो ॥८२॥

ततो नारायणो देवस्तस्मै सर्वं प्रदाय वै ।
कालयोगेन विश्वात्मा समं चक्रेऽथ तुंबरोः ॥८३
नारदं मुनि शार्दूलमेवं वृत्तमभूत्पुरा ।
नारायणस्य गीतानां गानं श्रेष्ठं पुनः पुनः ॥८४
गानेनाराधितो विष्णुः सत्कीर्ति ज्ञानवर्चसी ।
ददाति तुष्टिं स्थानं च यथाऽसौ कौशिकस्य वै ॥८५
पद्माक्षप्रभृतीनां च संसिद्धिं प्रददौ हरिः ।
तस्मात्त्वया महाराज विष्णुक्षेत्रे विशेषतः ॥८६

अर्चनं गाननृत्याद्यं वाद्योत्सवसमन्वितम् ।
कर्तव्यं विष्णुभक्तैर्हि पुरुषैरनिशं नृप ॥८७
श्रोतव्यं च सदा नित्यं श्रोतव्योसौ हरिस्तथा ।
विष्णुक्षेत्रे तु यो विद्वान् कारयेद्भक्तिसंयुतः ॥८८
गाननृत्यादिकं चैव विष्ण्वाख्यानं कथां तथा ।
जातिस्मृतिं च मेधां च तथैवोपरमे स्मृतिम् ॥८९
प्राप्नोति विष्णुसायुज्यं सत्यमेतन्नृपाधिप ।
एतत्ते कथितं राजन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥९०

इसके अनन्तर नारायण देव ने उसको सब प्रदान करके विश्वात्मा ने काल के योग से उसे तुम्बरू के समान ही कर दिया था ॥८३॥ पहिले मुनियो मे शार्दूल के समान नारद का वृत्त इस प्रकार का हुआ था कि भगवान् नारायण के गीतो का पुनः पुनः गान होता था ॥८४॥ गान के द्वारा आराधना किये गये भगवान् विष्णु सत्कीर्ति-ज्ञान-वर्चस-तुष्टि और स्थान प्रदान किया करते हैं जैसा कि इनने कौशिक का किया था ॥८५॥ भगवान् हरि ने पद्माक्ष आदि को संसिद्धि प्रदान की थी । इसलिये हे महाराज ! विशेष रूप से विष्णु के क्षेत्र मे आपको अर्चन-गान-नृत्य आदि वाद्योत्सव के सहित विष्णु भक्त पुरुषो को के साथ निरन्तर हे नृप ! करना चाहिए ॥८६॥८७॥ नित्य और सदा श्रवण करना चाहिए और भगवान् हरि श्रवण करने के योग्य हैं । जो विद्वान् विष्णु क्षेत्र मे भक्ति-भाव संयुत होकर ऐसा करता है । गान नृत्य आदिक तथा भगवान् विष्णु का आख्यान एव कथा किया करता है वह जाति स्मृति-मेधा तथा उपरम में स्मृति और हे नृपाधिप ! विष्णु का सायुज्य अवश्य ही प्राप्त करता है—यह पूर्णतया सत्य है । हे राजन् यह हमने तुमको सब कह दिया है जिसको कि तुम मुझ से पूछ रहे हो । हे धर्मधारियो मे परम श्रेष्ठ ! अब आगे और बोलो, मैं तुमको क्या बतलाऊँ ! ॥८८॥८९॥९०॥

॥ ७४—वैष्णव गीत कथन ॥

मार्कंडेय महाप्राज्ञ केन योगेन लब्धवान् ।

गान विद्यां महाभाग नारदो भगवान्मुनिः ॥१
तु बरोश्च समानत्व कस्मिन्काल उपेयिवान् ।
एतदाचक्ष्व मे सर्वं सर्वज्ञोसि महामते ॥२
श्रुतो मयायमर्थो वै नारदाद्देवदर्शनात् ।
स्वयमाह महातेजा नारदोऽसौ महामति. ॥३
मतप्यमानो भगवान् दिव्य वर्षसहस्रकम् ।
निरुच्छ्वासेन संयुक्तस्तुंबरोर्गौरवं स्मरन् ॥४
ततोप च महाघोर तपोराशिस्तप परम् ।
अथातरिक्षे शुश्राव नारदोऽसौ महामुनि. ॥५
वाणी दिव्या महाघोषामद्भुतामशरीरिणीम् ।
किमर्थ मुनिशार्दूल तपस्तपसि दुश्चरम् ॥६
उलूक पश्य गत्वा त्व यदि गाने रता मतिः ।
मानसोत्तरशैले तु गानबन्धुरिति स्मृत ॥७

अम्बरीष नृप ने कहा—हे महान् विद्वद्वर ! हे मार्कण्डेय ! हे महान् भाग्य वाले ! भगवान् नारद मुनि ने किस योग के द्वारा गान विद्या की प्राप्ति की थी ॥१॥ आप तो महान् मति वाले हैं और सभी कुछ के ज्ञाता हैं । तुम्बरु गन्धर्व की समानता को नारद देवर्षि ने किस समय में प्राप्त की थी यह सभी हमको कृपा करके बतलाइये ॥२॥ मार्कण्डेय मुनि ने कहा—मैंने यह सब कुछ समाचार देवों के समान दर्शन वाले नारद जी से श्रवण किया है । महामति और महान् तेजस्वी भगवान् नारद ने स्वय ही मुझसे कहा था । ॥३॥ भगवान् नारद ने एक सहस्र दिव्य वर्ष तक भली-भाँति तपस्या की थी और निरुच्छ्वास होकर तुम्बरु गन्धर्व के महान् गौरव का स्मरण किया था ॥४॥ तपोराशि मुनि ने महाघोर परम तपस्या की थी । इसके अनन्तर इस नारद मुनि ने अन्तरिक्ष में श्रवण किया था । आकाश में बिना शरीर वाली परम दिव्य-महान् घोष समन्वित एवं अत्यद्भुत वाणी हुई थी—'हे मुनिशार्दूल ! तुम किस फल की अभिलाषा से यह ऐसा परम दुश्चर तप इस तपोभूमि में स्थित होकर कर रहे हो ?'' यदि गान विद्या में तुम्हारा अत्यन्त अनु-

राग है तो मानसोत्तर शैल पर जाकर उलूक का दर्शन करो जो कि वहाँ पर गान बन्धु कहा गया है ॥५॥६॥७॥

गच्छ शीघ्रं च पश्यैनं गानविस्त्वं भविष्यसि ।
इत्युक्तो विस्मया विष्टो नारदो वाग्विदां वर ॥८
मानसोत्तरशैले तु गानबन्धु जगाम वै ।
गन्धर्वा किन्नरा यक्षास्तथा चाप्सरसा गणा ॥९
समासीनास्तु परितो गानबन्धुं ततस्तत ।
गानविद्या समापन्न शिक्षितास्तेन पक्षिणा ॥१०
स्निग्धकंठस्वरास्तत्र समासीना मुदान्विता ।
ततो नारदमालोक्य गानबन्धुरुवाच ह ॥११
प्रणिपत्य यथान्याय स्व गतेनाभ्यपूजयत् ।
किमर्थं भगवानत्र चागतोऽसि महामते ॥१२
किं कार्यं हि मया ब्रह्मन् ब्रूहि किं करवाणि ते ।
उलूकेन्द्र महाप्राज्ञ शृणु सर्वं यथातथम् ॥१३
मम वृत्तं प्रवक्ष्यामि पुरा भूत महाद्भुतम् ।
अतीते हि युगे विद्वन्नारायणसमीपगम् ॥१४

तुम अति शीघ्र चले जाओ और इस उलूक का दर्शन प्राप्त करो। इससे तुम गान विद्या के परम वेत्ता हो जाओगे । इस प्रकार से कहे गये नारद मुनि परम विस्मय से आविष्ट हो गये और वाग्वेत्ताओं म अतिश्रेष्ठ नारद महामुनि वहाँ मानसरोवर क उत्तर म स्थित शैल पर गान बन्धु के समीप चले गय थे । वहाँ उन्होंने देखा कि उस गान बन्धु के चारों ओर गन्धर्व किन्नर-यक्ष और अप्सराओं के समूह समास्थित हैं और गान विद्या से सम्पन्न उस पक्षी से वे सब गान विद्या की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं ॥८॥९॥१०॥ वहाँ पर नारद मुनि ने देखा कि सब के कण्ठ अति स्निग्ध थे जिनसे बहुत ही स्वर लहरी आविर्भूत हो रही थी। सब लोग परम हर्ष से युक्त होकर यहाँ पर स्थित हैं। जब वहाँ नारद महामुनि पहुँचे तो इनको देखकर उस गान बन्धु ने नारद से कहा था—॥११॥ पहिले उसने प्रणिपात किया और समुचित रीति से नारद का स्वागत

करके अभ्यर्चना की। गान बन्धु ने फिर नारद से कहा—हे महान् मति वाले ! आप यहाँ किस अभिलाषा को लेकर यहाँ आये हैं ? हे ब्रह्मन् ! आप आज्ञा दीजिए मैं आप की क्या सेवा करूँ। नारद मुनि ने कहा—हे उलूकों में सर्वश्रेष्ठ ! आप तो महान् पण्डित हैं। जो यथार्थ बात है उसे आप श्रवण कीजिए। पहिले मेरे साथ जो कुछ भी परम अद्भुत घटना हुई थी उस समस्त वृत्त को मैं बतलाऊँगा। व्यतीत हो जाने वाले युग में हे विद्वन् ! मैं भगवान् सर्वेश्वर नारायण के समीप में गया था॥१२॥१३॥१४॥

मां विनिर्धूय संहृष्टः सम हूय च तुंबरुम् ।
लक्ष्मीसमन्वितो विष्णुरश्रृणोद्गानमुत्तमम् ॥१५
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे निरस्ताः स्थानतोऽच्युताः।
कौशिकाद्याः समासीना गानयोगेन वै हरिम् ॥१६
एवमाराध्य संप्राप्ता गाणपत्य यथासुखम् ।
तेनाहमतिदुःखार्तस्तपस्तप्तुमिहागतः॥१७
यद्दत्तं यद्धुतं चैव यथा वा श्रुतमेव च ।
यदधीत मया सर्वं कलां नार्हति षोडशीम् ॥१८
विष्णोर्माहात्म्ययुक्तस्य गान योगस्य वै ततः ।
संचिन्त्याहं तपो घोरं तदर्थं तप्तवान् द्विज ॥१९
दिव्यवर्षसहस्रं वै ततो ह्यशृणुव पुनः ।
वाणीमाकाशसंभूता त्वामुद्दिश्य विहंगम ॥२०
उलूकं गच्छ देवर्षे गानबंधुं मतिर्यदि ।
गाने चेद्वर्तते ब्रह्मन् तत्र त्वं वेत्स्यसे चिरात् ॥२१

लक्ष्मी देवी के साथ संस्थित भगवान् विष्णु ने मेरा तिरस्कार करके परम प्रसन्न होते हुए तुम्बरु गन्धर्व को बुला लिया था। फिर विष्णु ने उसका उत्तम गान सुना था॥१५॥ ब्रह्मा आदि समस्त देव स्थान से अच्युत निरस्त कर दिये गये थे। कौशिकादि सब वहाँ पर गान के योग से हरि के समीप में समासीन थे। इस प्रकार से आराधना करके वे यथा सुख गाणपत्य को सम्प्राप्त हुए थे। उससे मैं अत्यन्त दुःखित हुआ और

मैं यहाँ तपस्या करने को आया हूं ॥१६॥१७॥ जो मैंने किया—जो कुछ भी हवन किया और जो कुछ भी मैंने अध्ययन किया है वह सब सोलहवी कला के योग्य भी नहीं है ॥१८॥ हे द्विज ! महिमा से समन्वित भगवान् विष्णु के गान योग का सचिन्तन करके उसी के लिये महाघोर मैंने तपश्चर्या की थी ॥१६॥ एक सहस्र दिव्य वर्ष तक यह तप करके मैंने आकाश मे होने वाली वाणी का श्रवण किया था जो कि आपका उद्देश्य लेकर हुई थी। उसमे आकाश वाणी ने यही कहा था—हे देवर्षे ! यदि तेरा गान विद्या के सीखने का अनुराग है तो गान बन्धु उलूक के पास चला जा। हे ब्रह्मन् ! वहाँ पर तू चिरकाल मे गान विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लेगा ॥२०॥२१॥

इत्यहं प्रेरितस्तेन त्वत्समोपमिहागतः ।
किं करिष्यामि शिष्योहं तव मां पालयाव्यय ॥२२
शृणु नारद यद्वृत्तं पुरा मम महामते ।
अत्याश्चर्यसमायुक्तं सर्वपापहरं शुभम् ॥२३
भुवनेश इति ख्यातो राजाभूद्धार्मिकः पुरा ।
अश्वमेधसहस्रं श्च वाजपेयायुतेन च ॥२४
गवां कोटयर्बुदे चैव सुवर्णस्य तथैव च ।
वाससां रथहस्तीनां कन्याश्वानां तथैव च ॥२५
दत्वा स राजा विप्रेभ्यो मेदिनी प्रतिपालयन् ।
निवारयद् स्वके राज्ये गेययोगेन केशवम् ॥२६
अन्यं वा गेययोगेन गायन्यदि स मे भवेत् ।
वध्यः सर्वात्मना तस्माद्वै दैरीढ्यः परः पुमान् ॥२७
गानयोगेन सर्वत्र स्त्रियो गायंतु नित्यशः ।
सूतमागधसंघाश्च गीतं ते कार्यंतु वै ॥२८
इत्याज्ञाप्य महातेजा राज्यं वै पर्यपालयत् ।
तस्य राज्ञ. पुराम्याशे हरिमित्र इति श्रुतः ॥२६

इस प्रकार से उसके द्वारा प्रेरित होकर मै इस समय आपके समीप मे उपस्थित हुआ हूँ। हे अव्यय ! मै आपका शिष्य हूँ। अब मै आपकी

क्या सेवा करूँ ? आप मेरा पालन करिये ।।२२।। गान बन्धु ने कहा हे महामति वाले नारद ! पहिले मेरा जो कुछ भी हुआ उसका तुम अब श्रवण करो। यह घटना भी अत्यन्त आश्चर्य से समायुक्त और परम शुभ सम्पूर्ण पापो के सहरण करने वाली है ।।२३।। पुराने समय मे एक अति धार्मिक भुवनेश नाम वाला राजा हुआ था। उस राजा ने एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और दश सहस्र बाजपेय किये थे। उस नृप ने करोडो अर्बुद गौ सुवर्ण वस्त्र-रथ-हाथी कन्या और अश्वो के विप्रो को दान दिये थे और इस परम धार्मिक वृत्ति से उसने मेदिनी का परिपालन किया था। किन्तु उसने गान करने के योग से भगवान् केशव की उपासना करने का अपने राज्य मे निवारण कर दिया था ।।२४।।२५।।२६।। कोई भी अन्य पुरुष मेरे राज्य मे मेय योग से गान करेगा तो वह मेरे द्वारा वध्य होगा अर्थात् मैं उसे मृत्यु का दण्ड दे दूंगा। पर पुमान् प्रभु केवल वेद के मन्त्रो के द्वारा ही स्तुति करने के योग्य हैं ।।२७।। गान योग से नित्य केवल स्त्रियाँ ही सर्वत्र गान किया करें और सूत और मागधो के समुदाय मेरा गीन करे। ऐसी आज्ञा उस राजा ने जो कि महान् तेजस्वी था, देकर ही अपने राज्य का प्रशासन करता था। उस राजा के पुर के समीप मे हरिमित्र नामक एक व्यक्ति था ।।२८।।२९।।

ब्राह्मणो विष्णुभक्तश्च सर्वद्वंद्वविवर्जित. ।
नदीपुलिनमासाद्य प्रतिमा च हरे शुभाम् ।।३०
अभ्यर्च्य च यथान्यायं घृतदध्युत्तरं बहु ।
मिष्टान्नं पायसं दत्वा हरेरावेद्य पूपकम् । ३१
प्रणिपत्य यथान्याय तत्र विन्यस्तमानस. ।
अगायत हरिं तत्र तालवर्णलयान्वितम् ।।३२
अतीव स्नेहसंयुक्तस्तद्गतेनातरात्मना ।
ततो राज्ञ समादेशाच्चारास्तत्र समागताः ।।३३
तदर्चनादि सकल निधूंय च समतत. ।
ब्राह्मण त गृहीत्वा ते राज्ञे सम्यङ्न्यवेदयन् ।।३४
ततो राजा द्विजश्रेष्ठं परिभर्त्स्य सुदुर्मति ।

राज्यान्निर्यातयामास हृत्वा सर्वं धनादिकम् ॥३५
प्रतिमां च हरेश्चैव म्लेच्छा हृत्वा ययुः पुनः ।
ततः कालेन महता कालधर्ममुपेयिवान् ॥३६
स राजा सर्वलोकेषु पूज्यमानः समंततः ।
क्षुधार्तश्च तथा खिन्नो यममाह सुदुःखितः ॥३७

वह हरिमित्र ब्राह्मण भगवान् विष्णु का परम भक्त था और सम्पूर्ण द्वन्द्वों से रहित होकर नदी के पुलिन पर चला गया था । वहाँ पर हरि की परम शुभ प्रतिमा की यथा विधि पूजा करके घृत-दधि से संयुत मिष्ठान्न-पायस-पूजा हरि को समर्पित कर-विष्णु का प्रणिपात करता था और उसमे विन्यस्त मन वाला होकर हरि के गुणों का गान किया करता था जो कि गायन ताल-वर्ण और लय से युक्त होता था । इसका यह गायन जिस समय होता था वह तद्गत अन्तरात्मा वाला होकर अत्यन्त ही स्नेह से समन्वित हो जाया करता था । इसके अनन्तर एकबार राजा की आज्ञा से उसके अनुचर वहाँ पर आ गये थे ॥३०॥ ॥३१॥३२॥३३॥ उन्होने उसके अर्चना के सब उपचारो को फेंक-फांक कर तथा सब के साथ उन्होने उस ब्राह्मण को पकड कर राजा के समक्ष मे उपस्थित कर दिया था ॥३४॥ इसके पश्चात् उस दुष्ट बुद्धि वाले राजा ने उस श्रेष्ठ द्विज को डाँट फटकार के उसके समस्त धन आदि का हरण कर उसे राज्य से निकाल दिया था ॥३५॥ उस हरिमित्र ब्राह्मण के द्वारा पूजित जो हरि की प्रतिमा थी उसे म्लेच्छ लोग हरण करके लेगये थे । इसके अनन्तर बहुत काल के पश्चात् वह राजा काल के धर्म मृत्यु को प्राप्त हुआ था । वह राजा यहाँ सब लोक मे परम पूज्य माना जाता था किन्तु मरणोत्तर वह क्षुधा से आर्त्त-खिन्न और अत्यन्त ही दुःखित होकर यमराज से बोला—॥३६॥३७॥

क्षुत्तृट् च वर्तते देव स्वर्गतस्यापि मे सदा ।
मया पापं कृतं किं वा किं करिष्यामि वै यम ॥३८
त्वया हि सुमहत्पापं कृतमज्ञानमोहतः ।
हरिमित्रं प्रति तदा वासुदेव परायणम् ॥३९

हरिमित्रे कृतं पापं वासुदेवार्चनादिषु ।
तेन पापेन संप्राप्तः क्षुद्रोगस्त्वा सदा नृप ।।४०
दानयज्ञादिकं सर्वं प्रनष्टं ते नराधिप ।
गीतवाद्यसमोपेत गायमानं महामतिम् ।।४१
हरिमित्र समाहूय हृतवानसि तद्धनम् ।
उपहारादिकं सर्वं वासुदेवस्य सन्निधौ ।।४२
तव भृत्यैस्तदा लुप्तं पाप चक्रु स्त्वदाज्ञया ।
हरे. कीर्ति विना चान्यद्ब्राह्मणेन नृपोत्तम ।।४३
न गेययोगे गातव्य तस्मात्पापं कृतं त्वया ।
नष्टस्ते सर्वलोकोद्य गच्छ पर्वतकोटरम् ।।४४

राजा ने यम से कहा—हे देव ! स्वर्ग मे आये हुए भी मुझे सर्वदा भूख और प्यास सता रही है । हे यमराज ! मैंने क्या ऐसा पाप किया है ? अब मैं क्या करूँ ? यमराज ने कहा—हे राजन् ! तुमने अज्ञान से मोह के कारण बड़ा भारी पाप किया है । तुमने सर्वदा भगवान् वासुदेव के पूजन और कीर्त्तन मे परायण हरिमित्र विप्र के प्रति बड़ा अन्याय किया था—यही तुम्हारा परम भीषण पाप है । हरिमित्र ने जो भगवान् वासुदेव की अर्चना आदि मे जो पापापराध किया था उस पाप से हे नृप ! वह तुम्हारे सदा भूख का रोग बन गया है ।।३८।।३९।।४०।। हे नराधिप ! तूने जो कुछ भी दान दिये हैं और यज्ञ आदि किये हैं वे सभी तेरे नष्ट हो गये हैं क्योंकि तूने गीत वाद्य से युक्त गान करने वाले महान् मतिमान् हरिमित्र नामक विप्र को बुलाकर उसका सम्पूर्ण धन का हरण कर लिया था । भगवान् वासुदेव की सन्निधि मे जो उपहारादिक सब थे उन को तेरे ही भृत्यो ने तेरी ही आज्ञा से उस समय मे लुप्त कर दिया था—यह एक महान् पाप उन्होने किया था । हे नृपोत्तम ! तेरा ही ऐसा आदेश था कि ब्राह्मण के द्वारा भी हरि की कीर्त्ति के बिना ही अर्थात् गान न करके ही उपासना करनी चाहिए ।।४१।।४२।।४३।। गेय योग मे गान नही करना चाहिए—ऐसी आज्ञा देकर तूने महत् पाप किया था ।।४४।।

पूर्वोत्सृष्टं स्वदेहं तं खादन्नित्य निघृत्य वै ।
तस्मिन् कोणे त्विम देह खादन्नित्य क्षुधान्वितः ।।४५
महानिरयसंस्थस्त्व यावन्मन्वंतरं भवेत् ।
मन्वंतरे ततोऽतीते भूम्या त्वं च भविष्यसि ।।४६
तत कालेन सप्र प्य मानुष्यमवगच्छसि ।
एवमुक्त्वा यमो विद्वांस्तत्रैवातरधीयत ।।४७
हरिमित्रो विमानेन स्तूयमानो गणाधिपै ।
विष्णुलोकं गतः श्रीमान् सगृह्य गणबाधवान् ।।४८
भुवनेशो नृपो ह्यस्मिन् कोटरे पर्वतस्य वै ।
खादमान शवं नित्यमास्ते क्षत्तृट्समन्वितः ।।४६

इस समय तेरा सर्वलोक नष्ट हो गया है अब पर्वत कोटर मे जाओ। वहाँ पर पूर्व मे उत्सृष्ट तेरा अपना देह है उसे ही काटकर नित्य खाकर रहो। उस कोण मे इस देह को क्षुधा से युक्त होकर नित्य ही खाले हुए रहो। महा नरक मे संस्थित होते हुए जब तक मन्वन्तर समाप्त होगा वहाँ इसी भाँति रहोगे। मन्वन्तर के अतीत हो जाने पर फिर तुम भूमि पर उत्पन्न होओगे ।।४५।।४६।। पहिले अन्य पशु आदि की योनि मे समुत्पत्ति प्राप्त कर कुछ काल मे पुन तुझे मनुष्य योनि प्राप्त होगी। गानबन्धु ने कहा – इतना कहकर वह विद्वान् यमराज वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गया था ।।४७।। हरिमित्र विमान के द्वारा गणाधिपो से स्तूयमान होता हुआ विष्णु लोक को प्राप्त हुआ था जिस श्रीमान् के साथ समस्त गण बान्ध भी सगृहीत थे ।।४८।। वह भुवनेश राजा पर्वत के इस कोटर मे नित्य शव का भोजन करते हुए भूख प्यास से युक्त होकर वहाँ रहता था।।४६।।

अद्राक्ष त नृपं तत्र सर्वमेतन्ममोक्तवान् ।
समालोक्याहमाजाय हरिमित्रं समेयिवान् ।।५०
विमानेनार्कवर्णेन गच्छन्तममरैर्वृतम् ।
इद्रद्युम्नप्रसादेन प्राप्तं मे ह्यायुरुत्तमम् ।५१
तेनाह हरिमित्रं वै दृष्टवानस्मि सुव्रत ।

तदैश्वर्य प्रभावेन मनो मे समुपागतम् ॥५२
गानविद्या प्रति तदा किन्नरैः समुपाविशम् ।
षष्टि वर्षसहस्राणां गानयोगेन मे मुने ॥५३
जिह्वा प्रसादिता स्पष्टा ततो गानमशिक्षयम् ।
ततस्तु द्विगुणेनैव कालेनाभूदियं मम ॥५४
गानयोगसमायुक्ता गता मन्वतरा दश ।
गानाचार्योऽभव तत्र गधर्वाद्याः समागता ॥५५
एते किन्नरसंघा वै मामाचार्यमुपागताः ।
तपसा नैव शक्या वै गानविद्या तपोधन ॥५६

वहाँ पर उस राजा को मैंने देखा था और यह सब मुझ से कहा था। मैंने जान कर और देखकर फिर मैं हरिमित्र के पास प्राप्त हुआ था ॥५०॥ वह हरिमित्र सूर्य के समान वर्ण वाले विमान के द्वारा जा रहा था और देवो से समावृत था। मैंने इन्द्रद्युम्न के प्रसाद से यह उत्तम आयु प्राप्त की है ॥५१॥ हे सुव्रत ! उस समय इसी से मैंने हरिमित्र को देख लिया था। उसके उस ऐश्वर्य के प्रभाव से मेरा भी मन आ गया था कि मैं भी गान विद्या का अभ्यास करूँ और तब किनारो के साथ बैठा था। हे मुने ! मेरी गान योग के द्वारा साठ हजार वर्षो मे जिह्वा स्पष्ट रूप से प्रसादित हुई थी तब फिर मैंने गान शिक्षा प्राप्त की थी। इसके अनन्तर भी यह विद्या दुगुने काल मे मुझे हुई थी ॥५२॥५३॥५४॥ इस गान योग मे समायुक्त हुए दश मन्वन्तर व्यतीत हो गये हैं। तब मैं गान विद्या का आचार्य हुआ था समस्त गन्धर्व आदि आये थे। ये किन्नरो के समूह भी सब मुझको ही आचार्य मानने वाले हुए हैं। हे तपोधन ! तप से गान विद्या प्राप्त नहीं की जा सकती है ॥५५॥५६॥

तस्माच्छ्रुतेन सयुक्तो मत्तस्त्वं गानमाप्नुहि ।
एवमुक्तो मुनिस्तं वै प्रणिपत्य जगौ तदा ॥५७
तच्छ्रुत्वा मुनिश्रेष्ठ वासुदेवं नमस्य तु ।
उलूकेनैवमुक्तस्तु नारदो मुनिसत्तमः ॥५८
शिक्षाक्रमेण संयुक्तस्तत्र गानमशिक्षयत ।

गानबंधुस्तदाहेदं त्यक्तलज्जो भवाधुना ॥५६
स्त्रीसंगमे तथा गीते द्यूते व्याख्यानसंगमे।
व्यवहारे तथाहारे त्वर्थाना च समागमे ॥६०
आये व्यये तथा नित्यं त्यक्तलज्जस्तु वै भवेत्।
न कुंचितेन गूढेन नित्य प्रावरणादिभि ॥ ६१
हस्तविक्षेपभावेन व्यादितास्येन चैव हि।
निर्यानजिह्वायोगेन न गेयं हि कथचन ॥६२

इसलिये क्योकि इसकी शिक्षा मे एकमात्र अभ्यास ही कारण होता है, तुम श्रुत से सयुक्त हो, अब मुझसे इस गान विद्या को प्राप्त करो। इस प्रकार से कहे गये नारद मुनि ने उस गान बन्धु को प्रणाम करके तब गान किया था ॥५७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् वासुदेव को प्रणाम करके उसका श्रवण करो। मार्कण्डेय ने कहा—उलूक के द्वारा इस तरह मुनियो मे परम श्रेष्ठ नारद जी से कहा गया था ॥५८॥ फिर शिक्षा के क्रम के अनुसार सयुक्त होकर वहाँ पर गान विद्या की शिक्षा दी थी। गान बन्धु उस समय नारद से यह बोले इस समय अर्थात् गान विद्या सीखने के समय मे तुमको लज्जा को पूर्णरूप से त्याग देना चाहिए ॥५६॥ उलूक ने कहा—जो कार्य के विद्या तक हो उन्हे कार्य सिद्धि की इच्छा रखने वाले पुरुष को त्याग ही देना चाहिए। जिन २ कार्यो मे लज्जा का त्याग करना चाहिए उन्हे बताते हैं स्त्री के साथ सङ्गम करने मे—गान करने के समय मे—द्यूत क्रीडा करने के समय मे—व्याख्यान करने के प्रसङ्ग मे—व्यवहार मे—भोजन करने के समय मे—अर्थ सम्बन्धी समागम मे—आय मे—व्यय करने के समय मे मनुष्य को लज्जा का त्याग कर देने वाला ही होना चाहिए। गान करने वाले व्यक्ति को कुञ्चित-प्रावरण आदि से गूढ-हस्तो के विक्षेप भाव से युक्त व्यादित मुख से युक्त और जिह्वा निकालने वाला होते हुए कभी गान नही करना चाहिए। ॥६०॥६१॥६२॥

न गायेदूर्ध्वबाहुश्च नोर्ध्वदृष्टि कथचन।
स्वाग निरीक्षमाणेन पर संप्रेक्षता तथा ॥६३

संघट्टे च तथोत्थाने कटिस्थानं न शस्यते ।
हासो रोषस्तथा कंपस्तथान्यत्र स्मृतिः पुनः ॥६४
नैतानिशस्तरूपाणि गानयोगे महामते ।
नैकहस्तेन शक्य स्यात्तालसंघट्टनं मुने ॥६५
क्षुधार्त्तेन भयार्त्तेन तृष्णार्त्तेन तथैव च ।
गानयोगो न कर्तव्यो नांधकारे कथंचन ॥६६
एवमादीनि चान्यानि न कर्तव्यानि गायता ।
एवमुक्तः स भगवास्तेनोक्तविधिलक्षणैः ।
अशिक्षयत्तथा गीतं दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥६७
ततः समस्तसपन्नो गीतप्रस्तारकादिषु ।
विपंच्यादिषु संपन्नः सर्वस्वरविभागवित् ॥६८
अयुतानि च षट्त्रिंशत्सहस्राणि शतानि च ।
स्वराणां भेदयोगेन ज्ञातवान्मुनिसत्तमः ॥६६

ऊर्ध्व बाहु वाला होकर तथा ऊर्ध्व (ऊपर की ओर) दृष्टि वाला होकर कभी भी गान नही करना चाहिए । अपने अगो को देखते हुए तथा दूसरे की ओर देखते हुए भी गान न करे ॥६३॥ सघट्ट मे तथा उत्थान मे कटि स्थान प्रशस्त नही होता है । हास्य, रोष, कम्प तथा अन्य की स्मृति करना भी हे महामते ! गानयोग मे प्रशस्त रूप नही होते हैं । हे मुनिवर ! एक हाथ से तालो का सघट्टन नही किया जा सकता है ॥६४॥ ॥६५॥ भूख से दुःखित-भय से आर्त्त प्यास से पीडित पुरुष को गानयोग नही करना चाहिए और अन्धकार में भी इसे न करे ॥६६॥ इस प्रकार से उपर्युक्त कुछ नियम हैं जो गान करने वाले को नही करने चाहिए और उन्हे बचाकर ही गान योग का अभ्यास करे । मार्कण्डेय मुनि ने कहा—इस तरह से कहे हुए उन भगवान् ने उक्त विधि के लक्षणो के द्वारा उस गानयोग को एक सहस्र दिव्य वर्ष तक सीखा था ।।६७॥ तब वह गीत प्रस्तारक आदि सम्पूर्ण विधियो मे सम्पन्न हुए और विपञ्ची आदि वाद्यो मे कुशल तथा समस्त स्वरो के विभाग के ज्ञाता हुए थे ॥६८॥ दश सहस्र और छत्तीस सहस्र सौ स्वरो के भेद योग के ज्ञाता

मुनिश्रेष्ठ नारद हुए थे ॥६९॥

ततो गंधर्वसंघाश्च किन्नराणां तथैव च ।
मुनिना सह संयुक्ताः प्रीतियुक्ता भवति ते ॥७०
गानबंधुं मुनि. प्राह प्राप्य गानमनुत्तमम् ।
त्वा समासाद्य संपन्नस्त्वं हि गीतविशारदः ॥७१
ध्वांक्षशत्रो महाप्राज्ञ किमाचार्य करोमि ते ।
ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् मनवस्तु चतुर्दश ॥७२
ततस्त्रैलोक्यसंप्लावो भविष्यति महामुने ।
तावन्मे त्वायुषो भावस्तावन्मे परम शुभम् ॥७३
मनसाध्याहित मे स्य दक्षिणा मुनिसत्तम ।
अतीतकल्पसंयोगे गरुडस्त्वं भविष्यसि ॥७४
स्वस्ति तेऽस्तु महाप्राज्ञ गमिष्यामि प्रसीद माम् ।
एवमुक्त्वा जगामाथ नारदोपि जन र्दनम् ॥७५
श्वेतद्वीपे हृषीकेश गापयामास गीतकान् ।
तत्र श्रुत्वा तु भगवान्नारदं प्राह माधवः ॥७६
तुंबरोर्न विशिष्टोसि गीतैरद्यापि नारद ।
यदा विशिष्टो भविता त कालं प्रवदाम्यहम् ॥७७

इसके अनन्तर समस्त गन्धर्वों के समुदाय तथा किन्नरों के समूह नारद मुनि के साथ संयुक्त हुए और प्रीति करने वाले वे सभी होते हैं ॥७०॥ फिर नारद मुनि सर्वोत्तम गानयोग को प्राप्त कर गान बन्धु से बोले—मैं अब गानयोग की विद्या मे पूर्ण हो गया हूँ क्योंकि आप जैसे गीत विद्या के महा मनीषी मुझे शिक्षा देने वाले प्राप्त हो गये थे। हे ध्वांक्ष शत्रो ! हे महाप्राज्ञ ! आप मेरे आचार्य हैं। अब मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं आपकी क्या सेवा करूं । गान बन्धु ने कहा—हे महामुने ! ब्रह्मा के एक दिन मे चौदह मनु होते है। इसके बाद त्रैलोक्य सप्लाव होगा । तब तक मेरी आयु हो-यही मेरे मन की चाही हुई परम शुभ दक्षिणा होगी । नारद जी ने कहा—अतीत से जो कल्प का संयोग होगा उसमे आप गरुड़ होंगे ॥७४॥ नारद जी ने फिर कहा—हे महा-

प्राज्ञ ! आपका कल्याण होवे। मुझ पर आप प्रसन्न होइये। मैं अब चला जाऊँगा। मुझे आज्ञा दीजिए। मार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार से कहकर देवर्षि नारद भगवान् जनार्दन के समीप में चले गये थे ॥७५॥ श्वेत द्वीप में पहुँच कर भगवान् हृषीकेश के सामने नारद ने गीतों का गान किया था। उस नारद के गीतों के गायन का श्रवण कर भगवान् माधव ने नारद से कहा था—हे नारद ! अभी तक भी आप तुम्बरु से विशिष्ट गीतों के गायन में नहीं हुए हैं। जिस समय में आप में तुम्बरु से विशेषता आ जायगी उस समय को मैं बताता हूँ ॥७६॥७७॥

गानवधुं समासाद्य गानार्थज्ञो भवानसि ।
मनोर्वैवस्वतस्याहमष्टाविंशतिमे युगे ॥७८
द्वापरांते भविष्यामि यदुवंशकुलोद्भवः ।
देवक्यां वसुदेवस्य कृष्णो नाम्ना महामते ॥७९
तदानीं मां समासाद्य स्मारयेथा यथातथम् ।
तत्र त्वां गीतसम्पन्नं करिष्यामि महाव्रतम् ॥८०
तुंबरोश्च समं चैव तथातिशयसंयुतम् ।
तावत्कालं यथायोगं देवगंधर्वयोनिषु ॥८१
शिक्षयस्व यथान्यायमित्युक्त्वांतरधीयत ।
ततो मुनिः प्रणम्यैनं वीणावादनतत्परः ।८२
देवर्षिदवसाकाश सर्वाभरणभूषित ।
तपसा निधिरव्यक्त वासुदेवपरायण ॥८३
स्कंधे विपञ्चीमासाद्य सर्वलोकाश्चचार सः ।
वारुणं याम्यमाग्नेयमैंद्रं कौबेरमेव च ॥८४

गान बन्धु के पास जाकर आपने गान विद्या प्राप्त की है। अब वैवस्वत मनु के अट्ठाईसवें युग में द्वापर युग के अन्त में मैं यदुकुल वंश में उत्पन्न होने वाले देवकी वसुदेव के यहाँ हे महामते ! 'कृष्ण'-इस नाम से अवतीर्ण होऊँगा ॥७८-७९॥ उस समय में आप मेरे पास उपस्थित होकर और २ स्मरण दिलाना। उस समय मैं आपको महान् व्रत वाला गीतों से सम्पन्न कर दूंगा ॥८०॥ तुम्बरु के तुल्य अथवा उससे भी

अधिक बना दूंगा। उस समय तक आप देव तथा गन्धर्व योनियों में यथायोग शिक्षा प्राप्त करो जैसा कि शिक्षा प्राप्त करने का क्रम होता है। इतना कहकर भगवान् माधव अन्तर्धान हो गये थे। इसके अनन्तर भगवान् को प्रणाम किया और वीणा के बजाने मे परायण होकर देवर्षि देव के समान-समस्त आभरणों से विभूषित-तप की निधि और वासुदेव परायण होकर अपने कन्धे पर वीणा रखते हुए समस्त लोकों मे विचरण किया करते थे ॥८१॥८२॥८३॥८४॥

॥ ७५–वैष्णव के लक्षण और माहात्म्य ॥

वैष्णवा इति ये प्रोक्त वासुदेवपरायणाः ।
कानि चिह्नानि तेषां वै तन्नो ब्रूहि महामते ॥१
तेषां वा किं करोत्येष भगवान् भूतभावनः ।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सूत सर्वार्थवित्तम ॥२
अंबरीषेण वै पृष्टो मार्कंडेयः पुरा मुनिः ।
युष्माभिरद्य यत् प्रोक्तं तद्वदामि यथातथम् ॥३
शृणु राजन्यथान्यायं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
यत्रास्ते विष्णुभक्तस्तु तत्र नारायणः स्थितः ॥४
विष्णुरेव हि सर्वत्र येषां वै देवता स्मृता ।
कीर्त्यमाने हरौ नित्यं रोमांचो यस्य वर्तते ॥५
कंप स्वेदस्तथाक्षेपु दृश्यंते जलबिंदवः ।
विष्णुभक्तिसमायुक्त न् श्रौतस्मार्तप्रवर्तकान् ॥६
प्रीतो भवति यो दृष्ट्वा वैष्णवोऽसौ प्रकीर्तितः ।
नान्यदाच्छादयेद्वस्त्रं वैष्णवो जगतोऽरणे ॥७

इस अध्याय मे वैष्णवों का लक्षण और उनका माहात्म्य तथा शैवों की उनसे श्रेष्ठता का निरूपण किया जाता है। ऋषियों ने कहा—हे महान् मति वाले! वासुदेव भगवान् मे परायण रहने वाले पुरुष वैष्णव कहे गये हैं। उन वैष्णवों के क्या चिह्न होते हैं—यह कृपाकर हमको बतलाइये। हे समस्त अर्थों के ज्ञाताओं मे परम श्रेष्ठ सूतजी!

यह भूत भावन अर्थात् प्राणियों पर कृपा रखने वाले भगवान् उनको क्या फल दिया करते हैं। यह आप हमको सभी बतलाइये ॥१॥२॥ सूत जी ने कहा—पुराने समय मे किसी समय जो तुम आज इस समय मुझ से पूछते हो, यही बात राजा अम्बरीष ने महामुनि मार्कण्डेय जी से पूछी थी। सो मै तुमको ठीक २ वह सब बताता हूं। मार्कण्डेय जी ने कहा हे राजन्! तुम जो मुझ से न्यायानुकूल पूछते हो उसका अब श्रवण करो। जहां पर भगवान् विष्णु का भक्त रहता है वहां साक्षात् नारायण विराजमान रहा करते हैं ॥३॥४॥ जिनका सभी जगह केवल भगवान् विष्णु ही एकमात्र देवता अर्थात् उपास्य है और जिसके भगवान् के कीर्ति का बखान करते हुए तथा नाम एवं गुणो का संकीर्तन करने पर रोमाञ्च हो जाता है। गात्रो मे कम्प होता है-शरीर मे पसीना आ जाता है और आखो मे प्रेमाश्रुओ की बूंदे झलक आती हैं और श्रौत तथा स्मार्त धर्म के प्रवर्तक एव विष्णु की भक्ति से समायुक्त पुरुष भक्तो का दर्शन कर जो परम आह्लादित एवं अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है वह वैष्णव कहा गया है। वैष्णव जन जगत् के दर्शन मे रक्षा के लिये अन्य वस्त्र अर्थात् परिधान से अतिरिक्त वस्त्र के द्वारा शरीर का आवरण नही किया करता है ॥५॥६॥७॥

विष्णुभक्तमथायांतं यो दृष्ट्वा सम्मुखस्थितः ।
प्रणामादि करोत्येवं वासुदेवे यथा तथा ॥८
स वै भक्त इति ज्ञेयः स जयी स्याज्जगत्त्रये ।
रूक्षाक्षराणि शृण्वन्वै तथा भागवतेरितः ॥९
प्रणामपूर्वं क्षांत्या वै यो वदेद्वैष्णवो हि सः ।
गंधपुष्पादिकं सर्वं शिरसा यो हि धारयेत् ॥१०
हरेः सर्वमितीत्येव मत्वासौ वैष्णवः स्मृतः ।
विष्णुक्षेत्रे शुभान्येव करोति स्नेहसंयुतः ॥११
प्रतिमा च हरेर्नित्य पूजयेत्प्रयतात्मवान् ।
विष्णुभक्तः स विज्ञेयः कर्मणा मनसा गिरा ॥१२
नारायणपरो नित्यं महाभागवतो हि सः ।

भोजनाराधनं सर्वं यथाशक्त्या करोति य ॥१३
विष्णुभक्तस्य च सदा यथान्याय हि कथ्यते ।
नारायणपरो विद्वान्यस्यान्न प्रीतमानस ॥१४
अन्न नि तद्धरेरास्य गतमन्न न सशय ।
स्वाचनादपि विश्वात्मा प्रीतो भवति माधव ॥१५

जो विष्णु के भक्त को आते हुए देखकर सामने स्थित होकर भगवान् वासुदेव के ही समान समझ कर प्रणाम आदि किया करता है वह भगवान् विष्णु का सच्चा भक्त जानना चाहिए । वह त्रैलोक्य मे विजयी होता है । सूखे और कठोर वचनो को सुनकर भी भागवतेरित होकर प्रणाम पूर्वक क्षान्ति एव शान्ति के साथ बोलता है वह वैष्णव कहा गया है । गन्ध-पुष्प आदि सब को जो शिर पर धारण किया करता है । यह सभी कुछ हरि का प्रसाद स्वरूप है—ऐसा ही समझ कर अत्यन्त आदर करता है । वह वैष्णव कहा गया है । विष्णु के क्षेत्र मे वह परम पुण्य कर्म ही स्नेह से सयुत होकर किया करता है ॥८॥६॥१०॥११॥ जो नित्य प्रति भगवान् हरि की प्रतिमा का प्रयत आत्मा वाला होकर अर्चन किया करता है वह मन कर्म और वाणी से विष्णु का भक्त समझना चाहिए ॥१२॥ जो नारायण मे सर्वदा परायण रहता है वह महान् भागवत होता है और वह भोजन तथा आराधन आदि सभी काम शक्ति के अनुसार किया करता है । ॥१३॥ विष्णु के भक्त का सदा सब काम यथा न्याय ही कहा जाता है । वह विद्वान् नारायण के ही कर्मो मे सर्वदा तत्पर रहता है । ऐसे परम भक्त पुरुष का अन्न जो प्रीति युक्त मन वाला खाता है उस अन्न को हरि के ही मुख मे गया हुआ अन्न समझना चाहिए इस मे बिल्कुल भी सशय नही है । विश्वात्मा माधव अपने अर्चन से भी अधिक प्रसन्न होते हैं ॥१४॥१५॥

महाभागवते तत्र दृष्ट्वासौ भक्तवत्सल. ।
वासुदेवपर दृष्ट्वा वैष्णवा दग्धकिल्विषम् ॥१६
देवापि भीतास्त याति प्रणिपत्य यथागतम् ।
श्रूयता हि पुरावृत्त विष्णुभक्तस्य वैभवम् ॥१७

दृष्ट्वा यमोऽपि तौ भवतं वैष्णवं दग्धकिल्विषम् ।
उत्थाय प्रांजलिर्भूत्वा ननाम भृगुनंदनम् ॥१८
तस्मात्सपूजयेद्भक्त्या वैष्णवान्विष्णुवन्नरः ।
याति विष्णुसामीप्यं नात्र कार्या विचारणा ॥१६
अन्यभक्तसहस्रेभ्यो विष्णुभक्तो विशिष्यते ।
विष्णुभक्तसहस्रेभ्यो रुद्रभक्तो विशिष्यते ।
रुद्रभक्तात्परतरो नास्ति लोके न संशय. ॥२०
तस्मात्तु वैष्णवं चापि रुद्रभक्तमथापि वा ।
पूजयेत्सर्वयत्नेन धर्मकामार्थमुक्तये ॥२१

भक्त वत्सल अर्थात् अपने भक्तों पर प्यार करने वाले प्रभु महान् भागवत मे यह सब देखकर तथा वासुदेव परायण पापों के दग्ध होने वाले वैष्णव को देखकर देवता भी भयभीत हो जाते हैं और जैसे ही उसको समागत हुआ देखते हैं उसको प्रणिपात किया करते हैं। पहिले होने वाला विष्णु के भक्त का वैभव श्रवण करो ॥१६॥१७॥ यमराज भी किल्विप दग्ध हो जाने वाले वैष्णव भक्त को देखकर भृगु के पुत्र च्यवन को देखकर अपने आसन से खडा हो गया था और हाथ जोडकर उसे प्रणाम किया था ॥१८॥ इसलिये वैष्णव लोगो को विष्णु के ही समान भक्ति पूर्वक भली भाँति पूजन करना चाहिए। ऐसा पुरुष विष्णु के समीप मे जाता है—इसमे कुछ भी विचार नही करना चाहिए। ॥१६॥ अन्य सहस्रो भक्तो से विष्णु का भक्त विशेषता वाला हुआ करता है और सहस्रो विष्णु के भक्तो से भी विशिष्ट रुद्र का भक्त होता है। भगवान् रुद्र के भक्त से बडा लोक मे अन्य कोई भी नही होता है। यह सबसे अधिक पूज्य माना जाता है। इसमे तनिक भी संशय नही है ॥२०॥ इसलिये हर एक को विष्णु के भक्त वैष्णव का तथा रुद्र के भक्त का पूर्ण प्रयत्नो के साथ धर्म-अर्थ और काम की तथा मुक्ति की सिद्धि के लिये भली भाँति पूजा करनी चाहिए ॥२१॥

॥ ७६—अम्बरीष चरित्र और श्रीमती आख्यान ॥

ऐक्ष्वाकुरंबरीषो वै वासुदेवपरायणः ।

पालयामास पृथिवीं विष्णोराज्ञापुरःसरः ॥१
श्रुतमेतन्महाबुद्धे तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ।
नित्यं तस्य हरेश्चक्रं शत्रुरोगभयादिकम् ॥२
हन्तीति श्रूयते लोके धार्मिकस्य महात्मनः ।
अंबरीपस्य चरितं तत्सर्वं ब्रूहि सत्तम ॥३
माहात्म्यमनुभावं च भक्तियोगमनुत्तमम् ।
यथावच्छ्रोतुमिच्छाम सूत वक्तुं त्वमर्हसि ॥४
श्रूयतां मुनिशार्दूलाश्चरितं तस्य धीमतः ।
अंबरीपस्य माहात्म्यं सर्वपापहरं परम् ॥५
त्रिशंकोर्दयिता भार्या सर्वलक्षणशोभिता ।
अंबरीपस्य जननी नित्यं शीलसमन्विता ॥६
योगनिद्रासमारूढं शेषपर्यंकशायिनम् ।
नारायणं महात्मानं ब्रह्माण्डकमलोद्भवम् । ७
तमसा कालरुद्राख्यं रजसा कनकाण्डजम् ।
सत्त्वेन सर्वगं विष्णुं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥८
अर्चयामास सततं वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
माल्यदानादिकं सर्वं स्वयमेवमचीकरत् ॥९

इस अध्याय में राजर्षि परम भक्त अम्बरीप के चरित का वर्णन किया जाता है जो कि विष्णु की माया से युक्त और परम अद्भुत है। ऋषियों ने कहा – हे महान् बुद्धि वाले सूतजी ! इक्ष्वाकु के वंश में समुत्पन्न राजा अम्बरीप परम भक्त एवं वासुदेव में ही परायण रहने वाला था जो कि विष्णु की आज्ञा के अनुसार ही इस पृथ्वी का पालन किया करता था—यह तो हम लोगों ने सब सुना है किन्तु इसका विशेष वर्णन अब आप करने की कृपा कीजिए। ऐसा सुना जाता है कि उस परम धार्मिक महात्मा के शत्रु रोग और भय आदि का नित्य ही हरि का सुदर्शन चक्र हनन किया करता है। हे श्रेष्ठतम ! उस अम्बरीप का सम्पूर्ण चरित्र हमारे सामने बताइए ॥१॥२॥३॥ हे सूतजी ! हम लोग माहात्म्य अनुभाव और अभीष्ट एवं परमोत्तम भक्ति योग यथावत्

श्रवण करने की इच्छा रखते हैं सो वह सब आप वर्णन करने के योग्य होते हैं ॥४॥ सूतजी ने कहा—हे मुनिशार्दूलो ! उस परम धीमान् राजर्षि अम्बरीष का चरित तथा समस्त पापों के हरण करने वाला परम माहात्म्य का तुम लोग श्रवण करो ॥५॥ त्रिशङ्कु की जो भार्या थी वह सम्पूर्ण लक्षणों से शोभित थी और नित्य ही शौच से समन्वित रहने वाली राजा अम्बरीष की माता थी ॥६॥ योग निद्रा में समारूढ तथा शेष के पर्यङ्क पर शयन करने वाले ब्रह्माण्ड से समुत्पन्न कमल से उत्पन्न महात्मा नारायण—तमोगुण से काल रुद्र नाम वाले—रजोगुण से कनकाण्डज तथा सत्वगुण से सर्वत्र व्याप्त सम्पूर्ण देवों के द्वारा वन्दित विष्णु का सदा मन-वाणी और कर्म के द्वारा पूजा किया करती थी और माल्य दान आदि सब कार्य स्वयं ही किया करती थी ॥७॥८॥९॥

गन्धादिपेषणं चैव धूपद्रव्यादिकं तथा ।
भूमेरालेपनादीनि हविषां पचनं तथा ॥१०
तत्कौतुकसमाविष्टा स्वयमेव चकार सा ।
शुभा पद्मावती नित्यं वाचा नारायणेति वै ॥११
अनन्तेत्येव सा नित्यं भाषमाणा पतिव्रता ।
दशवर्षसहस्राणि तत्परेणांतरात्मना ॥१२
अर्चयामास गोविंद गंधपुष्पादिभिः शुचिः ।
विष्णुभक्तान्महाभागान् सर्वपापविवर्जितान् ॥१३
दानमानार्चनैर्नित्यं धनरत्नैरतोषयत् ।
ततः कदाचित्सा देवी द्वादशीं समुपोष्य वै ॥१४

गन्ध आदि का पीसना तथा धूप द्रव्य आदि का प्रस्तुत करना—भूमिका आलेपन करना और हवियों याचन करना जो कि भगवान् विष्णु के लिये समर्पण करने के योग्य थे वह कौतुक में समाविष्ट होकर सब काम स्वयं ही किया करती थी। वह शुभ एवं पतिव्रता पद्मावती नित्य ही अपनी वाणी से "नारायण" तथा 'अनन्त' इन विष्णु के शुभ नामों को नित्य ही बोलती रहा करती थी। इस प्रकार से विष्णु परायण अपनी आत्मा से दस सहस्र वर्ष तक परम पवित्र रहकर गन्ध पुष्पादि

के द्वारा भगवान् गोविन्द का उसने अर्चन किया था। और जो महाभाग विष्णु के भक्त समस्त पापों से विनिर्मुक्त होते थे उनको दान-मान-अर्चन तथा धन रत्नों के द्वारा नित्य सन्तुष्ट किया करती थी। इसके अनन्तर एकवार उस देवी ने व्रत करके द्वादशी के दिन शयन किया था ॥१०॥ ११॥१२॥१३॥१४॥

हरेरग्रे महाभागा सुष्वाप पतिना सह ।
तत्र नारायणो देवस्तामाह पुरुषोत्तमः ॥१५
किमिच्छसि वरं भद्रे मत्तस्त्वं ब्रूहि भामिनि ।
सा दृष्ट्वा तु वरं वव्रे पुत्रो मे वैष्णवो भवेत् ॥१६
सार्वभौमो महातेजाः स्वकर्मनिरतः शुचिः ।
तथेत्युक्त्वा ददौ तस्यै फलमेकं जनार्दनः ॥१७
सा प्रबुद्धा फलं दृष्ट्वा भर्त्रे सर्वं न्यवेदयत् ।
भक्षयामास संहृष्टा फलं तद्गतमानसा ॥१८
ततः कालेन सा देवी पुत्रं कुलविवर्धनम् ।
असूत सा सदाचारं वासुदेवपरायणम् ॥१९
शुभलक्षणसम्पन्नं चक्रांकिततनूरुहम् ।
जातं दृष्ट्वा पिता पुत्रं क्रियाः सर्वाश्चकार वै ॥२०
अंबरीष इति ख्यातो लोके समभवत्प्रभुः ।
पितर्युपरते श्रीमानभिषिक्तो महामुनिः ॥२१

वह महाभाग वाली हरि के आगे ही अपने पति के साथ सो गई थी। वहाँ पर स्वयं नारायण परम पुरुषोत्तम देव आकर उससे बोले—हे भद्रे ! तू क्या चाहती है ? हे भामिनि ! तू इस समय मुझसे कहकर माँग ले। उसने जब भगवान् का दर्शन किया तो यह वरदान उनसे माँगा था कि मेरा पुत्र परम वैष्णव उत्पन्न होवे ॥१५॥१६॥ वह सार्वभौम अर्थात् चक्रवर्ती सम्राट्—महान् तेजस्वी—अपने कर्त्तव्य कर्म में निरत और परम शुचि भी हो। ऐसा ही होगा—यह कहकर भगवान् जनार्दन ने उसे एक फल प्रदान किया था ॥१७॥ वह जग गई तो उसने वह फल देखा था और सारा हाल अपने पति से कह सुनाया था। उसने उसी में अपना

लगाकर परम प्रसन्नता से उस फल का भक्षण कर लिया था ॥१८॥ इसके अनन्तर समय आने पर कुल की वृद्धि करने वाला अति सदाचारी और वासुदेव मे ही परायण रहने वाला पुत्र उस देवी ने समुत्पन्न किया था ॥१६॥ परम शुभ लक्षणो से युक्त और चक्र से अङ्कित तनूरुह वाले उत्पन्न हुए पुत्र को देखकर पिता ने उसकी जात कर्मादि संस्कारो की क्रियाऐ सुसम्पन्न की थी ॥२०॥ वह प्रभु अम्बरीष इस नाम से लोक मे प्रसिद्ध हुआ था और पिता के उपरत हो जाने पर वह महामुनि उपासन पर अभिषिक्त हुआ था ॥२१॥

मंत्रिष्वाधाय राज्यं च तप उग्र चकार स ।
संवत्सरसहस्रं वै जपन्नारायण प्रभुम् ॥२२
हृत्पुंडरीकमध्यस्थं सूर्यमंडलमध्यत. ।
शंखचक्रगदापद्मधारयतं चतुर्भुजम् ॥२३
शुद्धजाबूनदनिभ ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
सर्वाभरणसंयुक्त पीतावरधर प्रभुम् ॥२४
श्रीवत्सवक्षसं देवं पुरुषं पुरुषोत्तमम् ।
ततो गरुडमारुह्य सर्वदेवैरभिष्टुतः ॥२५
आजगाम स विश्वात्मा सर्वलोकनमस्कृतः ।
ऐरावतमिवाचिंत्यं कृत्वा वै गरुडं हरिः ॥२६
स्वयं शक्र इवासीनस्तमाह नृपसत्तमम् ।
इन्द्रोऽहमस्मि भद्र ते किं ददामि वरं च ते ॥२७
सर्वलोकेश्वरोऽहं त्वा रक्षितुं समुपागतः ।
नाह त्वामभिसंधाय तप आस्थितवानिह ॥२८

उसने अभिषिक्त हो जाने के पश्चात् समस्त राज्य के शासन का कार्य मन्त्रियो पर छोड दिया था और अत्यन्त उग्र तपश्चर्या मे स्वय सलग्न हो गया था । उसने एक सहस्र वर्ष पर्यन्त भगवान् नारायण प्रभु के महामन्त्र का जाप निरन्तर किया था ॥२२॥ सूर्य मण्डल के मध्य से हृदय कमल के मध्य मे स्थित तथा शङ्ख-चक्र गदा और पद्म को धारण करने वाले प्रभु का जाप के समय मे ध्यान करना चाहिए । चार भुजाओं

वाले-विशुद्ध सुवर्ण की कान्ति के समान-ब्रह्मा विष्णु और शिव के स्वरूप वाला-समस्त समुचित अलङ्कारों से युक्त पीताम्बर को धारण करने वाले वक्षःस्थल मे श्रीवत्स का शुभ चिन्ह धारण करने वाले-समस्त देवों के द्वारा अभिपुत ऐसे परम पुण्य पुरुषोत्तम देव का ध्यान करते हुए जाप किया तो सर्वलोको से नमस्कृत विश्वात्मा भगवान् गरुड़ पर समारूढ होकर वहाँ आये थे। हरि ने उस गरुड़ को अचिन्त्य ऐरावत की भाँति कर दिया था ॥२३॥२४॥२५॥२६॥ स्वयं प्रभु इन्द्र के समान स्थित होते हुए उस श्रेष्ठ राजा से बोले-मैं इन्द्र हूँ-तेरा कल्याण हो-बोल, क्या वरदान तुझे दूँ ? ॥२७॥ मैं इस सम्पूर्ण लोक का स्वामी हूँ और यहाँ पर मैं तेरी रक्षा करने के लिये ही उपस्थित हुआ हूँ ॥२८॥

त्वया दत्तं च नेच्यामि गच्छ शक्र यथासुखम् ।
मम नारायणो नाथस्तं नमामि जगत्पतिम् ॥२६
गच्छेद्र माकृथास्त्वत्र मम बुद्धिविलोपनम् ।
ततः प्रहस्य भगवान् स्वरूप मकरोद्धरिः ॥३०
शार्ङ्गचक्रगदापाणिः सङ्गहस्तो जनार्दनः ।
गरुडोपरि सर्वात्मा नीलाचल इवापरः ॥३१
देवगंधर्वसंघैश्च स्तूयमानः समंततः ।
प्रणम्य स च सतुष्टस्तुष्टाव गरुडध्वजम् ॥३२
प्रसीद लोकनाथेश मम नाथ जनार्दन ।
कृष्ण विष्णो जगन्नाथ सर्वलोकनमस्कृत ॥३३
त्वमादिस्त्वमनादिस्त्वमनंत पुरुषः प्रभुः ।
अप्रमेयो विभुर्विष्णुर्गोविंदः कमलेक्षण ॥३४
महेश्वरागजो मध्ये पुष्करः खगम· नग· ।
कव्यवाहः कपाली त्व हव्यवाह. प्रभंजन ॥३५

अम्बरीष ने कहा—मैं आपका अभिसन्धान करके यहाँ पर तपश्चर्या करने के लिये समास्थित नहीं हुआ हूँ ॥२८॥ आप जो कुछ भी प्रदान करेंगे उसकी मैं इच्छा भी नहीं करूँगा। अतएव हे इन्द्र ! आप सुख-पूर्वक चले जाइये मेरे स्वामी तो भगवान् नारायण हैं। मैं उन्हीं को

नमन करता हूँ जो इस जगत् के स्वामी हैं। हे इन्द्र ! तुम चले जाओ, मेरी बुद्धि का विलोप मत करो। इसके अनन्तर भगवान् प्रसन्नता पूर्वक हँस पडे और हरि ने अपना स्वरूप धारण कर लिया था ॥२६॥३०॥ उस समय जब हरि ने अपना स्वरूप बनाया तो आप का स्वरूप शख-चक्र-गदा तथा खड्ग हाथों में आयुध धारण करने वाला था। जनार्दन गरुड वाहन पर विराजमान थे जिस तरह कोई दूसरा नील गिरि हो ॥३१॥ इनके चारों ओर देव तथा गन्धर्वों के समुदाय स्तवन कर रहे थे। राजा अम्बरीष ने ऐसे भगवान् का निज स्वरूप मे स्थित का दर्शन किया तो वह बहुत सन्तुष्ट हुआ था। प्रणाम करके फिर वह भगवान् गरुडध्वज का स्तवन करने लगा था। उसने भगवान् से प्रार्थना की–हे लोकों के नाथ ! आप तो मेरे सच्चे स्वामी हैं और आप भक्तजन की पीडाओं का नाश करने वाले हैं। आप मेरे स्वामी हैं। हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे जगत् के स्वामिन् ! आप तो समस्त लोकों के द्वारा वन्दित हैं। हे प्रभु ! आप सब के आदि हैं–आप अनन्त हैं–आप आदि से रहित हैं–आप परात्पर पुरुष हैं प्रमा के अन्दर नहीं आने वाले व्यापक हैं। आप कमल के समान नेत्रों वाले गोविन्द एव विष्णु हैं ॥३२॥३३॥३४॥ आप महेश्वर के अङ्ग से उत्पन्न होने वाले मध्य मे पुष्कर अन्तरिक्ष मे गमन करने वाले खग हैं। आप कपाली-वक्त्र वाह हव्य वाह और प्रभ-ञ्जन हैं ॥३५॥

आदिदेव. क्रियानंद: परमात्मात्मनि स्थित: ।
त्वा प्रपन्नोस्मि गोविंद जय देवकिनंदन ।
जय देव जगन्नाथ पाहि मा पुष्करेक्षण ॥३६
नान्या गतिस्त्वदन्या मे त्वमेव शरणं मम ।
तमाह भगवान्विष्णु. किं ते हृदि चिकीर्षितम् ॥३७
तत्सर्वं ते प्रदास्यामि भक्तोसि मम सुव्रत ।
भक्तिप्रियोऽहं सततं तस्माद्दातुमिहागतः ॥३८
लोकनाथ परानंद नित्य मे वर्तते मतिः ।
वासुदेवपरो नित्य वाङ् मन.कायकर्मभिः ॥३६

यथा त्वं देवदेवस्य भवस्य परमात्मनः ।
तथा भवाम्यहं विष्णो तव देव जनार्दन ॥४०
पालयिष्यामि पृथिवीं कृत्वा वै वैष्णवं जगत् ।
यज्ञहोमार्चनैश्चैव तर्पयामि सुरोत्तमान् ॥४१
वैष्णवान्पालयिष्यामि निहनिष्यामि शात्रव न् ।
लोकतापभये भात इति मे धीयते मतिः ॥४२

आप आदि देव हैं तथा क्रियानन्द स्वरूप हैं। आत्मा में स्थित परम आत्मा हैं। मैं आपकी शरणागति मे जाता हूँ। हे गोविन्द ! हे देवकी के तनय ! आपकी जय हो। हे जगत् के स्वामी ! हे कमलनयन ! हे देव ! आपकी जय हो, आप मेरी रक्षा करो ॥३६॥ आपके अतिरिक्त मेरी अन्य कोई भी गति नही है। आप ही मेरे एकमात्र शरण अर्थात् रक्षक हैं। सूतजी ने कहा—इस प्रकार से जब उसने स्तुति की तो भगवान् विष्णु ने उससे कहा—तेरे हृदय मे क्या करने की इच्छा है ? वह बोल, मैं तुझे वह सभी कुछ प्रदान कर दूंगा क्योंकि तू मेरा सुन्दर व्रतधारी परम भक्त है। मैं भक्ति पर ही प्रसन्न होने वाला हूँ और इसी कारण से तुझे प्रदान करने के लिये यहाँ आया हूँ ॥३७॥३८॥ अम्बरीष ने कहा—हे लोकों के स्वामिन् ! हे परम आनन्द स्वरूप ! मेरी मति नित्य होती है कि मैं देव मे ही परायण नित्य मन-वाणी और कर्म द्वारा रहूँ ॥३६॥ देवों के देव परमात्मा भव के जिस तरह हैं हे विष्णो ! मैं उस प्रकार से देव जनार्दन आपका हो जाऊँ ॥४०॥ मैं इस समस्त जगत् को वैष्णव अर्थात् एकमात्र विष्णु का समाराधन करने वाला बनाकर इस भूमि का पालन करूँगा। यज्ञ तथा होम एवं अर्चनों के द्वारा सुरगण को भी तृप्त करूँगा ॥४१॥ जो विष्णु के परम भक्तजन होंगे उनका पालन करूँगा और इनके शत्रुओं का हनन करूँगा। लोक ताप के भय से भीत रहूँ—ऐसी मेरी मति होती है ॥४२॥

एवमस्तु यथेच्छं वै चक्रमेतत्सुदर्शनम् ।
पुरा रुद्रप्रसादेन लब्धं वै दुर्लभं मया ॥४३
ऋषिशापादिकं दुःखं शत्रुरोगादिकं तथा ।

निहनिष्यति ते नित्यमित्युक्त्वांतरधीयत ॥४४
ततः प्रणम्य मुदितो राजा नारायणं प्रभुम् ।
प्रविश्य नगरीं रम्यामयोध्यां पर्यपालयत् ॥४५
ब्राह्मणादींश्च वर्णांश्च स्वस्वकर्मण्ययोजत् ।
नारायणपरो नित्यं विष्णुभक्तानकल्मषान् ॥४६
पालयामास हृष्टात्मा विशेषेण जनाधिपः ।
अश्वमेधशतैरिष्ट्वा वाजपेयशतेन च ॥४७
पालयामास पृथिवीं सागरावरणामिमाम् ।
गृहेगृहे हरिस्तस्थौ वेदघोषो गृहेगृहे ॥४८
नामघोषो हरेश्चैव यज्ञघोषस्तथैव च ।
अभवन्नृपशार्दूले तस्मिन् राज्य प्रशासति ॥४६

श्री भगवान् ने कहा—राजन् ! ऐसा ही सब कुछ होगा—जो कुछ भी तू चाहता है । यह मेरा सुदर्शन चक्र है जिसको पहिले मैंने भगवान् रुद्र के प्रसाद से प्राप्त किया है यह परम दुर्लभ है ॥४३॥ तेरे ऋषि के शाप आदिक दुःख तथा शत्रुरोगादिक दुःख नित्य नाश कर देगा—यह कहकर वह अन्तर्धान हो गया था ॥४४॥ सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर राजा ने परम प्रसन्न होकर नारायण प्रभु को प्रणाम किया था और फिर परम रम्य अयोध्या नगरी मे प्रवेश करके उसका पर्यपालन किया था ॥४५॥ वहाँ उसने ब्राह्मण आदि समस्त वर्णों को अपने-अपने कर्म मे नियोजित कर दिया था । नित्य ही नारायण की सेवार्चना मे तत्पर होते हुए वह राजा निष्पाप विष्णु के भक्तों का पालन विशेष रूप से प्रहृष्ट मन वाला होकर किया करता था । उस राजा ने एकसौ अश्वमेधो यज्ञों तथा सौ वाजपेय यज्ञो का यजन किया था ॥४६॥४७॥ उसने सागरों के आवरण से समन्वित इस पृथ्वी का पालन किया था । प्रत्येक घर मे भगवान् हरि स्थित रहते थे और घर-घर मे वेदों का उच्चारण हुआ करता था । उस नृपो मे-शार्दूल के समान राजा के शासन करने के समय मे भगवान् के पवित्र नामों का घोष-यज्ञो मे वेदध्वनि का घोष हुआ करता था ॥४८॥४६॥

नासस्या नातृणा भूमिर्न दुर्भिक्षादिभिर्युता ।
रोगहीनाः प्रजा नित्यं सर्वोपद्रववर्जिताः ॥५०
अंबरीषो महातेजाः पालयामास मेदिनीम् ।
तस्यैवंवर्तमानस्य कन्या कमललोचना ॥५१
श्रीमती नाम विख्याता सर्वलक्षणसंयुता ।
प्रदानसमयं प्राप्ता देवमायेव शोभना ॥५२
तस्मिन्काले मुनिः श्रीमान्नारदोऽभ्यागतश्च वै ।
अंबरीषस्य राज्ञो वै पर्वतश्च महामतिः ॥ ३
तावुभावागतौ दृष्ट्वा प्रणिपत्य यथाविधि ।
अंबरीषो महातेजाः पूजयामास तावृषी ॥५४
कन्यां तां रसमाणां वै मेघमध्ये शतह्रदाम् ।
प्राह तां प्रेक्ष्य भगवान्नारदः सस्मितस्तदा ॥५५
केयं राजन्महाभागा कन्या सुरसुतोपमा ।
ब्रूहि धर्मभृतां श्रेष्ठ सर्वलक्षणशोभिता ॥५६

उसके शासन काल मे कभी भी भूमि असस्या अन्न की फसल से रहित नही रहती थी और वह तृणादि से भी शून्य नही होती थी अर्थात् समस्त भूमि अन्न एव तृण से परिपूर्ण रहा करती थी तथा किसी भी समय दुर्भिक्ष आदि का भय वहाँ नही होता था। उस राजा की सम्पूर्ण प्रजा रोगो से हीन अर्थात् परम स्वस्थ सुखी एव सर्वदा सभी प्रकार के उपद्रवो से रहित रहा करती थी ॥५०॥ राजा अम्बरीष महान् तेज वाला था। उसने बहुत ही अच्छी तरह से मेदिनी का पालन किया था। इस प्रकार से सुन्दर शासन करने वाले उस राजा के कमल के समान नेत्रो वाली समस्त शुभ लक्षणो से समन्वित एक श्रीमती इस शुभ नाम से विख्यात होने वाली कन्या थी। देवमाया की भाँति परम शोभा से सम्पन्न उसके प्रदान करने का समय सम्प्राप्त हो गया था ॥५१॥५२॥ उस समय मे राजा अम्बरीष के यहाँ श्रीमान् महामुनि नारद और महान् मति वाले पर्वत ये दोनो आ गये थे ॥५३॥ उन दोनो महामुनियों को देखकर राजा अम्बरीष ने जो कि स्वय महान् तेजस्वी था उन्हें

प्रणाम किया और यथा विधि उन दोनों ऋषियों का पूजन किया था ॥५४॥ मेघों के मध्य में विद्युत् की भाँति प्रकाश करने वाली परम सुन्दरी उस कन्या को देखकर भगवान् नारद मुस्कराते हुए बोले—हे राजन् ! सुरों की कन्या के समान सुन्दरी महान् भाग वाली यह कन्या कौन है। यह तो समस्त सुन्दर एवं शुभ लक्षणों से परम शोभित है। हे धर्म धारियों में परम श्रेष्ठ ! आप इस कन्या के विषय में हमें सब बताइये ॥५५॥५६॥

दुहितेयं मम विभो श्रीमती नाम नामतः ।
प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषते शुभा ॥५७
इत्युक्तो मुनिशार्दूलस्तामैच्छन्नारदो द्विजाः ।
पर्वतोपि मुनिस्तां वै चकमे मुनिसत्तमाः ॥५८
अनुज्ञाप्य च राजानं नारदो वाक्यमब्रवीत् ।
रहस्याहूय धर्मात्मा मम देहि सुतामिमाम् ॥५९
पर्वतो हि तथा प्राह राजानं रहसि प्रभुः ।
तावुभौ सन्न धर्मात्मा प्रणिपत्य भयार्दित ॥६०
उभौ भवन्तौ कन्यां मे प्रार्थयानौ कथं त्वहम् ।
करिष्यामि महाप्राज्ञ शृणु नारद मे वचः ॥६१
त्वं च पर्वत मे वाक्यं शृणु वक्ष्यामि यत्प्रभो ।
कन्येयं युवयोरेकं वरयिष्यति चेच्छुभा ॥६२
तस्मै कन्यां प्रयच्छामि नान्यथा शक्तिरस्ति मे ।
तथेत्युक्त्वा ततो भूयः श्वो यास्याव इति स्म ह ॥६३
इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलौ जग्मतु प्रीतिमानसौ ।
वासुदेवपरौ नित्यमुभौ ज्ञानविदावरौ ॥६४

राजा अम्बरीष ने कहा—हे विभो ! यह मेरी पुत्री है और इसका नाम श्रीमती है। इसके अब प्रदान करने का समय प्राप्त हो गया है और इसके लिये वर का अन्वेषण यह शुभा करती है ॥५७॥ इस प्रकार से जब राजा ने मुनि से कहा था तो वह मुनिशार्दूल नारद स्वयं उसकी इच्छा करने लगे। हे द्विजगण ! पर्वत मुनि भी उस कन्या के प्राप्त

करने की इच्छा करने लगे थे ॥५७॥५८॥ नारद मुनि ने एकान्त मे राजा को बुलाकर यह वाक्य कहा था कि राजा इस अपनी पुत्री को तुम मुझे ही देदो। ॥५६॥ इसी तरह से पर्वत मुनि ने भी राजा अम्बरीष से एकान्त मे कहा था। उन दोनो की प्रार्थना को जान कर राजा भयभीत हो गया था और उनको प्रणाम करके धर्मात्मा राजा ने कहा–आप दोनों ही मेरी कन्या को प्राप्त करना चाहते हैं। हे महान् प्राज्ञ नारद! आप मेरी बात सुनिये कि मैं अब क्या करूं। हे पर्वत मुनि! आप भी मेरी प्रार्थना सुन लीजिए। हे प्रभो! यह एक ही कन्या है अतः आप दोनों मे से कोई भी एक इस शुभा के साथ विवाह कर सकते हैं। मैं किसी भी एक को आप दोनों मे से इस कन्या को दे सकता हूँ। इसके अतिरिक्त मेरी कुछ भी शक्ति नहीं है कि मैं आप लोगो की आज्ञा का पालन कर सकूं। इस पर उन दोनो मुनियो ने कहा हम कल आवेंगे–यह कहकर वे दोनों मुनि प्रसन्न होते हुए वहाँ से चले गये थे। ये दोनों ही मुनि नित्य वासुदेव परायण और ज्ञानियो मे परम श्रेष्ठ थे। ६०॥६१॥६२॥ ॥६३॥६४॥

विष्णु लोक ततो गत्वा नारदो मुनिसत्तमः।
प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह ॥६५
श्रोतव्यमस्ति भगवन्नाथ नारायण प्रभो।
रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि नमस्ते भुवनेश्वर ॥६६
ततः प्रहस्य गोविंदः सर्वानुत्सार्य त मुनिम्।
ब्रूहीत्याह च विश्वात्मा मुनिराह च केशवम् ॥६७
त्वदीयो नृपतिः श्रीमानंबरीपो महीपतिः।
तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमती नाम नामतः ॥६८
परिणेतुमना स्तत्र गतोऽस्मि वचनं शृणु।
पर्वतोऽयं मुनिः श्रीमांस्तव भृत्यस्तपोनिधिः ॥६६
तामैच्छत्सोपि भगवन्नावामाह जनाधिपः।
अंबरीषो महातेजाः कन्येय युवयोर्वरम् ॥७०
लावण्ययुक्तं वृणुयाद्यदि तस्मै ददाम्यहम्।

इत्याहावां नृपस्तत्र तथेत्युक्त्वाहम गतः ।।७१
आगमिष्यामि ते राजन् श्व प्रभाते गृहं दिवति ।
आगतोह जगन्नाथ कर्तु महंसि मे प्रियम् ।।७२
वानराननवज्ञाति पर्वतस्य मुखं यथा ।
तथा कुरु जगन्नाथ मम चेदिच्छसि प्रियम् ।।७३

इस अनन्तर वे दोनो मुनियो मे से नारद मुनि श्रेष्ठ विष्णुलोक को चले गये थे। और भगवान् हृषीकेश को प्रणाम करके नारद ने उनसे प्रार्थना की थी–हे भगवन् ! हे नारायण ! हे नाथ ! हे प्रभो ! मुझे कुछ श्रोतव्य है अर्थात् मैं कुछ श्रवण करना चाहता हूँ सो मैं उसे आप से एकान्त स्थान मे कहूँगा। हे भुवनो के स्वामिन् ! मेरा आपको प्रणाम है ।।६६।। इसके अनन्तर भगवान् गोविन्द ने हँस कर वहाँ से सब को अलग कर दिया था और फिर वे विश्वात्मा भगवान् मुनि नारद से बोले–बोलो, क्या कहना है ? उस समय नारद मुनि ने केशव भगवान् से कहा था ।।६७।। इस भूमि का स्वामी राजा अम्बरीष आपका परम भक्त है। उसकी एक विशाल नेत्रो वाली बडी सुन्दरी कन्या है जिसका नाम श्रीमती है ।।६८।। हे भगवन् ! आप मेरी प्रार्थना का श्रवण करें, मैं वहाँ उसके साथ विवाह करने की इच्छा से गया था। यह पर्वत मुनि भी जो कि परम तपस्वी आपका ही भृत्य है। यह भी उस कन्या के साथ परिणय करना चाहता है। हे भगवन् ! हम दोनो ही ने उस राजा से अपनी २ इच्छाऐं प्रकट करते हुए कहा था तब उस राजा ने कहा था कि यह एक कन्या है और आप दोनो मे जो भी लावण्य से युक्त है उस एक का वरण कर सकती है यदि मैं उसके लिये इसे प्रदान करता हूँ। उस महान् तेजस्वी राजा ने हम दोनो से ऐसा कह दिया है। फिर मैं वहाँ से कल प्रातः काल मे आपके पास आऊँगा—यह कहकर मैं चला आया हूँ। अब हे जगत् के स्वामी ! आप मेरा प्रिय कार्य सम्पादन करने के योग्य हैं सो ऐसा ही कृपा करके कर दीजिए ।।६६।।७०।।७१।। ।७२।। हे नाथ ! अब आप ऐसा कर दीजिए कि पर्वत मुनि का मुख वन्दर के समान मुख हो जावे तो मेरी मन मे चाही हुई बात पूरी हो

जावेगी । यदि आप मेरा प्रिय करना चाहते हैं तो ऐसा ही वर देवें । ७३॥

तथेत्युक्त्वा स गोविंदः प्रहस्य मधुसूदनः ।
त्वयोक्तं च करिष्यामि गच्छ सौम्य यथागतम् ॥७४
एवमुक्त्वा मुनिर्हृष्ट. प्रणिपत्य जनार्दनम् ।
मन्यमानः कृतात्मान तथाऽयोध्या जगाम सः ॥७५
गते मुनिवरे तस्मिन्पर्वतोऽपि महामुनिः ।
प्रणम्य माधव हृष्टो रहस्येनमुवाच ह ॥७६
वृत्तं तस्य निवेद्याग्रे नारदस्य जगत्पते. ।
गोलाङ्गूलमुख यद्वन्मुखं भाति तथा कुरु ॥७७
तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुस्त्वयोक्तं च करोमि वै ।
गच्छ शीघ्रमयोध्या वै मावेदीर्नारदस्य वै ॥७८
त्वया मे संविदं तत्र तथेत्युक्त्वा जगाम स ।
ततो राजा समाज्ञाय प्राप्तौ मुनिवरौ तदा ॥७९
मार्गयेंविविधै सर्वामयोध्या ध्वजमालिनीम् ।
मण्डयामास पुष्पैश्च लाजैश्च समंततः ॥८०

कर दूंगा । भगवान् ने कहा—अब आप शीघ्र ही अयोध्या पुरी मे पहुँच जाओ नारद मुनि इसे न जानने पावें कि मेरी आपके साथ क्या बातें हुई हैं । ऐसा कहकर वह मुनि वहाँ चला गया था । जब वहाँ दोनो मुनिवर पहुँच गये तो राजा ने इस बात को जान लिया था ॥७६॥ फिर राजा अम्बरीष ने अयोध्या पुरी को विविध माङ्गल्य वस्तुओ के द्वारा मण्डित करा दिया था । वहाँ बहुत-सी ध्वजाएँ लगाई गई थी और पुष्प तथा लाजा सभी ओर उपस्थित किये गये थे । ॥८०॥

अंबुसिक्त गृहद्वारा सिक्तापणमहापथाम् ।
दिव्यगधरसोपेता धूपिता दिव्यधूपकै ॥८१
कृत्वा च नगरी राजा मडयामास ता सभाम् ।
दिव्यैर्गधैस्तथा धूपै रत्नैश्च विविधैस्तथा ॥८२
अलकृता मणिस्तभैर्नानामाल्योपशोभिताम् ।
परार्ध्यास्तरणोपेतैर्दिव्यर्भद्रासनैर्वृ ताम् ॥८३
कृत्वा नृपद्रस्ता कन्या ह्यादाय प्रविवेश ह ।
सर्वाभरणसपन्ना श्रीरिवायतलोचनाम् ॥ ४
करसमितमध्यागी पचस्निग्धा शुभाननाम् ।
स्त्रीभि परिवृता दिव्या श्रीमती सश्रिता तदा ॥८५
सभा च सा भूपपते समृद्धा मणिप्रवेकोत्तमरत्नचित्रा ।
न्यस्तासना माल्यवती सुबद्धा तामाययुस्ते नरराजवर्गा ॥८६
अथापरो ब्रह्मवरात्मजो हि त्रैविद्यविद्यो भगवान्महात्मा ।
सपर्वतो ब्रह्मविदा व रिष्ठो महामुनिर्नारद आजगाम ॥८७

उस समय अयोध्या के समस्त घरो के द्वार जल से सिक्त किये गये थे और सभी महा पथ एव बाजार भी अम्बु सिक्त किये गये थे । सर्वत्र दिव्य गन्ध एव रस से वह अयोध्या पुरी युक्त की गई थी और दिव्य धूप से धूपित हो रही थी ॥८१॥ इस प्रकार से राजा ने अयोध्या नगरी को सब तरह से सुशोभित करके फिर उस स्वयम्वर सभा को सुमण्डित कराया था । जहाँ कि परम दिव्य गन्ध धूप विविध रत्नो के द्वारा उसे विभूपित किया गया था ॥८२॥ मणियो के स्तम्भो से उस स्वयम्वर

सभा को अलंकृत किया गया था और अनेक माल्यों से उसे उपशोभित बनाया था। उस सभा मे बहुत कीमती अति उत्तम आस्तरण बिछाये गये थे तथा परम श्रेष्ठ आसनो के द्वारा उसे दिव्य बनाया गया था ॥८३॥ उस स्वयम्वर सभा को इस प्रकार से परम सुसज्जित करके राजा ने उस कन्या का वहाँ प्रवेश कराया था। वह कन्या सम्पूर्ण आभरणो से समलङ्कृत थी–सुदीर्घ विशाल नेत्रों से वह दूसरी महालक्ष्मी के ही समान परम सुन्दरी थी। वह अत्यन्त कृशोदरी थी और करादि पाँचों स्थानो मे अत्यन्त स्निग्ध थी तथा परम शुभ मुख वाली थी। उसके चारो ओर बहुत-सी स्त्रियाँ थी जो कि उस दिव्य श्रीमती की सुश्रूषा कर रही थी ॥८४॥८५॥ भूपो के भी स्वामी महाराज अम्बरीष की वह सभा अत्यन्त समृद्धि-सम्पन्न थी और मणियो के अनेक उत्तमोत्तम रत्नों के द्वारा वह विचित्र बनी हुई थी। वहाँ पर सुबद्धा माल्यवनी न्यस्त आसन वाली थी और सभी नरराजो के वर्ग उसके निकट मे आये हुए थे ॥८६॥ इसके अनन्तर ब्रह्मा वर का आत्मज वेदत्रयी की विद्या का ज्ञाता महान् आत्मा वाला और ब्रह्म वेत्ताओ मे सब से वरिष्ठ नारद मुनि पर्वत ऋषि के साथ वहाँ पर आ गये थे ॥८७॥

तावागतौ समीक्ष्याथ राजा संभ्रान्तमानसः।
दिव्यमासनमादाय पूजयामास तावुभौ ॥८८
उभौ देवर्षिसिद्धौ तावुभौ ज्ञानविदां वरौ।
समासीनौ महात्मानौ कन्यार्थं मुनिसत्तमौ ॥८९
तावुभौ प्रणिपत्याग्रे कन्यां तां श्रीमतीं शुभाम्।
सुतां कमलपत्राक्षीं प्राह राजा यशस्विनीम् ॥९०
अनयोर्यं वरं भद्रे मनसा त्वमिहेच्छसि।
तस्मै मालामिमां देहि प्रणिपत्य यथाविधि ॥९१
एवमुक्ता तु सा कन्या स्त्रीभिः परिवृता तदा।
मालां हिरण्मयीं दिव्यामादाय शुभलोचना ॥९२
यत्रासीनौ महात्मानौ तत्रागम्य स्थिता तदा।
वीक्षमाणा मुनिश्रेष्ठौ नारदं पर्वतं तथा ॥९३

शाखामृगाननं दृष्ट्वा नारदं पर्वतं तथा ।
गोलांगूलमुखं कन्या किंचित् त्राससमन्विता ॥६४
संभ्रांतमानसा तत्र प्रवातकदली यथा ।
तस्थौ तामाह राजासौ वत्से किं त्वं करिष्यसि ॥६५
अनयोरेक मुद्दिश्य देहि मालामिमां शुभे ।
सा प्राह पितरं त्रस्ता इमौ तौ नरवानरौ ॥६६

उन दोनों मुनियों को आये हुए देखकर राजा अम्बरीष सम्भ्रान्त मन वाला होकर तुरन्त ही उठ पड़ा और दिव्य आसन देकर उन दोनों मुनियों का उसने अर्चन किया था ॥८८॥ वे दोनों ही देवर्षि एवं सिद्ध पुरुष थे-वे दोनों ज्ञानियों में परम श्रेष्ठतम थे-वे दोनों मुनिश्रेष्ठ कन्या को प्राप्त करने की इच्छा से आये थे और दोनों महान् आत्मा वाले वहाँ पर विराज गये थे ॥८९॥ उन दोनों को प्रणाम करके उनके आगे राजा ने उस परम शुभ एवं सुन्दरी श्रीमती कन्या को जो कि उस राजा की पुत्री थी और परम यश वाली एवं कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली थी, कहा था—हे भद्रे ! इन दोनों में जिस किसी को भी तू मन से वरण करने की इच्छा करती है उसी महा पुरुष के गले में इस वरमाला को डालदे और विधिपूर्वक उनको प्रणिपात करले ॥९०॥९१॥ इस प्रकार से राजा के द्वारा कहे जाने पर उस समय स्त्रियों परिवृत वह शुभ लोचनों वाली कन्या परम दिव्य हिरण्मयी माला को लेकर जहाँ पर वे दोनों महात्मा समवस्थित थे वहाँ आकर उस समय में स्थित हो गई थी। वह उन दोनों मुनिश्रेष्ठों को देखती जा रही थी उन दोनों में एक नारद थे और दूसरे पर्वत मुनि थे ॥९२॥९३॥ उसने नारद और पर्वत दोनों को शाखामृग के समान मुख वाला देखा था और गोलांगूल मुख को देखकर वह कन्या कुछ भयभीत-सी हो गई थी ॥९४॥ सम्भ्रान्त मन वाली वह प्रवात से कदली की भाँति वहाँ स्थित रह गई थी तब राजा ने उसी समय उससे कहा—हे वत्से ! तू क्या करेगी ? इन दोनों में से किसी एक को उद्देश्य करके उसी के कण्ठ में हे शुभे माला को पहिना दो। तब वह डरी हुई पिता से बोली ये दोनों नर वानर हैं ॥९५॥९६॥

मुनिश्रेष्ठं न पश्यामि नारदं पर्वतं तथा ।
अनयोर्मध्यत स्त्वेकमूनषोडशवार्षिकम् ॥९७
सर्वाभरणसंपन्नमतसीपुष्पसंनिभम् ॥
दीर्घबाहु विशाल क्ष तुंगोरस्थलमुत्तमम् ॥९८
रेखांकित कटिग्रीवं रक्तांतायतलोचनम् ।
नम्रचापानुकरणपटुभ्रू युगशोभितम् ॥९९
विभक्तत्रिवलीव्यक्त नाभिव्यक्तशुभोदरम् ।
हिरण्यावर संवीत तुंगरत्ननखं शुभम् ।
पद्माकारकरत्वेनं पद्मास्यं पद्मलोचनम् ॥१००
सुनासं पद्महृदय पद्मनाभं श्रिया वृतम् ।
दंतपंक्तिभि रत्यर्थं कुंदकुड्मलसन्निभैः ॥१०१
हसत मा समालोक्य दक्षिण च प्रसार्य वै ।
पाणि स्थितममुं तत्र पश्यामि शुभमूर्धजम् ॥१०२
सम्भ्रातमानसा तत्र वेपती कदलीमिव ।
स्थिता तामाह राजासौ वत्से किं त्व कथ्यसि ॥१०३

कन्या ने अपने पिता अम्बरीष से कहा कि मैं मुनियों में श्रेष्ठ नारद तथा पर्वत को यहाँ नहीं हैं । रही हूँ । इन दोनों के मध्य में एक सोलह वर्ष से कम एक पुरुष को देख रही हूँ । जो समस्त आभरणों से सम्पन्न है और अतसी (अलसी) के पुष्प के समान वर्ण से युक्त है । इस महापुरुष की बडी दीर्घ वाहु हैं तथा अत्यन्त विशाल सुन्दर नेत्र हैं और उन्नत एव उत्तम इसका उर स्थल है । ॥९७॥९८॥ इस पुरुष की कटि तथा ग्रीवा रेखाङ्कित हैं । इसके रक्त तथा आयत लोचन हैं । नम्र चाप के अनुकरण करने इसके परम पटु भ्रूयुग और दोनों भृकुटियाँ हैं जो कि इसकी शोभा बढा रही हैं ॥९९॥ विभक्त त्रिवली के द्वारा व्यक्त तथा नाभि से व्यक्त शुभ उदर वाला है । सुवर्ण जैसे वर्ण वाले भास्वर वस्त्रों को धारण किये हुए है और उच्चकोटि के रत्नों के सदृश इसके नख परम शुभ हैं । पद्माकार कर वाला-पद्म के समान मुख से युक्त तथा पद्म के तुल्य नेत्रों वाला है ॥१००॥ सुन्दर नासिका वाला-पद्म

हृदय-पद्मनाभ तथा श्री से समन्वित है । इसकी कुन्दवली के समान अत्यन्त सुन्दर दन्तो की पंक्तियाँ हैं। दाहिने हाथ को प्रसारित करके स्थित सुन्दर केशो से युक्त यह है जो कि मुझको देख-देखकर मुस्करा रहा है। मैं ऐसे पुरुष को देखती हूँ ॥१०१॥१०२॥ इस तरह सम्भ्रान्त मन वाली प्रवात से कदली की भाँति काँपती हुई स्थित उस कन्या से इस राजा ने फिर कहा—हे रसे ! तू क्या कर रही है ? ॥१०३॥

एवमुक्ते मुनि प्राह नारद संशय गत ।
कियन्तो बाहवस्तस्य कन्ये ब्रूहि यथातथम् ॥१०४
बाहुद्वयं च पश्यामीत्याह कन्या शुचिस्मिता ।
प्राह ता पर्वतस्तत्र तस्य वक्ष स्थले शुभे ॥१०५
किं पश्यसि च मे ब्रूहि करे किं वास्य पश्यसि ।
कन्या तमाह माला वै पचरूपामनुत्तमाम् ॥१०६
वक्ष स्थलेऽस्य पश्यामि करे कार्मुकसायकान् ।
एवमुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ परस्परमनुत्तमौ ॥१ ७
मनसा चि यंतौ तौ मायेयं कस्य चिद्भवेत् ।
मायावी तस्करो नूनं स्वयमेव जनार्दन ॥१०८
आगतो न यथा कुर्यात्कथमस्मन्मुख रिवदम् ।
गोलागूलत्वमित्येव चितया मास नारद ॥१०६

इस प्रकार से कहने पर संशय को प्राप्त होने वाले नारद मुनि ने कहा—हे कन्ये ! यह तो ठीक ठीक बतलाओ उसकी कितनी बाहु हैं ? ॥१०४॥ शुचिस्मित वाली उस कन्या ने कहा—मैं उसकी दो बाहु देख रही हूँ। तब वहाँ पर पर्वत मुनि ने उस कन्या से कहा—उसके शुभ वक्ष स्थल मे तू क्या देख रही है और उसके हाथ मे क्या तुझे दिखलाई देता है-यह हमको बतला दे। तब उस कन्या ने उस मुनि से कहा था कि मैं उसके कण्ठ मे पञ्चरूप वाली परम श्रेष्ठ माला देख रही हूँ ॥१०५॥१०६॥ इस के शुभ वक्ष स्थल मे माला और हाथो मे कार्मुक (धनुष) और सायको को मैं देखती हूँ ऐसा उस कन्या ने उन मुनियो को उत्तर दिया था। ऐसा कहने पर उन उत्तम मुनिश्रेष्ठो ने आपस मे चिन्तन

करते हुए कहा कि यह किसी की माया हो सकती है। निश्चय ही माया-वी तस्कर स्वयं ही जनार्दन हैं ॥१०७॥१०८॥ वह ही यहाँ पर आ गया है। नहीं तो यह हमारा मुख यह कैसे कर दिया गया है। नारद ने फिर यही विचार किया था कि यह मुख गोलाङ्गूलल को इसी प्रकार से प्राप्त हुआ है ॥१०६॥

पर्वतोपि यथान्यायं वानरत्वं कथ मम ।
प्राप्तमित्येव मनसा चितामापेदिवांस्तथा ॥११०
ततो राजा प्रणम्यासौ नारद पर्वतं तथा ।
भवद्भयां किमिदं तत्र कृतं बुद्धिविमोहजम् ॥१११
स्वस्थौ भवतो तिष्ठेता यथा कन्यार्थ मुद्यतौ ।
एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठौ नृपमूचतुरुल्बणौ ॥११२
त्वमेव मोह कुरुषे नावामिह कथंचन ।
आवयोरेकमेषा ते वरयत्वेव मा चिरम् ॥११३
ततः सा कन्यका भूय प्रणिपत्येष्टदेवताम् ।
मायामादाय तिष्ठत तयोर्मध्ये समाहितम् ॥११४
सर्वाभरणसयुक्त मतसीपुष्पसन्निभम् ।
दीर्घबाहुं सुपुष्टागं कर्णान्तायतलोचनम् ॥११५
पूर्ववत्पुरुष दृष्ट्वा माला तस्मै ददौ हि सा ।
अनन्तर हि सा कन्या न दृष्टा मनुजैः पुनः ॥११६
ततो नादः समभवत् किमेतदिति विस्मितौ ।
तामादाय गतो विष्णुः स्वस्थानं पुरुषोत्तमः ॥११७
पुरा तदर्थमनिशं तपस्तप्त्वा वरांगना ।
श्रीमती सा समुत्पन्ना सा गता च तथा हरिम् ॥११८

पर्वत मुनि भी मेरा मुख वानर के तुल्य कैसे हो गया है—इसी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे ॥११०॥ तब राजा ने नारद और पर्वत दोनों को प्रणाम करके उनसे कहा—आप दोनों को यह क्या बुद्धि का विमोह उत्पन्न हो गया है? यहाँ पर ऐसा क्या हो गया है ॥१११॥ आप दोनों स्वस्थ होकर विराजमान होइये क्योंकि आप दोनों ही यहाँ पर कन्या

प्राप्त करने के लिये उपस्थित हुए हैं। ऐसा जब राजा ने कहा तो वे दोनो मुनिश्रेष्ठ बहुत क्रोधित होकर राजा से बोले—॥११२॥ यहाँ पर हम दोनों किसी भी प्रकार से मोह को प्राप्त नही हुए हैं, तुम ही मोह करते हो। यह आपकी कन्या हम दोनो मे से किसी भी एक वरण करले इसमे विलम्ब नही करना चाहिए ॥११३॥ इसके पश्चात् उस कन्या ने पुन अपने इष्ट देवता को प्रणाम किया जो कि माया के लेकर उन दोनो के मध्य मे समाहित होकर स्थित था ॥११४॥ वह महापुरुष सभी आभूषणो से समलङ्कृत और अलसी के पुष्प के समान अति सुन्दर श्यामाभ वर्ण वाला था। दीर्घ बाहुओ से युक्त सुपुष्ट अङ्गो वाला तथा कर्णो के पर्य्यन्त तक विशाल नेत्रो वाला था ॥११५॥ ऐसे पूर्व की भाँति उस परम मनोरम महापुरुष का दर्शन करके उसने उसी के गले में वह वर माला पहिना दी थी। इसके पश्चात् फिर मनुष्यो ने वह कन्या नही देखी थी ॥११६॥ इसके उपरान्त वह नारद हो गये थे—यह क्या हुआ इस प्रकार से दोनों विस्मित हुए थे। पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु उस कन्या को साथ लेकर अपने स्थान को चले गये थे ॥११७। प्राचीन काल मे उस वराङ्गना ने उसकी प्राप्ति के लिये ही बड़ी भारी निरन्तर तपस्या की थी और वही अब श्रीमती नाम धारिणी कन्या के स्वरूप मे समुत्पन्न हुई थी और वह हरि को प्राप्त कर चुकी थी ॥११८॥

तावुभौ मुनिशार्दूलौ धिक्कृतावति दु:खितौ ।
वासुदेवं प्रति तदा जग्मतुर्भवनं हरे. ॥११६
तावागतौ समीक्ष्याह श्रीमती भगवान्हरि. ।
मुनिश्रेष्ठौ समायातौ गृह्यत्व रमानमन्न वै ॥१२०
तथेत्युक्त्वा च सा देवी प्रहसंती चचार ह ।
नारद प्रणिपत्याग्रे प्राह दामोदरं हरिम् ॥१२१
प्रियं हि कृत वानद्य मम त्वं पर्वतस्य हि ।
त्वमेव नून गोविंद कन्या ता हृतवानसि ॥१२२
विमोह्यावा स्वय बुद्धया प्रतार्य सुरसत्तम ।
इत्युक्त पुरुषो विष्णु पिधाय श्रोत्रमच्युत. ।

पाणिभ्यां प्राह भगवान् भवद्भ्यां किमुदीरितम् ॥१२३
कामवानपि भावोय मुनिवृत्तिरहो किल ।
एवमुक्तो मुनिः प्राह वासुदेव स नारदः ॥१२४
कर्णमूले मम कथं गोलागूलमुख त्विति ।
कर्णमूले तमाहेद वानरत्व कृतं मया ॥१२५
पर्वतस्य मया विद्वन् गोलागूलमुख तव ।
मया तव कृत्त तत्र प्रियार्थं नान्यथा त्विति ॥१२६
पर्वतोऽपि तथा प्राह तस्याप्येव जगाद स. ।
शृण्वतोरुभयोस्तत्र प्राह दामोदरो वच ॥१२७

वे दोनो मुनिशार्दूल हृदय मे बहुत ही धिक्कृत हुए और अत्यन्त दुःखित भी हुए थे । इसके अनन्तर वे दोनो मुनि भगवान् वासुदेव के निकट उनके स्थान पर गये थे ॥११६॥ उन दोनो को आये हुए देखकर भगवान् ने श्रीमती से कहा—यहाँ पर अपने आपको तुम छिपालो । ॥१२०॥ ऐसा ही होगा-यह कहकर उस देवी ने हँसते हुए वैसा ही किया था । देवर्षि नारद ने भगवान् को प्रणिपात करके उनसे कहा था ॥१२१॥ हे भगवन् ! आज आपने मेरा और पर्वत मुनि का प्रिय कार्य किया ही हे गोविन्द ! आपने ही निश्चय रूप से उस कन्या का हरण किया है ॥१२२॥ हम दोनो को विमोहित किया था और स्वय अपनी बुद्धि से हे सुरश्रेष्ठ ! आपने हमको प्रतारित कर दिया था । इस तरह नारद के कहने पर भगवान् अच्युत पुरुषोत्तम ने दोनो अपने कानो को हाथो से ढककर फिर कहा-यह आपने अभी क्या कहा है । यह बात तो काम वाला है और आप मुनि की वृत्ति वाले हैं । तब ऐसे कहे हुए नारद ने वासुदेव से कर्णमूल मे कहा मेरा यह गोलागूल मुख कैसे हुआ था । तब उनसे कर्णमूल मे ही यह कहा गया था कि यह वानरत्व मैंने कर दिया था । १२३॥१२४॥१२५॥ पर्वत का और तुम्हारा यह गोला-गूल मुख का हो जाना सब मैंने ही किया था । यह सब मैंने तुम्हारे ही प्रिय हित के लिये किया था । इसके अतिरिक्त अन्य इसका कोई भी अभिप्राय नही था ॥१२६॥ इसी प्रकार से पर्वत मुनि ने भी भगवान् से

कहा था और उनको भी ऐसा ही उत्तर वासुदेव ने दे दिया था। उन दोनों के सुनते हुए वहाँ पर भगवान् दामोदर ने यह वचन कहा था ॥१२७॥

प्रिय भवद्भ्यां कृतवान् सत्येनात्मानमालभे ।
नारदः प्राह धर्मात्मा आवयोर्मध्यतः स्थितः ॥१२८
धनुष्मान् पुरुषः कोत्र तां हृत्वा गतवान्किल ।
तच्छ्रुत्वा वासुदेवोऽसौ प्राह तौ मुनिसत्तमौ ॥१२९
मायाविनो महात्मनो बहवः सति सत्तमाः ।
तत्र सा श्रीमती नूनमदृष्ट्वा मुनिसत्तमौ ॥१३०
चक्रपाणिरहं नित्य चतुर्बाहुरिति स्थितः ।
ता तया नाहमैच्छं वै भवद्भ्यां विदित हि तत् ॥१३१
इत्युक्तौ प्रणिपत्यैनमूचतुः प्रीति मानसौ ।
कोऽत्र दोषस्तव विभो नारायण जगत्पते ॥ ३२
दौरात्म्यं तन्नृपस्यैव माया हि कृतवानसौ ।
इत्युक्त्वा जग्मतुस्तस्मान्मुनी नारदपर्वतौ ॥१३३
अंबरीष समासाद्य शापेनैनमयोजयत् ।
नारदः पर्वतश्चैव यस्मादावामिहागतौ ॥१३४
आहूय पश्चादन्यस्मै कन्यां त्वं दत्तवानसि ।
मायायोगेन तस्मात्त्वा तमो ह्यभिभविष्यति ॥१३५

भगवान् ने कहा--मैंने आप दोनों का ही प्रिय किया था—यह मैं बिल्कुल सत्य कह रहा हूँ। तब नारद मुनि ने कहा—वह धर्मात्मा हम दोनों के मध्य में धनुष धारण करने वाला पुरुष वहाँ पर कौन था जो कि उस कन्या का हरण करके चला गया था? यह श्रवण भगवान् वासुदेव ने उन दोनों मुनिश्रेष्ठों से कहा था। माया धारण करने वाले बहुत से श्रेष्ठ पुरुष महान् आत्मा वाले होते हैं। उस समय में उन दोनों मुनियों ने वहाँ पर उस श्रीमती को नहीं देखा था ॥१३०॥ भगवान् ने कहा—मैं तो चक्र को नित्य हाथ में रखने वाला हूँ और मेरे तो चार भुजाएँ हैं। मैं उसको उस रूप से नहीं चाहता था–यह सब आप दोनों

को भली-भाँति विदित ही है ॥१३१॥ इस तरह से कहे गये उन दोनो मुनियो ने भगवान् को प्रणाम करके कहा–हम तो दोनो ही प्रीति युक्त चित्त वाले हैं। हे जगत् के स्वामिन् ! हे विभो ! हे नारायण ! आपका इसमे क्या दोष है ? ॥१३२॥ यह दुष्टता तो उसी रा-ा की है। और उसी ने यह सब माया की थी–इस तरह से कहकर वे दोनो मुनि नारद तथा पर्वत राजा अम्बरीष के समीप मे चले गये थे ॥१३३॥ राजा अम्बरीष के पास पहुँच कर इसको शाप से योजित किया था। नारद और पर्वत मुनि जिस कारण से हम दोनो यहाँ आये थे। हमको बुलाकर हे राजन् ! तूने अपनी कन्या को दूसरे के लिये दे दिया था और यह माया का योग किया था अतएव यह तम तुझको ही अभिभूत करेगा ॥१३४॥१३५॥

तेन चात्मानमत्यर्थं यथावत्त्वं न वेत्स्यसि ।
एव शापे प्रदत्ते तु तमोराशिरथोत्थितः ॥१३६
नृपं प्रति ततश्चक्र विष्णो. प्रादुरभूत्क्षणात् ।
चक्रवित्रासित घोरं तावुभौ तम अभ्यगात् ॥१३७
तत सत्रस्तसर्वाङ्गौ धावमानौ महामुनौ ।
पृष्ठतश्चक्रमालोक्य तमोराशि दुरासदम् ॥१३८
कन्यासिद्धिरहो प्राप्ता ह्यावयोरिति वेगितौ ।
लोकालोकातमनिश धावमानौ भयार्दितौ ॥१३६
त्राहित्राहीति गोविंदं भावमाणौ भयार्दितौ ।
विष्णुलोक ततो गत्वा नारायण जगत्पते ॥१४०
वासुदेव हृषीकेश पद्मनाभ जनार्दन ।
त्राह्यावा पुण्डरीकाक्ष नाथोऽसि पुरुषोत्तम ॥१४१
ततो नारायणश्चित्य श्रीमाञ्छ्रीवत्सलांछन ।
निवार्य चक्रं ध्वांत च भक्तानुग्रहकाम्यया ॥१४२

उस तम का यह प्रभाव होगा कि तू अपने आपको यथावत् नहीं जानेगा। इस प्रकार का ऋषियो का शाप देने पर इसके अनन्तर ही तमोराशि का उत्थान हो गया था ॥१३६॥ ज्यो ही वह नृप के प्रति

जाने लगा उसी क्षण मे भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र वहाँ प्रादुर्भूत हो गया था। उस चक्र से अत्यधिक त्रस्त होकर वह तम उन्ही दोनो ऋषियो की ओर चला गया था ॥१३७॥ इसके पश्चात् सम्यक् प्रकार से त्रस्त सम्पूर्ण अङ्गो वाले वे दोनो मुनि वहाँ से भाग कर चले और अपने पीछे आते हुए उस अति दुरासद तमोराशि तथा सुदर्शन चक्र को उन्होने देखा था ॥१३८॥ वे दोनो यह कहते हुए भागे चले जाते थे कि अच्छी हम दोनों की कन्या प्राप्त होने की सिद्धि हुई। वे बहुत ही वेग से दौड लगा रहे थे और भय से परम दुखित होकर निरन्तर लोकालोकान्त तक भागते ही रहे थे। ॥१३९॥ भय से परम पीडित होते हुए गोविन्द का स्मरण कर यह पुकार लगा रहे थे कि हे नारायण ! हे नाथ ! हमारी रक्षा करो हमको त्राण प्रदान करो। अन्त मे वे विष्णु लोक मे पहुँच गये थे ॥१४०॥ वहाँ पहुच कर उन दोनो ने भगवान् से कहा—हे वासुदेव ! हे पद्मनाभ ! आप तो समस्त इन्द्रियों के स्वामी हैं तथा भक्त-जनो के दुखो के मर्दन करने वाले हैं। हे पुण्डरीकाक्ष ! आप परम श्रेष्ठ पुरुष हैं और सब के नाथ हैं। आप हम दोनो की रक्षा करो। ॥१४१॥ इसके अनन्तर श्रीमान् श्रीवत्स के लाञ्छन वाले नारायण ने विचार कर उस चक्र को तथा तमोराशि को भक्तो पर अनुग्रह करने की इच्छा से निवारित कर दिया था ॥१४२॥

अंबरीषश्च मद्भक्तस्तथैतौ मुनिसत्तमौ ।
अनयोरस्य च तथा हितं कर्तुं मयाऽधुना ॥१४३
आहूय तत्तमः श्रीमान् गिरा प्रह्लादयन् हरिः ।
प्रोवाच भगवान् विष्णु शृणुताम इदं वच ॥१४४
ऋषिशापो न चैवासीदन्यथा च वरो मम ।
दत्तो नृपाय रक्षार्थं नास्ति तस्यान्यथा पुनः ॥१४५
अंबरीषस्य पुत्रस्य नप्तुः पुत्रो महायशाः ।
श्रीमान्दशरथो नाम राजा भवति धार्मिकः ॥१४६
तस्याहमग्रज पुत्रो रामनामा भवाम्यहम् ।
तत्र मे दक्षिणो बाहुर्भरतो नाम वै भवेत् ॥१४७

शत्रुघ्नो नाम सव्यश्च शेषोऽसौ लक्ष्मण. स्मृत. ।
तत्र मां समुपागच्छ गच्छेदानीं नृपं विना ॥१४८
मुनिश्रेष्ठौ च हित्वा त्वमिति स्माह च माधवः ।
एवमुक्तं तमो नाशं तत्क्षणाच्च जगाम वै ॥१४९

तब श्रीमान् हरि ने उस तम को बुलाकर कहा- राजा अम्बरीष मेरा परम भक्त है और ये दोनो मुनि भी मेरे भक्त हैं । मैंने इस राजा का और इन दोनो मुनियो का परम हित का कार्य अब किया है । हरि ने अपनी वाणी से तम को प्रसन्न करते हुए कहा था कि तुम मेरा यह वचन श्रवण कर लो । यह ऋषि का शाप नही था । यह तो अन्य प्रकार से मेरा वरदान ही था । यह नृप की रक्षा के लिये दिया गया है । इसका फिर अन्यथा नही होगा ॥१४३॥१४४॥१४५॥ राजा अम्बरीष के पुत्र के नाती का महान् यश वाला पुत्र दशरथ नाम वाला राजा परम धार्मिक होगा ॥१४६॥ उसका मैं सबसे बडा पुत्र रामचन्द्र नाम वाला होऊगा । वहाँ पर उस समय मे मेरा दक्षिण बाहु भरत नामधारी होगा और वाम बाहु शत्रुघ्न नाम वाला होगा । यह शेष लक्ष्मण होगा । उस समय तू मेरे पास आना । अब राजा को छोडकर चला जा ॥१४७॥ ॥१४८॥ माधव ने कहा—अब तू इन दोनो श्रेष्ठ मुनियो को छोड दे । इस प्रकार से भगवान् के द्वारा कहे जाने पर वह तम उसी समय नाश को प्राप्त हो गया था और वहाँ से चला गया था ॥१४९॥

निवारित हरेश्चक्रं यथापूर्वमतिष्ठत ।
मुनिश्रेष्ठौ भयान्मुक्तौ प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥१५०
निर्गतौ शोकसंतप्तौ ऊचतुस्तौ परस्परम् ।
अद्यप्रभृति देहान्तमावां कन्यापरिग्रहम् ॥१५१
न करिष्याव इत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तावृषी ।
योगध्यानपरौ शुद्धौ यथापूर्वं व्यवस्थितौ ॥१५२
अंबरीषश्च राजासौ परिपाल्य च मेदिनीम् ।
सभृत्यज्ञातिसंपन्नो विष्णुलोकं जगाम वै ॥१५३
मानार्थमंबरीषस्य तथैव मुनिसिंहयोः ।

रामो दाशरथिर्भूत्वा नात्मवेदीश्वरोऽभवत् ॥१५४
मुनयश्च तथा सर्व भृग्वाद्या मुनिसत्तमा ।
माया न कार्या विद्वद्भिरित्याहु प्रेक्ष्य त हरिम् ॥१५५

निवारित किया हुआ वह हरि भगवान् का चक्र भी पूर्व की भाँति अवस्थित हो गया था। दोनो मुनि भय से मुक्त हो गये थे और उन्होंने जनार्दन को प्रणिपात करके वहाँ से निर्गमन किया था। वे परम शोक से दोनो ही सन्तप्त हो रहे थे तथा परस्पर मे कह रहे थे कि आज से फिर कभी भी हम दोनों किसी भी कन्या का परिग्रह नही करेंगे। ऐसा कहकर उन दोनो ऋषियो ने पक्की प्रतिज्ञा की थी। फिर वे दोनो ही अपने योग के ध्यान मे परम शुद्ध होते हुए परायण हो गये थे और पूर्व की ही भाँति व्यवस्थित हो गये ॥१५०॥१५१॥१५२॥ उस राजा अम्बरीष ने भली-भाँति पृथ्वी का परिपालन किया था और फिर वह अपने भृत्य-ज्ञाति सब को साथ लेकर विष्णु लोक को चला गया था। ॥१५३॥ राजा अम्बरीष के मान की रक्षा के लिये तथा दोनो मुनियो के वचनो का पूर्ण पालन करने के लिये राजा दशरथ के पुत्र श्रीराम हुए थे जो आत्मवेदी ईश्वर नही हुए थे ॥१५४॥ उस समय भृगु आदि समस्त श्रेष्ठतम मुनिगण भी उन हरि को देखकर यही कहने लगे थे कि विद्वान् पुरुषो को माया कभी नही करनी चाहिए ॥१५५॥

नारद पर्वतश्चैव चिर ज्ञात्वा विचेष्टितम् ।
माया विष्णोर्विनिन्द्यैव रुद्रभक्तौ बभूवतु ॥१५६
एतद्धि कथित सर्वं मया युष्माकमद्य वै ।
अम्बरीषस्य माहात्म्यं मायावित्वं च वै हरे ॥१५७
य पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वापि मानव ।
माया विसृज्य पुण्यात्मा रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ५८
इद पवित्र परम पुण्य वेदैरुदीरितम् ।
साय प्रात पठेन्नित्य विष्णो सायुज्यमाप्नुयात् ॥१५९

नारद और पर्वत मुनि चिरकाल तक उस विचेष्टित का ध्यान करके तथा भगवान् विष्णु की माया की विशेष रूप से निन्दा करके रुद्र के

भक्त हो गये थे ॥१५६॥ मैंने यह सब राजा अम्बरीष का माहात्म्य और भगवान् हरि का मायावी होना आज आप लोगों के समक्ष में कह दिया है ॥१५७॥ इस परम पवित्र चरित्र को जो भी कोई मनुष्य पढ़ेगा या श्रवण करेगा अथवा इस चरित्र का श्रवण करायेगा वह परम पुण्यात्मा माया का त्याग करके रुद्र लोक में चला जायेगा ॥१५८॥ यह चरित्र परम पुण्यमय एव अत्यन्त ही पवित्र है—इसको वेदों ने कहा है। इसका सायङ्काल तथा प्रातःकाल मे पाठ करने वाला भगवान् विष्णु के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है ॥१५९॥

॥ ७६—लक्ष्मी की उत्पत्ति—अलक्ष्मीवास योग्य स्थान ॥

मायावित्वं श्रुतं विष्णोर्देवदेवस्य धीमतः।
कथं ज्येष्ठासमुत्पत्तिर्देवदेवाज्जनार्दनात् ॥१
वक्तुमर्हसि चास्माकं लोमहर्षण तत्त्वतः।
अनादिनिधनः श्रीमान्धाता नारायणः प्रभुः ॥२
जगद्द्विधमिदं चक्रे मोहनाय जगत्पतिः।
विष्णुर्वै ब्राह्मणान्वेदान्वेदधर्मान् सनातनान् ॥३
श्रियं पद्मां तथा श्रेष्ठां भागमेकमकारयत्।
ज्येष्ठामलक्ष्मीमशुभां वेदबाह्यान्नराधमान् ॥४
अधर्मं च महातेजा भागमेकमकल्पयत्।
अलक्ष्मीमग्रतः सृष्ट्वा पश्चात्पद्मां जनार्दनः ॥५
ज्येष्ठा तेन समाख्याता अलक्ष्मीर्द्विजसत्तमाः।
अमृतोद्भववेलायां विषानन्तरमुल्वणात् ॥६
अशुभा सा तयोत्पन्ना ज्येष्ठा इति च वै श्रुतम्।
ततः श्रीश्च समुत्पन्ना पद्मा विष्णुपरिग्रहः ॥७

इस अध्याय मे अलक्ष्मी की उत्पत्ति और उसके आवास के स्थलो एव वास के योग्य स्थानो का निरूपण किया जाता है। ऋषियो ने कहा—देवो के भी देव परम धीमान् भगवान् विष्णु का मायावी होना हम लोगो ने आपके श्री मुख से भली-भाँति श्रवण किया है। अब आप यह

बताइये कि देवों के देव जनार्दन से ज्येष्ठा की समुत्पत्ति कैसे हुई थी ? ॥१॥ हे लोमहर्षण ! आप यह तत्व पूर्वक हमको बताने के लिये परम योग्य हैं । सूतजी ने कहा—प्रभु नारायण तो अनादि निधन तथा श्रीमान् एवं सब के धाता हैं ॥२॥ जगत् के स्वामी ने मोहन के लिये इस जगत् को दो प्रकार का कर दिया है । भगवान् विष्णु ने ब्राह्मण वेद और सनातन वेद के धर्मों का तथा श्रेष्ठ पद्मा श्री का एक भाग किया था और उस महान् तेजस्वी ने ज्येष्ठा-अशुभा-अलक्ष्मी तथा वेद बाह्य अधम नर और अधर्म का एक अलग भाग की कल्पना की है । भगवान् ने पहिले अलक्ष्मी का ही सृजन किया था फिर इसके अनन्तर जनार्दन ने पद्मा का सृजन किया है ॥३॥४॥५॥ उसने इसका नाम ज्येष्ठा रक्खा है हे द्विजश्रेष्ठो ! इसको अलक्ष्मी कहते हैं । यह ज्येष्ठा अमृत की उत्पत्ति के समय में विष के अनन्तर उत्पन्न से वह अशुभा समुत्पन्न हुई थी जो कि ज्येष्ठा—इस नाम से श्रूयमाण होती थी । इसके अनन्तर पद्मा श्री समुत्पन्न हुई थी जो कि भगवान् विष्णु का परिग्रह हुई थी ॥६॥७॥

दु:सहो नाम विप्रर्षिरुपयेमेऽशुभा तदा ।
ज्येष्ठा ता परिपूर्णोऽसौ मनसा वीक्ष्य धिष्ठिताम् ॥८
लोकं चचार हृष्टात्मा तया सह मुनिस्तदा ।
यस्मिन् घोषो हरेश्चैव हरस्य च महात्मनः ॥९
वेदघोषस्तथा विप्रा होमधूमस्तथैव च ।
भस्मांगिनो वा यत्रासंस्तत्र तत्र भयार्दिता ॥१०
पिधाय कर्णौ संयाति धावमाना इत स्ततः ।
ज्येष्ठामेवंविधा दृष्ट्वा दुःसहो मोहमागतः ॥११
तया सह वनं गत्वा चचार स महामुनिः ।
तपो महद्वने घोरे याति कन्या प्रतिग्रहम् ॥१२
न करिष्यामि चेत्युक्त्वा प्रतिज्ञाय च तामृषिः ।
योगज्ञानपरः शुद्धो यत्र योगीश्वरो मुनिः ॥१३
तत्रायांतं महात्मानं मार्कंडेयमपश्यत ।
प्रणिपत्य महात्मानं दुःसहो मुनिमब्रवीत् ॥१४

एक दु:सह नाम वाले विप्रर्षि थे। उन्होने उस समय मे उस ज्येष्ठा को मन से अधिष्ठित देखकर परिपूर्ण होने वाले उस विप्रर्षि ने अशुभा के साथ विवाह किया था ॥८॥ तब वह मुनि उसके साथ परम प्रसन्न होकर लोक मे चरण किया करता था। जिस स्थान मे हरि के शुभ नाम का संकीर्त्तन-ध्वनि होती थी या महात्मा हर के नाम का घोष सुनाई देता था ॥६॥ जहाँ पर भी ब्राह्मणो के द्वारा वेद ध्वनि होती थी या होम का धूम होता था अथवा भस्म अङ्ग पर धारण करने वाले जहाँ पर भी होते थे वहाँ पर यह ज्येष्ठा भय से भीत एवं दु:खित होकर और दोनो अपने कानो को ढाँप कर इधर-उधर भागा करती थी। इस प्रकार से रहने वाली इस ज्येष्ठा को देखकर वह विप्रर्षि मोह को प्राप्त हो गया था ॥१०॥११॥ फिर वह महामुनि उसको साथ मे लेकर वन में विचरण करने लगा था। उस घोर महान् वन मे वह तप करता कि वह कन्या प्रतिग्रह को प्राप्त होगी किन्तु उसने मैं प्रति ग्रह नही करूँगी ऐसी उस ऋषि से प्रतिज्ञा की थी। उस स्थान पर योगेश्वर मुनि शुद्ध होकर योग ज्ञान मे परायण रहा करता था ॥१२॥१३॥ वहाँ पर एक बार उस मुनि ने आये हुए मार्कण्डेय मुनि का दर्शन प्राप्त किया था। ऋषि विप्रर्षि ने मार्कण्डेय मुनि को यथाविधि प्रणाम करके उनसे कहा था ॥१४॥

भार्येयं भगवन्मह्यं न स्थास्यति कथंचन।
किं करोमीति विप्रर्षे ह्यनया सह भार्यया ॥१५
प्रविशामि तथा कुत्र कुतो न प्रविशाम्यहम्।
शृणु दुःसह सर्वत्र अकीर्तिरशुभान्विता ॥१६
अलक्ष्मीरतुला चेयं ज्येष्ठा इत्यभिशब्दिता।
नारायणपरा यत्र वेदमार्गानुसारिणः ॥१७
रुद्रभक्ता महात्मानो भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
स्थिता यत्र जना नित्यं मा विशेथाः कथंचन ॥१८
नारायण हृषीकेश पुंडरीकाक्ष माधव।
अच्युतानंत गोविंद वासुदेव जनार्दन ॥१६

रुद्र रुद्रेति रुद्रेति शिवाय च नमो नमः ।
नमः शिवतरायेति शङ्करायेति सर्वदा ॥२०
महादेव महादेव महादेवेति कीर्तयेत् ।
उमायाः पतये चैव हिरण्यपतये सदा ॥२१
हिरण्यबाहवे तुभ्यं वृषाकाय नमो नमः ।
नृसिंह वामनाचित्य माधवेति च ये जनाः ॥२२
वक्ष्यति सततं हृष्टा ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा ।
वैश्या. शूद्राश्च ये नित्य तेषा धनगृहादिषु ।
आरामे चैव गोष्टेषु न विशेथाः कथचन ॥२३

हे भगवन् ! यह भार्या मेरे पास किसी प्रकार भी नही रहेगी। हे विप्रर्ष ! मैं इस भार्या के साथ क्या करू ? मैं कहाँ तो प्रवेश करू और मैं कहाँ प्रवेश नही करू ? मार्कण्डेय जी ने कहा—आप सुनिये, अशुभ से युक्त अकीर्ति सर्वत्र ही दुस्सह होती है ॥१५॥१६॥ यह अतुला अलक्ष्मी है और ज्येष्ठा–ही नाम से पुकारी जाती है। जहाँ पर भगवान् नारायण मे परायण–रहने वाले वेदो के मार्ग का अनुसरण करने वाले–रुद्र के भक्त-महान् आत्मा वाले-भस्म से उद्धूलित शरीरो वाले मनुष्य जहाँ पर नित्य स्थित रहा करते हैं वहाँ आप किसी भी प्रकार से कभी प्रवेश न किया करें ॥१७॥१८॥ जहाँ पर हे नारायण-हृषीकेश-पुण्डरीकाक्ष-माधव-अच्युतानन्द-गोविन्द-वासुदेव-जनार्दन इन भगवान् के परम पवित्र एव शुभ नामो को तथा रुद्र-रुद्र हे रुद्र ! शिव के लिये बारम्बार नमस्कार है। सर्वदा शिव तर एव शङ्कर के लिये प्रणाम है—हे महादेव ! हे महादेव ! हे महादेव !—इस प्रकार से शिव के शुभ तम नामों को पुकार कर कीर्त्तन किया जाता हो– उमा के पति के लिये—सदा हिरण्य पति के लिये तथा हिरण्य बाहु वाले तुम्हारे लिये तथा वृषाङ्क के लिये बारम्बार नमस्कार हैं। हे नृसिंह ! हे वामन ! हे माधव !—इस प्रकार से जहाँ पर मनुष्य बोलते हो चाहे वे ब्राह्मण हो या क्षत्रिय-वैश्य तथा शूद्र ही हो भगवन्नामोच्चारण करके परम प्रसन्नता प्राप्त करने वाले रहते हो उनके धनगृहादि मे-आरामोद्यानो मे और गोष्ठ मे आपको कभी

किसी भी प्रकार से प्रवेश नहीं करना चाहिए ॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥

ज्वालामालाकरालं च सहस्रादित्यसन्निभम् ।
चक्रं विष्णोरतीवोग्रं तेषां हन्ति सदाशुभम् ॥२४
स्वाहाकारो वषट्कारो गृहे यस्मिन् हि वर्तते ।
तद्धित्वा चान्यमागच्छ सामघोषोथ यत्र वा ॥२५
वेदाभ्यासरता नित्यं नित्यकर्मपरायणाः ।
वासुदेवार्चनरता दूरतस्तान्विसर्जयेत् ॥२६
अग्निहोत्रं गृहे येषां लिंगार्चा वा गृहेषु च ।
वासुदेवतनुर्वापि चंडिका यत्र तिष्ठति ॥२७
दूरतो व्रज तान् हित्वा सर्वपापविवर्जितान् ।
नित्यनैमित्तिकैर्यज्ञैर्यजंति च महेश्वरम् ॥२८
तान् हित्वा व्रज चान्यत्र दुःसहत्वं सहानया ।
श्रोत्रिया ब्राह्मणा गावो गुरवोऽतिथयः सदा ॥२९
रुद्रभक्ताश्च पूज्यंते यैर्नित्यं तान् विवर्जयेत् ।
यस्मिन्प्रवेशो योग्यो मे तद्ब्रूहि मुनिसत्तम ॥३०

ऐसे भक्त पुरुषों के अशुभों को तो ज्वालाओं की मालाओं से महान् विकराल स्वरूप वाला-सहस्रों सूर्यों के समान तेज से युक्त अत्यन्त उग्र भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र सर्वदा हनन कर दिया करता है ॥२४॥ जिस घर में स्वाहा कार तथा वषट् कार होता हो—इन ऐसे स्थलों का भी आपको परित्याग करके ही रहना चाहिए । जहाँ सामवेद के मन्त्रों का उद्घोष होता है तथा जो सदा वेदों के स्वाध्यायाभ्यास में रति रखने वाले निरन्तर उसमें सलग्न रहते हों एवं नित्य कर्मानुष्ठान में परायण रहने वाले लोग निवास करते हों तथा भगवान् वासुदेव की अर्चना में रत हों ऐसे स्थलों को तो आपको दूर से ही त्याग कर देना चाहिए ॥२५॥२६॥ जिन घरों में नित्य ही अग्निहोत्र होता हो तथा शिव की लिङ्गार्चना हुआ करती हो तथा वासुदेव की मूर्ति अथवा चण्डिका देवी की प्रतिमा जहाँ विराजमान हो—ऐसे समस्त प्रकार के पापों से रहित स्थलों को छोड़कर आपको दूर ही से चल देना चाहिए । नित्य तथा

नैमित्तिक यज्ञों के द्वारा जहाँ पर महेश्वर का यजन होम किया करते हैं उन स्थानों का भी त्याग करके ही अन्य स्थानों में इस अपनी भार्या के साथ दुस्सहता पूर्वक चले जाया करें। श्रोत्रिय ब्राह्मण-गौऐं-गुरु वर्ग और अतिथि गण-रुद्र के भक्त जहाँ सदा पूज्य हुआ करते हैं नित्य ही उन स्थानों को आपको त्याग ही देना चाहिए। दुःसह ने कहा—हे मुनि-श्रेष्ठ! अब आप मुझे यह स्थल बता देने की कृपा करें जिनमें मेरा प्रवेश योग्य होता हो ॥२७॥२८॥२९॥३०॥

त्वद्वाक्याद्भयनिर्मुक्तो विशाम्येषां गृहे सदा।
न श्रोत्रिया द्विजा गावो गुरवोऽतिथयः सदा।
यत्र भर्ता च भार्या च परस्परविरोधिनौ ॥३१
सभार्यस्त्व गृहं तस्य विशेथा भयवर्जितः।
देवदेवो महादेवो रुद्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥३२
विनिंद्यो यत्र भगवान् विशस्व भयवर्जितः।
वासुदेवरतिर्नास्ति यत्र नास्ति सदाशिवः ॥३३
जपहोमादिकं नास्ति भस्म नास्ति गृहे नृणाम्।
पर्वण्यभ्यर्चनं नास्ति चतुर्दश्यां विशेषतः ॥३४
कृष्णाष्टम्यां च रुद्रस्य संध्यायां भस्मवर्जिताः।
चतुर्दश्यां महादेवं न यजंति च यत्र वै ॥३५
विष्णोर्नामविहीना ये संगताश्च दुरात्मभिः।
नमः कृष्णाय शर्वाय शिवाय परमेष्ठिने ॥३६
ब्राह्मणाश्च नरा मूढा न वदंति दुरात्मकाः।
तत्रैव सतत वत्स सभार्यस्त्वं समाविश ॥३७

आपके वाक्य से मैं भय से विनिर्मुक्त होकर इन लोगों के घर में सदा प्रवेश किया करूँगा। मार्कण्डेय जी ने कहा—जहाँ पर श्रोत्रिय द्विज गौऐं-गुरु वर्ग तथा अतिथि सदा निवास न किया करते हों और जहाँ पर भर्त्ता तथा भार्या में नित्य ही परस्पर में विरोध रहता हो वहाँ पर अपनी भार्या के साथ भय से रहित होकर उस घर में प्रवेश किया कीजिए। देवों के भी देव त्रिभुवन के स्वामी महादेव श्रीरुद्र की जहाँ

निन्दा होती हो अर्थात् भगवान् की बुराई जिस घर मे हुआ करती है उस घर मे बिल्कुल भय से रहित होकर आप प्रवेश करिए। जहाँ भगवान् वासुदेव की रति नही हो और सदा शिव की भक्ति तथा अनुरक्ति का अभाव हो जप एव होम आदि कुछ भी जहाँ पर नही होता हो और जिस घर मे भस्म मनुष्यो के लगाने के लिये नहीं हो पर्व के समय मे अर्चन जहाँ नही होता हो तथा विशेष कर चतुर्दशी के दिन जहाँ पर यजन नही किया जाता हो मास के कृष्णाष्टमी के दिन रुद्र की भस्म से वर्जित सन्ध्या के समय म मनुष्य रहा करते हो और चतुर्दशी मे महादेव का यजन नही किया करते हैं—जिस जगह मानव विष्णु के पवित्र नामोच्चारण से रहित रहा करते हो तथा दुष्ट आत्माओ वाले मनुष्यो की सङ्गति किया करते हैं एव 'कृष्ण के लिये नमस्कार है-परमेष्ठी शिव शर्व के लिये प्रणाम है'—इस प्रकार से जहाँ पर ब्राह्मण तथा मनुष्य मूढता एव दुष्टता के वश होकर नही बोला करते हैं-हे वत्स ! वहाँ पर ही तू अपनी भार्या के निरन्तर प्रवेश किया करो।।३१।।३२।।३३।।३४।। ।।३५।।३६।।३७।।

वेदघोषो न यत्रास्ति गुरुपूजादयो न च।
पितृकर्मविहीनास्तु सभार्यस्त्व समाविश ।।३८
रात्रौ रात्रौ गृहे यस्मिन् कलहो वर्त्तते मिथ ।
अनया सार्धमनिश विश त्व भयवर्जित ।।३९
लिंगार्चन यस्य नास्ति यस्य नास्ति जपादिकम् ।
रुद्रभक्तिर्विनिंदा च तत्रैव विश निर्भय ।।४०
अतिथिः श्रोत्रियो वापि गुरुर्वा वैष्णवोपि वा ।
न सति यद्गृहे गाव सभार्यस्त्व समाविश ।।४१
बालाना प्रेक्षमाणाना यत्रादत्त्वा त्वभक्षयन् ।
भक्ष्याणि तत्र सहृष्ट सभार्यस्त्व समाविश ।।४२
अनभ्यर्च्य महादेव वासुदेवमथापि वा ।
अहुत्वा विधिवद्यत्र तत्र नित्य समाविश ।।४३
पाप कर्मरता मूढा दयाहीना परस्परम् ।

गृहे यस्मिन्समासते देशे वा तत्र संविश ॥४४

जिस स्थान पर वेद के मन्त्रो की ध्वनि कभी भी नहीं होती है तथा गुरु वर्ग की अर्चना आदि सत्कृति नही हुआ करती है और जो लोग पितृ धर्म से विहीन होकर निवास किया करते हैं वहाँ पर ही तुम भार्या ज्येष्ठा के साथ प्रवेश किया करो । ।।३८।। जिस घर मे प्रत्येक रात्रि मे आपस मे कलह हुआ करता है वहाँ पर ही तुम भय से रहित होकर इस अपनी पत्नी के साथ बराबर प्रवेश किया करो ।।३९।। जिस पुरुष के घर मे शिव के लिङ्ग का अर्चन नही होता है और जो पुरुष कभी भी मन्त्रो के जप आदि नही किया करता है जिस मानव के घर मे भगवान् रुद्र की भक्ति का अभाव ही रहता है तथा उल्टी देवो की निन्दा की जाया करती है वहाँ तुम बिना किसी भय के प्रवेश किया करो ।।४०।। जिस स्थान मे कोई अतिथि आकर सत्कार ग्रहण नही किया करता है और कोई वेदज्ञ श्रोत्रिय न रहता है गुरु तथा विष्णु का भक्त वैष्णव स्थिति नही करता है जिस घर मे गो नही रहती हैं ऐसे घरो मे तुम भार्या के सहित प्रवेश किया करो । ।।४१।। जिस घर मे बालको के देखते रहने पर उन्हे कुछ भी न देकर भक्ष्य पदार्थों को स्वय मानव खा जाया करते हैं उस घर मे तुम सपत्नीक सानन्द प्रवेश किया करो ।।४२।। महादेव अथवा भगवान् वासुदेव का अभ्यर्चन न करके तथा विधि पूर्वक हवन नहीं करके लोग रहा करते हैं उन घरो मे नित्य ही तुम अपना प्रवेश किया करो ।।४३।। जहाँ मानव पाप कर्म मे समारूढ होकर परस्पर मे दया से रहित होते हुए निवास किया करते हैं उस घर मे तथा देश मे तू भली भाँति प्रवेश करके निवास किया कर ।।४४।।

प्राकारागारविध्वंसा न चैवेड्या कुटुम्बिनी ।
तद्गृह तु समासाद्य वस नित्य हि हृष्टधी ।।४५
यत्र कटकिनो वृक्षा यत्र निष्पावबल्लरी ।
ब्रह्मवृक्षश्च यत्रास्ति सभार्यस्त्वं समाविश ।।४६
अगस्त्यार्कादयो वापि बधुजीवो गृहेषु वै ।
करवीरो विशेषेण नद्यावर्तमथापि वा ।।४७

मल्लिका वा गृहे येषां सभार्यस्त्व समाविश ।
कन्या च यत्र वं वल्ली द्रोही वा च जटी गृहे ।।४८
बहुला कदली यत्र सभार्यस्त्व समाविश ।
तालं तमाल भल्लातं तित्तिडीखडमेव च ।।४९
कदंब. खादिरं वापि सभार्यस्त्वं समाविश ।
न्यग्रोधं वा गृहे येषामश्वत्थ चूतमेव वा ।।५०
उदु वरं वा पनसं सभार्यस्त्व समाविश ।
यस्य काकगृहं निंबे आरामे वा गृहेपि वा ।।५१
दंडिनी मुंडिनी वापि सभार्यस्त्वं समाविश ।
एका दासी गृहे यत्र त्रिगवं पंचमाहिषम् ।।५२

प्राकार से समन्वित आगार मे विघ्वस वाली कुटुम्बिनी ईडित करने के योग्य नही है । उसके गृह को प्राप्त करके प्रसन्न चित्त होकर वहाँ नित्य निवास करो ।।४५।। जहाँ पर काटे वाले वृक्ष हो और जहाँ पर निष्पाव वल्लरी हो तथा जिस स्थान मे ब्रह्म वृक्ष हो वहाँ पर ही अपनी भार्या के सहित तुम निवास करो ।।४६।। अगस्त्य तथा अर्क आदि दूध वाले वृक्ष-बन्धु जीव करवीर और विशेष रूप से तगर जिस गृह मे हो अथवा मल्लिका लता जहाँ पर हो वहाँ पर तुमको अपनी भार्या के साथ मे लेकर निवास करना चाहिए । जिस गृह मे या स्थान मे अपराजिता अजमोद की वल्ली निम्ब तथा जटा मासी हो वहाँ पर ही तुम भार्या के सहित अपना निवास करो । जिस स्थान मे बहुदायत से कदली के पेड उगे हुए हैं वहाँ पर भार्या सहित निवास करना चाहिए । ताल-तमाल-भिलावा तिन्तडी खण्ड-कदम्ब एव खदिर के वृक्ष हो वहाँ पर तुम निवास करो । जिसके घर मे न्यग्रोध (वट) तथा अश्वत्थ (पीपल) एव आम्र का वृक्ष हो और उदुम्बर (गूलर) तथा पनस (कटहल) का पेड हो वहाँ तुम निवास करो ।।४५।।४६।।४७।।४८।।४९।। जिसके नीम मे कौए का घर हो तथा बाग मे या घर मे भी काकों का निवास स्थल बना हुआ हो तथा दण्ड विशिष्ट या नतमस्तका हो वहाँ पर भार्या के सहित निवास करो । जहाँ एक दासी-तीन गौ और पाँच भैंस

हों-छै अश्व तथा सात हाथी रहते हो वहाँ तुझे भार्या के साथ प्रवेश करना चाहिए ॥५०॥५१॥५२॥

षडश्वं सप्तमातंगं सभार्यस्त्वं समाविश ।
यस्य काली गृहे देवी प्रेतरूपा च डाकिनी ॥५३
क्षेत्रपालोथवा यत्र सभार्यस्त्व समाविश ।
भिक्षुबिंब च वै यस्य गृहे क्षपणकं तथा ॥५४
बौद्धं वा बिंबमासाद्य तत्र पूर्णं समाविश ।
शयनासनकालेषु भोजनाटनवृत्तिषु ॥५५
येषां वदति नो वाणी नामानि च हरेः सदा ।
तद्गृह ते समाख्यातं सभार्यस्य निवेशितुम् ॥५६
पाषंडाचारनिरताः श्रौतस्मार्तबहिष्कृताः ।
विष्णुभक्ति विनिर्मुक्ता महादेवविनिंदकाः ॥५७
नास्तिकाश्च शठा यत्र सभार्यस्त्वं समाविश ।
सर्वस्मादधिकत्वं ये न वदंति पिनाकिनः ॥५८
साधारणं स्मरंत्येन सभार्यस्त्वं समाविश ।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः शक्र सर्वसुरेश्वरः ॥५९
रुद्रप्रसादजाश्चेति न वदंति दुरात्मकाः ।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः शक्रश्च सम एव च ॥६०
वदंति मूढाः खद्योतं भानुं वा मूढचेतसः ।
तेषां गृहे तथा क्षेत्र श्रावासे वा सदाऽनया ॥६१
विश भुक्ष्व गृहं तेषां अपि पूर्णमनन्यधीः ।
येऽश्नंति केवल मूढाः पक्वन्न बिचेतसः ॥६२

जिस घर मे काली देवी हो और प्रेत के स्वरूप वाली डाकिनी हो अथवा क्षेत्र पाल हो अर्थात् भैरव हो जिस स्थान पर किसी परि व्राजक की प्रतिमा तथा नग्न मूर्ति हो या बौद्ध-प्रतिमा हो वहाँ पर अपना पूर्णतया प्रवेश करो। जहाँ शयनासन के समयों मे एव भोजन तथा अटन की वृत्तियो मे जिनकी वाणी हरि के नामो को सर्वदा नही बोला करती है वह गृह ही भार्या के सहित तुम्हारे निवास करने के लिये बताया गया

है ।।५३।।५४।।५५।।५६।। दम्भ से परि पूर्ण आचार मे निरत रहने वाले-श्रुति प्रतिपादित एव स्मृति के द्वारा निर्दिष्ट धर्म से बहिष्कृत-विष्णु की भक्ति से रहित और महादेव की निन्दा करने वाले नास्तिक (ईश्वर की सत्ता के न मानने वाले) शठ जहाँ पर रहा करते हैं वही पर तुमको सपत्नीक निवास करना चाहिए। जो लोग भगवान् पिनाकी (शिव) को सबसे अधिक नही कहा करते हैं और उनको एक साधारण-सा देव ही मानते हैं वहाँ पर तुम अपना निवास स्थल बनाओ। ब्रह्मा भगवान् विष्णु और देवो का राजा इन्द्र ।।५७।।५८।।५९।। ये सब रुद्र के प्रसाद से ही समुत्पन्न हुआ करते हैं ऐसा जहाँ के लोग नही कहते हैं और दुष्ट आत्मा वाले होते हैं। ब्रह्मा विष्णु और इन्द्र ये सब समान ही होते हैं-ऐसा कहने वाले मूढ चित्त के महा मूढ लोग भानु (सूर्य) को भी खद्योत कहा करते हैं। उनके घर मे क्षेत्र मे अथवा आवास मे सदा इस अपनी पत्नी के साथ उनके पूर्ण भी गृह वा अनन्य बुद्धि वाला होकर भोग करो। जो मूढ अज्ञान वाले केवल पके हुए अन्न को खाते हैं ।।६० ।।६१।।६२।।

स्नानमगलहीनाश्च तेषा त्व गृहमाविश ।
या नारी शौचविभ्रष्टा देहसस्कारवर्जिता ।।६३
सर्वभक्षरता नित्य तस्या स्थाने समाविश ।
मलिनास्या स्वय मर्त्या मलिनाबरधारिण ।।६४
मलदता गृहस्थाश्च गृहे तेषा समाविश ।
पादशौचविनिर्मुक्ता सध्याकाले च शायिन ।।६५
सध्यायाम स्तुते ये वै गृह तेषा समाविश ।
अत्याशनरता मर्त्या अतिपानरता नरा ।।६६
द्यूतवादक्रियामूढा गृहे तेषा समाविश ।
ब्रह्मस्वहारिणो ये चायोग्याश्चैव यजति वा ।।६६
शूद्रान्नभोजिनो वापि गृह तेषा समाविश ।
मद्यपानरता पापा मास भक्षणतत्परा ।।६८
परदाररता मर्त्या गृह तेषा समाविश ।

पर्वण्यनर्चाभिरता मैथुने वा दिवा रताः ॥६६
सध्यायां मैथुनं येषा गृहे तेषां समाविश ॥७०
रजस्वलां स्त्रियं गच्छेच्चाडाली वा नराधम. ॥७१

और जो स्नान तथा मङ्गल से हीन होते हैं उनके गृह मे तुम प्रवेश करो। जो नारी शुद्धता से भ्रष्ट रहती हो तथा अपने देह के सस्कारो से हीन होती है—सब प्रकार के भक्ष्य पदार्थों के भक्षण करने मे रत नित्य ही रहा करती है उसके स्थान मे तुम अपना प्रवेश करो। जो गृहस्थी मलिन मुख वाल और जो मनुष्य मैले वस्त्र धारण करने वाले हैं-जिनके दाँत मैले रहा करते हैं ऐसे गृहस्थो के घर मे तू अपना प्रवेश कर। जो पादो (पैरो) की शुद्धि से रहित हो अर्थात् पैरो को नही धोया करते हैं तथा सन्ध्या के समय मे शयन किया करते हैं एव सन्ध्या के समय मे जो खाया करते हैं उनके घर मे तुझे प्रवेश करना चाहिए। जो मनुष्य अत्यधिक खाने मे रति रखने वाले हो तथा अत्यन्त पान करने वाले हो और जो द्यूत एव वाद की क्रिया करने वाले मूढ होते हैं उनके घर मे तुमको प्रवेश करके अपना निवास बनाना चाहिए। जो ब्रह्मस्व अर्थात् ब्राह्मणो के धन सम्पत्ति को हरण करने वाले हैं और अयोग्यो का यजन किया करते हैं-शूद्र के अन्न का भोजन करते हैं। मद्य पान करने मे रति रखने वाले हैं-मांस भक्षण करने वाले हैं-पराई स्त्रियो से प्रेमानुराग करने वाले-पर्व दिनो मे भी अर्चन न करने वाले तथा दिन के समय मे ही मैथुन करने वाले मनुष्य जहाँ पर निवास किया करते हैं वहाँ अपना निवास बनालो। जो सन्ध्या के समय में मैथुन करने वाले पुरुष हो और जो नराधम रजस्वला स्त्री तथा चाण्डाल स्त्री का अभिगमन किया करते हैं उनके घर मे निवास करो ॥६३॥६४॥६५॥६६॥६७॥६८॥६९॥७०॥७१॥

कन्या वा गोगृहे वापि गृहं तेषां समाविश।
बहुना किं प्रलापेन नित्यकर्मबहिष्कृता ॥७२
रुद्रभक्तिविहीना ये गृहं तेषां समाविश।
शृ गैर्दिव्यौषधैं क्षुद्रै. शेफ आलिप्य गच्छति ॥७३

भगद्राव करोत्यस्मात्सभार्यस्त्वं समाविश ।
इत्युक्त्वा स मुनिः श्रीमान्निर्मार्ज्य नयने तदा ।।७४
ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मसंकाशस्तत्रैवांतर्द्धिमातनोत् ।
दुःसहश्च तथोक्तानि स्थानानि च समीयिवान् ।।७५
विशेषाद्देवदेवस्य विष्णोर्निदारतात्मनाम् ।
सभार्यो मुनिशार्दूलः सैवा ज्येष्ठा इति स्मृता ।।७६
दुःसहस्तामुवाचेदं तडागाश्रममतरे ।
आस्व त्वमत्र चाहं वै प्रवेक्ष्यामि रसातलम् ।।७७
आवयोः स्थानमालोक्य निवासार्थं ततः पुनः ।
आगमिष्यामि ते पार्श्वमित्युक्ता तमुवाच सा ।।७८
किमश्नामि महाभाग को मे दास्यति वै वलिम् ।
इत्युक्तस्तां मुनिः प्राह याः स्त्रियस्त्वां यजति वै ।।७६
वलिभिः पुष्पधूपैश्च न तासां च गृहं विश ।
इत्युक्त्वा त्वाविशत्तत्र पातालं विलयोगतः ।।८०

जो किसी कन्या का अभिगमन करते हैं तथा गौओं के गृह में प्रसङ्ग किया करते हैं उन पुरुषों के घर में तुमको प्रवेश करके अपना आवास बनाना चाहिए। अत्यधिक कथन से क्या फल होगा निष्कर्ष रूप में यही कहते हैं कि जो पुरुष अपने नित्य कर्म से बहिष्कृत हो तथा भगवान् रुद्र देव की भक्ति से रहित हों और भग का द्रावण करने के लिये जननेन्द्रिय को शृङ्ग, दिव्यौषधि और धुओं से अंकित कर अभिगमन किया करते हैं उनके घर मे तुझे प्रवेश करना चाहिए। सूतजी ने कहा—इस प्रकार से इतना कहकर उस समय में उस महामुनि ने अपने नेत्रों का निर्मार्जन करके वह ब्रह्मा के सदृश महर्षि वहीं पर ही अन्तर्धान हो गये थे। और दुःसह ने ये सब बताये हुए स्थानों की प्राप्ति की थी ।।७२।।७३।।७४।। ।।७५।। विशेष रूप से देवों के देव विष्णु तथा भगवान् शिव की निन्दा करने मे रत रहने वाले लोगों के स्थानों में जो कि मार्कण्डेय मुनि ने बतलाये थे वह मुनि शार्दूल दुःसह और ज्येष्ठा नाम वाली उसकी पत्नी ये दोनों रहे थे ।।७६।। उस समय वह दुःसह अपनी भार्या ज्येष्ठा से

पीले –यहाँ जल का आश्रय तालाब है और निवास का आश्रम भी है। इसके मध्य मे जो पीपल का वृक्ष है उस पर तुम ठहरो मैं रसातल मे प्रवेश करूंगा ।।७७।। वहाँ हम दोनो के निवास करने का आश्रम देखकर तुम्हारे पास अभी कुछ समय मे आ जाऊगा। ऐसा कहने पर वह ज्येष्ठा उसकी भार्या उससे बोली—हे महाभाग ! मैं यहाँ पर क्या भोजन करूंगी और मुझे कौन यहाँ बलि देगा। इस बात का श्रवण कर दु.सह मुनि ने उससे कहा था –जो स्त्रियाँ तुम्हारा यजन किया करती हैं वे बलि और धूप दीप आदि सभी दिया करती हैं किन्तु तुम उनके घरो मे प्रवेश मत करना। यह कहकर वह मुनि बिल के द्वारा वहाँ पर पाताल मे प्रवेश कर गया था ।।७८।।७९।।८०।।

अद्यापि च विनिर्मग्नो मुनिः स जलसंस्तरे ।
ग्रामपर्वतबाह्येषु नित्यमास्तेऽशुभा पुनः ।।८१
प्रसंगाद्देवदेवेशो विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः ।
लक्ष्म्या दृष्टस्तया लक्ष्मीः सा तमाह जनार्दनम् ।।८२
भर्ता गतो महाबाहो बिलं त्यक्त्वा स मां प्रभो ।
अनाथाहं जगन्नाथ वृत्तिं देहि नमोस्तु ते ।।८३
इत्युक्तो भगवान्विष्णुः प्रहस्याह जनार्दनः ।
ज्येष्ठामलक्ष्मी देवेशो माधवो मधुसूदनः ।।८४
ये रुद्रमनघ शर्वं शंकरं नील लोहितम् ।
अंबां हैमवती वापि जनित्री जगतामपि ।।८५
मद्भक्तान्निदयंत्यत्र तेषां वित्तं तवैव हि ।
येपि चैव महादेवं विनिद्यैव यजंति माम् ।।८६
मूढा ह्यभाग्या मद्भक्ता अपि तेषां धनं तव ।
यस्याज्ञया ह्यहं ब्रह्मा प्रसाद'द्वर्तते सदा ।।८७
ये यजंति विनिद्यैव मम विद्वेषक.रकाः ।
मद्भक्ता नैव ते भक्ता इव वर्तंति दुर्मदाः ।।८८
तेषां गृह धनं क्षेत्रमिष्टापूर्तं तवैव हि ।
इत्युक्त्वा तां परित्यज्य लक्ष्म्याऽलक्ष्मीं जनार्दनः ।।८९

यह मुनि आज तक भी उस जल सस्तर मे विनिर्मग्न हो रहा है और वह अशुभा नित्य ही ग्राम पर्वत आदि बाह्य भागो मे स्थित रहा करती है ।।८१।। प्रसङ्ग वश एक समय देवों के भी देव-त्रिभुवन के स्वामी भगवान् विष्णु को उस लक्ष्मी ने देखा था और वह लक्ष्मी उन भगवान् जनार्दन से बोली—हे महान् वाहुओ वाले भगवन् ! हे प्रभो ! मेरा स्वामी यहाँ मुझे त्याग कर बिल मे चला गया है । हे जगतो के नाथ ! मैं इस समय बिल्कुल ही अनाथा हो गई हूँ । मुझे वृत्ति प्रदान करो । आपको मेरा प्रणाम है ।।८२।।८३।। सूतजी ने कहा—इस प्रकार से कहे गये भगवान् जनार्दन देवेश-माधव-मधुसूदन विष्णु हँसकर उस ज्येष्ठा-अलक्ष्मी से बोले—श्री विष्णु ने कहा जो पुरुष अनघ रुद्र-शर्व-शङ्कर और नील लोहित की तथा हैमवती समस्त जगतो की जननी जगदम्बा की और मेरे भक्तो की यहां पर निन्दा किया करते हैं उन का जो सपूर्ण धन है वह सभी तेरा ही है । और जो महादेव की निन्दा करके मेरा यजन किया करते हैं वे महान् मूढ हैं और भाग्यहीन होते है । भले ही मेरे वे भक्त हैं उनका भी सब धन तेरा ही है । जिसकी आज्ञा से और प्रसाद से मैं और ब्रह्मा सदा वर्त्तमान रहते हैं उसकी निन्दा करके जो यजन किया करते हैं वे मेरे विद्वेष करने वाले ही होते हैं । वे मेरे भक्त ही नही है केवल दिखाने को ही भक्तो की तरह रहा करते हैं वे दुर्मद हैं । उनका सब धन क्षेत्र और इष्टापूर्त्त सम्पूर्ण तेरा ही है । सूतजी ने कहा – ऐसा कहकर उस अलक्ष्मी का त्याग कर लक्ष्मी के साथ भगवान् जनार्दन ने जाप किया था ।।८४।।८५।।८६।।८७।।८८।।८९।।

जज प भगवान्रुद्र लक्ष्मीक्षयसिद्धये ।
तस्मात्प्रदेयस्तस्यै च बलिर्नित्य मुनीश्वरा ।।९०
विष्णुभक्तै र्न संदेहः सर्वयत्नेन सर्वदा ।
अ'गनाभि. सदा पूज्या बलिभिर्विविधैर्द्विजाः ।।९१
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान् ।
अलक्ष्मीवृत्तमनघो लक्ष्मीवाल्लँभते गतिम् ।।९२

भगवान् ने स्वय उस अलक्ष्मी के क्षय करने के लिये रुद्र का जप

किया था । इसलिये हे मुनीश्वरो ! उस अलक्ष्मी के लिये नित्य ही बलि देना चाहिए । जो विष्णु के भक्तगण हैं उनको सभी प्रकार के प्रयत्नो के द्वारा सर्वदा उसे बलि अवश्य ही देना चाहिए-इसमे कुछ भी सन्देह नही है । हे द्विजगण ! अङ्गनाओ को उसका सदा ही विविध भाँति की बलि-यो के द्वारा पूजन करना चाहिए ॥९०॥९१॥ इस अलक्ष्मी के वृत्त को जो कोई भी पढता है-श्रवण किया करता है या श्रेष्ठ द्विजो को श्रवण कराता है वह निष्पाप होकर लक्ष्मी वाला हो जाता है और शुभ गति को प्राप्त किया करता है ॥९२॥

॥ ७६–विष्णु-अष्टाक्षर, द्वादशाक्षर मंत्र ॥

किंजपान्मुच्यते जंतु: सर्वलोकभयादिभि: ।
सर्वपापविनिर्मुक्त: प्राप्नोति परमां गतिम् ॥१
अलक्ष्मीं वाथ सत्यज्य गमिष्यति जपेन वै ।
लक्ष्मीवासो भवेन्मर्त्यः सूत वक्तुमिहार्हसि ॥२
पुरा पितामहेनोक्तं वसिष्ठाय महात्मने ।
वक्ष्ये संक्षेपतः सर्वं सर्वलोकहिताय वै ॥३
शृण्वंतु वचनं सर्वे प्रणिपत्य जनार्दनम् ।
देवदेवमजं विष्णुं कृष्णमच्युतमव्ययम् । ४
सर्वपापहरं शुद्धं मोक्षदं ब्रह्मवादिनम् ।
मनसा कर्मणा वाचा यो विद्वान्पुण्यकर्मकृत् ॥५
नारायणं जपेन्नित्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम् ।
स्वपन्नारायणं देवं गच्छन्नारायणं तथा ॥६
भुंजन्नारायणं विप्रास्तिष्ठञ्जाग्रत्सनातनम् ।
उन्मिषन्निमिषन्वापि नमो नारायणेति वै ॥७

इस सातवें अध्याय मे श्री महाविष्णु भगवान् का अष्टाक्षर मन्त्र और द्वादशाक्षर मन्त्र का माहात्म्य वर्णित किया जाता है । ऋषियो ने कहा—ऐसा कौन-सा मन्त्र है जिसके जाप करने से जन्तु समस्त लोक के भय आदि से मुक्त हो जाता है तथा सम्पूर्ण पापों से विनिर्मुक्त होकर

परम गति को प्राप्त किया करता है ? हे सूतजी ! यह कृपाकर आप बतलाइये कि मनुष्य जप के द्वारा इस अलक्ष्मी का त्याग करके लक्ष्मी के निवास वाला बन जाता है वह किस मन्त्र का जाप होता है ? ॥१॥२॥ सूतजी ने कहा—पहिले पितामह ने वसिष्ठ मुनि से जो कि एक महान् आत्मा वाले थे, यह कहा था, उसे ही मैं समस्त लोकों के हित के लिये यहाँ सक्षेप में सब बतलाता हूँ ॥३॥ आप सब लोग भगवान् जनार्दन को प्रणिपात करके उसका श्रवण करो। भगवान् विष्णु देवों के भी देव हैं-अजन्मा हैं अव्यय-अच्युत तथा साक्षात् श्री कृष्ण हैं ॥४॥ ये सम्पूर्ण पापों के हरण करने वाले हैं मोक्ष प्रदान करने वाले तथा ब्रह्मवादी हैं। वह परम पुण्यात्मा विद्वान् हैं जो मन से वाणी से और कर्म से इनका जप किया करते हैं ॥५॥ पुरुषों से परम उत्तम भगवान् नारायण को प्रणाम करके उनका जाप करना चाहिए। शयन करते हुए देव नारायण का जाप करे गमन करते हुए-भोजन करते हुए और स्थित रहते हुए सभी अवस्थाओं में परम सनातन भगवान् नारायण का जाप हे विप्र गण ! मनुष्य को करते रहना चाहिए। सवदा नमो नारायणाय' इस का जप तथा ध्यान रक्खे ॥६॥७॥

भोज्य पेय च लेह्य च नमो नारायणेति च।
अभिमन्त्र्य स्पृशन्भुक्ते स याति परमा गतिम् ॥८
सर्वपापविनिर्मुक्त प्राप्नोति च सता गतिम्।
अलक्ष्मीश्च मया प्रोक्ता पत्नी या दुःसहस्य च ॥९
नारायणपद श्रुत्वा गच्छत्येव न सशय।
या लक्ष्मीर्देवदेवस्य हरे कृष्णस्य वल्लभा ॥१०
गृहे क्षेत्रे तथावासे तनौ वसति सुव्रता।
आलोडच सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुन पुन ॥११
इदमेक सुनिष्पन्न ध्येयो नारायण सदा।
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तस्य बहुभिर्व्रतैः ॥१२
नमो नारायणायेति मन्त्र सर्वार्थसाधक।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु नमो नारायणेति च। १३

जपेत्स याति विप्रेंद्रा विष्णुलोकं सबांधवः ।
अन्यच्च देवदेवस्य शृण्वतु मुनिसत्तमाः । १४

भोज्य-पेय तथा लेह्य सभी पदार्थों को 'नमो नारायणाय'—इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके स्पर्श करे और फिर उसका उपभोग करे तो ऐसा मनुष्य अवश्य ही परम सद्गति को प्राप्त होता है ।।८।। इस प्रकार से सर्वदा 'नमो नारायणाय' इस मन्त्र का जापक पुरुष समस्त पापों से विनिर्मुक्त होकर सत्पुरुषों की सद्गति का लाभ किया करता है । जो *अलक्ष्मी मैंने दुःसह की पत्नी बतलाई है वह नारायण इस पद को श्रवण* करते ही चली जाया करती है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । जो भगवान् हरि कृष्ण देवदेव की प्रिया महालक्ष्मी है वह गृह में-क्षेत्र में तथा *आवास स्थान में और तनु में हे सुव्रतो ! सर्वदा निवास किया करती है ।* यह समस्त शास्त्रों का आलोडन करके अर्थात् गहराई से सब शास्त्रों को देखकर तथा बार-बार भली भाँति विचार करके यह निर्णय किया गया है ।।९।।१०।।११।। यही एक बात सिद्ध हुई है कि सदा नारायण का ही ध्यान करना चाहिए । बहुत से मन्त्रों के जाप से क्या लाभ है और अधिक व्रतों से फिर क्या प्रयोजन है । एक 'नमो नारायणाय'—यही मन्त्र सम्पूर्ण अर्थों का साधन करने वाला होता है । इसलिये समस्त कालों में "नमो नारायणाय"—इसी मन्त्र का जाप करना चाहिए । हे विप्रेन्द्रो ! वह मनुष्य अपने बान्धवों के सहित विष्णु लोक को चला जाया करता है । हे मुनिश्रेष्ठो ! अब देवों के देव भगवान् के अन्य मन्त्र के विषय में आप लोग श्रवण करो ।।१२।।१३।।१४।।

मंत्रो मया पुराभ्यस्त सर्ववेदार्थसाधकः ।
द्वादशाक्षरसंयुक्तो द्वादशात्मा पुरातनः ।।१५
तस्यैवेह च माहात्म्यं संक्षेपात्प्रवदामि वः ।
कश्चिद्‌द्विजो महाप्राज्ञस्तपस्तप्त्वा कथंचन ।।१६
पुत्रमेकं तमोत्पाद्य संस्कारैश्च यथाक्रमम् ।
योजयित्वा यथाकालं कृतोपनयनं पुनः ।।१७
अध्यापयामास तदा स च नोवाच किंचन ।

न जिह्वा स्पंदते तस्य दुःखितोऽभूद्द्विजोत्तमः ॥१८
वासुदेवेति नियतमैतरेयो वदत्यसौ ।
पिता तस्य तथा चान्या परिणीय यथाविधि ॥१९
पुत्रानुत्पादयामास तथैव विधिपूर्वकम् ।
वेदानधीत्य संपन्ना बभूवुः सर्वसंमताः ॥२०

पहिले मेरे अभ्यास मे आया हुआ एक मन्त्र है जो सम्पूर्ण वेदो के अर्थों का साधन करने वाला है । वह द्वादश आत्मा वाला पुरातन बारह अक्षरो से सयुक्त मन्त्र होता है ॥१५॥ अब मैं यहाँ पर उसी मन्त्र का माहात्म्य आपके सामने सक्षेप मे बतलाता हूँ । किसी महान् पण्डित ब्राह्मण ने तपस्या करके किसी प्रकार से एक पुत्र का उत्पादन किया था । उसके क्रमानुसार उसने समस्त सस्कार कराये थे जिन सस्कारो का जो समय था वे उसी समय मे करा दिये थे । इनके अनन्तर अवसर प्राप्त होने पर उसका उपनयन सस्कार भी कराया था ॥१६॥१७॥ फिर उसका अध्यापन किया था किन्तु वह कुछ भी नही बोलता था । उसकी जिह्वा बिल्कुल भी स्पन्दन नही करती थी । इस कारण से उस ब्राह्मण को परम दुःख हुआ था । ॥१८॥ यह ऐतरेय (सापत्न भ्राता । मन्त्र का एकदेश वासुदेव–यह ही बोलता था । उसके पिता ने यथाविधि अन्य भार्या का परिणय किया था ॥१९॥ और उस अन्य भार्या मे विधि पूर्वक पुत्रो को उत्पन्न किया था । वे सब वेदो का अध्ययन करके सर्व सम्मत एव सम्पन्न हो गये थे ॥२०॥

ऐतरेयस्य सा माता दुःखिता शोकमूर्च्छिता ।
उवाच पुत्राः संपन्ना वेदवेदांगपारगाः ॥२१
ब्राह्मणैः पूज्यमाना वै मोदयंति च मातरम् ।
मम त्वं भाग्यहीनायाः पुत्रो जातो निराकृतिः ॥२२
ममात्र निधनं श्रेयो न कथंचन जीवितम् ।
इत्युक्तः स च निर्गम्य यज्ञवाटं जगाम वै ॥२३
तस्मिन्याते द्विजाना तु न मंत्राः प्रतिपेदिरे ।
ऐतरेये स्थिते तत्र ब्राह्मणा मोहितास्तदा ॥२४

ततो वाणी समुद्भूता वासुदेवेति कीर्तनात् ।
ऐतरेयस्य ते विप्राः प्रणिपत्य यथातथम् ॥२५
पूजा चक्रुस्ततो यज्ञं स्वयमेव समागतम् ।
ततः समाप्य तं यज्ञमैतरेयो धनादिभि. ॥२६
सर्ववेदान्सदस्याह स षडंगान् समाहिताः ।
तुष्टुवुश्च तथा विप्रा ब्रह्माद्याश्च तथा द्विजाः ॥२७
ससर्जुः पुष्पवर्षाणि खेचरा. सिद्धचारणाः ।
एव समाप्य वै यज्ञमैतरेयो द्विजोत्तमाः ॥२८

ऐतरेय की जो माता थी वह विचारी बहुत ही दु खित एव शोक से मूच्छित थी । वह अपने पुत्र से बोली—सम्पन्न एव वेद-वेदाङ्गो के पारगामी पुत्र ब्राह्मणो के द्वारा पूज्यमान होते हुए अपनी माता को आनन्द देते हैं । मेरे भाग्य होता के तू ऐसा निराकृति पुत्र उत्पन्न हुआ है ॥२१॥ ॥२२॥ इस दु ख से तो मेरी मृत्यु हो जावे-यही अच्छी है । इस दु खमय जीवन से किसी भी प्रकार से कोई लाभ नहीं है । ऐसा कहने पर वह निकल कर यज्ञ वाट मे चला गया था ॥२३॥ उस ऐतरेय के वहाँ पहुंचने पर जो वहाँ यज्ञ वाट मे ऋत्विज विप्र थे उन्हे उस समय कोई भी मन्त्र अवगत नही हुए थे । ऐतरेय के वहाँ स्थित होने पर वे सब ब्राह्मण मोहित हो गये थे । इसके अनन्तर वासुदेव-इसके कीर्तन से ऐतरेय की वाणी समुद्भूत हुई थी । तब तो उन समस्त ब्राह्मणो ने ऐतरेय को प्रणिपात करके उसकी यथाविधि पूजा की थी । इसके अनन्तर यज्ञ स्वयमेव समागत हुआ था । उस यज्ञ को ऐतरेय ने धनादि के द्वारा समाप्त किया था । उसने उस सभा मे षडङ्ग समस्त वेदो को कहा । फिर तो समस्त विप्र और ब्रह्माद्य द्विजो ने स्तवन किया था ॥२४॥२५॥२६॥२७॥ खेचर और सिद्ध चारणो ने पुष्पों की वर्षा की थी । हे द्विजोत्तमो ! इस प्रकार से उस ऐतरेय ने यज्ञ को समाप्त किया था ॥२८॥

मातरं पूजयित्वा तु विष्णो. स्थानं जगाम ह ।
एतद्वं कथितं सर्वं द्वादशाक्षरवैभवम् ॥२६
पठता शृण्वता नित्यं महापातकनाशनम् ।

जपेद्य. पुरुपो नित्यं द्वादशाक्षरमव्ययम् ।।३०
स याति दिव्यमतुलं विष्णोस्तत्परमं पदम् ।
अपि पापसमाचारो द्वादशाक्षरतत्परः ।।३१
प्राप्नोति परम स्थानं नात्र कार्या विचारणा ।
किं पुनर्ये स्वधर्मस्था वासुदेवपरायणाः ।।३२
दिव्यं स्थानं महात्मानः प्राप्नुवतीति सुव्रताः ।।३३

इसके उपरान्त उसने अपनी माता का अर्चन किया था और फिर भगवान् विष्णु के स्थान को चला गया था। यह मैंने आप लोगो के समक्ष मे द्वादशाक्षर मन्त्र का वैभव बतला दिया है ।।२६।। इसके पठन करने से तथा श्रवण करने से नित्य ही महा पातको का नाश होता है। जो पुरुप इस द्वादशाक्षर अव्यय मन्त्र का नित्य जाप करता है वह परम दिव्य एवं अतुल भगवान् विष्णु के परम पद को जाता है। पापो के समाचरण करने वाला भी हो और वह द्वादशाक्षर मन्त्र के जप मे तत्पर रहता हो तो अवश्य ही परम पद की प्राप्ति कर लेता है—इसमे कुछ भी विचारणा नही करनी चाहिए। और जो अपने धर्म-कर्म मे स्थित रहकर ही वासुदेव मे परायण हो उनके विषय मे तो कहा ही क्या जावे ।।३०।। ।।३१।।३२।। महान् आत्मा वाले पुरुप हे सुन्दर व्रत वालो ! दिव्य स्थान की प्राप्ति किया करते हैं ।।३३।।

।। ७७—शिवपडाक्षर मंत्र ।।

अष्टाक्षरो द्विजश्रेष्ठा नमो नारायणेति च ।
द्वादशाक्षरमन्त्रश्च परम. परमात्मनः ।।१
मन्त्र. पडक्षरो विप्रा. सववेदार्थसंचयः ।
यश्चोनम. शिवायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधक. ।।२
तथा शिवतरायेति दिव्यः पंचाक्षरः शुभः ।
मयस्कराय चेत्येव नमस्ते शंकराय च ।।३
सप्ताक्षरोय रुद्रस्य प्रधानपुरुषस्य वै ।
ब्रह्मा च भगवान्विष्णुः सर्वे देवाः सवासवाः ।।४

मंत्रैरेतैर्द्विजश्रेष्ठा मुनयश्च यजंति तम् ।
शंकरं देवदेवेशं मयस्करमजोद्भवम् ॥५
शिवं च शंकरं रुद्रं देवदेवमुमापतिम् ।
प्राहुर्नमः शिवायेति नमस्ते शंकराय च ॥६
मयस्कराय रुद्राय तथा शिवतराय च ।
जप्त्वा मुच्येत वै विप्रो ब्रह्महत्यादिभिः क्षणात् ॥७

इस अध्याय मे विष्णु मन्त्रो से भी श्रेष्ठ शिव मन्त्र होने हैं—यह निरूपण करते हुए षडक्षर मन्त्र का इतिहास वर्णित किया जाता है। सूतजी ने कहा— हे द्विजो मे श्रेष्ठ वृन्द ! 'नमो नारायणाय'—यह अष्टाक्षर मन्त्र और 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय'—यह द्वादशाक्षर मन्त्र ये मन्त्र विष्णु के परम श्रेष्ठतम मन्त्र हैं किन्तु हे विप्रगण ! शिव का षडक्षर मन्त्र "ओम् नमो शिवाय" यह सर्व वेदो के अर्थ का सचय स्वरूप है और समस्त अर्थों का साधक होता है ॥ ॥२॥ तथा शिव तराय-यह पाँच अक्षर वाला परम शुभ एव दिव्य मन्त्र होता है और मयस्कराय नमस्ते शङ्कराय'—यह सप्ताक्षर मन्त्र प्रधान पुरुष रुद्रदेव का होता है । ब्रह्मा-विष्णु भगवान् और इन्द्र के सहित सम्पूर्ण देवगण हे द्विजश्रेष्ठो ! इन मन्त्रो से उस शिव का यजनार्चन किया करते हैं। देवो के भी देवेश्वर-मयस्कर-अजोद्भव-शिव-शङ्कर-रुद्र-देवदेव उमापति शिव शङ्कर आपको नमस्कार है-ऐसा कहते हैं मयस्कर-रुद्र तथा शिव तर के लिये नमस्कार है-ऐसा जाप करके विप्र तत्क्षण ही ब्रह्म हत्यादि पापो से मुक्त हो जाया करता है ॥३॥४॥५॥६॥७॥

पुरा कश्चिद्द्विजः शक्तो घुंघुमूक इति श्रुतः ।
आसीत्तृतीये त्रेतायामावर्त्ते च मनो. प्रभोः ॥८
मेघवाहनकल्पे वै ब्रह्मण. परमात्मनः ।
मेघो भूत्वा महादेवं कृत्तिवाससमीश्वरम् ॥९
बहुमानेन वै रुद्रं देवदेवो जनार्दन. ।
खिन्नोऽतिभाराद्रुद्रस्य नि.श्वासोच्छ्वासवर्जितः ॥१०
विज्ञाप्य शितिकंठाय तपश्चक्रे वुजेक्षणः ।

तपसा परमैश्वर्यं बलं चैव तथाद्भुतम् ॥११
लब्धवान्परमेशानाच्छंकरात्परमात्मनः ।
तस्मात्कल्पस्तदा चासीन्मेघवाहनसंज्ञया ॥१२
तस्मिन्कल्पे मुनेः शापाद्धुंधुमूकसमुद्भवः ।
धुंधुमूकात्मजस्तेन दुरात्मा च बभूव सः ॥१३
धुंधुमूकः पुरासक्तो भार्यया सह मोहितः ।
तस्यां वै स्थापितो गर्भः कामासक्तेन चेतसा ॥१४

पुराने समय मे पहिले प्रभु मनु के द्वापरों में तीसरे त्रेतायुग में कोई धुंधुमूक नाम वाला समर्थ द्विज उत्पन्न हुआ था ॥८॥ मेघवाहन कल्प मे परमात्मा ब्रह्मा का मेघ होकर इति कामा ईश्वर रुद्र को देवदेव जनार्दन बहुमान से वहन करते थे और रुद्र के भार-भार से खिन्न होकर निःश्वासोच्छ्वास से रहित हो गये थे । तब मन्युत्र के समान नेत्रों वाले ने त्रिविक्रम को विशाखित करके तप किया था । उस तपश्चरण के द्वारा परम ऐश्वर्य तथा अद्भुत बल प्राप्त किया था जो कि परमात्मा परमेशान शङ्कर से ही पाया था । इस कारण से उस समय मेघ वाहन-इस नाम से कल्प हुआ था ॥६॥१०॥११॥१२॥ उस कल्प में मुनि के शाप से धुंधुमूक समुत्पन्न हुआ था । इससे धुंधुमूक का पुत्र बहुत ही दुरात्मा हुआ था ॥१३॥ धुंधुमूक पहिले अपनी भार्या के साथ बहुत ही आसक्त एवं मोहित था और कामासक्त चित्त वाले ने उस भार्या में गर्भ स्थापित कर दिया था ॥१४॥

पुत्रस्तवासौ दुर्बुद्धिरपि मुच्यति किल्बिषात् ।
दुःखितो धुंधुमूकोऽसौ दृष्ट्वा पुत्रमवस्थितम् ॥१९
जातकर्मादिकं कृत्वा विधिवत्स्वयमेव च ।
अध्यापयामास च तं विधिनैव द्विजोत्तमाः ॥२०
तेनाधीतं यथान्यायं धौंधुमूकेन सुव्रताः ।
कृतोद्वाहस्तदा गत्वा गुरुशुश्रूषणे रतः ॥२१

अमावस्या के दिन मे ही रुद्र दैवत मुहूर्त्त मे उसी समय में उसने अपनी भार्या का उपभोग किया था और वह उसकी भार्या गर्भवती होगई थी ॥१५॥ उस की भार्या ने जिसका नाम विशल्या था, पुत्र का प्रसव बडे ही प्रयत्न से किया था । हे मुनिश्रेष्ठो ! यह प्रसव भी मन्द के द्वारा वीक्षित रुद्र मुहूर्त्त मे हुआ था ॥१६॥ वह पुत्र अपने लिये तथा माता और पिता के लिये अरिष्ट कारक उत्पन्न हुआ था । उस समय मे ऋषियो ने परस्पर मे उसको धुधुमूक कहा था ॥१७॥ मित्रावरुण नाम वाले सत्तम उसे दुष्पुत्र कहते थे । वसिष्ठ ने कहा था कि यह नीच भी है किन्तु बृहस्पति के प्रभाव से यह दुष्ट बुद्धि वाला भी किल्विष से मुक्त हो जायगा । यह धुंधुमूक अवस्थित पुत्र को देखकर अत्यन्त दुःखित हुआ था ॥१८॥१९। हे द्विजोत्तमो ! फिर उस धुंधुमूक ने उस पुत्र का जातकर्म आदि सस्कार विधि पूर्वक कराकर स्वय ही विधि से अध्यापन कराने लगा था ॥२०॥ उस धुधुमूक के पुत्र ने यथा न्याय अध्ययन किया था । गुरु की शुश्रूषा मे रत होने वाले इस का विवाह भी हो गया था ॥२१॥

अनेनैव मुनिश्रेष्ठा धौंधुमूकेन दुर्मदात् ।
भुक्त्वान्या वृषली दृष्ट्वा स्वभार्यावद्दिवानिशम् ॥२२
एकशय्यासनगतो धौंधुमूको द्विजाधमः ।
तथा चचार दुर्बुद्धिस्त्यक्त्वा धर्मगतिं पराम् ॥२३
माध्वी पीता तया सार्धं तेन रागविवृद्धये ।
केनापि कारणेनैव तामुद्दिश्य द्विजोत्तमाः ॥२४
निहता सा च पापेन वृषली गतमंगला ।
ततस्तस्यास्तदा तस्य भ्रातृभिर्निहतः पिता ॥२५

माता च तस्य दुर्बुद्धेर्धौन्धुमूकस्य शोभना।
भार्या च तस्य दुर्बुद्धेः श्यालास्ते चापि सुव्रताः ॥२६
राज्ञा क्षणाद्हो नष्टं कुलं तस्याश्च तस्य च।
गत्वासौ धौन्धुमूकश्च येन केनापि लीलया ॥२७
दृष्ट्वा तु तं मुनिश्रेष्ठं रुद्रजाप्यपरायणम्।
लब्ध्वा पाशुपतं तद्धि पुरा देवान्महेश्वरात् ॥२८
लब्ध्वा पंचाक्षरं चैव पडक्षरमनुत्तमम्।
पुनः पंचाक्षरं चैव जप्त्वा लक्षं पृथक् पृथक् ॥२९
व्रतं कृत्वा च विधिना दिव्यं द्वादशमासिकम्।
कालधर्मं गतः कल्पे पूजितश्च यमेन वै ॥३०

हे मुनिश्रेष्ठो ! इस धौन्धुमूक ने दुर्मद होने के कारण से एक अन्य वृषली को देखकर उसका रात दिन भार्या के समान उपभोग करने की प्रवृत्ति करली थी ॥२२॥ यह धौन्धुमूक ने पर धर्म की गति का त्याग करके दुष्ट बुद्धि वाला होकर एक ही शय्याासन पर स्थित होकर आचरण करने लग गया था। ॥२३॥ उस दुष्ट ने उस वृषली के साथ राग की वृद्धि के लिये माध्वी का पान किया था। किसी अन्यागम वित्त के लाभ आदि के कारण से उस पापी ने मङ्गल रहिता उस वृषली का वध कर दिया था। इसके अनन्तर उसके भाइयो ने उस धौन्धुमूक के पिता का निहनन कर दिया था ॥२४॥२५॥ उस दुर्बुद्धि की माता और बहुत शोभना भार्या तथा उसके साले सभी निहत कर दिये गये थे ॥२६॥ राजा के द्वारा इस तरह से उस वृषली का तथा उस धौन्धुमूक का सम्पूर्ण कुल नष्ट कर दिया गया था। फिर यह धौन्धुमूक जिस किसी भी प्रकार से प्रारब्ध की गति से वहाँ से निकल गया था ॥२७॥ फिर यह बृहस्पति मुनि के पास पहुँचा जो मुनिश्रेष्ठ रुद्र मन्त्र के जप मे तत्पर रहते थे। उनसे इसने पाशुपत व्रत प्राप्त किया था जो कि पहिले महेश्वर देव से मिला था। पञ्चाक्षर और पडक्षर मन्त्र प्राप्त किया था। इन दोनो मन्त्रों का पृथक् २ लक्ष जाप करके तथा बारह मास का विधि-विधान के सहित व्रत करके वह धौन्धुमूक कल्प मे काल धर्म को प्राप्त हुआ। यम के द्वारा

पूजित हुआ था ॥२८॥२९॥३०॥

उद्धृता च तथा माता पिता श्यालाश्च सुव्रताः ।
पत्नी च सुभगा जाता सुस्मिता च पतिव्रता ॥३१
ताभिर्विमानमारुह्य देवैः सेंद्रैरभिष्टुत. ।
गाणपत्यमनु प्राप्य रुद्रस्य दयितोऽभवत् ॥३२
तस्मादष्टाक्षरान्मन्त्रात्तथा वै द्वादशाक्षरात् ।
भवेत्कोटिगुणं पुण्यं नात्र कार्या विचारणा ॥३३
तस्माज्जपेद्धियो नित्यं प्रागुक्तेन विधानत ।
शक्तिबीजसमायुक्त स याति परमा गतिम् ॥३४
एतद्व कथित सर्वं कथामर्वस्वमुत्तमम् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान् ॥३५
स याति ब्रह्मलोकं तु रुद्रजाप्यमनुत्तमम् ॥३६

फिर इसने अपने माता-पिता का सुभगा पत्नी का और सालों का सब का उद्धार कर दिया था और वह उसकी शुचिस्मित वाली पत्नी पतिव्रता एव अच्छे भाग वाली हो गई थी ॥३१॥ फिर इन सब के साथ विमान मे वह बैठकर इन्द्रादि देवो से अभिष्टुत होकर गाणपत्य को प्राप्त कर रुद्रदेव का परम प्रिय हो गया था ॥३२॥ उस अष्टाक्षर मन्त्र से तथा द्वादशाक्षर मन्त्र से करोड गुना पुण्य होता है—इसमे कुछ भी विचारणा की आवश्यकता नही है ॥३३॥ इसलिये पहिले बताये हुए विधि-विधान से शक्ति बीज से समायुक्त इस मन्त्र का बुद्धिमान् पुरुष को जाप करना चाहिए । इस मन्त्र का जापक पुरुष परमगति को प्राप्त होता है ॥३४॥ यह हमने सम्पूर्ण कथा का सर्वस्व तुम्हारे सामने भली-भांति वर्णन कर दिया है । जो भी कोई इसका पठन करेगा या श्रवण करेगा तथा इसको किसी द्विजोत्तम को श्रवण करायेगा वह इस परम श्रेष्ठ रुद्र मन्त्र के जप के प्रभाव से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ॥३५॥३६॥

॥ ७८—शिव का पशुपतित्व कथन ॥

देवैः पुरा कृतं दिव्य व्रत पाशुपत शुभम् ।

ब्रह्मणा च स्वयं सूत कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा ।।१
पतितेन च विप्रेण धौंधुमूकेन वै तथा ।
कृत्वा जप्त्वा गतिः प्राप्ता कथं पाशुपतं व्रतम् ।।२
कथं पशुपतिर्देवः शंकरः परमेश्वरः ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं परं कौतूहलं हि नः ।।३
पुरा शापाद्विनिर्मुक्तो ब्रह्मपुत्रो महायशाः ।
रुद्रस्य देवदेवस्य मद्देहादिहागतः ।।४
त्यक्त्वा प्रसादाद्रुद्रस्य उग्रदेहमजाशया ।
शिलादपुत्रमासाद्य नमस्कृत्य विधानतः ।।५
मेरुपृष्ठे मुनिवरः श्रुत्वा धर्ममनुत्तमम् ।
माहेश्वरं मुनिश्रेष्ठा ह्यपृच्छत पुनः पुनः ।।६
नंदिनं प्रणिपत्यैनं कथं पशुपतिः प्रभुः ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं तत्सर्वं च तदाह मः ।।७
तत्सर्वं श्रुतवान् व्यासः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
तस्मादहमनुश्रुत्य युष्माकं प्रवदामि वै ।।८
सर्वे शृण्वंतु वचनं नमस्कृत्वा महेश्वरम् ।
यथं पशुपतिर्देवः पशवः के प्रकीर्तिताः ।।९
कैः पाशैस्ते निबध्यंते विमुच्यंते च ते कथम् ।
सनत्कुमार वक्ष्यामि सर्वमेतद्यथातथम् ।।१०

है। सूतजी ने कहा—पहिले ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार जिनका कि महान् यश है शाप से विनिर्मुक्त हुए थे और वह शाप देवों के भी देव भगवान् रुद्र का था। फिर रुद्र के ही प्रसाद से उष्ट्र देह का त्याग कर मरुदेश से यहाँ पर आ गये थे ॥३॥४॥ ब्रह्मा की आज्ञा से शिलाद के पुत्र के पास प्राप्त हुए थे और विधिपूर्वक उनको प्रणाम किया था ॥५॥ मुनिवर ने मेरु के पृष्ठ पर इस परमोत्तम धर्म के विषय मे श्रवण किया था। उसी को बार बार माहेश्वर व्रत को पूछा था ॥६॥ भगवान् नन्दी को प्रणाम करके यही पूछा था कि प्रभु पशुपति कैसे कहे गये हैं—यह सब हमको आप बताने की कृपा करें। तब उस नन्दी ने उससे कहा था। उस सब को कृष्ण द्वैपायन व्यास ने श्रवण किया था। उनसे मैंने अनुश्रवण किया था। उसे ही अब आप लोगों को बतलाता हूँ। आप लोग सब भगवान् महेश्वर को प्रणाम करके इसका श्रवण करो। सनत्कुमार ने शैलादि से प्रार्थना की थी देव पशुपति किस प्रकार से हैं और पशु कौन से हैं? किन पाशों के द्वारा वे निबद्ध किये जाया करते हैं और फिर किस रीति मुक्त होते हैं? शैलादि ने कहा—हे सनत्कुमार! मैं इस सब को यथार्थ रूप से आपको बताऊगा ॥७॥८॥९॥१०॥

रुद्रभक्तस्य शान्तस्य तव कल्याणचेतस ।
ब्रह्माद्या स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य धीमत ॥११
पशव परिकीर्त्यन्ते ससारवशवर्तिनः ।
तेषा पतित्वाद्भगवान् रुद्र पशुपति स्मृत ॥१२
अनादिनिधनो धाता भगवान्विष्णुरव्यय ।
मायापाशेन बध्नाति पशुवत्परमेश्वर । १३
स एव मोचकस्तेषा ज्ञानयोगेन सेवित ।
अविद्यापाशबद्धाना नान्यो मोचक इष्यते ॥१४
तमृते परमात्मान शङ्कर परमेश्वरम् ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि पाशा हि परमेष्ठिनः ॥१५
तैः प धर्मोदयत्येकः शिवो जीवैरपासित ।
[illegible] ति पशूनेकश्चतुर्विंशतिपाशकैः ॥१६

स एव भगवान्रुद्रो मोचयत्यपि सेवितः ।
दशेन्द्रियमयैः पाशैरन्तःकरणसंभवैः ।।१७
भूततन्मात्रपाशैश्च पशून्मोचयति प्रभुः ।
इन्द्रियार्थमयैः पाशैर्बद्धा विषयिण प्रभु ।।१८

आप भगवान् रुद्र के भक्त परम शान्त और कल्याण को चित्त मे धारण करने वाले हैं। धीमान् देवो के देव के ब्रह्मा से आदि लेकर स्थावर पर्यन्त सब ससार मे वर्त्तन करने वाले पशु कहे जाते हैं। भगवान् रुद्र उन सब के पति हैं इसी लिये वे पशुपति कहे गये हैं ।।११।। ।।१२।। अनादि और निधन से रहित धाता-अव्यय भगवान् विष्णु परमेश्वर माया के पाश से पशु की भाँति ही बाँधते है और वही ज्ञान योग के द्वारा सेवित होने पर उनके मोचन करने वाले होते हैं। अविद्या के पाश से बद्ध पुरुषो का अन्य कोई भी मोचक नही होता है। ।।१३।।१४।। उन परमात्मा परम ईश्वर शङ्कर के बिना परमेष्ठी के ये चौबीस तत्व पाश हैं ।।१५।। जीवो के द्वारा उपासना किये गये भगवान् एक शिव ही उन पाशो से मोचन किया करते हैं। और एक चौबीस तत्व स्वरूप पाशो से पशुओ को निबद्ध किया करता है ।।१६।। वह ही भगवान् रुद्र सेवित होकर मोचन किया करते हैं जो कि अन्तःकरण मे रहने वाले दश (कर्मेन्द्रिय-ज्ञानेन्द्रिय स्वरूप) इन्द्रियो के पाश होते हैं। और पच भूत तथा पच तन्मात्रा स्वरूप भी पाश हैं उन सब से भी प्रभु मोचन किया करते हैं। प्रभु इन्द्रिया के अर्थ अर्थात् विषय स्वरूप पाशो के द्वारा विषयो के सेवन करने वाले जीवो को बद्ध करते है। वे ही विषयी प्राणी परमेश्वर की सेवा से बहुत ही शीघ्र फिर परम भक्त हो जाया करते हैं। भज्-यह धातु सेवा के अर्थ मे ही कहा गया है ।।१७।।१८।। '

आशु भक्ता भवत्येव परमेश्वरसेवया ।
भज इत्येष धातुर्वै सेवायां परिकीर्तित ।।१९
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिशब्देन भूयसी ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यंत पशून्बद्धा महेश्वरः ।।२०
त्रिभिर्गुणमयैः पाशैः कार्यं कारयति स्वयम् ।

दृढेन भक्तियोगेन पशुभिः समुपासितः ।।२१
मोचयत्येव तान्सद्य. शंकरः परमेश्वरः ।
भजन भक्तिरित्युक्ता वाङमनःकायकर्मभिः ।।२२
सर्वकार्यगुणहेतुत्वात्पाशच्छेदपटीयसी ।
सत्यः सर्वग इत्यादि शिवस्य गुणचिंतना ।।२३
रूपोपादानचिंता च मानस भजनं विदुः ।
वाचिकं भजन धीराः प्रणवादिजपं विदुः ।।२४
कायिकं भजन सद्भिः प्राणायामादि वध्यते ।
धर्माधर्ममयै. पाशैर्बंधनं देहिनामिदम् ।।२५

इसीलिये वुध लोगो ने भक्ति शब्द के द्वारा जो कि भज् से वायाम्-इस धातु से बनता है, बहुत बड़ी सेवा ही कही गई है । ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्ब पर्यन्त महेश्वर तीन गुण (सत्त्व-रज-तम) स्वरूप पाशो से पशुओं को बद्ध किया करते हैं और इस कार्य को वे स्वयं ही कराते हैं। जब उन पशुओ का जो कि निबद्ध हुए हैं, अतिदृढ भक्ति का योग होता है और उसके द्वारा जिस समय भगवान् शङ्कर समुपासित उनके द्वारा होते हैं तो फिर वे परमेश्वर तुरन्त ही उन जीवो का मोचन कर दिया करते हैं । वाक्-मन और शरीर के द्वारा जो भजन अर्थात् सेवन है वही भक्ति कही गई है ।।१६।।२०।। समस्त कार्यो के करने मे हेतु होने से वह पाशों के छेदन करने मे बहुत सी पटु है । उसका स्वरूप यही है कि शिव के स्वरूप को परम सत्य और सर्वत्र गमन करने वाला-ऐसा विचिन्तन करता रहे ।।२१।।२२।। उनके स्वरूप तथा उपादानो का जो चिन्तन है वही मानस भजन कहा जाता है । प्रणव आदि का जाप करने को धीर पुरुष वाचिक भजन कहा करते हैं ।।२३।।२४।। कायिक भजन सत्पुरुषो के द्वारा प्राणायाम आदि का करना बताया जाता है । धर्म तथा अधर्म स्वरूप वाले पाशो से देह धारियो का यह बन्धन होता है ।।२५।।

मोचकः शिव एवैको भगवान्परमेश्वरः ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि मायाकर्मगुणा इति ।।२६
कीर्त्यंते विषयाश्चेति पाशा जीवनिबंधनात् ।

तैर्बद्धा शिवभक्त्यैव मुच्यते सर्वदेहिन ॥२७
पचक्लेशमयं पाशैं पशून्बध्नाति शकर ।
स एव मोचकस्तेषा भक्त्या सम्यगुपासिन ॥ ८
अविद्यामस्मिता राग द्वेष च द्विपदा वरा ।
वदत्यभिनिवेश च क्लेशान्पाशत्वमागतान् ॥ ६
तमोमोहो महामोहस्तामिस्र इति पडिता ।
अ धतामिस्र इत्याहुरविद्या पचधा स्थिताम् ॥३०
तान्जोवान्मुनिशार्दूला सर्वांश्चैवाप्यविद्यया ।
शिवो मोचयति श्रीमानान्य कश्चिद्विमोचक ॥३१
अविद्या तम इत्याहुरस्मिता मोह इत्यपि ।
महामोह इति प्राज्ञा राग योगपरायणा ॥३२

भगवान् एक शिव ही परमेश्वर है और वही इन पाशो से मोचन करने वाला है। चौबीस तत्व माया के कर्मगुण हैं और ये विषय कहे जाते हैं। जीवो के निबन्धन से ये पाश होते हैं। उनके द्वारा निबद्ध समस्त देहधारी शिव की भक्ति से ही मुक्त हुआ करते हैं ॥२६॥२७॥ भगवान् शकर पाँच क्लेश मय पाशो से पशुओ का निबन्धन किया करते हैं। जो निबद्ध करने वाले हैं वे ही अच्छी तरह भक्ति पूर्वक सेवमान होने पर तथा सम्पासित होकर उन सब का मोचन भी हु ा करते हैं ॥२८॥ श्रेष्ठ पुरुष पात्रत्व को प्राप्त होने वाले पाँच क्लेशो को कहते हैं जिनमे अविद्या-अस्मिता राग द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश होते हैं ॥२६॥ तम मोह महामोह तामिस्र और अ धतामिस्र इनको ही पण्डित लोग पाँच प्रकार की स्थित अविद्या कहते हैं ॥३०॥ हे मुनिशार्दूलो! अविद्या से युक्त उन समस्त जीवो को इस अविद्या से केवल एक शिव ही मोचन किया करते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी विमोचन करने वाला नहीं है ॥३१॥ देहादि मे जो कि अनात्म स्वरूप हैं आत्माभिमान करना जो तम है उसे ही अविद्या कहते है और अस्मिता का मोह भी कहा है। योग परायण प्राज्ञ लोग राग को महामोह कहते हैं ॥३२॥

द्वेष तामिस्र इत्याहुरधतामिस्र इत्यपि ।

तथैवाभिनिवेशं च मिथ्याज्ञानं विवेकिनः ॥३३
तमसोऽष्टविधा भेदा मोहश्चाष्टविधः स्मृतः ।
महामोहप्रभेदाश्च बुधैर्दश विचिंतिताः ॥३४
अष्टादशविधं चाहुस्तामिस्रं च विचक्षणाः ।
अंधतामिस्रभेदाश्च तथाष्टादशधा स्मृताः ॥३५
अविद्ययास्य संबंधो नातीतो नास्त्यनागतः ।
भवेद्रागेण देवस्य शंभोरंगनिवासिनः ॥३६
कालेषु त्रिषु संबधस्तस्य द्वेषेण नो भवेत् ।
मायातीतस्य देवस्य स्थाणोः पशुपतेर्विभोः ॥३७
तथैवाभिनिवेशेन संबंधो न कदाचन ।
शंकरस्य शरण्यस्य शिवस्य परमात्मनः ॥३८
कुशलाकुशलैस्तस्य सबधो नैव कर्मभिः ।
भवेत्कालत्रये शंभोरविद्यामतिवर्तिनः ॥३९
विपाकैः कर्मणां वापि न भवेदेव संगमः ।
कालेषु त्रिषु सर्वस्य शिवस्य शिवदायिनः ॥४०

द्वेष को तामिस्र और अन्धतामिस्र भी कहते हैं। वस्तुत विषय के विघात होने पर जो क्रोध होता है उसे तामिस्र कहा जाता है और ममता के स्थान स्वरूप के रक्षण करने का जो अभिनिवेश होता है उसे अन्धतामिस्र कहते हैं। विवेकी के मिथ्याज्ञान को भी कहा जाता है ॥३३॥ इस तरह तम के आठ प्रकार होते हैं और मोह भी आठ प्रकार का होता है। बुध लोगों ने महामोह के दश प्रकार विचिन्तित किये हैं ॥३४॥ विचक्षण लोगों ने तामिस्र को अट्ठारह तरह का बताया है। इसी प्रकार से अन्धतामिस्र के भेद भी अट्ठारह कहे गये हैं। ॥३५॥ अविद्या से इसका अतीत और अनागत सम्बन्ध नहीं है। अङ्ग निवासी शम्भुदेव के राग से होता है ॥३६॥ तीनों कालों में उसका द्वेष से सम्बन्ध नहीं होता है। क्योंकि पशुपति विभु स्थाणु देव माया से अतीत होते हैं ॥३७॥ उसी प्रकार से अभिनिवेश के साथ भी कभी कोई सम्बन्ध नहीं होता है। शङ्कर शिव स्वरूप परम आत्मा और शरण्य हैं। ॥३८॥

तीनो काल म अविद्या का अति वर्त्तन करने वाले शम्भु का कुशल और अकुशल कर्मों से भी कोई सम्ब ध नही है ॥३६॥ तीनो कालो मे सब का प्रदान करने वाले शिवदायी शिव का कर्मों क विपाको के साथ भी सङ्ग नही होता है ॥४०॥

सुखदु खैरसस्पृश्य कालत्रितयवर्तिभि ।
स तैर्विनश्वरै शम्भुर्बोधानदात्मक पर ॥४१
आशयैरपरामृष्ट कालत्रितयगोचरै ।
धिया पति स्वभूरेष महादेवो महेश्वर ॥४२
अस्पृश्य कर्मसस्कारै कालत्रितयवर्तिभि ।
तथैव भोगसस्कारैर्भगवानतकातक ॥४३
पु विशेषपरो देवो भगवान्परमेश्वर ।
चेतनाचेतनायुक्तप्रपचादखिलात्पर ॥४४
लोके सातिशयत्वेन ज्ञानैश्वर्यं विलोक्यते ।
शिवेनातिशयत्वेन शिव प्राहुर्मनीषिण ॥४५
प्रतिसर्गं प्रसूताना ब्रह्मणा शास्त्रविस्तरम् ।
उपदेष्टा स एवादौ कालावच्छेदवर्तिनाम् ॥४६
कालावच्छेदयुक्ताना गुरूणामप्यसौ गुरु ।
सर्वेषामेव सर्वेश कालावच्छेदवर्जित ॥४७

काल त्रितय म अर्थात् भूत भविष्यत् वर्त्तमान इन तीनो कालो मे वरतने वाले सुख दु खो से वह असस्पृश्य अर्थात् स्पर्श न करने के योग्य हैं क्योंकि य सब विनश्वर होते हैं और शम्भु पर एव बोधानदात्मक होते हैं। ॥४१॥ तीनो कालो मे गोचर आशयो स बुद्धि के स्वामी स्वभू यह महेश्वर महादेव अपरामृष्ट होते हैं ॥४ ॥ यह अन्तक का अन्तक भगवान् काल त्रितय वर्त्ती कर्मों के सस्कारो से तथा भोगो के सस्कारो से भी स्पर्श न करने के योग्य होते हैं ॥४३॥ भगवान् परमेश्वर पु विशेष पर देव हैं जो कि इस चेतन और अचेतन से युक्त सम्पूर्ण प्रपच स परे है ॥४४॥ लोक म अतिशय के साथ ज्ञानैश्वर्य देखा जाता है और शिव (कल्याण) के अति शयत्व होने से ही मनीषीगण उन भगवान् को 'शिव' इस शुभ

नाम से पुकारा करते हैं ॥४५॥ प्रत्येक सर्ग में समुत्पन्न कालावच्छेद वर्त्ती ब्रह्माओं को शास्त्र का पूर्ण विस्तार वह ही भगवान् शिव उपदेश करने वाले होते हैं ॥४६॥ कालावच्छेद वर्त्ती गुरुओं का भी यह शिव गुरु होते हैं। और कालावच्छेद से रहित होते हुए वह शिव सभी का सर्वेश्वर है ॥४७॥

अनादिरेष सबंधो विज्ञानोत्कर्षयो पर ।
स्थितयोरीदृश सर्व परिशुद्ध स्वभावतः ॥४८
आत्मप्रयोजनाभावे परानुग्रह एव हि ।
प्रयोजन समस्ताना कार्याणा परमेश्वर ॥४६
प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मनः ।
शिवरुद्रादिशब्दाना प्रणवोपि पर स्मृत ॥५०
शभो प्रणववाच्यस्य भावना तज्जपादपि ।
या सिद्धि स्वपराप्राप्या भवत्येव न सशय ॥५१
ज्ञानतत्त्व प्रयत्नेन योग पाशुपत पर ।
उक्तस्तु देवदेवेन सर्वेषामनुकपया ॥५२

यह विज्ञान और उत्कर्ष का पर एव अनादि सम्बन्ध है। इन दोनो स्थित होने वालो का यह सम्बन्ध स्वभाव से ही सम्पूर्ण इस प्रकार का परिशुद्ध होता है ॥४८॥ अपना कोई प्रयोजन न होने पर यह दूसरो पर अनुग्रह स्वरूप ही है और परमेश्वर समस्त कार्यों का प्रयोजन स्वरूप होते हैं ॥४९॥ उस परमात्मा शिव का वाचक प्रणव है। शिव और रुद्र आदि शब्दो के मध्य म प्रणव भी परम श्रेष्ठ कहा गया है ॥५०॥ प्रणव के द्वारा वाच्य शिव की भावना उस के जाप से ही की जाती है। यह जो सिद्धि होती है वह प्रणव के अतिरिक्त अन्य से अप्राप्य होती है—इस में कुछ भी सशय नही है ॥५१॥ सब के ऊपर अनुकम्पा से देवो के देव ने अर्थात् आदित्य रूप शिव ने परम पाशुपत ज्ञान तत्व यत्न से अर्थात् याज्ञवल्क्य के परम तप से कहा है ॥५२॥

स होवाचैव याज्ञवल्क्यो यदक्षर गार्ग्ययोगिन ।
अभिवदति स्थूलमनत महाश्चर्यमदीर्घमलोहितमस्तकमासा-

यमत एवो पुनारसमसंगमगंधमरसमचक्षुष्कमश्रोत्रमवाङ्‌म-
नोतेजस्कमप्रमाणमनुसुखमनामगोत्रममरमजरमनामयममृत-
मोंशब्दममृतमसंवृतमपूर्वमनपर मनंतमबाह्यं तदश्नाति कि-
चन न तदाश्नाति किंचन ॥५३
एतत्कालव्यये ज्ञात्वा पर पाशुपत प्रभुम् ।
योगे पाशुपते चास्मिन् यस्यार्थः किल उत्तमे ॥५४
कृत्वोंकार प्रदीप मृगय गृहपति सूक्ष्ममाद्यतरस्थ संयम्य
द्व श्वासं पवनपटुतर नायक चेंद्रियाणाम् ।
वाग्जालै. कस्य हेतोर्विभटसि तु भय दृश्यते नैव किंचिद्देहस्थ
पश्य शभुं भ्रमसि किमु परे शास्त्रजालेन्धकारे ॥५५
एवं सम्यग्बुधैर्ज्ञात्वा मुनीनामथ चोक्तं शिवेन ।
असमरस पचवा कृत्वाभयं चात्मनि योजयेत् ॥५६

वह प्रसिद्ध सूर्योपदिष्ट याज्ञवल्क्य ने कहा ही है अर्थात् निश्चय के साथ बोला है । हे जागि ! जो कि अयोगी का नाश शून्य शिव वस्तु स्थूल विराट् रूप है । योगी तो उसे अनन्त महदाश्चर्य कहकर अभिवन्दना किया करते है । वे श्रुति की भाँति वर्णन किया करते हैं वह लम्बत्व से शून्य है आरक्त वर्ण से रहित–उपरि भाग से वर्जित-अस्तमित रूप वाला अतएव नित्यानन्द रस रूप-स्पर्श शून्य-अगन्ध-अरस-अचक्षुष्क अर्थात् रूप रहित-शब्द शून्य-मन और वाणी से अतीत-अदाहक-अन्य प्रमाण से शून्य-सुखकारक नाम एव गोत्र से रहित-मृति विरहित-रोग शून्य-वय की हानि से रहित-मोक्ष स्वरूप-सुधा रूप-अनाच्छादित-भाग से रहित-अन्त से शून्य वहिर्देश से रहित एव ओंकार शब्द के द्वारा प्रतिपाद्य वह ब्रह्म सब का भोग किया करता है और किसी कर्म का भोग नही किया करता है ॥५३॥ यह ऐसा पाशुपत योग है । इस परमोत्तम पाशुपत योग मे जिस पुरुष की आस्था एव प्रयोजन हो वह इस का ज्ञान प्राप्त करके अन्त समय मे प्रभु के ही सान्निध्य मे पहुँच कर उसी मे प्रवेश किया करता है ॥५४॥ यदि इस प्रकार का वह परमेश कहाँ पर विराजमान रहता है—यदि शका है तो उसका यही उत्तर है कि ओंकार

प्रदीप बनाकर उस गृहपति अन्तर्यामी परम सूक्ष्म का अन्वेषण करना चाहिए और पवन से भी शीघ्रगामी इन्द्रियों के द्वार पर निवास करने वाले अपने मन को वश मे करके ही उसका अन्वेषण किया जा सकता है। वाग्जालो से इस विषय मे विवाद नही करके उसकी खोज करो। इसमें कुछ भी भय नही होता है। अपने ही देह में स्थित भगवान् शम्भु का दर्शन प्राप्त करलो। द्वैतादि के अन्धकार स्वरूप इन शास्त्रों के जाल में अपने मन को भ्रान्त मत करो ॥५५॥ इस प्रकार से भगवान् शिव के द्वारा मुनियो के लिये कहे हुए अर्थ को बुध लोग भली-भाँति विचार करके आनन्द रूप आत्म स्वरूप को पञ्च कोश रूप करके आत्मा मे अभय रूप मोक्ष की प्राप्ति करें ॥५६॥

॥ ७६—शिवजी प्रकृति से जीव का बँधन ॥

भूय एव ममाचक्ष्व महिमानमुमापतेः।
भवभक्त महाप्राज्ञ भगवन्नंदिकेश्वर ॥१
सनत्कुमार संक्षेपात्तव वक्ष्याम्यशेषतः।
महिमान महेशस्य भवस्य परमेष्ठिनः ॥२
नास्य प्रकृतिबंधोऽभूद्बुद्धि वंधो न कश्चन।
न चाहंकारबंधश्च मनोबंधश्च नोऽभवत् ॥३
चित्तबन्धो न तस्याभूच्छ्रोत्रबंधो न चाभवत्।
न त्वचां चक्षुषां वापि बंधो जज्ञे कदाचन ॥४
जिह्व बधो न तस्याभूद्घ्राणबधो न कश्चन।
पादबंधः पाणिबधो वाग्बंधश्चैव सुव्रत ॥५
उपस्थेंद्रिय बंधश्च भूततन्मात्रबंधनम्।
नित्यशुद्धस्वभावेन नित्यबुद्धो निसर्गतः ॥६
नित्यमुक्त इति प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः।
अनादि मध्यनिष्ठस्य शिवस्य परमेष्ठिनः ॥७
बुद्धि सूते नियोगेन प्रकृतिः पुरुषस्य च।
अहकारं प्रसूतेऽस्या बुद्धिस्तस्य नियोगतः ॥८

इस अध्याय में शिव का प्राकृत बन्ध और उनकी आज्ञा से सब का सर्ग तथा सर्व कार्य का प्रवर्त्तन निरूपित किया जाता है। सनत्कुमार ने कहा – हे भगवन् नन्दिकेश्वर ! आप तो भगवान् भव के परम भक्त हैं और आप महान् पण्डित हैं। अतः पुनः भगवान् उमापति शिव की महिमा को कृपा कर वर्णित कीजिए ॥१॥ शैलादि ने कहा—हे सनत्कुमार ! मैं परमेष्ठी महान् ईश भव की महिमा तुम्हारे सामने सम्पूर्ण संक्षेप मे कहता हूँ ॥२॥ भगवान् शिव को प्रकृति का कोई बन्ध नही हुआ था और कोई भी बुद्धि-बन्ध भी नहीं होता है। अहंकार बन्ध तथा मनोबन्ध भी नही हुआ है ॥३॥ चित्त बन्ध-श्रोत्र बन्ध त्वचाओं का बन्ध और चक्षुबन्ध उनको कोई भी नही हुआ था ॥४॥ जिह्वाबन्ध-घ्राण बन्ध-पाद पाणि बन्ध-वाग्बन्ध-उपस्थेन्द्रिय बन्ध तथा भूतों और तन्मात्राओं का बन्ध तात्पर्य यह है कि किसी प्रकार का भी कोई प्राकृतिक बन्ध शिव को नही होता है। वह नित्य शुद्ध स्वभाव से निसर्ग से ही नित्य बुद्ध होते हैं ॥५॥६॥ तत्त्व के वेत्ता मुनियो के द्वारा वह भगवान् शिव नित्य मुक्त कहे गये हैं। अनादि मध्य में निष्ठ परमेष्ठी पुरुष शिव की आज्ञा से प्रकृति बुद्धि को प्रसूत करती है। शिव के नियोग से इस प्रकृति की बुद्धि फिर अहंकार का प्रसव किया करती है ॥७॥८॥

अन्तर्यामीति देहेषु प्रसिद्धस्य स्वयंभुवः।
इन्द्रियाणि दशैकं च तन्मात्राणि च शासनात् ॥९
अहंकारोऽसृजत् शिवस्य परमेष्ठिनः।
तन्मात्राणि नियोगेन तस्य संभुवते प्रभोः ॥१०
महाभूतान्यशेषेण महादेवस्य धीमतः।
ब्रह्मादीनां तृणान्तं हि देहिनां देहसंगतिम् ॥११
महाभूतान्यशेषाणि जनयन्ति शिवाज्ञया।
अध्यवस्यति सर्वार्थान्बुद्धिस्तस्याज्ञया विभोः ॥१२
अंतर्यामीति देहेषु प्रसिद्धस्य स्वयंभुवः।
स्वभावसिद्धमैश्वर्यं स्वभावादेव भूतयः ॥१३
तस्याज्ञया समस्तार्थानहंकारोऽभिमन्यते।

अवकाशमशेषाणां भूतानां स प्रयच्छति ।
आकाश सर्वदा तस्य परमस्यैव शासनात् ॥२१

उसी देव के शासन से वाणी वचन बोला करती है समस्त शरीरों के सम्पूर्ण कार्य उस देव की आज्ञा से ही हुआ करते हैं ॥१६॥ देहधारियों का हाथ केवल आदान का ही कार्य करता है गति का काम नहीं करता है—इस तरह से वेधा के नियम एवं शासन से ही सब जन्तुओं के कार्य हुआ करते हैं जो भी उसने जैसा कुछ नियम बना दिया है उसी के अनुसार होता है ॥१७॥ पैर विहार ही किया करते हैं उत्सर्ग आदि काम नहीं करते हैं। यह भी सब देहियों का कार्य शिव के ही नियोग से हुआ करता है। इन्द्रियों का अपना २ कार्य ही सब किया करती हैं। एक दूसरे के कार्य को कभी नहीं करती है। पायु मलोत्सर्ग करने वाली इन्द्रिय केवल अपना कार्य मल का त्याग करने का ही करती है और बोलने का काम नहीं करती है। यह ऐसा नियम उत्पन्न होने वाले जन्तु का शिव ही की आज्ञा से हुआ करता है ॥१८॥१६॥ उपस्थेन्द्रिय केवल आनन्द का ही उपभोग किया करती है अन्य कुछ भी देहधारी का कार्य नहीं करती है—यह भी शिव के ही नियोग के कारण ही ऐसा किया करती है ॥२०॥ यह आकाश समस्त प्राणियों को अवकाश का प्रदान सदा उसी प्रभु की आज्ञा से किया करता है ॥२१॥

निर्देशेन शिवस्यैव भेदैः प्राणादिभिर्निजैः ।
बिभर्त्ति सर्वभूताना शरीराणि प्रभञ्जन. ॥ २
निर्देशाद्देवदेवस्य सप्तस्कन्धगतो मरुत् ।
लोकयात्रां वहत्येव भेदैः स्वैरावहादिभि. ॥२३
नागाद्यैः पञ्चभिर्भेदैः शरीरेषु प्रवर्त्तते ।
अपदेशेन देवस्य परमस्य समीरण. ॥२४
हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि ।
पाकं च कुरुते वह्निः शङ्करस्यैव शासनात् ॥२५
भुक्तमाहारजातं यत्पचते देहिनां तथा ।
उदरस्थः सदा वह्निर्विश्वेश्वरनियोगतः ॥२६

संजीवयंत्यशेषाणि भूतान्यापि स्तदाज्ञया ।
अविलङ्घ्या हि सर्वेषामाज्ञा तस्य गरीयसी ॥२७
चराचराणि भतानि बिभर्त्येव तदाज्ञया ।
आज्ञया तस्य देवस्य देवदेवः पुरंदरः ॥२८
जीवतां व्याधिभि पीडां मृतानां यातनाशतैः ।
विश्वंभरः सदाक्त स लोके सर्वैरलंघ्यया ॥२६
देवान्पात्य सुरान् हृति त्रैलोक्यमखिलं स्थितः ।
अधार्मिकाणा वै नाश करोति शिवशासनात् ॥३०

यह प्रभञ्जन वायु) अपने प्राण-अपान आदि भेदों के द्वारा सब शरीर धारियो के शरीरो का भरण प्रभु की ही आज्ञा से किया करता है ॥२२॥ सात स्कन्धो मे रहने वाला यह मरुत् स्वच्छन्द आवहनो के भेदो के द्वारा सब लोक यात्रा का वहन किया करता है ॥२३॥ नाग-कूर्म आदि पाँच भेदो के द्वारा यह वायु उसी परमेश के नियोग से शरीरो मे प्रवृत्त हुआ करता है ॥२४॥ भगवान् शकर के शासन से ही यह उदर मे स्थित वह्नि देह धारियो के आहार मात्र का पाचन किया करता है। यह अग्नि कव्य के अशन करने वाले देवताओ को हव्य और कव्य का वहन करके उन्हे पहुँचा देता है तथा पाक भी भगवान् शकर के ही शासन से यह अग्नि किया करता है। ॥२५॥२६॥ उसी की आज्ञा से जल समस्त प्राणियो को सजीवित किया करता है। महेश्वर भगवान् की आज्ञा सबसे अधिक महत्त्व रखने वाली है और वह सब के ही लिये लङ्घन न करने के योग्य हुआ करती है ॥२७॥ चर और अचर प्राणी समस्त उसकी आज्ञा से ही भरण किया करते है। देवराज इन्द्रदेव भी शिव की आज्ञा से ही अपने प्राप्त हुए अधिकारो मे प्रवृत्त होता है ॥२८॥ समस्त लोकों के द्वारा अलघनीय शिव की आज्ञा से भगवान् विश्वम्भर सदा काल मे जीवितो को सैंकडो व्याधियों के द्वारा तथा मृतकों को नरकों सैंकडो प्रकार की यातनों से दण्डित किया करता है ॥२६॥ शिव के शासन से वह देवो की रक्षा करते हैं और असुरो का हनन किया करते हैं तथा सम्पूर्ण त्रैलोक्य मे स्थित रहते हैं। जो भी अधार्मिक पुरुष है उनका

नाश किया करते हैं ॥३०॥

वरुणः सलिलैर्लोकान्सम्भावयति शासनात् ।
मज्जयत्याज्ञया तस्य पाशैर्बध्नाति चासुरान् ॥३१
पुण्यानुरूपं सर्वेषां प्राणिनां सम्प्रयच्छति ।
वित्तं वित्तेश्वरस्तस्य शासनात्परमेष्ठिनः ॥३२
उदयास्तमये कुर्वन्कुरुते कालमाज्ञया ।
आदित्यस्तस्य नित्यस्य सत्यस्य परमात्मनः ॥३३
पुष्पाण्यौषधिजातानि प्रह्लादयति च प्रजाः ।
अमृतांशुः कलाधारः कालकालस्य शासनात् ॥३४
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ मरुतस्तथा ।
अन्याश्च देवताः सर्वास्तच्छासनविनिर्मिताः ॥३५
गन्धर्वा देवसंघाश्च सिद्धाः साध्याश्च चारणाः ।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च स्थिताः शास्त्रेषु वेधसः ॥३६
ग्रहनक्षत्रताराश्च यज्ञा वेदास्तपांसि च ।
ऋषीणां च गणाः सर्वे शासनं तस्य धिष्ठिताः ॥३७
कव्याशिनां गणाः सप्तसमुद्रा गिरिसिन्धवः ।
शासने तस्य वर्तन्ते काननानि सरांसि च ॥३८
कला काष्ठा निमेषाश्च मुहूर्ता दिवसाः क्षपाः ।
ऋत्वब्दपक्षमासाश्च नियोगात्तस्य धिष्ठिताः ॥३९
युगमन्वन्तराण्यस्य शम्भोस्तिष्ठन्ति शासनात् ।
पराश्चैव परार्धाश्च कालभेदास्तथापरे ॥४०

महेश्वर के शासन से ही वरुणदेव सलिल के द्वारा लोकों को सम्भावित करते हैं अर्थात् पालन किया करते हैं और उन्हीं की आज्ञा से लोकों को ही वरुणदेव निमज्जित करते हैं और उनके पाशों से असुरों का बन्धन करता है ॥३१॥ उस परमेष्ठी के आदेश से वित्तों का स्वामी यक्षराज पुण्यों के अनुकूल समस्त प्राणियों को धन देता है ॥३२॥ उस नित्य सत्य परमात्मा की आज्ञा से आदित्य उदय और अस्त के समय तथा काल को किया करता है ॥३३॥ उस काल के भी काल के शासन

से कला को धारण करने वाला अमृतांशु (चन्द्रमा) पुष्प और सम्पूर्ण ओषधियों को तथा प्रजा को आह्लादित किया करता है ॥३४॥ आदित्य-वसु-रुद्र-अश्विनीकुमार तथा मरत् एवं अन्य देवगण समस्त उसी के शासन से विनिर्मित हुए हैं ॥३५॥ गन्धर्व-देव सर्प-सिद्ध-साध्य-चारण-यक्ष-राक्षस-पिशाच ये सब वेधा के शासन में स्थित रहा करते हैं ॥३६॥ ग्रह-नक्षत्र-तारा-गण वेद-तप और सम्पूर्ण ऋषियों के गण उसी शिव के शासन में अधिष्ठित रहा करते हैं ॥३७॥ कव्य का उपभोग करने वाले सब पितृगण-सातों समुद्र गिरि सिन्धु-कानन और सरोवर ये सभी उस महेश्वर भगवान् के ही शासन में रहते हैं ॥३८॥ कला काष्ठा-मुहूर्त-दिवस रात्रि-ऋतु-वर्ष-पक्ष मास ये सम्पूर्ण उस परमेश्वर के नियोग से अधिष्ठित होते हैं ॥३९॥ युग-मन्वन्तर भी इस भगवान् शम्भु के ही शासन से स्थित होते हैं। तथा पर और परार्ध जो समस्त काल के भेद होते हैं, वे सभी शिव के नियोग से ही हुआ करते हैं ॥४०॥

देवाद्या जातयश्चाष्टौ तिरश्चां पंच जातयः ।
मनुष्याश्च प्रवर्तंते देवदेवस्य धीमतः ॥४१
जातानि भूतवृंदानि चतुर्दशसु योनिषु ।
सर्वलोकनिषण्णानि तिष्ठत्यस्यैव शासनात् ॥४२
चतुर्दशसु लोकेषु स्थिता जाताः प्रजाः प्रभोः ।
सर्वेश्वरस्य तस्यैव नियोगवशवर्तिनः ॥४३
पातालानि समस्तानि भुवनान्यस्य शासनात् ।
ब्रह्माडानि च शेषाणि तथा सावरणानि च । ४४
वर्तमानानि सर्वाणि ब्रह्माडानि तदाज्ञया ।
वर्तंते सर्वभूताद्यैः समेतानि समन्ततः ॥४५
अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्माडानि तदाज्ञया ।
प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समंततः ॥४६
ब्रह्माडानि भविष्यंति सह वस्तुभिरात्मगतैः ।
करिष्यंति शिवस्याज्ञां सर्वैरावरणैः सह ॥४७

देवों की आठ प्रकार की जातियाँ—तिर्यक् योनि वालों की पाँच

जातियाँ तथा सब मनुष्य श्रीमान् देवों के भी देव के शासन से प्रवृत्त हुआ करते हैं ।।४१।। चौदह प्रकार की योनियों में समुत्पन्न होने वाले भूतों के वृन्द जो कि सब लोकों में निपण्ण रहा करते हैं इसी के शासन से स्थित हैं ।।४२।। चौदह लोकों में स्थित तथा उद्भूत होने वाली प्रजा प्रभु सर्वेश्वर उसके ही नियोग के वश वर्त्ती होते हैं ।।४३।। पाताल आदि समस्त सातों लोक और भुवन शेष ब्रह्माण्ड तथा साधारण वर्त्तमान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जो कि सब भूतों से समन्वित है उस की आज्ञा से वर्त्तमान रहा करते हैं ।।४४।।४५।। जो असख्य ब्रह्माण्ड अतीत हो चुके हैं सम्पूर्ण पदार्थों के समूह से सयुत होकर सभी ओर से प्रवृत्त हुए थे वे भी उस परमेश्वर देव की आज्ञा प्राप्त कर हुए थे ।।४६।। जो ब्रह्माण्ड आगे भविष्य में भी अपनी सम्पूर्ण वस्तुओं के सहित समुत्पन्न होंगे वे सब आवरणों के साथ शिव की आज्ञा का पालन करने वाले ही होंगे ।।४७।

।। ८०—उमामहेश्वर की श्रेष्ठ विभूति ।।

विभूती शिवयोर्मह्यमाचक्ष्व त्वं गणाधिप ।
परापरविदां श्रेष्ठ परमेश्वरभाविन ।।१
हंत ते कथयिष्यामि विभूती शिवयोरहम् ।
सनत्कुमार योगीद्र ब्रह्मणस्तनयोत्तम । २
परमात्मा शिवः प्रोक्तः शिवा सा च प्रकीर्तिता ।
शिवमेवेश्वरं प्राहुर्माया गौरी विदुर्बुधा ।।२
पुरुषं शंकरं प्राहुर्गौरी च प्रकृतिं द्विजाः ।
अर्थं शंभुः शिवा वाणी दिवसोऽजः शिवा निशा ।।४
सप्ततुर्महादेवो रुद्राणी दक्षिणा स्मृता ।
आकाशं शंकरो देव पृथिवी शंकरप्रिया ।।५
समुद्रो भगवान् रुद्रो वेला शैलेन्द्रकन्यका ।
वृक्षः शूलधृग्देवः शूलपाणिप्रिया लता ।।६
ब्रह्मा हरोऽपि सावित्री शंकरार्धशरीरिणी ।

विष्णु मंहेश्वरो लक्ष्मीर्भवानी परमेश्वरो ॥७

इस अध्याय मे महेश्वर की श्रेष्ठ विभूति का पृथक् वर्णन तथा भक्ति के वर्धक लिङ्गार्चन का निरूपण किया जाता है। सनत्कुमार ने कहा—हे गणाधिप ! आप तो पर और अपर सब के ज्ञाता हैं और परमेश्वर भगवान् के परम भावित श्रेष्ठ भक्त हैं। अब आप कृपा करके शिव और उमा की पृथक् २ विभूतियो का वर्णन कर हमको बतलाइये ॥१॥ तब नन्दिकेश्वर ने कहा—अच्छा, बडे हर्ष की बात है, अब मैं उमा महेश्वर की विभूतियो का वर्णन करता हूँ। हे सनत्कुमार ! आप तो इस सब के श्रवण करने के योग्य पात्र हैं क्योकि परम योगीन्द्र हैं और ब्रह्मा के उत्तम आत्मज हैं ॥२॥ शिव ही परमात्मा-इस शुभ नाम से कहे गये हैं और उमादेवी शिवा इस शुभ नाम से प्रकीर्त्तित हुई हैं। भगवान् शिव को ही ईश्वर कहा करते हैं। और कुछ लोग गौरी को माया कहते हैं ॥३॥ हे द्विजवृन्द ! भगवान् शंकर को ही पुरुष नाम से कहा जाता है तथा जगज्जननी गौरी को प्रकृति कहते है। शिवा वाणी है तो शम्भु उस वाणी का अर्थ है वह अज दिवस है तो शिवा निशा है ॥४॥ महादेव सप्त तन्तु (यज्ञ) हैं और रुद्राणी देव उस यज्ञ की दक्षिणा हैं-ऐसा कहा गया है। भगवान् शंकर आकाश स्वरूप हैं और वह शंकर की प्रिया देवी पृथिवी के स्वरूप वाली हैं ॥५॥ भगवान् रुद्र समुद्र हैं तो उस सागर की वेला शैलेन्द्र की कन्या पार्वती हैं। शूल के आयुध धारण करने वाले प्रभु शम्भु वृक्ष हैं तो शूलपाणि की प्रियतमा देवी लता स्थानीया है जो उस वृक्ष के ही समाश्रित रहने वाली हैं ॥६॥ हर ही ब्रह्मा है और शंकर की अर्धाङ्गिनी पार्वती सावित्री के समान है। महेश्वर देव विष्णु है उस समय परमेश्वरी भवानी साक्षात् महालक्ष्मी के स्वरूप वाली हैं ॥७॥

वज्रपाणिर्महादेव शची शैलेंद्र कन्यका ।
जातवेदा. स्वय रुद्र. स्वाहा शर्वार्धकायिनी ॥८
यमस्त्रियंबको देवस्तत्प्रिया गिरिकन्यका ।
वरुणो भगवान् रुद्रो गौरी सर्वार्थदायिनी ॥९

बालेंदुशेखरो वायुः शिवा शिवमनोरमा ।
चंद्रार्धमौलिर्यक्षेंद्र स्वयमृद्धिः शिवा स्मृता ॥१०
चंद्रार्धशेखरश्चंद्रो रोहिणी रुद्रवल्लभा ।
सप्तसप्तिः शिवः साक्षाद् उमादेवी सुवर्चला । ११
षण्मुखस्त्रिपुरध्वंसी देवसेना हरप्रिया ।
उमा प्रसूतिर्विज्ञेया दक्षो देवो महेश्वरः ॥१२
पुरुषाख्यो मनुः शम्भु शतरूपा शिवप्रिया ।
विदुर्भवानीमाकूतिं रुचिं च परमेश्वरम् ॥१३
भृगुर्भगाक्षिहा देव ख्यातिस्त्रिनयनप्रिया ।
मरीचिर्भगवान्रुद्र सम्भूतिर्वल्लभा विभो ।१४

महादेव जिस समय में वज्रपाणि महेन्द्र होते हैं उस समय शैलेन्द्र तनया पार्वती शची के (इन्द्राणी के) स्वरूप में अवस्थित रहा करती हैं । स्वयं ही रुद्रदेव जातवेद (अग्निदेव) होते हैं तो त्रिपुरारिपत्नी जगदम्बा उस वह्नि की प्रिया स्वाहा होती हैं ॥८॥ त्रियम्बक देव यम के स्वरूप में जब अवस्थित होते हैं तो गिरिकन्या भवानी उनकी प्रिया के रूप में रहा करती हैं । भगवान् रुद्र वरुण के स्वरूप में स्थित होते हैं तो गौरी सर्वांगों से प्रधान वरुण पत्नी होती हैं ॥९॥ बालेन्दु को मस्तक में धारण करने वाले भगवान् भव जब वायु होते हैं तो शिवा शिव की मनोरमा होती हैं । चन्द्रार्धमौलि (शिव) यक्षराज हैं तो शिवा स्वयं उनकी ऋद्धि के स्वरूप में स्थित हुआ करती हैं ॥१० ॥ अर्ध चन्द्र को धारण करने वाले भगवान् शिव चन्द्र के स्वरूप में रहते हैं तो उस समय रुद्र की वल्लभा पार्वती रोहिणी के रूप में रहा करती हैं । शिव सप्तसप्ति (सूर्य) होते हैं तो उमा उनकी भार्या सुवर्चला हुआ करती हैं ॥११॥ त्रिपुरासुर के हनन करने शिव जब षण्मुख कार्तिकेय के स्वरूप में होते हैं तो हरप्रिया पार्वती देवसेना के स्वरूप वाली रहा करती हैं । उमा को प्रसूति जानना चाहिए और दक्ष प्रजापति के स्वरूप में देव महेश्वर को समझना चाहिए ॥१२॥ पुरुष नाम वाला मनु शम्भु हैं तो शिव की प्रिया शतरूपा हैं । भवानी को आकूति तो परमेश्वर

को रुचि जान लेना चाहिए ।।१३।। भग की अक्षियो के हनन करने वाले शम्भु भृगु हैं तो त्रिनयन की प्रिया पार्वती ख्याति हैं। भगवान् रुद्र मरीचि ऋषि हैं तो विभु की वल्लभा गौरी सभूति होती हैं ।।१४।।

विदुर्भवानीं रुचिरां कविं च परमेश्वरम् ।
गंगाधरोगिरा ज्ञेयः स्मृतिः साक्षादुमा स्मृता ।।१५
पुलस्त्यः शशभृन्मौलिः प्रीतिः कांता पिनाकिनः ।
पुलहस्त्रिपुरध्वसी दया कालरिपुप्रिया ।।१६
क्रतुर्दक्षक्रतुध्वंसी संनतिर्दयिता विभोः ।
त्रिनेत्रोऽत्रिरुमा साक्षादनसूया स्मृता बुधैः ।।१७
ऊर्जामाहुरुमां वृद्धां वसिष्ठं च महेश्वरम् ।
शंकरः पुरुषाः सर्वे स्त्रियः सर्वा महेश्वरी ।।१८
पुल्लिगशब्दवाच्या ये ते च रुद्राः प्रकीर्तिताः ।
स्त्रीलिंगशब्दवाच्या याः सर्वा गौर्या विभूतयः ।।१६
सर्वे स्त्रीपुरुषाः प्रोक्तास्तयोरेव विभूतयः ।
पदार्थशक्तयो यायास्ता गौरीति विदुर्बुधाः ।।२०
सासा विश्वेश्वरी देवी स च सर्वो महेश्वरः ।
शक्तिमतः पदार्था ये स च सर्वो महेश्वरः ।।२१

भवानी को रुचिरा तो परमेश्वर को कवि कुछ लोग जानते हैं। गंगा को शिर पर धारण करने वाले शिव गिरा हैं तो उमा साक्षात् उसकी स्मृति स्वरूपिणी होती हैं ।।१५।। शशभृत् पुलस्त्य हैं तो उस दशा में पिनाकी प्रिया प्रीति होती है। त्रिपुर के ध्वंस करने वाले पुलह होते हैं तो कालारिपु की प्रिया दया होती है ।।१६।। दक्ष के क्रतु को ध्वंस करने वाले शिव जब क्रतु के स्वरूप में होते हैं उस समय में विभु की दयिता संनति होती हैं। त्रिनेत्र अत्रि हैं तो उमा साक्षात् अनसूया बुधों के द्वारा कही गयी हैं ।।१७।। उमा को वृद्धा ऊर्जा और महेश्वर को वसिष्ठ कहते हैं। ये समस्त पुरुष शङ्कर के स्वरूप वाले हैं और सब स्त्रियाँ महेश्वरी के रूप वाली होती हैं ।।१८।। जो भी कोई लोकों में पुल्लिङ्ग शब्द के द्वारा वाच्य होते हैं ये सब रुद्र ही के स्वरूप कहे गये

हैं और जो स्त्री लिङ्ग शब्दों के द्वारा कहे जाते हैं वे सभी देवी गौरी की ही विभूतियाँ होती हैं ॥१६॥ ये सब स्त्री और पुरुष उन दोनो शिव और उमा की ही विभूतियाँ होते हैं। जो जो भी पदार्थों की शक्तियाँ होती है उन सब को बुध लोग गौरी ही कहा करते हैं। वह शक्ति जितनी भी है वे सब विश्वेश्वरी देवी हैं और वे सब पदार्थ जो शक्तियों के धारण करने वाले होते है सम्पूर्ण महेश्वर हैं ॥२०॥२१॥

अष्टौ प्रकृतयो देव्या मूर्तयः परिकीर्तिताः ।
तथा विकृतयस्तस्या देहवद्धविभूतयः ॥२२
विस्फुलिंगा यथा तावदग्नौ च बहुधा स्मृताः ।
जीवाः सर्वे तथा शर्वो द्वंद्वमत्त्वमुपागतः ॥२३
गौरीरूपाणि सर्वाणि शरीराणि शरीरिणाम् ।
शरीरिणस्तथा सर्वे शंकरांशा व्यवस्थिता ॥२४
श्राव्यं सर्वमुमारूपं श्रोता देवो महेश्वरः ।
विषयित्वं विभुर्धत्ते विषय रमकतामुमा ॥२५
स्प्रष्टव्य वस्तुजातं तु धत्ते शंकरवल्लभा ।
स्प्रष्टा स एव विश्वं रमा बालचन्द्रार्धशेखर ॥२६
दृश्यवस्तु प्रजारूपं बिभर्ति भुवनेश्वरी ।
द्रष्टा विश्वेश्वरो देवः शशिखंडशिखामणिः ॥२७
रसजातमुमारूपं घ्रेयजातं च सर्वशः ।
देवो रसयिता शंभु घ्राता च भुवनेश्वरः ॥ २८

आठ प्रकृतियाँ देवी की मूर्त्तियाँ कही गई है। तथा देह की भाँति विभूतियाँ उसकी विकृतियाँ होती है ॥२२॥ जिस प्रकार से अग्नि मे बहुत-सारे विस्फुलिङ्ग कहे गये हैं उसी तरह से ये समस्त जीवात्मा होने है और शिव द्वन्द्वसत्व को प्राप्त हो जाते हैं ॥२३॥ इन शरीर के धारण करने वाले प्राणियो जो सम्पूर्ण शरीर हैं वे सभी गौरी के स्वरूप वाले ही होते हैं और सब शरीरी शङ्कर भगवान् के अंश व्यवस्थित होते हैं ।॥२४॥ जो भी कुछ श्राव्य विषय है वह सब ही देवी उमा का स्वरूप है और उसका श्रोता अर्थात् श्रवण करने वाला महेश्वर

देव हैं। विषयित्व के स्वरूप को विभु महेश्वर धारण करते हैं और उमा देवी विषयों के स्वरूप को प्राप्त किया करती है ॥२५॥ सृजन करने के योग्य जो समस्त वस्तु जात है उन सब का स्वरूप शङ्कर की प्रियतमा धारण किया करती हैं और उन सब का सृजन करने वाला विश्वात्मा बालचन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले प्रभु शिव हैं ॥२६॥ प्रजा के रूप वाली जो भी कोई दृश्य वस्तु है उन सब को भुवनेश्वरी धारण किया करती है और उन सब को देखने वाला द्रष्टा साक्षात् देव शशि के खण्ड को मस्तक मे मणि की भाँति धारण करने वाले शिव होते है ॥२७॥ सम्पूर्ण रस जात और सब सूंघने के योग्य वस्तु मात्र उमा का ही स्वरूप है। उन रस युक्त वस्तुओं के आनन्द को ग्रहण करने वाले तथा घ्राता भुवनेश्वर साक्षात् शम्भु ही होते है ॥२८॥

मंतव्यवस्तुतां धत्ते महादेवी महेश्वरी ।
मता स एव विश्वात्मा महादेवो महेश्वरः ॥२६
बोद्धव्य वस्तु रूप च बिभर्ति भववल्लभा ।
देव. स एव भगवान् बोद्धा बालेन्दुशेखर ॥३०
पीठाकृतिरुमा देवो लिंगरूपश्च शकर ।
प्रतिष्ठाप्य प्रयत्नेन पूजयति सुरासुरा ॥३१
येये पदार्था लिंगाङ्कास्तेते शर्वविभूतयः ।
अर्था भगाङ्किता येये तेते गौर्या विभूतय ॥३२
स्वर्गपाताललोकान्तब्रह्माण्डावरणाष्टकम् ।
ज्ञय सर्वमुमारूप ज्ञाता देवो महेश्वरः ॥३३
बिभर्ति क्षेत्रता देवी त्रिपुरांतकवल्लभा ।
क्षेत्रज्ञत्वमयो धत्ते भगवानधकातक ॥३४
शिवलिंग समुत्सृज्य यजन्ते चान्यदेवता. ।
स नृपः सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत् ॥३५

महादेवी महेश्वरी मन्तव्य वस्तुता के स्वरूप को धारण किया करती हैं और उन सब का मन्ता विश्वात्मा महेश्वर महादेव ही होते ॥२६॥ भव की वल्लभा उमादेवी बोध करने के योग्य वस्तुओं के

रूप को धारण किया करती हैं और बालेन्दु शेखर भगवान् शिव उन सब का बोद्धा होते हैं ॥३०॥ पीठ के आकार मे स्थित उमादेवी हैं और लिङ्ग के स्वरूप मे साक्षात् शङ्कर होते हैं जो उस पीठ पर ऊपर विराजमान हैं। सुर और असुर प्रयत्न करके ही उसकी प्रतिष्ठा करके फिर यजनार्चन किया करते हैं ॥३१॥ जो जो पदार्थ लिङ्ग के अङ्क वाले होते हैं वे सब ही शिव की ही विभूति होती हैं और भगांक वाले जो-जो भी पदार्थ हैं वे सब गौरी की विभूतियाँ हुआ करती हैं ॥३२॥ स्वर्ग से पाताल लोक के अन्त तक ब्रह्माण्ड का आहा वरण सब ज्ञान करने के योग्य उमा का ही स्वरूप होता है और उन सब का ज्ञाता महेश्वर देव होते हैं ॥३३॥ देवी क्षेत्रता के स्वरूप को धारण किया करती हैं जो कि भगवान् त्रिपुरान्तक की वल्लभा हैं और भगवान् अन्धकान्तक शिव क्षेत्रज्ञत्व के स्वरूप वाले होते हैं ॥३४॥ भगवान् शिव के लिङ्ग का त्याग करके जो अन्य देवों का भजनार्चन किया करते हैं उस देश का राजा अपनी समस्त प्रजा के साथ रौरव नरक को जाया करता है ॥३५॥

शिवभक्तो न यो राजा भक्तोऽन्येषु सुरेषु यः ।
स्वपतिं युवतिस्त्यक्त्वा यथा जारेषु राजते ॥३६
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे राजानश्च महर्द्धिकाः ।
मानवा मुनयश्चैव सर्वे लिंगं यजंति च ॥३७
विष्णुना रावणं हत्वा ससैन्यं ब्रह्मणः सुतम् ।
स्थापितं विधिवद्भक्त्या लिंग तीरे नदोपतेः ॥३८
कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा विप्रशतं तथा ।
भावात्मम श्रितो रुद्रं मुच्यते नात्र संशयः ॥३९
सर्वे लिंगमया लोकाः सर्वे लिंगे प्रतिष्ठिताः ।
तस्मादभ्यर्चयेल्लिंगं यदीच्छेच्छाश्वतं पदम् ॥४०
सर्वाकारो स्थिताविनो नरैः श्रेयोऽर्थिभिः शिवौ ।
पूजनीयौ नमस्कार्यौ चिंतनीयौ च सर्वदा ॥४१

जो राजा शिव का भक्त न होकर अन्य देवों का यजन किया

करता है और अन्य देवो का भक्त बन जाता है वह इसी भाँति होता है जैसे कोई युवती अपने पति का त्याग करके जार के साथ प्रणय किया करती है ॥३६॥ ब्रह्मा से आदि लेकर सब देवता महान् समृद्ध राजा लोग तथा धनिक मानव और मुनिगण सभी लिङ्ग का यजन किया करते हैं ।॥३७॥ भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा के पुत्र रावण को सेना के सहित हनन करके नदियो के स्वामी समुद्र के तट पर विधिवत् शिव के लिङ्ग की स्थापना भक्तिपूर्वक की थी ॥३८॥ सहस्रो प्रकार के पापो को करके तथा सैकड़ो विप्रो का हनन भी करके जो भक्ति के भाव से भगवान् रुद्र का समाश्रय ग्रहण कर लेता वह सभी पापो से मुक्त हो जाया करता है—इसमे कुछ भी सशय नही है ॥ ३९॥ यदि शाश्वत पद की इच्छा करता है तो उसे केवल लिङ्ग का ही यजन करना चाहिए क्योकि सभी लिङ्ग मय कहे गये हैं और सभी लिङ्ग मे प्रतिष्ठित होते हैं ।॥४०॥ सम्पूर्ण आकार मे स्थित ये दोनो शिव और शिवा जो हैं उनका श्रेय के चाहने वाले पुरुषो को पूजन करना चाहिए। इन दोनो का ही चिन्तन और सर्वदा नमस्कार करना चाहिए। ॥४१॥

॥ ८१—शिव का जगत उत्पत्ति कारण ॥

मूर्तयोऽष्टौ ममाचक्ष्व शंकरस्य महात्मनः ।
विश्वरूपस्य देवस्य गणेश्वर महामते ॥१
हंत ते कथयिष्यामि महिमानमुमापतेः ।
विश्व रूपस्य देवस्य सरोजभवसंभव ॥२
भूरापोग्निर्मरुद्व्योम भास्करो दीक्षितः शशी ।
भवस्य मूर्तय प्रोक्ताः शिवस्य परमेष्ठिन. ॥३
आत्मेदुर्वह्निसूर्यभोधराः पवन इत्यपि ।
तस्याष्ट मूर्तयः प्रोक्ता देवदेवस्य धीमत. ॥४
अग्निहोत्रेर्पिते तेन सूर्यात्मनि महात्मनि ।
तद्विभूतीस्तथा सर्वे देवास्तृप्यंति सर्वदा. ॥५
वृक्षस्य मूलसेकेन यथा शाखोपशाखिकाः ।

तथा तस्याचेया दवास्तथा स्युस्तद्विभूतय ॥६
तस्य द्वादशधा भिन्न रूप सूर्यात्मक प्रभो ।
सर्वदेवात्मक याज्य यजति मुनिपु गवा ।७

इस अध्याय म महेश की आठ मूर्त्तियो को ही विशेष रूप से इस विश्व के उत्पादन का कारण प्रकीर्त्तित किया जाता है। सनत्कुमार ने कहा—महान् आत्मा वाले भगवान् शङ्कर की आठ मूर्त्तियो के विषय मे हम लोगो को आप बताइये। हे गणो के ईश्वर ! आप तो महान् मति वाले हैं और देवो के भी देव विश्वरूप प्रभु महेश्वर के गण के अधिपति हैं ॥१॥ नन्दिकेश्वर ने कहा—मैं भगवान् उमापति की महिमा तुम्हारे सामने कहूँगा। मुझे बडी ही इस प्रश्न से प्रसन्नता होती है। आप तो कमल से उद्भव ग्रहण करने वाले ब्रह्मा के पुत्र हैं और विश्वरूप देव के भक्त हैं। ॥२॥ परमेष्ठी शिव की भूमि-जल अग्नि मरुत् व्योम-भास्कर दीक्षित और शशि ये आठ मूर्त्तियाँ हैं ॥३॥ उस धीमान् देवो के देव की अन्तरिक्ष जीवात्मा इन्दु वह्नि सूर्य जल-भूमि और पवन ये भी आठ मूर्त्तियाँ कही गई हैं ॥४॥ अग्निहोत्र में सूयस्वरूप महात्मा परमात्मा के अर्पित होने पर वृक्ष शाखा उपशाखा सदृश उसकी विभूतियाँ अर्थात् उसके अश रूप सब का प्रदान करने वाले देवता तृप्त हो जाया करते हैं ॥५॥ जिस प्रकार वृक्ष के मूल के सींचने से उसकी सभी शाखा और उप शाखाओ की उस सिंचन से तृप्ति हो जाया करती है उसी भाँति उस एक ही शिव की अर्चना से उसकी विभूति स्वरूप समस्त देवो की तृप्ति हुआ करती है ॥६॥ उस प्रभु के सूर्य स्वरूप भिन्न द्वादश रूप होते हैं और वह सब देव स्वरूप है अतएव श्रेष्ठ मुनिगण उस पूज्य का यजन किया करते हैं ॥७॥

अमृताख्या कला तस्य सर्वस्यादित्यरूपिण ।
भूतसजीवनी चेष्टा लोकेस्मिन् पीयते सदा ॥८
चन्द्राख्यकिरणास्तस्य धूर्जटेर्भास्करात्मन ।
ओषधीना विवृद्ध्यर्थं हिमवृष्टि वितन्वते ॥९
शुक्लाख्या रश्मयस्तस्य शभोर्मार्तण्डरूपिणः।

धर्मं वितन्वते लोके सस्यपाकादिकारणम् ॥१०
दिवाकरात्मनस्तस्य हरिकेशाह्वय. कर ।
नक्षत्र पोषकश्चैव प्रसिद्धः परमेष्ठिनः ॥११
विश्वकर्माह्वयस्तस्य किरणो बुधपोषकः ।
सर्वेश्वरस्य देवस्य मार्त्तण्डस्वरूपिणः ॥१२
विश्व व्यच इति ख्यात किरणस्तस्य शूलिनः ।
शुक्रपोषकभावेन प्रतीतः सूर्यरूपिण ॥१३
संयद्वसुरिति ख्यातो ऽस्य रश्मिस्त्रिशूलिनः ।
लोहितांगं प्रपुष्णाति सहस्रकिरणात्मन. ॥१४

सम्पूर्ण आदित्य के रूप वाले उस शिव की अमृत नाम वाली कला भूतों को सजीवन देने वाली इष्ट होती है और इस लोक मे सर्वदा पान की जाया करती है ॥८॥ भास्कर के स्वरूप वाले भगवान् शिव की चन्द्र नामक किरणें ओषधियों की विशेष वृद्धि के लिये हिम की वृष्टि का विस्तार किया करती हैं ॥९॥ उस मार्त्तण्ड रूपी शम्भु की शुक्ल नाम वाली किरणें सस्यों के परिपाक करने के कारण स्वरूप धर्म (घाम) का विस्तार किया करती हैं ॥१०॥ दिवाकर के स्वरूप वाले उस परमेष्ठी शिव की हरिकेश नाम वाली किरण नक्षत्रों का पोषण करने वाली प्रसिद्ध है ॥११॥ विश्वकर्मा नाम वाली उसकी किरण बुध की पोषक होती है जो कि सूर्य के स्वरूप वाले सब के ईश्वर और देवों के भी देव शिव हैं ॥१२॥ उस शूली की एक किरण विश्व व्यच इस नाम से प्रसिद्ध है और सूर्यरूप वाले शिव की वह किरण शुक्र के पोषक भाव से प्रतीत की गई है ॥१ ॥ जिस त्रिशूली की जो कि सहस्र किरण के स्वरूप वाले हैं, एक किरण स द्वसु इस नाम से ख्यात होती है जो कि लोहिताङ्ग का पोषण करने वाली है ॥१४॥

अर्वावसुरिति ख्यातो रश्मिस्तस्य पिनाकिनः ।
बृहस्पतिं प्रपुष्णाति सर्वदा तपनात्मनः ॥१५
स्वराडिति समाख्यातः शिवस्यांशुः शनैश्चरम् ।
हरिदश्वात्मनस्तस्य प्रपुष्णाति दिवानिशम् ॥१६

सूर्यात्मकस्य देवस्य विश्वयोनेरुमापते. ।
सुषुम्णा ख्य: सदा रश्मिः पुष्णाति शिशिरद्युतिम् ॥१७
सौम्यानां वसुजातानां प्रकृतित्वमुपागता ।
तस्य सोमाह्वया मूर्तिः शंकरस्य जगद्गुरोः ॥१८
तस्य सोमात्मक रूप शुक्रत्वेन व्यवस्थितम् ।
शरीरभाजां सर्वेषां देवस्यांतक शासिनः ॥१९
शरीरिणामशेषाणां मनस्येव व्यवस्थितम् ।
वपु: सोमात्मक शंभोस्तस्य सर्व जगद्गुरोः ॥२०
शंभोः षोडशधाभिन्ना स्थितामृतकलात्मनः ।
सर्वभूतशरीरेषु सोमाख्या मूर्तिरुत्तमा ॥२१

एक तपनात्मा पिनाकी की एक अर्वावसु नाम वाली किरण प्रसिद्ध है वह सर्वदा वृहस्पति का पोषण किया करती है ॥१५॥ हरि दश्वात्मा उस शिव की 'स्वराट्'—इस नाम से ख्यात होने वाली किरण अहर्निश शनैश्चर का पोषण किया करती है ॥१६॥ विश्व की योनि उमापति सूर्य के स्वरूप में स्थित देवकी सुषुम्णा नाम वाली रश्मि (किरण) सर्वदा शिशिर द्युति का पोषण करती है ॥१७॥ इस जगत् के गुरु भगवान् शङ्कर की सौम्य वसु जातों की अर्थात् सकल मयूखों की प्रकृतित्व को प्राप्त होने वाली सोम नाम वाली मूर्त्ति है ॥१८॥ उसका सोमात्मक रूप शुक्रत्व से व्यवस्थित है और वह अन्तक का शासन करने वाले देव का समस्त शरीर धारियों को होता है ॥१९॥ समस्त जगत् के गुरु भगवान् शम्भु का वह सोमात्मक शरीर समस्त शरीर धारियों के मन में ही व्यवस्थित है ॥२०॥ अमृत कलात्मा शम्भु की सोलह प्रकार से भिन्न स्थित रहने वाली उत्तम मूर्त्ति समस्त शरीरों में सोम नाम वाली होती है ॥२१॥

देवान्पितृंश्च पुष्णाति सुधयामृतया सदा ।
मूर्तिः सोमाह्वया तस्य देवदेवस्य शासितुः ॥२२
पुष्णात्योषधिजातानि देहिनामात्मशुद्धये ।
सोमाह्वया तनुस्तस्य भवानीमिति निर्दिशेत् ॥२३

यज्ञाना पतिभावेन जीवाना तपसामपि ।
प्रसिद्धरूपमेतद्वै सोम त्मक मुमापते ॥२४
जलानामोषधीना च पतिभावेन विश्रुतम् ।
सोमात्मक वपुस्तस्य शम्भोर्भगवत प्रभो. ॥२५
देवो हिरण्मयो मृष्ट परस्परविवेकिन ।
करणानामशेषाणा देवताना निराकृति ॥२६
जीवत्वेन स्थिते तस्मिञ्छिवे सोमात्मके प्रभो ।
मधुरा विलय याति सर्वलोकैकरक्षिणो ॥२७
यजमानाह्वया मूर्ति शैवी हव्यैर् निशम् ।
पुष्णाति देवता सर्वा कव्यै पितृगणानपि ॥२८

उस शामिता देवो के देव की सोम नाम वाली मूर्ति सदा सुधा से अमृत के द्वारा देवो को और पितृगण का पोषित किया करती है ।।२२।। उसकी सोम नाम वाली मूर्ति, जिसको भवानी देखना चाहिए, देहधारियो की आत्म शुद्धि के लिये ओषधि जातो की पुष्टि किया करती है ।।२३।। यज्ञो का-जीवो का तथा तपो का पतिभाव से उमापति का यह सोमात्मक रूप प्रसिद्ध है ।।२४।। भगवान् प्रभु शम्भु का सोमात्मक वपु जल और ओषधियो के पति भाव से विश्रुत है ।।२५।। परस्पर मे आत्मा को आत्मा विचार वाले का विचारित देव शिव समस्त चक्षुरादि करणो के तद्भिमानी सूर्यादि देवो का बिना आकृति वाला हिरण्मय अग्राह्य होता है ।।२६।। सोमात्मक उस प्रभु के शिव के जीवत्व रूप से स्थित होने पर सर्वलोको की एक ही रक्षा करने वाली मधुरा विलय को प्राप्त हो जाती है । ।।२७।। शिव की यजमान नाम वाली मूर्ति अहर्निश हव्यो के द्वारा सम्पूर्ण देवो का तथा कव्यो के द्वारा समस्त पितृगणो का पोषण किया करती है ।।२८।।

यजमानाह्वया या सा तनुश्चाहुतिजा तया ।
वृष्ट्या भावयति स्पष्ट सर्वमेव परापरम् ।।२९
अन्तस्थ च बहिस्थ च ब्रह्माडाना स्थित जलम् ।
भूताना च शरीरस्थ शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी ।।३०

नदीनाममृतं साक्षान्नदानामपि सर्वदा ।
समुद्राणां च सर्वत्र व्यापी सर्वमुमापतिः ।।३१
संजीविनी समस्तानां भूतानामेव पाविनी ।
अंबिका प्राणसंस्था या मूर्तिरंबुमयी परा ।।३२
अंतःस्थश्च बहिःस्थश्च ब्रह्मांडानां विभावसुः ।
यज्ञानां च शरीरस्थः शंभोर्मूर्तिर्गरीयसी ।।३३
शरीरस्था च भूतानां श्रेयसी मूर्तिरैश्वरी ।
मूर्तिः पावक संस्था या शंभोरत्यंतपूजिता ।।३४
भेदा एकोनपंचाशद्वेदविद्भिरुदाहृताः ।
हव्यं वहति देवानां शंभोर्यज्ञात्मकं वपुः ।।३५

यजमानाख्या अर्थात् यजमान नाम वाली जो मूर्त्ति है उसके द्वारा आहूतिजा जो तनु है वह वृष्टि से सम्पूर्ण परापर को स्पष्ट रूप से भावित करती है ।।२९।। अन्तःस्थ और बाहिर में स्थित तथा ब्रह्माण्ड मे स्थित जो जल है एव भूतो के शरीर मे स्थित जल शम्भु की अधिक बड़ी मूर्त्ति है ।।३०।। सर्वदा नदियों का नदो का और सर्वत्र सागर का व्यापी अमृत सब उमापति है ।।३१।। सजीविनी तथा सम्पूर्ण भूतो की पाविनी प्राण संस्था जो परा अम्बुमयी मूर्त्ति है वह अम्बिका है ।।३२।। अन्तस्थ और बहिःस्थ ब्रह्माण्डो का विभावसु तथा यज्ञो का शरीर मे स्थित रहने वाला विभावसु शम्भु भगवान् की गरीयसी मूर्त्ति है ।।३३।। भूतो के शरीर मे स्थित रहने वाली ईश्वर की कल्याणमयी मूर्त्ति है । पावक मे संस्थित जो शम्भु की मूर्त्ति है वह अत्यन्त पूजित होती है ।।३४।। वेद के वेत्ताओं ने उनचास इसके भेद बताये हैं । शम्भु का यज्ञ स्वरूप वपु देवो के हव्य का वहन किया करता है ।।३५।।

कव्यं पितृगणानां च हूयमानं द्विजातिभिः ।
सर्वदेवमयं शंभोः श्रेष्ठमग्न्यात्मकं वपुः ।।३६
वदंति वेदशास्त्रज्ञा यजंति च यथाविधि ।
अंतःस्थो जगदंडानां बहिःस्थश्च समीरणः ।।३७
शरीरस्थश्च भूतानां शैवी मूर्तिः पटीयसी ।

प्राणाद्या नागकूर्माद्या श्च वहाद्याश्च वायव ॥३८
ईशानमूर्तेरेकस्य भेदा सर्वे प्रकीर्तिता ।
अ त स्थ जगदडाना बहि:स्थ च वियद्विभो. ॥३६
शरीरस्थ च भूताना शभोर्मूर्तिर्गरीयसी ।
शभोर्विश्व भरा मूर्ति. सर्वब्रह्माधिदेवता ॥४०
चराचराणा भूनाना सर्वेषा धारणे मता ।
चराचराणा भूताना शरीर णि विदुर्बुधा ॥४१
पं चकेनेशमूर्तीना सम रब्धानि सर्वथा ।
पचभूतानि चद्रार्कावात्मेति मुनिपु गवा. ॥४२

भगवान् शम्भु का यज्ञात्मक वपु द्विजाति के द्वारा हूयमान होकर पितृगण के कव्य का वहन किया करता है। शम्भु का सर्व देवमय अग्नि *के स्वरूप वाला वपु अति श्रेष्ठ है ॥३६॥ वेदो के तथा शास्त्रो के ज्ञाता* ऐसा कहते हैं और विधि के अनुसार यजन किया करते हैं। जगत् के अण्डो का अन्दर मे रहने वाला तथा बाहिर मे स्थित समीरण पवन) तथा शरीर मे भूतो के रहने वाला पवन भगवान् शिव की पटीयसी मूर्त्ति है। प्राण अपान आदि तथा नाग-कूर्म कृकल आदि एव आवहादि जो वायु हैं ये सब एक ही ईशान मूर्त्ति के भेद बताये गये हैं। जग दण्डो के अन्त स्थ और बहि स्थ और भूतो के शरीर मे स्थित विभु का जो वियत् (गगन) है वह शम्भु की एक अधिक बडी मूर्त्ति होती है। सर्व ब्रह्म की अधि देवता शम्भु की विश्व का भरण करने वाली मूर्ति है ॥३७॥३८॥३६॥४०॥ चर और अचर अर्थात् स्थावर जङ्गम समस्त भूतो के धारण करने मे मानी हुई जा मूर्त्ति है उसे बुध लोग जो चराचरो के शरीर हैं सर्वथा पृथिव्यादि पच भूतो के द्वारा उत्पादित जाना करते हैं। ॥४१॥ यह पाँच भूतो का पञ्चक ईश की ही मूर्तियों का है जिन से कि भूतो के शरीर समारब्ध होते हैं। ये पाँच पृथिव्यादि भूत चन्द्र अर्क(सूर्य) और आत्मा ये कुल आठ शिव की मूर्त्तियाँ होती हैं जैसा कि पूर्व मे भी बताया जा चुका है ॥४२॥

मूर्तयोऽष्टौ शिवस्याहुर्देवदेवस्य धीमत ।

आत्मा तस्याष्टमीमूर्तिर्यजमानाह्वया परा ॥४३
चराचर शरीरेषु सर्वेष्वेव स्थिता तदा ।
दीक्षितं ब्राह्मणं प्राहुरात्मानं च मुनीश्वराः ॥४४
यजमानाह्वया मूर्ति. शिवस्य शिवदायिनः ।
मूर्तयोऽष्टौ शिवस्यैता वंदनीयाः प्रयत्नतः ॥४५
श्रेयोऽर्थिभिर्नरैर्नित्यं श्रेयसामेकहेतवः ॥४६

ये आठों मूर्तियाँ धीमान् देवों के भी देव भगवान् शम्भु की हैं—ऐसा ही कहा गया है। आत्मा इसकी आठवीं मूर्त्ति होती है जो कि पर यजमान के नाम से कही जाती है ॥४३॥ ये चराचर के शरीरों मे सभी मे ही स्थित है उस समय मुनीश्वर लोग दीक्षित ब्राह्मण और आत्मा को कहते हैं ॥४४॥ कल्याण के दाता शिव की यजमान नाम वाली मूर्त्ति होती है। ये सब शिव की आठो ही मूर्तियाँ प्रयत्नपूर्वक वन्दना करने के योग्य हैं। ये सब श्रेय के एकमात्र कारण स्वरूप हैं अतः जो श्रेय का सम्पादन करने के इच्छुक मनुष्य हैं उनको इनकी बन्दना अवश्य ही करनी चाहिए ॥४५॥४६॥

॥ ८२–शंकर की पृथक्-पृथक् मूर्ति वर्णन ॥

भूयोऽपि वद मे नंदिन् महिमानमुमापते ।
अष्टमूर्तेर्महेशस्य शिवस्य परमेष्ठिनः ॥१
वक्ष्यामि ते महेशस्य महिमानमुमापते ।
अष्टमूर्तेर्जगद्व्याप्य स्थितस्य परमेष्ठिनः ॥२
चराचराणां भूतानां धाता विश्वंभरात्मकः ।
शर्व इत्युच्यते देवः सर्वशास्त्रार्थपारगैः ॥३
विश्वंभरात्मनस्तस्य सर्वस्य परमेष्ठिनः ।
विकेशी कथ्यते पत्नी तनयोंगारकः स्मृतः ॥४
भव इत्युच्यते देवो भगवान्वेदवादिभिः ।
संजीवनस्य लोकानां भवस्य परमात्मनः ॥५
उमा संकीर्तिता देवी सुतः शुक्रश्च सूरिभिः ।

सप्तलोकाण्डकव्यापी सर्वलोकैकरक्षिता ॥६
वह्न्यात्मा भगवान्देवः स्मृतः पशुपतिर्बुधैः ।
स्वाहा पत्न्यात्मनस्तस्य प्रोक्ता पशुपतेः प्रिया ॥७

इस अध्याय में भगवान् शङ्कर की पृथक् २ मूर्त्तियों का वर्णन किया जाता है । सनत्कुमार ने कहा—हे नन्दिन् ! आप परमेष्ठी महेश शिव जिनकी कि अष्ट मूर्तियाँ होती हैं उन उमा के पति की महिमा को और भी फिर वर्णन करिये और मुझे श्रवण कराने की कृपा कीजिए ॥१॥ नन्दिकेश्वर ने कहा-मैं आपको उमा के पति महेश की महिमा का वर्णन करूंगा । परमेष्ठी इनकी ये आठ मूर्त्तियाँ इस जगत् को व्याप्त करके स्थित रहती हैं ॥२॥ जो समस्त शास्त्रों के पारगामी मनीषीगण हैं उनके द्वारा यह देव सम्पूर्ण चराचरों के धाता विश्वम्भर स्वरूप वाले शर्व-इस शुभ नाम से कहे जाया करते हैं ॥३॥ उस विश्वम्भरात्मा परमेष्ठी की विकेशी पत्नी और अङ्गारक तनय कहा गया है ॥४॥ वेद वादी विद्वानों के द्वारा भगवान् देव भव इस नाम से कहे जाते हैं । सलिलात्मक जल देहधारी देव को भव कहा जाया करता है । वह परमात्मा भव लोकों का संजीवन होता है ॥५॥ सूरिगण के द्वारा उमादेवी कही गई है और शुक्र सुन बताया गया है । जो कि सात लोकों के अण्डकों में व्यापक है और समस्त लोकों का एक ही रक्षा करने वाला है ॥६॥ अग्नि के स्वरूप वाले जो भगवान् देव हैं वे बुधों के द्वारा पशुपति कहे गये हैं । उसकी अपनी प्रिया पशुपति की स्वाहा बताई गई है ॥७॥

षण्मुखो भगवान्देवो बुधैः पुत्र उदाहृतः ।
समस्तभुवनव्यापी भर्ता सर्वशरीरिणाम् ॥८
पवनात्मा बुधैर्देव ईशान इति कीर्त्यते ।
ईशानस्य जगत्कर्तुर्देवस्य पवनात्मनः ॥९
शिवा देवी बुधैरुक्ता पुत्रश्चास्य मनोजवः ।
चराचराणां भूतानां सर्वेषां सर्व कामदः ॥१०
व्योमात्मा भगवान्देवो भीम इत्युच्यते बुधैः ।
महामहिम्नो देवस्य भीमस्य गगनात्मनः ॥११

दिशो दश स्मृता देव्यः सुतः सर्गश्च सूरिभिः ।
सूर्यात्मा भगवान्देवः सर्वेषां च विभूतिद. ॥१२
रुद्र इत्युच्यते देवैर्भगवान् भुक्तिमुक्तिदः ।
सूर्यात्मकस्य रुद्रस्य भक्तानां भक्तिदायिनः ॥१३
सुवर्चला स्मृ'ा देवी सुतश्चास्य शनैश्चरः ।
समस्तसौम्यवस्तू ां प्रकृतित्वेन विश्रुतः ॥१४

पण्डितो के द्वारा भगवान् षण्मुख देव पुत्र कहे गये हैं जो कि सम्पूर्ण भुवनो मे व्यापक रहने वाला तथा समस्त शरीर धारियो का भर्त्ता है ॥८॥ पवनात्मक अर्थात् पवन के स्वरूप वाले जो शिव हैं उसे बुध लोगो के द्वारा ईशान-ऐसा कहा जाता है। यह ईशान इस जगत् के करने वाले पवन के स्वरूप मे स्थित देव हैं ॥९॥ बुधो के द्वारा उनकी प्रिया शिवा देवी कही गई है और इनका पुत्र मनो जव होता है। जो समस्त चर एव अचर भूतो क सब कामनाओ के प्रदान करनेवाला है। ॥१०॥ उस शिव की आठ मूर्तियो म जो एक व्योम स्वरूप वाली मूर्ति है उसे बुधो के द्वारा 'भीम' —इस नाम से कहा जाता है। उस गगनात्मा देव भीम की महान् महिमा होती है ॥११॥ उस देव की देवियाँ सूरिगण ने दशा दिशाए बताई हैं और सर्ग उसका पुत्र कहा गया है। सूर्य के स्वरूप वाले जो भगवान् देव हैं वे सभी को विभूति प्रदान करने वाले होते हैं ॥१२॥ वे भुक्ति और मुक्ति दोनों को प्रदान करने वाले देव "रुद्र"—इस नाम वाले कहे जाते हैं। सूर्यात्मा भगवान् रुद्र की जो कि रुद्र अपने भक्तों को भक्ति के प्रदान करने वाले होते हैं, उनकी सुवर्चला नाम धारिणी देवी है और शनैश्चर पुत्र होता है। समस्त सौम्य वस्तुओं का जो प्रकृतित्व से ही विश्रुत होता है ॥१४॥

सोमात्मको बुधैर्देवो महादेव इति स्मृत ।
सोमात्मकस्य देवस्य महादेवस्य सूरिभि ॥१५
दयिता रोहिणी प्रोक्ता बु ध्श्च सर्गोऽजः ।
हव्यकव्यस्थिति कुर्वन् हव्यकव्याशिनां तदा ॥१६
यजमानात्मको देवो महादेवो बुधैः प्रभु ।

उग्र इत्युच्यते सद्भिरीशानश्चेति चापरैः ॥१७
उग्राह्वयस्य देवस्य यजमानात्मनः प्रभोः ।
दीक्षा पत्नी बुधैरुक्ता संतानाख्यः सुतस्तथा ॥१८
शरीरिणां शरीरेषु कठिनं कोंकणादिवत् ।
पार्थिवं तद्वपुर्ज्ञेयं शर्वतत्त्वं बुभुत्सुभिः ॥१६
देहेदेहे तु देवेशो देहभाजां यदव्ययम् ।
वस्तुद्रव्यात्मक तस्य भवस्य परमात्मनः ॥२०
ज्ञेयं च तत्त्वविद्भिर्वै सर्ववेदार्थपारगैः ।
आग्नेयः परिणामो यो विग्रहेषु शरीरिणा म् ॥२१
मूर्तिः पशुपतिर्ज्ञेया सा तत्त्वं वेत्तुमिच्छुभिः ।
वायव्यः परिणामो यः शरीरेषु शरीरिणाम् ॥२२

वह सोमात्मक अर्थात् सोम के स्वरूप वाले देव बुधों के द्वारा 'महादेव'—इस नाम से कहे गये हैं। उन सोम स्वरूप धारी महादेव देव की दयिता सूरियो के द्वारा रोहिणी बताई गई है और बुध उनका पुत्र कहा गया है। जो हव्य तथा कव्य का अशन करने वाले देव एवं पितर होते हैं उनकी हव्य-कव्य की स्थिति का करते हुए यजमानात्मक प्रभु देव महादेव कहा गया है और बुध लोगो ने ऐसा कहा है। सत्पुरुषो के द्वारा वह "उग्र"-ऐसा तथा अपर लोगों के द्वारा 'ईशान"—यह कहा जाता है ॥१५॥१६॥१७॥ उग्र—इस शुभ नाम वाले जो देव हैं उन यजमान स्वरूप वाले प्रभु की पत्नी बुधों ने दीक्षा बताई है और उनका सुत सन्तान नाम वाला कहा गया है ॥१८॥ अब तक उन भगवान् शिव की आठ मूर्त्तियो का नाम और उनकी पुत्री तथा पुत्रो का नाम आदि बताकर अब उनके शरीर के तत्त्वभागो को बतलाते हैं शरीर धारियो के शरीरों मे उनका पार्थिव शरीर अत्यन्त ही कठिन है जो कि शर्व के तत्व के जिज्ञासु पुरुषों को कोंकण आदि की भाँति जान लेना चाहिए। कोंकण-यह एक देश के भाग विशेष का नाम है ॥१६॥ देह धारियो के देह देह में देवेश हैं और जो अव्यय वस्तु द्रव्यात्मक है वह उस परमात्मा भव का ही स्वरूप है ॥२०॥ सम्पूर्ण वेदो के पारगामी तत्त्वों के वेत्ताओ

के द्वारा उसे जान लेना चाहिए। शरीर धारियों के शरीरों में जो आग्नेय परिणाम है अर्थात् अग्नि के द्वारा अग्नि जैसा परिपाक होता है वह पशुपति की ही मूर्त्ति तत्वों के जानने की इच्छा वालों को समझनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि शरीर में भोज्य वस्तु का परिपाक आदि जो अग्नि क्रिया करती है वह शम्भु का ही स्वरूप होता है। इसी प्रकार से शरीरियों के शरीरों में वायुकृत भी परिणाम हुआ करता है ॥२१॥२२॥

बुधैरीशेति सा तस्य तनुर्ज्ञेया न संशयः ।
सुषिरं यच्छरीरस्थमशेषाणां शरीरिणाम् ॥२३
भीमस्य सा तनुर्ज्ञेया तत्त्वविज्ञानकांक्षिभिः ।
चक्षुरादिगतं तेजो यच्छरीरस्थमंगिनाम् ॥२४
रुद्रस्यापि तनुर्ज्ञेया परमार्थं बुभुत्सुभिः ।
सर्वभूतशरीरेषु मनश्चन्द्रात्मकं हि यत् ॥२५
महादेवस्य सा मूर्त्तिर्बोद्धव्या तत्त्वचिंतकैः ।
आत्मा यो यजमानाख्यः सर्वभूतशरीरगः ॥२६
मूर्त्तिरुग्रस्य सा ज्ञेया परमात्मबुभुत्सुभिः ।
जातानां सर्वभूतानां चतुर्दशसु योनिषु ॥२७
अष्टमूर्त्तेरनन्यत्वं वदन्ति परमर्षयः ।
सप्तमूर्तिमयान्याहुरीशस्याङ्गानि देहिनाम् ॥२८

उस वायव्य परिणाम का कुछ लोगों ने ईशा-यह तनु बताया है और उन्हें इसी भांति समझ लेना चाहिए इसमें कुछ भी संशय नहीं है। समस्त शरीरियों के शरीर में स्थित जो सुषिर होता है उसे तत्वों के विज्ञान की आकाङ्क्षा रखने वालों को भीम का ही शरीर समझना चाहिए। अङ्गधारियों के शरीर में स्थित जो चक्षु आदि में गत तेज होता है वह परमार्थ के जिज्ञासुओं को भगवान् रुद्र का ही तेजोमय शरीर समझना चाहिए। समस्त भूतों के शरीरों में जो एक मन के स्वरूप वाला चन्द्रात्मक होता है उसे भी तत्त्व चिन्तकों के द्वारा एक महादेव की ही मूर्त्ति जाननी चाहिए। जो सभी प्राणियों के शरीरों में रहने वाला जीवात्मा है जिसका कि यजमान-यह नाम होता है। ॥२३

॥२४॥२५॥२६॥ उसे परमात्मा के तत्त्व के जानने की जिज्ञासा रखने वालों को उस की मूर्ति ही समझनी चाहिए। चतुर्दश योनियों में समुत्पन्न प्राणियों के अन्दर परमर्षि लोग श्व मूर्ति का अनन्यत्व बतलाते हैं। देहधारियों के अङ्ग ईश की सात मूर्तियों से परिपूर्ण हुआ करते हैं ॥२७॥२८।

आत्मा तस्याष्टमी मूर्ति सर्वभूतशरीरगा।
अष्टमूर्तिमम् देवं सर्वलोकात्मक विभुम् ॥२९
भजस्व सर्वभावेन श्रेय प्राप्तुं यदीच्छसि।
प्राणिनो यस्य कस्यापि क्रियते यद्यनुग्रह ॥ ०
अष्टमूर्तेर्महेशस्य कृतमाराधन भवेत् ।
निग्रहश्चेत् कृतो लोके देहिनो यस्य कस्यचित् ॥ ,१
अष्टमूर्तेर्महेशस्य स एव विहितो भवेत् ।
यद्यवज्ञा कृता लोके यस्य कस्य चिद्दगिन ॥३२
अष्टमूर्तेर्महेशस्य विहिता सा भवेद्विभो ।
अभय यत् प्रदत्त स्य द गिनो यस्य कस्यचित् ॥३३
आराधन कृतं तस्मादष्टमूर्तेर्न सशय ।
सर्वोपकारकरण प्रदानमभयस्य च ॥३४
आराधन तु देवस्य अष्टमूर्तेर्न सशय ।
सर्वोपकारकरण सर्वानुग्रह एव च ॥३५
सदर्चन पर प्र हुरष्टमूर्तेर्मुनीश्वरा ।
अनुग्रहणमन्येषा विधातव्य त्वयाग्निनाम् ।.६
सर्वाभयप्रदान च शिवाराधनमिच्छता ॥३७

यह जीवात्मा उस महेश्वर की आठवीं मूर्त्ति है जो कि समस्त प्राणियों के शरीरों में गमनशील रहता है। इस प्रकार से इन आठ मूर्तियों वाले सर्व लोकात्मक विभु देव सर्वभो भाव से भजन करो यदि इस संसार में रहकर श्रेय प्राप्त करने की इच्छा रखते हो। अष्टमूर्ति के विश्वरूप होने से उसके आराधन करने का प्रकार बतलाया जाता है। जिस किसी प्राणी पर यदि वह अनुग्रह करते हैं तो अवश्य ही श्रेय की

प्राप्ति हो जाती है ॥२९॥३०॥ अतएव अष्टमूर्त्ति महेश का आराधन
करना ही चाहिए। यदि किसी भी प्राणी पर कोई निग्रह इस लोक में
करता है तो वह भी अष्टमूर्त्ति महेश के ही द्वारा वह दण्ड भी किया
हुआ होता है। जिस किसी देहधारी की ओर से अवज्ञा की गई है तो
वह भी अष्टमूर्त्ति महेश की ही की हुई होती है। जिस किसी अङ्गधारी
को अभय यदि दिया हुआ होता है तो वह भी उसी अष्टमूर्त्ति विभु का
होता है। अतएव भगवान् अष्टमूर्त्ति के किये हुए आराधन से यह सभी
शुद्ध होता है—इसमें संशय नहीं है। सब प्रकार के उपकरणों (साधनों)
का करना अर्थात् प्राप्त करना और अभय का प्रदान करना यह अष्टमूर्त्ति
वाले देव के ही आराधन से ही हुआ करता है—इस में लेशमात्र भी
संशय नहीं है। सब उपकारों का करना और सब प्रकार का अनुग्रह
प्राप्त करना – इनके लिये मुनीश्वरों ने अष्टमूर्त्ति भगवान् का अर्चन करना
ही पर बताया है। शिव के आराधना की इच्छा करने वाले मुझे भी
अन्य प्राणियों पर अनुग्रह और सब प्रकार से अभय का दान करना
चाहिए ॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥३६॥३७॥

भोक्ता प्रकृतिवर्गस्य भोग्यस्येशानसंज्ञितः ॥६
स्थाणोस्तत्पुरुषाख्या च द्वितीया मूर्तिरुच्यते ।
प्रकृतिः सा हि विज्ञेया परमात्मगुणात्मिका ॥७

(शिव का सर्वतत्वात्मक स्वरूप) इस अध्याय मे पञ्च ब्रह्म स्वरूप वाले शम्भु का समस्त तत्वो के स्वरूप वाला स्फुट स्वरूप का निरूपण किया जाता है। सनत्कुमार ने कहा-हे गणों मे परम श्रेष्ठ नन्दिन् ! आप मुझे श्रेय के करण भूत और शरीर धारियो के लिये परम पवित्र पञ्च ब्रह्मों को बताने की कृपा कीजिए ॥१॥ नन्दिकेश्वर ने कहा - हे पद्म योनि ब्रह्मा के श्रेष्ठ पुत्र ! ये पच ब्रह्म नाम वाले शिव के ही स्वरूप होते हैं उन्हे मैं तुमको बतलाता हूँ और यथा तत्व कहूँगा ॥२॥ समस्त लोकों का एक सहार करने वाला सम्पूर्ण लोकों का एक रक्षा करने वाला और सब लोकों का एक निर्माण करने वाला शिव पच ब्रह्मात्मक होते हैं। वह समस्त लोकों का एक ही उपादान कारण और निमित्त कारण भी होता है। इस प्रकार से यह शिव पाँच प्रकार के कहे गये है ॥३॥४॥ समस्त लोको के शरण्य (रक्षक) परमात्मा शिव की पाँच मूर्तियाँ विख्यात है। पाँच ब्रह्म नाम वाली परा हैं ॥५॥ परमेष्ठी शिव की प्रथमा मूर्ति क्षेत्रज्ञ है । ईशान सज्ञा वाला भोगने के योग्य प्रकृति वर्ग के भोक्ता है। ॥६॥ स्थाणु की तत्पुरुष नाम वाली द्वितीया मूर्ति कही जाती है। वह प्रकृति परमात्मा की मुख्य अधिकरण भूत जाननी चाहिए ॥७॥

अघोराख्या तृतीया च शम्भोर्मूर्तिर्गरीयसी ।
बुद्धेः सा मूर्तिरित्युक्ता धर्माद्यष्टांगसंयुता ॥८
चतुर्थी वामदेवाख्या मूर्तिः शम्भोर्गरीयसी ।
अहङ्कारात्मकत्वेन व्याप्य सर्वं व्यवस्थिता ॥९
सद्योजाताह्वया शम्भो पचमी मूर्तिरुच्यते ।
मनस्तत्त्वात्मकत्वेन स्थिता सर्वशरीरिषु । १०
ईशान परमो देव परमेष्ठी सनातन ।
श्रोत्रे द्रयात्मकत्वेन सर्वभूतेष्ववस्थित ॥११

स्थितस्तत्पुरुषो देव. शरीरेषु शरीरिणाम् ।
त्वगिन्द्रियात्मकत्वेन तत्त्वविद्भिरुदाहृतः ॥१२
अघोरापि महादेवश्चक्षुरात्मतया बुधैः ।
कीर्तितः सर्वभूतानां शरीरेषु व्यवस्थितः ॥१३
जिह्वेन्द्रियात्मकत्वेन वामदेवोपि विश्रुतः ।
अंगभाजामशेषाणां मगेषु परिधिष्ठितः ॥१४

शम्भु की अघोर नाम वाली तीसरी मूर्त्ति है जो कि गरीयसी होती है। वह मूर्त्ति बुद्धि की कही गई है जो कि धर्म आदि अष्टाङ्ग-सयुत होती है ॥८॥ शम्भु की चौथी गरीयसी अर्थात् अधिक बड़ी वामदेव-इस अभिधान वाली मूर्त्ति होती है। यह मूर्त्ति अहङ्कारात्मक होने से सब को व्याप्त करके व्यवस्थित होती है ॥९॥ सद्योजाता-इस नाम वाली भगवान् शम्भु की पाँचवी मूर्त्ति कही जाया करती है। जो समस्त त्वात्मक होने से सम्पूर्ण शरीर धारियो मे स्थित रहा करती है ॥१०॥ ईशान परम देव परमेष्ठी और सनातन हैं और श्रोत्रेन्द्रियात्मकत्व होने से सब भूतो में अवस्थित रहते हैं ॥११॥ शरीरियो के शरीरो मे त्वगिन्द्रियात्मक होने तत्पुरुष देव स्थित रहते हैं—ऐसा तत्त्वो के वेत्ताओ के द्वारा कहा गया है ॥१२॥ चक्षुरात्मकत्व होने से अघोर देव भी समस्त भूतो के शरीरो मे व्यवस्थित रहते हैं—ऐसा बुधो के द्वारा कीर्त्तित किया गया है ॥१३॥ वामदेव भी जिह्वा इन्द्रिय के स्वरूप से अङ्ग वालो के अशेष अङ्गों मे परिधिष्ठित होने वाले प्रसिद्ध हैं ॥१४॥

घ्राणेन्द्रियात्मकत्वेन सद्योजातः स्मृतो बुधैः ।
प्राणभाजां समस्तानां विग्रहेषु व्यवस्थितः ॥१५
सर्वेष्वेव शरीरेषु प्राणभाजां प्रतिष्ठितः ।
वागिन्द्रियात्मकत्वेन बुधैरीशान उच्यते ॥१६
पाणी द्रव्यात्मकत्वेन स्थितस्तत्पुरुषो बुधैः ।
उच्यते विग्रहेष्वेव सर्वविग्रहधारिणाम् ॥१७
सर्वविग्रहिणां देहे ह्यघोरोपि व्यवस्थितः ।
पादेन्द्रियात्मकत्वेन कीर्तितस्तत्ववेदिभिः ॥१८

पार्थिवद्रियात्मकत्वेन वामदेवो व्यवस्थित ।
सर्वभूतनिकायाना कायेषु मुनिभिः स्मृतः ॥१६
उपस्थात्मतया देवः सद्योजातः स्थित प्रभु ।
इष्यते वेदशास्त्रर्ज्ञैर्देहेषु प्राणधारिणाम् ॥२०
ईशानं प्राणिना देवं शब्दतन्मात्ररूपिणम् ।
आकाशजनक प्राहुर्मुनिवृन्दारकप्रजा ॥२१

सद्योजात घ्राणेन्द्रिय के स्वरूप से समस्त प्राण धारियो के शरीरो मे व्यवस्थित रहते हैं ऐसा बुधजनो के द्वारा कहा गया है ॥१५॥ ईशान वागिन्द्रियात्मकतया समस्त प्राणियो के शरीरो मे प्रतिष्ठित हैं यह बुधो के द्वारा कहा जाता है ॥१६॥ सम्पूर्ण विग्रह (शरीर धारियो के शरीरो मे पाणीन्द्रिय के स्वरूपता से तत्पुरुष स्थित रहने हैं ऐसा मनीषियो के द्वारा कहा जाया करता है । ॥१७॥ तत्त्वो के वेत्ता लोगो के द्वारा कीर्तित किया गया है कि अघोर भी समस्त विग्रह धारियो के देहो मे पादेन्द्रियात्मकत्व से स्थित हैं । ॥१८॥ वामदेव पायु (मलोत्सर्ग करने वाली) इन्द्रिय के स्वरूप से समस्त प्राणियो के निकायो के शरीर मे स्थित हैं । ऐसा मुनियो ने प्रतिपादन किया है ॥१६॥ सद्योजात प्रभु प्राणि धारियों के देहो मे उपस्थात्मता से (जननेन्द्रिय के स्वरूप से) अवस्थित रहा करते हैं । मुनियो के द्वारा, जो कि वेदो और शास्त्रो के पूर्ण ज्ञाता हैं, ऐसा प्रतिपादन किया जाता है ॥२०॥ मुनि वृन्दारक प्रजा यह कहते हैं कि शब्द तन्मात्र के रूप वाले प्राणियो के देव ईशान हैं जो कि आकाश के जनक हैं ॥२१॥

प्राहुस्तत्पुरुष देवं स्पर्शतन्मात्रकात्मकम् ।
समीरजनक प्राहुर्भगवतं मुनीश्वराः ॥२२
रूपतन्मात्रक देवमघोरमपि घोरकम् ।
प्राहुर्वेदविदो मुख्या जनक जातवेदस ॥२३
रसतन्मात्ररूपत्वात् प्रथितं तत्त्ववेदिन ।
वामदेवमपा प्राहुर्जनकत्वेन संस्थितम् ॥२४
सद्योजात महादेवं गन्धतन्मात्ररूपिणम् ।

भूम्यात्मानं प्रशंसंति सर्वतत्त्वार्थवेदिनः ।।२५
आकाशात्मानमीशानमादिदेवं मुनीश्वराः ।
परमेण महत्त्वेन संभूत प्राहुरद्भुनम् ।।२६
प्रभु तत्पुरुषं देवं पवनं पवनात्मकम् ।
समस्तलोकव्यापित्वात्प्रथितं सूरयो विदुः ।।२७
अर्थाचिततया ह्यातमघोरं दहनात्मकम् ।
कथयंति महात्मानं वेदवाक्यार्थवेदिनः ।।२८

तत्पुरुप देव को स्पर्श तन्मात्र के स्वरूप वाला कहते हैं । मुनीश्वर भगवान् को समीर का जन्म देने वाला कहते हैं । ।।२२।। घोरक देव अघोर को भी रूप तन्मात्रा के स्वरूप में रहने वाला वेदों के ज्ञाता लोग जो कि परम प्रमुख हैं कहा करते हैं जो कि जातवेदा को समुत्पन्न करने वाला होता है ।।२३।। वामदेव भगवान् को रस की तन्मात्रा के स्वरूप वाला होने से तत्त्व वेदी पुरुष उसे जलो का जनक बतलाते हैं ।।२४।। सद्योजात को गन्ध की तन्मात्रा के रूप वाला कहते हैं और उसे सर्व तत्वार्थ के ज्ञाता लोग भूम्यात्मा एव भूमि को जनन प्रदान करन वाला कहा करते हैं ।।२५।। मुनीश्वर लोग ईशान को आकाशात्मा कहते हैं जो कि आदिदेव है और इसे परम महत्त्व से सम्भव होने वाला अद्भुत बतलाते हैं ।।२६।। तत्पुरुष देव प्रभु को पवनात्मक पवन कहते है जो कि सूरियों के द्वारा सर्वलोक व्यापित्व होने वाला प्रसिद्ध है ।।२७।। अर्चितत्व होने से अघोर दहनात्मक प्रसिद्ध होते हैं । जो वेदों के वाक्यार्थ के ज्ञाता पुरुष है वे इन महान् आत्मा वाले को ऐसा ही कहते हैं ।।२८।।

तोयात्मकं महादेव वामदेव मनोरमम् ।
जगत्संजीवनत्वेन कथितं मुनयो विदुः ।।२६
विश्वंभरात्मकं देवं सद्योजातं जगद्गुरुम् ।
चराचरैकभर्तारं परं कविवरा विदुः ।।३०
पंचब्रह्मात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ।
शिवानंद तदित्याहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ।।३१
पंचविंशतितत्त्वात्मा प्रपंचे यः प्रदृश्यते ।

पचब्रह्मात्मकस्त्वन स शिवो नान्यता गतः ॥३२
पचविशतितत्त्वात्मा पचब्रह्मात्मक शिव ।
श्रेयोर्थिभिरतो नित्य चिंतनीय प्रयत्नतः ॥३३

परम मनोरम वामदेव को सम्पूर्ण जगत् के सजीवनत्व होने से मुनीश्वर लोग तोपात्मक कहा करते हैं ॥२६॥ सद्योजात देव को विश्वम्भरात्मक जगद्गुरु तथा चराचर का एक ही भरण करने वाला परम स्वामी कविवर कहते हैं ॥३०॥ यह सम्पूर्ण स्थावर जङ्गात्मक जगत् पच ब्रह्मात्मक है। तत्त्वदर्शी मुनीश्वर वृन्द उसे शिवानन्द कहा करते हैं ॥३१॥ जो पचीस तत्त्वो के स्वरूप वाला इस जगत् के प्रपच मे दिखलाई दिया करता है वह पच ब्रह्मात्मक रूप से शिव ही है अन्य कोई भी नही है ॥३२॥ पचविशतितत्त्वात्मा पच ब्रह्मात्मक शिव ही है अतएव श्रेय सम्पादन करने की इच्छा रखने वालो को उसका प्रयत्नपूर्वक नित्य ही चिन्तन करना चाहिए ॥३३॥

॥ ८४—श्री महेश्वर का सर्व स्वरूप ॥

भूयोऽपि शिवमाहात्म्य समाचक्ष्व महामते ।
सर्वज्ञो ह्यसि भूताना मधिनाथ महागुण ॥१
शिवमाहात्म्यमेकाग्र शृणु वक्ष्यामि ते मुने ।
बहुभिर्बहुधा शब्दै कीर्तित मुनिसत्तमै ॥२
सदसद्रूपमित्याहु सदसत्पतिरित्यपि ।
तं शिव मुनय केचित्प्रवदति च सूरय ॥३
भूतभावविकारेण द्वितीयेन स उच्यते ।
अव्यक्त तेन विहीनत्वादव्यक्तमसदित्यपि । ४
उभे ते शिवरूपे हि शिवादन्य न विद्यते
तयो पतित्वाच्च शिव सदसत्पतिरुच्यते ॥५
क्षराक्षरात्मक प्राहुः क्षराक्षरपर तथा ।
शिव महेश्वर केचिन्मुनयस्तत्त्वचिंतका ॥६
उक्तमक्षरमव्यक्त व्यक्त क्षरमुदाहृतम् ।

रूपे ते शंकरस्यैव तस्मान्न पर उच्यते ॥७

महेश्वर का सर्व स्वरूप । इस अध्याय मे सर्व रूप महेश्वर को ऋषियो ने बहुत प्रकार से वर्णन किया है अतः उसकी तत्तत् सज्ञा का वर्णन किया जाता है । सनत्कुमार ने कहा–हे महान् मति वाले ! आप पुनरपि भगवान् शिव का माहात्म्य वर्णन कीजिए । आप तो सभी कुछ के ज्ञाता हैं, समस्त प्राणियों के अधिनाथ हैं और महान् गुणो वाले हैं । शैलादि ने कहा—हे मुनिवर ! आप एकाग्र मन वाले होकर श्रवण करो, मैं आप से भगवान् शिव का माहात्म्य कहता हूँ । इस माहात्म्य को श्रेष्ठ मुनिगणो ने बहुत प्रकार से अनेक शब्दो के द्वारा कहा है ॥१॥ ॥२॥ उस शिव को कुछ मुनिगण ने सद् और असद् रूप वाला कहा है—कतिपय मुनियो ने सत् तथा असत् का पति भी उसको बतलाया है ॥३॥ द्वितीय भूतभाव विकार से वह व्यक्त सद्रूप कहा जाता है और उससे विहीन होने के कारण से अव्यक्त असत् भी वह कहे जाते हैं ॥४॥ ये सत् और असत् दोनो ही रूप शिव के ही हैं । शिव से अन्य कुछ भी नही है । उन दोनो (सत् और असत्) के पति होने से भगवान् शिव सदसत्पति कहे जाते हैं । ५॥ अब सारय दर्शन के मत के अनुसार बताया जाता है–कुछ तत्त्व के चिन्तन करने वाले मुनिगण उस महेश्वर शिव को क्षर तथा अक्षर स्वरूप वाला तथा क्षराक्षर से पर कहते हैं । ॥६॥ अक्षर को अव्यक्त और क्षर को व्यक्त बताया गया है । ये दोनो ही रूप भगवान् शङ्कर के ही होते हैं अत उससे पर नही कहा जाता है ॥७॥

तयो पर शिव शान्तः क्षराक्षरपरो बुधैः ।
उच्यते परमार्थेन महादेवो महेश्वर ॥८
समस्तव्यक्तरूप तु ततः स्मृतरा स मुच्यते ।
समष्टिव्यष्टिरूप तु समष्टिव्यष्टिकारणम् ॥६
वदति केचिदाचार्या शिवं परमकारणम् ।
समष्टि विदुरव्यक्तं व्यष्टि व्यक्तं मुनीश्वरा ॥१०
रूपे ते गदिते शंभोर्नास्त्यन्यद्वस्तुसभवम् ।
तयो कारणभावेन शिवो हि परमेश्वर ॥११

उच्यते योगशास्त्रज्ञैः समष्टिव्यष्टिकारणम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूपी च शिव. कैश्चिदुदाहृतः ॥१२
परमात्मा परं ज्योतिर्भगवान्परमेश्वरः ।
चतुर्विंशतितत्त्वानि क्षेत्रशब्देन सूरयः ॥१३
प्राहुः क्षेत्रज्ञशब्देन भोक्तारं पुरुषं तथा ।
क्षेत्रक्षेत्रविदावेते रूपे तस्य स्वयंभुवः ॥१४

बुधजनों के द्वारा महान् देव महेश्वर परमार्थ रूप से क्षर-अक्षर से पर-परम शान्त एवं शिव अर्थात् कल्याणमय कहे जाया करते हैं। सम्पूर्ण प्राणिमय क्षर होता है और कूटस्थ अक्षर कहा जाता है ॥८॥ उस सकल भूतों के स्वरूप वाले भगवान् शिव का स्मरण करके यह जीव मुक्त हो जाता है। अब योगियों के मत से बताते हैं—कुछ मत्स्येन्द्रादि आचार्यगण उन शिव को समष्टि और व्यष्टि के स्वरूप वाला तथा इस समष्टि एवं व्यष्टि का कारण रूप बतलाते हैं ॥९॥ कुछ आचार्यगण उस शिव को परम कारण कहा करते हैं। मुनीश्वर अव्यक्त को ही समष्टि तथा व्यक्त को व्यष्टि कहते हैं ॥१०॥ ये दोनों ही शिव के ही रूप हैं और शिव से भिन्न अन्य वस्तु से होने वाला कोई भी इस जगत् का कारण नहीं है ॥११॥ कुछ योग शास्त्र के ज्ञाताओं के द्वारा इस समग्र समष्टि और व्यष्टि का कारण क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के रूप वाला यह भगवान् शिव ही कहा गया है ॥१२॥ सूरिगण अर्थात् महा मनीषी लोग उसे परम आत्मा-परम ज्योति-भगवान् और परमेश्वर कहते हैं। ये चौबीस तत्त्व ही क्षेत्र शब्द के द्वारा कहे जाते हैं ॥१३॥ क्षेत्रज्ञ-इस शब्द के द्वारा इन सब का भोक्ता पुरुष कहा गया है। ये क्षेत्र और क्षेत्र के ज्ञाता उस स्वयम्भू के ही दोनों रूप होते हैं ॥१४॥

न किंचिद् विद्यतेऽन्यदिति प्राहुर्मनीषिणः ।
अपरस्मात्परं तं परस्मात्परमं शिवम् ॥१५
केचिदाहुर्महादेवमनादिनिधनं प्रभुम् ।
भूतेन्द्रियान्तःकरणप्रधानविषयात्मकम् ॥१६
अपरं ब्रह्म निर्दिष्टं परं ब्रह्म चिदात्मकम् ।

ब्रह्मणो ते महेशस्य शिवस्यास्य स्वयंभुवः ॥१७
शङ्करस्य परस्यैव शिवादन्यन्न विद्यते ।
विद्याविद्यास्वरूपी च शकरः कैश्चिदुच्यते ॥१८
धाता विधाता लोकानामादिदेवो महेश्वरः ।
विद्येति च तमेवाहुरविद्येति मुनीश्वराः ॥१९
प्रपंचजातमखिलं ते स्वरूपे स्वयभुव. ।
भ्रातिर्विद्या परं चेति शिवरूपमनुत्तमम् ॥२०
अवापुर्मुनयो योगात्केचिदागमवेदिन ।
अर्थेषु बहुरूपेषु विज्ञान भ्रातिरुच्यते ॥२१

महा मनीषीगण तो यही कहते है कि शिव के अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु है ही नही। उसी को शाब्द ब्रह्मादि का स्वरूप तथा उसी शिव को पर ब्रह्मात्मक कहा जाता है ॥१५। कुछ लोग उसे अनादि निधन अर्थात् आदि तथा अन्त से रहित-महान् देव-प्रभु और जीवो के इन्द्रियाँ तथा अन्त करण जो हैं उनके शब्दादिक विषयो के स्वरूप वाले शिव को बताते हैं ॥१६॥ अपर ब्रह्म और चिदात्मक अर्थात् ज्ञानस्वरूप परब्रह्म निर्दिष्ट किये गये हैं। ये दोनो ही ब्रह्म पर और अपर स्वयम्भू इस महेश शिव के ही स्वरूप है ॥१७॥ यह शङ्कर ही पर है। इस शिव से अन्य कुछ भी नही होता है। कुछ के विद्या और अविद्या के रूप वाला शङ्कर कहे जाते हैं ॥१८॥ इन समस्त लोको का धाता-विधाता तथा आदिदेव महेश्वर ही विद्या-इस शब्द के द्वारा कहा जाता है। मुनीश्वर इसी को विद्या कहते हैं ॥१९॥ यह सम्पूर्ण प्रपच जात भी शिव का ही एक स्वरूप है। भ्रान्ति-विद्या और पर ये सब परम उत्तम शिव के ही स्वरूप होते हैं। क्योंकि उस शिव के अतिरिक्त अन्य तो कोई भी वस्तु है ही नही ॥२०॥ कुछ-मुनिगण उसे योग के द्वारा प्राप्त किया करते है और कुछ आगमो क महान् ज्ञाता होते हैं। इस प्रकार से बहुत-से रूप वाले अर्थों मे जो विशेष प्रकार का ज्ञान होता है वही भ्रान्ति कही जाती है ॥२१॥

आत्माकारेण संवित्तिर्बुधैर्विद्येति कीर्त्यते ।

विकल्परहित तत्त्वं परमित्यभिधीयते ॥२२
तृतीयरूपमीशस्य नान्यत्किंचन सवत ।
व्यक्ताव्यक्तज्ञरूपीति शिव केश्चिन्निगद्यते ॥२३
विधाता सर्वलोकाना धाता च परमेश्वर ।
त्रयोविंशतितत्त्वानि व्यक्तशब्देन सूरय ॥२४
वदन्त्यव्यक्तशब्देन प्रकृति च परा तथा ।
कथयन्तिज्ञशब्देन पुरुष गुणभोगिनम् ॥२५
तत्रय शाकर रूप नान्यत्किंचिदशाकरम् ॥२६

जो आत्माकार स सवित्ति होती है उसे बुधजनो के द्वारा विद्या-इस नाम के द्वारा कहा जाता है। जो विकल्प से बिल्कुल रहित तत्त्व होता है वह ही परम् इस शब्द के द्वारा कथित किया जाता है ॥२२॥ उस ईश का तीसरा अन्य कुछ भी रूप नही होता है। यह सब प्रकार से देख लिया गया है। कुछ के द्वारा व्यक्त और अव्यक्त का ज्ञाता ही शिव का रूप है—एसा भी कहा जाता है ॥२३॥ सम्पूर्ण लोको का विधाता (रचयिता) और धाता (पोषक) एव परमेश्वर तथा तईस तत्त्वो का समुदाय ये सब व्यक्त शब्द के द्वारा सूरि (विद्वान्) गण से स्पष्ट कहा गया है ॥२४॥ यह तीनो का समुदाय सब शङ्कर का ही स्वरूप होता है। अशाङ्कर अर्थात् शङ्कर से भिन्न तो कुछ भी है ही नही ॥२५॥२६॥

॥ ८५—शिव के पृथक्-पृथक् नाम-रूप ॥

पुनरेव महाबुद्धे श्रोतुमिच्छामि तत्त्वत ।
बहुभिर्बहुधा शब्दै शब्दितानि मुनीश्वरै ॥१
पुन पुन प्रवक्ष्यामि शिवरूपाणि ते मुने ।
बहुभिर्बहुधा शब्दै शब्दितानि मुनीश्वरै ॥२
क्षेत्रज्ञ प्रकृतिर्व्यक्त कालात्मेति मुनीश्वरै ।
उच्यते कैश्चिदाचार्यैरागमार्णवपारगै ॥३
क्षेत्रज्ञ पुरुष प्राह प्रधान प्रकृति बुधा ।
विकारजात नि शेष प्रकृतेर्व्यक्तमित्यपि ॥४

प्रधानव्यक्तयो काल परिणामैककारणम् ।
तच्चतुष्टयमीशस्य रूपाणां हि चतुष्टयम् ॥५
हिरण्यगर्भं पुरुष प्रधान व्यक्तरूपिणम् ।
कथयति शिवं केचिदाचार्या परमेश्वरम् ॥६
हिरण्यगर्भ कर्तास्य भोक्ता विश्वस्य पुरुष ।
विकारजात व्यक्ताख्य प्रधान कारण परम् ॥७

शिव के पृथक् २ नाम तथा रूप । इस अध्याय मे बहुत से मुनिगणों के द्वारा वर्णित भगवान् शिव के अनेक नाम तथा रूपो को ही बतलाया जाता है । सनत्कुमार बोले—हे महान् बुद्धि वाले ! मुनीश्वरो ने अनेक प्रकार से विभिन्न बहुत शब्दो के द्वारा शिव स्वरूप तथा उनके नाम वर्णित किये हैं। मैं तो तत्व स्वरूप से उनका पुन श्रवण करने की इच्छा करता हूँ । शैलादि ने कहा—हे मुनिवर ! मैं आपके समक्ष मे जो मुनीश्वरो ने बहुधा बहुत से शब्दो के द्वारा उनको कहा है बार-बार बताऊँगा ॥१॥२॥ वेद रूपी सागर के पारगामी अर्थात् वेदार्थ तत्वो के परिपूर्ण ज्ञाता मुनीश्वरो ने जो कि महान् आचार्य हुए हैं। ऐसे कुछ ने क्षेत्रज्ञ प्रकृति व्यक्त-कालात्मा इन नामो से उसका वर्णन किया है ॥३॥ कुछ लोग क्षेत्रज्ञ पुरुष को कहते हैं और प्रकृति को प्रधान कहा करते हैं। सम्पूर्ण विकृति से समुत्पन्न यह दृश्य स्वरूप को प्रकृति का व्यक्त रूप भी कहा जाता है ॥४॥ प्रधान और व्यक्त का परिणाम का एक कारण काल है यह चौगड्डा अर्थात् चारो का समुदाय ही ईश के रूपो का चतुष्टय होता है । ५ । कुछ आचार्यगण उस परमेश्वर शिव को हिरण्यगर्भ पुरुष प्रधान और व्यक्त रूप वाला इन अन्य चार प्रकार की संज्ञाओं वाला कहते हैं ॥६॥ हिरण्यगर्भ तो इस सम्पूर्ण विश्व का कर्त्ता अर्थात् स्रष्टा है और पुरुष इसके भोग करने वाला भोक्ता होता है । जितना भी विकृति से समुत्पन्न यह समस्त प्रपंच है वही व्यक्त इस नाम से कहा जाता है एवं प्रधान इस सब का परम कारण होता है ॥७॥

तेषां चतुष्टयं बुद्धे शिवरूपचतुष्टयम् ।
प्रोच्यते शंकरादन्यदस्ति वस्तु न किंचन । ८

पिंडजातिस्वरूपी तु कथ्यते कैश्चिदीश्वरः ।
चराचरशरीराणि पिंडारूयान्यखिलान्यपि ॥९
सामान्यानि समस्तानि महासामान्यमेव च ।
कथ्यंते जातिशब्देन तानि रूपाणि धीमतः ॥१०
विराट् हिरण्यगर्भात्मा कैश्चिदीशो निगद्यते ।
हिरण्यगर्भो लोकाना हेतुर्लोकात्मको विराट् ॥११
सूत्राव्याकृतरूपं त शिव शंसंति केचन ।
अव्याकृतं प्रधान हि तद्रूपं परमेष्ठिन. ॥१२
लोकायेनेव तिष्ठति सूत्रे मणिगणा इव ।
तत्सूत्रमिति विज्ञयं रूपमद्भुतविक्रमम् ॥१३
अ तर्यामी परः कैश्चित्कैश्चिदीशः प्रकीर्त्यते ।
स्वयंज्योतिः स्वयंवेद्यः शिव. शंभुर्महेश्वरः ॥१४

यह चतुष्टय अर्थात् हिरण्यगर्भ आदि चारों का समुदाय एक बुद्धि का चतुष्टय है और यह शिव के स्वरूप के चार भिन्न भेद होते हैं तथा इनमे भी भगवान् शङ्कर से पृथक् अन्य कुछ भी नही है। ॥८॥ कतिपय महापुरुषों के द्वारा वह ईश्वर पिण्ड जाति के स्वरूप वाला कहा जाता है। ये समस्त चर और अचर के स्वरूप वाले पिण्ड इस नाम वाले कहे गये हैं ॥९॥ सम्पूर्ण सामान्य पार्थिवत्व द्रव्यत्वादि और महा सामान्य द्रव्यादि त्रिक वृत्ति सत्त्वरूप जाति शब्द से कहे गये हैं वे उस धीमान् के रूप होते हैं ॥१०॥ कुछ विद्वानों के द्वारा हिरण्य गर्भात्मा विराट् ईश कहा जाता है। लोकात्मक विराट् हिरण्यगर्भ लोकों का हेतु है ॥११॥ कुछ लोग उस शिव को सूत्राव्याकृत रूप कहते हैं। परमेष्ठी का अव्याकृत प्रधान तद्रूप है ॥१२॥ ये समस्त लोक जिसके द्वारा ही सूत्र मे मणियों के समूह की भाँति स्थित रहते हैं। उस सूत्र को अद्भुत विक्रम वाला रूप समझना चाहिए। ॥१३॥ कुछ लोग उसे पर अन्तर्यामी और कतिपय विद्वान् पुरुषों के द्वारा वह ईश कहा जाता है। महेश्वर शम्भु शिव स्वय वेद्य अर्थात् जानने के योग्य हैं और स्वय ज्योति स्वरूप हैं ॥१४॥

सर्वेषामेव भूतानामतर्यामी शिवः स्मृतः ।

सर्वेषामेव भूताना परत्वात्पर उच्यते ॥१५
परमात्मा शिव शभु शकर परमेश्वर ।
प्राज्ञतजसविश्वाख्य तस्य रूपत्रय विदु ॥१६
सुपुप्तिस्वप्नजाग्रनमवस्थात्रय मेव तत् ।
विराट् हिरण्यगर्भाख्यमव्याकृतपदाह्वयम् ॥१७
तुरीयस्य शिवस्यास्य अवस्थात्रयगामिन ।
हिरण्यगर्भ पुरुष काल इत्येव कीर्तिता १८
तिस्राऽवस्था जगत्सृष्टिस्थितिसहारहेतव ।
भवविष्णुविरिचाख्यमवस्थात्रयमोशितु ॥१६
आराध्य भक्त्या मुक्ति च प्राप्नुवति शरीरिण ।
कर्ता क्रिया च कार्यं च करण चेति सूरिभि ॥२०
शभोश्चत्वारि रूपाणि कीर्त्यंते परमेष्ठिन. ।
प्रमाता च प्रमाण च प्रमेय प्रमि स्तथा । २१

समस्त प्राणियो के हृदय मे स्थित अन्तर्यामी शिव कहे गये हैं। समस्त भूतो से परत्व होने के कारण यह पर कहे जाते हैं ॥१५॥ शम्भु परमात्मा शिव शकर और परमेश्वर हैं। उसके प्राज्ञ तैजस और विश्वाख्य य तीन रूप जाने गये है ॥१६॥ ये सुपुप्ति स्वप्न और जाग्रत तीन अवस्थाऐं ही होती हैं। विराट हिरण्यगर्भाख्य और अव्याकृत पदाह्वय अर्थात् अव्याकृत पद के नाम वाले होते हैं ॥१७॥ तीनो अवस्थाओ मे गमन करने वाल इस तुरीय शिव के हिरण्यगर्भ-पुरुष और काल ये ही नाम प्रकीर्तित हुए हैं ॥१८॥ तीन अवस्थाऐं हैं जो जगत् का सृजन-जगत् की स्थिति या पालन और सहार का कारण नामो वाली है। उस ईशिता के ही भव विष्णु और विरचि नाम वाली तीन अवस्थाऐं होती हैं जिनमे क्रम से सहार स्थिति और सृजन का पृथक् कर्मो का सम्पादन होता है ॥१६। इसका समाराधन भक्ति से करके शरीर धारी प्राणी मुक्ति को प्राप्त किया करते हैं। सूरिगण के द्वारा वह कर्त्ता-कार्य क्रिया और करण कहा जाता है ॥२०॥ उस परमे ी के चार रूप कीर्तित किये जाते हैं जिनके नाम प्रमाता प्रमाण प्रमेय और प्रमिति होते हैं ॥२१॥

चत्वार्येतानि रूपाणि शिवस्यैव न संशय ।
ईश्वराव्याकृतप्राणविराट्भूतेंद्रियात्मकम् ॥२२
शिवस्यैव विकारोऽय समुद्रस्येव वीचय ।
ईश्वर जगतामाहुर्निमित्त कारण तथा ॥२३
अव्याकृत प्रधान हि तदुक्तं वेदवादिभिः ।
हिरण्यगर्भ. प्राणाख्यो विराट् लोकात्मक स्मृतः ॥२४
महा भूतानि भूतानि कार्याणि इन्द्रियाणि च ।
शिवस्यैतानि रूपाणि शसति मुनिसत्तमाः ॥२५
परमात्मा शिवादन्यो नास्तीति कवयो विदु ।
शिवजातानि तत्त्वानि पचविंशन्मनोषिभि ॥२६
नक्तानि न तदन्यानि सलिलादूर्मिवृंदवत् ।
पचविंशत्पदार्थस्य शिवतत्त्व परं विदु ॥२७
तानि तस्मादनन्यानि सुवर्णकटकादिवत् ।
सदाशिवेश्वराद्यानि तत्त्वानि शिवतत्त्वत ॥२८
जातानि न तदन्यानि मृद्द्रव्य कुंभभेदवत् ।
माया विद्या क्रिया शक्तिर्ज्ञानशक्ति क्रियामयी ॥२९
जाता शिवान्न सदेह किरणा इव सूर्यत ।
सर्वात्मक शिव देव सर्वाश्रयविधायिनम् ॥३०
भजस्व सर्वभावेन श्रेयश्चेत्प्राप्तुमिच्छसि ॥३१

ये चारो रूप ईश्वर अव्याकृत प्राण विराट् तथा भूतेन्द्रियात्मक शिव के ही होते हैं—इसमे कुछ भी सशय नही है । ॥२२॥ समुद्र की तरङ्गो के समान यह भगवान् शिव का ही विकार है । वह सम्पूर्ण जगतो का ईश्वर जाना गया है तथा निमित्त कारण भी है ॥२३॥ वेदो के वादियो के द्वारा वह अव्याकृत प्रधान कहा गया है । हिरण्य गर्भ प्राणाख्य लोकात्मक विराट् कहा गया है ॥२४॥ मुनिश्रेष्ठगण महाभूत-भूत और इन्द्रियाँ य सब उसके भगवान् शिव के ही रूप एव कार्य करते हैं ॥२५॥ शिव से अन्य कोई परमात्मा नही है ऐसा कवि लोग उसको ही पर कहते हैं । मनीषियो के द्वारा पच्चीस तत्वो को शिव से समुत्पन्न

कहा जाता है ।।२६।। उनसे अन्यों को सलिल से ऊर्मियो के समूह के समान ही कहा गया है । इन पच विशति (पच्चीस) पदार्थों से शिव तत्त्व पर जाना गया है ।।२७।। वे सब उससे अन्य नही होते हैं जैसे सुवर्ण से कटक स्वरूप मे भिन्नाकृति वाला होकर भी सुवर्ण से अन्य पदार्थ कभी नही होता है। सदाशिव आदि तत्त्व शिव तत्त्व से ही उत्पन्न हुए हैं और उससे अनन्य हैं अर्थात् अन्य नही हुआ करते है जिस प्रकार से मिट्टी का द्रव्य कुम्भ आदि भेद हुआ करता है। मिट्टी से समुत्पन्न होकर कुम्भ इस नाम से एक विशेष भेद वाला कुम्भ यह नाम मात्र होने पर भी मिट्टी से वह अन्य नही होता है । माया-विद्या क्रिया शक्ति-क्रिया मयी ज्ञानशक्ति ये सब शिव से समुत्पन्न हुई है और सूर्य से उत्पन्न उसकी किरणो के ही तुल्य होगी है – इसमे कुछ भी सशय नही है । शिव सर्वात्मक और सब के आश्रयो का करने वाला देव है ।।२८।।२६।।३०।। यदि श्रेय प्राप्त करने की इच्छा करते हो तो उसी को सर्वतो भाव से भजन करो ।।३१।।

।। ८६–रुद्र के विग्रह से विश्वोत्पत्ति ।।

भूयो देवगणश्रेष्ठ शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ।
शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिस्त्वद्वाक्यामृतपानत ।।१
कथ शरीरी भगवान् कस्माद्रुद्र प्रतापवान् ।
सर्वात्मा च कथ शम्भु कथ पशुपत त्रनम् ।।२
कथ वा देवमुख्यैश्च श्रुतो दृष्टश्च शकर ।
अव्यक्तादभवत्स्थाणु शिव परमकारणम् ।३
स सर्वकारणोपेत ऋषिर्विश्वाधिक प्रभु ।
देवाना प्रथम देव जायमान मुखाम्बुजात् ।।४
ददर्श चाग्रे ब्रह्माण चाज्ञया तमवैक्षत ।
दृष्टो रुद्रेण देवेश ससर्ज सकल च स ।।५
वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च स्थापयामास वै विराट् ।
सोम ससर्ज यज्ञार्थं सोमादिदमजायत ।।६

चरुश्च वह्निर्यज्ञश्च वज्रपाणि शचीपतिः ।
विष्णुर्नारायणः श्रीमान् सर्वं सोममयं जगत् ॥७

रुद्र के विग्रह से विश्वोत्पत्ति) इस अध्याय में सगुण रुद्र भगवान् के विग्रह से इस विश्व की उत्पत्ति और देवों को उपदेश वर्णित किया गया है। सनत्कुमार ने कहा—हे देव के गणों में श्रेष्ठ ! आप के मुखनिःसृत वाक्यामृत के पान करने से अभी मुझे तृप्ति नहीं हुई है। यद्यपि मैंने सब श्रवण किया है उस परमोत्तम भगवान् शिव के माहात्म्य को पुनः श्रवण करना चाहता हूँ ॥१॥ भगवान् कैसे शरीरधारी हुए और रुद्र किस तरह प्रताप वाले बने ? सर्वात्मा शम्भु किस तरह हैं और पाशुपत व्रत किस प्रकार का है ! मुख्य देवों ने शंकर उसे किस भाँति श्रवण किया था तथा देखा था ? शैलादि ने कहा—परम कारण शम्भु स्थाणु अव्यक्त से हुए थे ॥१॥२॥३॥ जो कि सब के परम कारण स्वरूप इस संसार रूप मण्डप के स्तम्भ-कल्याणात्मक शिव प्रभु मुखाम्बुज से समस्त देवताओं के पहिले समुत्पन्न हुए थे ॥४॥ अपने सामने उन शिव प्रभु ने ब्रह्मा को देखा था और पारमेश्वरी आज्ञा के सहित दृष्टिपात किया था। रुद्र के द्वारा दृष्ट (देखे गये) उस देवेश ने सकल जगत् का सृजन किया था ॥५॥ उस विराट् ने वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था स्थापित की थी और यज्ञ के लिये सोम का सृजन किया था और फिर सोम से यह उत्पन्न हुआ था ॥६॥ चरु वह्नि यज्ञ वज्र हाथ में धारण करने वाले इन्द्र देव जो शची के स्वामी हैं और श्रीमान् विष्णु नारायण—ये सब जगत् इस प्रकार से सोममय है ॥७॥

रुद्राध्यायेन ते देवा रुद्रं तुष्टुवुरीश्वरम् ।
प्रसन्नवदनस्तस्थौ देवानां मध्यतः प्रभुः ॥८
अपहृत्य च विज्ञानमेषामेव महेश्वरः ।
देवाः पप्रच्छुस्तं देवं को भवानिति शंकरम् ॥९
अब्रवीद्भगवान्रुद्रो ह्यहमेकः पुरातनः ।
आसं प्रथम एवाहं वर्तामि च सुरोत्तमाः ॥१०
भविष्यामि च लोकेऽस्मिन्मत्तो नान्यः सुरेश्वराः ।

व्यतिरिक्तं न मत्तोऽस्ति नान्यत्किंचित्सुरोत्तमा ॥११
नित्योऽनित्योऽहमनघो ब्रह्माह ब्रह्मणस्पति ।
दिशश्च विदिशश्चाह प्रकृतिश्च पुमानहम् ॥१२
त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप् च च्छन्दोह तन्मय शिव ।
सत्योह सर्वग शातस्त्रेताग्निर्गौरव गुरु ॥१३
गौरह गह्वरश्चाह नित्य गहनगोचर ।
ज्येष्ठोह सर्वतत्त्वाना वरिष्ठोहमपा पति ॥१४

उन देवगण ने रुद्राध्याय के द्वारा ईश्वर रुद्र का स्तवन किया था। उस समय मे प्रभु रुद्रदेव प्रसन्न मुख वाले होकर सम्पूर्ण देवो के मध्य मे स्थित हो रहे थे। ॥८॥ महेश्वर देव ने इन सब का विशेष ज्ञान का उस समय अपहरण करके ही अपनी स्थिति बनाई थी। समस्त देवो ने भगवान् शकर से पूछा था 'आप कौन हैं ?' ॥९॥ तब भगवान् रुद्र ने उन से कहा था—मैं एक परम पुरातन था, हे सुरोत्तमो ! मैं ही सबसे प्रथम यह वर्त्तन किया करता हूँ ॥१०॥ हे श्रेष्ठ देवगण ! इस लोक मे मैं ही होऊगा और मुझसे अन्य कही भी कोई नही है। मुझसे व्यतिरिक्त भी अन्य कुछ नही है ॥११॥ मैं नित्य अनित्य मैं हूँ। ब्रह्मणस्पति अनघ ब्रह्मा मैं हूँ—दिशा और विदिशा प्रकृति और पुमान् मैं हूँ॥१२॥ त्रिष्टुप् जगती और अनुष्टुप् तन्मय शिव मैं ही छन्द स्वरूप हूँ। सत्य-सवत्र गमन करने वाला शान्त त्रेताग्नि गौरव गुरु मैं हूँ ॥१३॥ मैं ही गौ हूँ और गहन गोचर नित्य गह्वर भी मैं हूँ। मैं समस्त तत्वो सबसे ज्येष्ठ (बडा) और वरिष्ठ अपाम्पति हूँ ॥१४॥

आपोह भगव नीशस्तजोह वेदिरप्यहम् ।
ऋग्वेदोह यजुर्वेद सामवेदोहमात्मभू ॥१५
अथर्वणोह मन्त्रोह तथा चाङ्गिरसा वर ।
इतिहासपुराणानि कल्पोह कल्पनाप्यहम् ॥१६
अक्षर च क्षर चाह क्षाति शातिरह क्षमा ।
गुह्योह सर्ववेदेषु वरेण्योहमजोप्यहम् ॥१७
पुष्कर च पवित्र च मध्य चाह तत परम् ।

बहिश्चाहं तथा चांतः पुरस्तादहमव्ययः ।।१८
ज्योतिश्चाहं तमश्चाहं ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः ।
बुद्धिश्चाहमहंकारस्तन्मात्राणींद्रियाणि च ।।१६
एवं सर्वं च मामेव यो वेद सुरसत्तमाः ।
स एव सर्वविरसर्वं सर्वात्मा परमेश्वरः ।।२०
गां गोभिर्ब्राह्मणान्सर्वान्ब्राह्मण्येन हवींषि च ।
आयुषायुस्तथा सत्यं सत्येन सुरसत्तमाः ।।२१
धर्मं धर्मेण सर्वांश्च तर्पयामि स्वतेजसा ।
इत्यादौ भगवानुक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ।।२२
नापश्यंत ततो देवं रुद्रं परमकारणम् ।
ते देवाः परमात्मानं रुद्रं ध्यायंति शंकरम् ।।२३
सनारायणका देवाः सेंद्राश्च मुनयस्तथा ।
तथोर्ध्वबाहवो देवा रुद्रं स्तुन्वंति शंकरम् ।।२४

मैं ही जल हूँ तथा भगवान् ईश-तेज तथा वेदि भी मैं ही हूँ। ऋग्वेद यजुर्वेद एवं सामवेद और आत्मभू मैं हूँ ।।१५।। मैं अङ्गिरसों मे श्रेष्ठ चतुर्थ वेद स्वरूप अथर्वण मन्त्र मैं हूँ–इतिहास भारतादि रूप-कर्म प्रयोग रचनात्मक कल्प तथा जगत्प्रकॢप्ति कल्पना भी मैं ही हूँ ।।१६।। अक्षर क्षर-क्षान्ति शान्ति क्षमा मैं ही हूँ। समग्र वेदों में परम गुह्य-वरेण्य और अज भी मैं हूँ ।।१७।। पवित्र पुष्कर अर्थात् हृत्सरोज रूप तथा उसका मध्यभाग-बहिर्भाग-अन्तर्भाग-पुरस्तात् और अव्यय मैं ही हूँ ।।१८।। ज्योति-तम-ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर भी मैं हूँ। बुद्धि-अहङ्कार-तन्मात्रा और समस्त इन्द्रियगण मैं हूँ ।।१९।। हे सुरश्रेष्ठो ! इस तरह से सभी कुछ जो मुझ को ही जानता है वह ही सर्ववेत्ता-सर्व-सर्वात्मा और परमेश्वर है ।।२०।। मैं वाणी को वेदों के द्वारा, ब्राह्मण्य से सम्पूर्ण ब्राह्मणों को और हवियों को, आयु से आयु को, सत्य से सत्य को मैं तृप्त करता हूँ। हे सुरसत्तमो ! धर्म से धर्म को और अपने तेज से सब का तर्पण किया करता हूँ—इतना कहकर भगवान् वहीं पर ही अन्तर्हित हो गये थे ।।२१।।२२।। इसके पश्चात् देवों ने उस परम कारण रुद्रदेव को नहीं

देखा था। वे देवगण परमात्मा रुद्र स्वरूप शंकर का ध्यान किया करते हैं। नारायण के सहित तथा इन्द्र के साथ देवगण तथा मुनिवृन्द सब ऊपर को बाहु वाले होकर भगवान् रुद्र शं र का स्तवन करते हैं ॥२३॥२४॥

॥ ८७–ब्रह्मादि देवों द्वारा महेश स्तुति ॥

य एष भगवान् रुद्रो ब्रह्म विष्णुमहेश्वरा ।
स्कन्दश्चापि तथा चेन्द्रो भुवनानि चतुर्दश ।
अश्विनौ ग्रहतारश्च नक्षत्राणि च ख दिश ॥१
भूतानि च तथा सूर्य सोमश्चाष्टौ ग्रहास्तथा ।
प्राण कालो यमो मृत्युरमृत परमेश्वर ॥२
भूत भव्य भविष्यच्च वर्तमान महेश्वर ।
विश्व कृत्स्न जगत्सर्व सत्य तस्मै नमोनम ॥३
त्वमादौ च तथा भूतो भूर्भुव स्वस्तथैव च ।
अ ते त्व विश्वरूपोऽसि श र्प तु जगत सदा ॥४
ब्रह्मैकस्त्व द्विनिधार्थमधश्च त्व सुरेश्वर ।
शातिश्च त्व तथा पुष्टिस्तुष्टिश्चाप्यहुत हुतम् ॥५
विश्व चैव तथाविश्व दत्त चादत्तमीश्वरम् ।
कृत चाप्यकृत देव परम्प्यपर ध्रुवम् ।
परायण सता चैव ह्यसतामपि शकरम् ॥६
अपामसोममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृणवदराति किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥७

(ब्रह्मादि देवो के द्वारा महेश स्तुति) इस अध्याय मे ब्रह्मादि देवता के द्वारा की हुई शकर की स्तुति पाशुपत व्रत और उनके प्रसाद का निरूपण किया जाता है। देवो ने कहा—जो यह भगवान् रुद्र है वही ब्रह्मा विष्णु तथा महेश्वर हैं और वही स्कन्द-इन्द्र एव चौदह भुवन हैं। अश्विनीकुमार ग्रह तारा नक्षत्र-अन्तरिक्ष दिशाएँ-सम्पूर्ण भूत सूर्य सोम एव आठ ग्रह प्राण-काल-यम-मृत्यु अमृत-परमेश्वर-भूत-भव्य और वर्तमान

आदि यह सम्पूर्ण विश्व एवं समस्त जगत् भगवान् महेश्वर ही का स्वरूप है उस सत्य रूप के लिये हमारा सब का नमस्कार है और वारम्बार प्रणाम है ॥१॥२॥३॥ हे महेश्वर देव ! आप ही आदि हैं तथा भूर्भुवः स्व. भी आप ही हैं । आप अन्त मे विश्वरूप हैं और सर्वदा इस जगत् के शीर्ष हैं ॥४॥ आप अद्वितीय ब्रह्म हैं जिसके कि प्रकृति एव पुरुष हो तथा ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर तीन रूप अर्थ होते हैं अर्थात् उसी अद्वितीय एक के ये सब स्वरूप होते हैं । हे सुरेश्वर ! तुम सब के आधार हो, आप शान्ति-पुष्टि तुष्टि-हुत और अहुत भी हो ॥५॥ आप विश्व अविश्व, दत्त-अदत्त और ईश्वर हैं । आप कृत-अकृत, परदेव-अपर, ध्रुव सत्पुरुषो के परायण और असत्पुरुषो के भी परायण शंकर हैं ॥६॥ हमने नेत्रो से इस शिव स्वरूप अमृत का पान किया था । उस अमृत पान से हम लोग मुक्त हो गये । शैव ज्योति मे धाम को जाना चाहिए क्योकि कामादि के विजिगीषु देवो को नही जानते हैं । यह शिवाराधन के शत्रु कामादि हम को क्या कर देंगे । इस विनाश शील शरीर आदि वाले मानव की इस विनाश शीलता का मिट जाना अमृत कहा गया है या कुछ भी नही है ॥७॥

एतज्जगद्धितं दिव्यमक्षरं सूक्ष्ममव्ययम् ॥८
प्राजापत्यं पवित्रं च सौम्यमग्राह्यमव्ययम् ।
अग्राह्येणापि वा ग्राह्यं वायव्येन समीरणः ॥९
सौम्येन सौम्यं ग्रसति तेजसा स्वेन लीलया ।
तस्मै नमोऽस्संहर्त्रे महाग्रासाय शूलिने ॥१०
हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणे प्रतिष्ठिता ।
हृदि त्वमसि योनित्य तिस्रो मात्रा परस्तु सः ॥११
निरश्चोत्तरतश्चैव पादो दक्षिणतस्तथा ।
यो वै चोत्तरत. साक्षात्स ओंकार सनातनः ॥१२
ओंकारो यः स एवेह प्रणवो व्याप्य तिष्ठति ।
अनंतस्तारसूक्ष्म च शुक्लं वैद्युतमेव च ॥१३
परं ब्रह्म स ईशान एको रुद्रः स एव च ।

भवान्महेश्वरः साक्षान्महादेवो न सशयः ।।१४
ऊर्ध्वमुन्नामयत्येव स ओंकारः प्रकीर्तितः ।
प्राणानवति यस्तस्मात् प्रणवः परिकीर्तितः ।।१५

यह शिर स्वरूप जगत् का हित-दिव्य-अक्षर सूक्ष्म और अव्यय है ।।८।। यह प्राजापत्य अर्थात् सब का जनक-पावन-शान्त-वायु सम्बन्धी स्पर्श गुण से वायु की भांति अग्राह्य मन से ग्राह्य भी स्वकीय सौम्य चन्द्र तेज से परम शान्त अपने भक्त के अन्तकरण को अपने मे लीन करता है उस मह तत्व को भी ग्रस ने वाले ग्रपसहर्त्ता भगवान् शूली के लिये नमस्कार है । ।।८।।९।।१०।। हृदय मे स्थित समस्त देवता हैं और हृदयाधिकरण प्राण मे प्रतिष्ठित हैं जो कि प्राण स्वरूप आप हृदय मे नित्य रहते हो और वह नादाख्य मात्रा रूप है ।।११।। अब उस ओङ्कार रूप का वर्णन किया जाता है – शिर मूर्ध स्थानापन्न अकार उत्तर भाग है तथा पाद अर्थात् पादस्थानापन्न मकार साक्षात् मध्यभाग दक्षिण में है । जो उकार उत्तर भाग मे सश्लिष्ट है वह सनातन ओङ्कार शिव हैं । वह ही ओंकार प्रणव है जो यहाँ व्याप्य होकर स्थित होता है । वह अनन्त-तार-सूक्ष्म वैद्युत-शुक्ल परब्रह्म-ईशान और एक प्रणव परिकीर्त्तित किया गया है । ।।१२।।१३।।१४।।१५।।

सर्वं व्याप्नोति यस्तस्मात्सर्वव्यापी सनातनः ।
ब्रह्मा हरिश्च भगवानाद्यत नोपलब्धवान् ।।१६
तथान्ये च ततोऽनंतो रुद्रः परमकारणम् ।
यस्तारयति ससारात्तार इत्यभिधीयते ।।१७
सूक्ष्मो भूत्वा शरीराणि सर्वदा ह्यधितिष्ठति ।
तस्मात्सूक्ष्मः समाख्यातो भगवान्नीललोहितः ।।१८
नीलश्च लोहितश्चैव प्रधानपुरुषान्वयात् ।
स्कंश्तेऽस्य यतः शुक्रं तथा शुक्रमपैति च ।।१९
विद्योतयति यस्तस्माद्वैद्युतः परिगीयते ।
बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च बृहते च परापरे ।।२०
तस्माद्बृंहति यस्माद्धि परं ब्रह्मेति कीर्तितम् ।

अद्वितीयोऽथ भगवास्तुरीय परमेश्वर.॥२१

वह उच्चार्य माण ओंकार सम्पूर्ण शरीर को ऊपर को उन्नमित किया करता है—प्राणों की रक्षा करता है अतएव वह 'प्रणव' – इस नाम से कहा गया है । वह सब को व्याप्त करके स्थित रहता है इसी कारण से वह सनातन एव सर्वव्यापी है । ब्रह्मा हरि भगवान् ने इसके आद्यन्त को प्राप्त नहीं किया था ॥१६॥ तथा अन्यो ने भी किसी ने उसे प्राप्त नही किया है इसीलिये वह अनन्त है और रुद्र रूप परम कारण है । जो इस ससार से सन्तारण करता है अतएव वह 'तार'–इस नाम वाला कहा जाया करता है ॥१७॥ वह सूक्ष्म होकर समस्त शरीरो मे व्याप्त होता हुआ सर्वदा अधिष्ठित रहता है । इसीलिये वह भगवान् नील लोहित 'सूक्ष्म' – इस नाम से समाख्यात होत हैं॥१८॥ प्रधान पुरुष के सयोग से नील और लोहित इसका शुक्र स्यन्दित होकर पर स्थान को जाता है अतएव शुक्र'–इस नाम से कहा गया है ॥१६॥ जो वह विद्योतित किया करता है इसीलिये उसे 'वैद्युत'-इस नाम वाला परिगीत किया जाता है । परावर ऐहिका मुष्मिक रूप मे जो कि वृहत् है वह वृहित अर्थात् पोषित किया करता है इसी कारण से उसे 'ब्रह्म'-इस नाम से कहा गया है। वह तुरीय भगवान् परमेश्वर अद्वितीय हैं ॥२०॥२१॥

ईशानमस्य जगत स्वदृ शा चक्षुरीश्वरम् ।
ईशानमिद्रस्य सर्वेषामपि सर्वदा ॥२२
ईशान सर्वविद्याना यत्तदीशान उच्यते ।
यदीक्षते च भगवानिरीक्ष्यमिति चाज्ञया ॥२३
आत्मज्ञान महादेवो योग गमयति स्वयम् ।
भगवाश्चोच्यते देवो देवदेवो महेश्वर ॥२४
सर्वाल्लोकान्क्रमेणैव यो गृह्णाति महेश्वर ।
विसृजत्येष देवेशो वासयत्यपि लीलया ॥२५
एषो हि देव प्रदिशोऽनुसर्वा पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अन्त ।
स एव जात स जनिष्यमाण प्रत्यड् मुखास्तिष्ठति सर्वतोमुख ।२६

अद्वितीयोऽत्र भगवांस्तुरीय परमेश्वर ॥२१

वह उच्चार्य माण ओंकार सम्पूर्ण शरीर को ऊपर को उन्नमित किया करता है—प्राणों की रक्षा करता है अतएव वह प्रणव'—इस नाम से कहा गया है। वह सब को व्याप्त करके स्थित रहता है इसी कारण से वह सनातन एव सर्वव्यापी है। ब्रह्मा हरि भगवान् ने उसके आद्यन्त को प्राप्त नही किया था ॥१६॥ तथा अन्यो ने भी किसी ने उसे प्राप्त नही किया है इसीलिए वह अनन्त है और रुद्र रूप परम कारण है। जो इस ससार से सन्तारण करता है अतएव वह 'तार'—इस नाम वाला कहा जाया करता है ॥१७॥ वह सूक्ष्म होकर समस्त शरीरो मे व्याप्त होता हुआ सर्वदा अधिष्ठित रहता है। इसीलिये वह भगवान् नील लोहित 'सूक्ष्म'—इस नाम से समाख्यात होते हैं॥१८॥ प्रधान पुरुष के सयोग से नील और लोहित इसका शुक्र स्यन्दित होकर पर स्थान को जाता है अतएव शुक्र'—इस नाम से कहा गया है ॥१६॥ जो वह विद्यातित किया करता है इसीलिये उसे 'वैद्युत'—इस नाम वाला परिगीत किया जाता है। परावर ऐहिक मुक्तिक रूप मे जो कि वृहत् है वह वृहित अर्थात् पोषित किया करता है इसी कारण से उसे 'ब्रह्म'—इस नाम से कहा गया है। वह तुरीय भगवान् परमेश्वर अद्वितीय हैं ॥२०॥२१॥

ईशानमस्य जगत स्वदृशा चक्षुरीश्वरम् ।
ईशानमिद्रसूरय सर्वपामपि सर्वदा ॥२२
ईशान सर्वविद्याना यत्तदीशान उच्यते।
यदीक्षते च भगवान्निरीक्ष्यमिति चाज्ञया ॥२३
आत्मज्ञान महादेवो योग गमयति स्वयम् ।
भगवाश्चोच्यते देवो देवदेवो महेश्वर ॥२४
सर्वांल्लोकान्क्रमेणैव यो गृह्णाति महेश्वर.।
विसृजत्येव देवेशा वासयत्यपि लीलया ॥२५
एषो हि देव प्रदिशोऽनुसर्वा पूर्वो हि जातः स उ गर्भे अ त ।
स एव जात स जनिष्यमाण प्रत्यङ्मुखास्तिष्ठति सर्वतोमुख ।२६

उपासितव्यं यत्नेन तदेतत्सद्भिरव्ययम् ।
यतो वाचो निवर्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह ॥२७
तदग्रहणमेवेह यद्वाग्वदति यत्नतः ।
अपर च परं वेति परायणमिति स्वयम् ॥२८

इस जगत् के ईशान स्वामी को स्वर्गलोक के देखने वालो के नेत्रो के सदृश नियन्ता को इन्द्र प्रमुख सूरिगण सर्वदा सब का ईशान कहते हैं ॥२२॥ समस्त विद्याओ के ईशान स्वामी हैं इस कारण से भी वह 'ईशान' – इस नाम से कहे जाते है । यह शिव की ईशान सज्ञा का हेतु निरूपित किया गया है । अब इनकी जो भगवत् यह सज्ञा होती है उसका हेतु बतलाते हैं-देखने के योग्य भावो को देखते हैं । महादेव स्वय आत्म ज्ञान योग का अवगमन करते हैं अतएव देवो के देव महेश्वर 'भगवान्' — इस नाम वाले कहे जाते हैं ॥२३॥२४॥ जो सम्पूर्ण लोको को क्रम से ही ग्रहण किया करते हैं इसलिये महेश्वर हैं । यह देवेश सब का विसृजन करते है और लीला से ही उनको निवासित भी किया करते हैं ॥२५॥ यह देव विश्वरूप से क्रीडा करते हुए समस्त दिशाओ के स्वरूप वाले हैं । अर्थात् सम्पूर्ण दिशाओ मे व्याप्त रहने वाले हैं । यह इसी प्रकार से काल व्यापक भी हैं क्योंकि अनादि सिद्ध प्रभु ब्रह्माण्डोदर मे प्रविष्ट होकर वह स्वय ही उत्पन्न हुए हैं और वह ही जनिष्यमाण होते हुए सर्व काल व्यापक होकर स्थित रहा करते हैं ॥२६॥ जहाँ मन के साथ वाणी भी निवृत्त होती है और किसी की भी पहुँच वहाँ तक नही होती है ऐसे अव्यय स्वरूप उस प्रभु की सत्पुरुषों को सदा प्रयत्नपूर्वक उपासना करनी चाहिए ॥२७॥ वाणी बडे यत्न से उसके विषय मे कहती है तो भी वह यहाँ ग्रहण नहीं किया जाता है । वह पर है अथवा अपर है या स्वय परायण है ॥२८॥

वदंति वाचः सर्वज्ञ शंकर नीललोहितम् ।
एष सर्वो नमस्तस्मै पुरुष. पिंगल. शिवः । २९
स एष स महारुद्रो विश्वं भूतं भविष्यति ।
भुवनं बहुधा जात जायमानमितस्तत ॥३०

हिरण्यबाहुर्भगवान् हिरण्यपतिरीश्वरः ।
अंबिकापतिरीशानो हेमरेता वृषध्वजः ॥३१
उमापतिर्विरूपाक्षो विश्वसृग्विश्ववाहनः ।
ब्रह्मा णं विदधे योऽसौ पुत्रमग्रे सनातनम् ॥-२
प्रहिणोति स्म तस्यैव ज्ञानमात्मप्रकाशकम् ।
तमेक पुरुषं रुद्रं पुरुहूतं पुरुष्टुनम् ॥३३
बालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्व देव वह्निरूप वरेण्यम् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यति धीरास्तेषां शांति. शाश्वती नेतरेषाम् ३४
महतो यो महीयाश्च ह्यणोरप्यणुरव्ययः ।
गुहाया निहितश्चात्मा जन्तोरस्य महेश्वरः ॥३५

वाणी नील लोहित शवर को सर्वज्ञ कहती है । यह ब्रह्मात्मक पिङ्गल पुरुष शिव स्वरूप हैं उनके लिये नमस्कार है ॥२९॥ वह महारुद्र जो यह विश्व अचेतन जड मूर्ति स्वरूप है और भूत चेतनात्मक है और चौदह भुवनो के स्वरूप मे बहुत रूपो मे समुत्पन्न होकर वर्त्तमान हैं ॥३०॥ हिरण्य बाहु भगवान्-हिरण्य पति-ईश्वर अम्बिका पति-ईशान हेमरेता-वृषध्वज-उमापति-विरूपाक्ष विश्व सृक्-विश्व वाहन इन नामो वाला जो प्रभु है उसने पहिले सनातन ब्रह्मा को पुत्र बनाया था । उसको ही आत्मा के प्रकाश कर देने वाला ज्ञान प्रदान किया था वह एक पुरुष रुद्र-पुरुहूत-पुरुष्टुन-बालाग्रमात्र हृदय के मध्य मे विश्व देव-वह्नि रूप-वरेण्य और आत्मा मे स्थित उसको जो धीर देखते हैं उनको शाश्वती शान्ति हुआ करती है अन्य किन्ही को नही होती है ॥-१॥३२॥३ ॥ ॥३४॥ जो महान् से भी महीयान् है और जो अणु से भी अणु है— अव्यय है । वह महेश्वर इस जन्तु के गुहा मे निहित आत्मा स्वरूप है ॥३५॥

वेश्मभूतोऽस्य विश्वस्य कमलस्थो हृदि स्वयम् ।
गह्वर गहन तत्स्थं तस्यातश्चोर्ध्वत. स्थित । ३६
तत्रापि दह्रं गगनमोंकार परमेश्वरम् ।
बालाग्रमात्र तन्मध्ये ऋतं परमकारणम् ॥३७

सत्य ब्रह्म महादेव पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् ।
ऊर्ध्वरेतमीशानं विरूपाक्षमजोद्भवम् ॥३८
अधितिष्ठति योनिं यो योनिं वाचैक ईश्वरः ।
देहं पञ्चविधं येन तमीशानं पुरातनम् ॥३९
प्राणेष्वंतर्मनसो लिंगमाहुर्यस्मिन्क्रोधो या च तृष्णा क्षमा च ।
तृष्णां छित्त्वा हेतुजालस्य मूल बुद्धचाचित्यं स्थापयित्वा च रुद्रे४०
एकं तमाहुर्वै रुद्रं शाश्वतं परमेश्वरम् ।
परात्परतरं वापि परात्परतरं ध्रुवम् ॥४१
ब्रह्मणो जनक विष्णोर्वह्नेर्वायोः सदाशिवम् ।
ध्यात्वाग्निना च शोध्यांग विशोध्य च पृथक्पृथक् ॥४२

इस विश्व का वेश्म (घर) भूत हृदय मे स्वयं कमल मे स्थित है। उसके अन्दर और ऊपर उसमे स्थित गह्वर गहन है। वहाँ पर भी बालाग्रमात्र दहर सत्ता वाला गगन है और उसके मध्य में परमार्थ रूप से सत्य एव परम कारण प्रणव स्वरूप परमेश्वर शिव स्थित हैं ॥३६॥ ॥३७॥ सत्य-ब्रह्म-महादेव-पुरुष-कृष्ण पिङ्गल-ऊर्ध्वरेता-ईशान-विरूपाक्ष-अजोद्भव और योनि मे जो अधिष्ठित होता है वह सकल योनि में एक ही ईश्वर होता है जिस योनि के प्रवेश के द्वारा पंच कोशात्मक देह को ग्रहण किया करता है। उसी पुरुष के देखने से स्थायी शान्ति प्राप्त होती है। प्राणियो मे मन के अन्दर म वह लिङ्ग रूप कहा गया है। जिसमे क्रोध और जो तृष्णा तथा क्षमा है। उस तृष्णा का छेदन करके बुद्धि से हेतुजात के मूल रूप जो अचिन्त्य है उसे रुद्र मे स्थापित करे ॥३८॥ ॥३९॥४०॥ उस रुद्र को एक ही कहते हैं। वह रुद्र शाश्वत-परमेश्वर और परात्परतर एव ध्रुव है ॥४१॥ वह सदाशिव ब्रह्मा-विष्णु-वायु और वह्नि का जनक होता है। र बीज स्वरूप अग्नि के द्वारा पृथक्-पृथक् ध्यान करके अङ्गो का संशोधन करना चाहिए ॥४२॥

पंचभूतानि संयम्य मात्राविधिगुणक्रमात् ।
मात्राः पंच चतस्रश्च त्रिमात्रादिस्ततः परम् ॥४३
एकमात्रममात्र हि द्वादशांते व्यवस्थितम् ।

स्थित्वा स्थ.ण्वामृतो भूत्वा व्रतं पाशुपतं चरेत् ॥४४
एतद्व तं पाशुपतं चरिष्यामि समासतः ।
अग्निमाधाय विधिवद्दग्यजु. सामसंभवैः ॥४५
उपोषितः शुचि· स्नात. शुक्लांबरधरः स्वयम् ।
शुक्लयज्ञोपवी-ी च शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥४६
जुहुयाद्विरजो विद्वान् विरजाश्च भविष्यति ।
वायव. पच शुध्यंतां वाङ्मनश्चरणादयः ॥४७
श्रोत्रं जिह्वा ततः प्राणस्ततो बुद्धिस्तथैव च ।
शिरः पाणिस्तथा पार्श्वं पृष्ठोदरमनंतरम् ॥४८
जघे शिश्नमुपस्थं च पायुर्मेढ्रं तथैव च ।
त्वचा मांसं च रुधिरं मेदोऽस्थीनि तथैव च ॥४६
शब्द. स्पर्शं च रूपं च रसो गंधस्तथैव च ।
भूतानि चैव शुध्यंतां देहे मेदादयस्तथा ॥५०
अन्न प्राणे मनो ज्ञान शुध्यंतां वै शिवे च्छया ।
हुत्वाऽऽज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाक्रमम् ॥५१
उपसहृत्य रुद्राग्नि गृहीत्वा भस्म यत्नतः ।
अग्निरित्यादिना धीमान् विमृज्यांगानि संस्पृशेत् ॥५२

अपने देह के आरम्भक जो पच भूत हैं उनका नानाविधि क्रम से अर्थात् शब्दादि गुणो की उत्पत्ति के क्रम से प्रविलापन करे । पृथिव्यादि पाँच मात्रा हैं–वे चार हो–फिर तीन और दो होकर एक हो तथा मात्रा रहित हो जावे तथा द्वादश तत्वो के अन्त तक हो । इस प्रकार से व्यवस्थित होकर अमृत हो जावे और ऐसी स्थिति मे होकर फिर पाशुपत व्रत समाचरण करना चाहिए ॥४३॥४४॥ ऋक् यजु और सामवेद के मन्त्रों के द्वारा विधि-विधान के साथ अग्नि का आधान करके इस पाशुपत व्रत को संक्षेप से करूंगा । ऐसा व्रत का संकल्प है । पाशुपत व्रत करने वाला उपवास करे शुचि होवे-स्नान करे और फिर स्वयं शुक्ल वस्त्र धारण करे-शुक्ल यज्ञोपवीत वाला और शुक्ल माला तथा अनुलेपन से युक्त होकर हवन करे । विरजा दीक्षा से युक्त एवं भस्म का

धारण करना भी विद्वान् होना चाहिए तभी इस पाशुपत व्रत की पात्रता सम्पन्न होती है। अपने सम्पूर्ण अङ्गियाङ्गों की शुद्धि इस प्रकार करे—मेरी पाँचो वायु शुद्ध होवें वाक्–मन और चरण आदि शुद्ध हो–॥४५॥॥४६॥४७॥ श्रोत्र–जिह्वा–घ्राण–बुद्धि शिर–पाणि–पार्श्वभाग–पृष्ठभाग–उदर–दोनों जाँघें–शिश्नोपस्थ–पायु–मेढ़्र–त्वचा–मांस–रुधिर–मेद–अस्थियाँ–शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गन्ध–समस्त मन तथा देह में जो भेदादि हैं वे सब शुद्धि को प्राप्त होवें। भगवान् की शिव की इच्छा से मेरे अन्न-प्राण-मन और ज्ञान के समस्त कोश शुद्ध होवें। समिधाओ और घृत से अग्नि मे हवन कर करके तथा चरु से क्रमानुसार आहूतियाँ देकर रुद्राग्नि का उपसहार करे एवं यत्नपूर्वक फिर भस्म ग्रहण करे। 'अग्नि'—इत्यादि मन्त्रों के द्वारा बुद्धिमान् पुरुष को अङ्गों का विमार्जन कर उस भस्म से संस्पर्श करना चाहिए ॥४८॥४९॥५०॥५१॥५२॥

एतत्पाशुपत दिव्यं व्रतं पाशविमोचनम् ।
ब्राह्मणानां हित प्रोक्त क्षत्रियाणा तथैव च ॥५३
वैश्यानामपि योग्यानां यतीना तु विशेषतः ।
वानप्रस्थाश्रमस्थाना गृहस्थाना सतामपि ॥५४
विमुक्तिविधिनानेन दृष्टा वै ब्रह्मचारिणाम् ।
अग्निरित्यादिना भस्म गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रजम् । ५५
सोऽपि प शु रतो विप्रो विमृज्यांगानि संस्पृशेत् ।
भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान् महापातकसभवैः । ५६
पापैर्विमुच्यते सद्यो मुच्यते च न संशयः ।
वीर्यमग्नेर्यतो भस्म वीर्यवान्भस्मसंयुतः ॥५७
भस्मस्नानरतो विप्रो भस्मशायी जितेंद्रिय ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥५८

इस प्रकार से यह पाशुपत व्रत होता है जो पाशों का विमोचन करने वाला है। यह पाशुपत व्रत ब्राह्मणों को बहुत हित करने वाला है तथा क्षत्रिय और वैश्यो का भी हित सम्पादक होता है जो इसके करने के योग्य होते हैं। यतियों के लिये तो यह व्रत विशेष रूप से हित करने

वाला है । जो वानप्रस्थ आश्रम में स्थित हैं या जो सत्पुरुष गार्हस्थ्य आश्रम मे स्थित हैं उन सब के हित का सम्पादन करने वाला यह पाशुपत व्रत होता है । ॥५३॥५४॥ ब्रह्मचारियो की इस विधि से विमुक्ति देखकर "अग्नि" इत्यादि मन्त्र के द्वारा अग्निहोत्र से समुत्पन्न भस्म ग्रहण करें और वह पाशुपत व्रत करने वाला विप्र विमार्जन कर अङ्गो का संस्पर्श करे । भस्म से च्छन्न विद्वान् द्विज महान् पातको से तथा पापो से तुरन्त ही विमुक्त हो जाया करता है इसमे तनिक भी सशय नही है । यह भस्म अग्नि का वीर्य है । इसके संस्पर्श से भस्म सयुत पुरुष भी वीर्यवान् हो जाता है ॥५५॥५६॥ भस्म के द्वारा स्नान करने मे रति रखने वाला विप्र-भस्म मे शयन करने वाला और इन्द्रियो को जीत लेने वाला विप्र समस्त प्रकार के पापो से विमुक्त होकर अन्त मे भगवान् शिव के सायुज्य की प्राप्ति करता है ॥५७॥५८॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भूत्यंग पूजयेद्बुधः ।
रेरेकारो न कर्तव्यस्तु तु कारस्तथैव च ॥५६
न तत्क्षमति देवेशो ब्रह्मा वा यदि केशव. ।
मम पुत्रो भस्मधारी गणेशश्च वरानने ॥६०
तेषा विरुद्धं यत्शाव्यं स याति नरकार्णवम् ।
गृहस्थो ब्रह्महीनोपि त्रिपुंड्रं यो न कारयेत् ॥६१
पूजा कर्म क्रिया तस्य द न स्न नं तथैव च ।
निष्फल जायते सर्वं यथा भस्मनि वै हुतम् ॥६२
तस्मात्सर्वक येंपु त्रिपुंड्रं धारयेद्बुध ।
इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा स्तुत्वा देवं. समं प्रभु ॥६३
भस्मच्छन्नं स्वय छन्नो विरराम विशापते ।
अथ तेषां प्रसादार्थं पशूना पतिरीश्वर ॥६४
सगणश्चांबया सार्धं स न्निध्यमकरोत्प्रभु ।
अथ संनिहितं रुद्रं तुष्टुवुः स पुंगवम् ॥६५
रुद्राध्यायेन सर्वेशं देवदेव मुमापतिम् ।
देवोपि देवानालोक्य घृणया वृषभध्वज. ॥६६

तुष्टोस्मीत्याह देवेभ्यो वरं दातुं सुरारिहा ॥६७

इसलिये सब प्रयत्नो के द्वारा बुध पुरुष को भूति के द्वारा अङ्गों का पूजन करना चाहिए तथा रेरेकार एवं तु तु कार नही करना चाहिए ॥५६॥ भगवान् शिव देवी से भस्म के धारण करने वाले की महिमा कहते हुए बतलाते हैं कि हे वरानने ! इसे देवों के ईश ब्रह्मा-केशव और भस्म धारण करने वाला मेरा पुत्र गणेश भी उसको क्षमा नही करते हैं अत उनके जो विरुद्ध हो उसे त्याग देना चाहिए अन्यथा वह पुरुष नरकार्णव मे जाकर गिरा करता है । तप आदि से शून्य भी गृहस्थ पुरुष जो त्रिपुण्ड्र को धारण नही करता है उसकी सम्पूर्ण अर्चन क्रिया कर्म-दान-स्नान आदि निष्फल हो जाया करते हैं। उसका सभी कुछ किया हुआ इसी भाँति होता है जैसे भस्म मे किया हुआ हवन विफल होता है ॥५६॥६०॥६१॥६२॥ इसलिये समस्त कार्यों में बुध पुरुष को त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिए। इतना कहकर भगवान् प्रभु ब्रह्मा देवों के साथ स्तवन करके जो कि सब भस्म से छन्न थे हे विशालाक्षि ! स्वयं भी भस्म से छन्न होकर विरत हो गये थे। ॥६३॥ इसके अनन्तर उन सबके प्रसाद के लिये पशुओं के पति ईश्वर प्रभु ने समस्त गणों के तथा जगदम्बा के साथ सान्निध्य किया था। फिर सुरों मे परम श्रेष्ठ सन्निहित भगवान् रुद्र की सब स्तुति करने लगे ॥६४॥६५॥ सब के स्वामी देवों के देव उमा के पति का स्तवन रुद्राध्याय से किया था। भगवान् वृषभध्वज शिव भी देवों का यहाँ स्तुति करते हुए देखकर कृपा कर बोले—॥६६॥ सुरों के शत्रुओं का हनन करने वाले प्रभु शिव ने देवों को वरदान प्रदान करने के लिये उनसे कहा- मैं तुम से परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हूँ' ॥६७॥

॥ ८८—रविमंडल मे उमा महेश पूजा-विधि ॥

स प्रभु प्रीतमनस प्रणिपत्य वृषध्वजम् ।
अपृच्छन्मुनयो देवा प्रीतिविस्फारितेक्षणा ॥१
भगवन् केन मार्गेण पूजनीयो द्विजातिभि ।
पुत्र वा येन रूपेण वक्तुमर्हसि शंकर ॥२

कस्याधिकारः पूजायां ब्राह्मणस्य कथ प्रभो ।
क्षत्रियाणां कथं देव वैश्याना वृषभध्वज ॥३
स्त्रीशूद्राणां कथं वापि कुंडगोलादिनां तु वा ।
हिताय जगतां सर्वमस्माकं वक्तुमर्हसि ॥४
तेषा भाव समालोक्य मुनीनां नीललोहितः ।
प्राह गभीरया वाचा मंडलस्थः सदाशिवः ॥५
मंडले चाग्रतो पश्यन्देवदेव सहोमया ।
देवाश्च मुनयः सर्वे विद्युत्कोटिसमप्रभम् ॥६
अष्टबाहु चतुर्वक्त्र द्वादशाक्षं महाभुजम् ।
अर्ध नारीश्वर देवं जटामुकुटधारिणम् ॥७

(रविमण्डल मे उमा-महेश की पूजा विधि) इस अध्याय मे मुनि और देवो के द्वारा पूछे गये भगवान् महेश्वर से रवि के मण्डल मे ज्ञात पूजन की विधि का निरूपण किया जाता है । शैलादि ने कहा—प्रीति से संयुत मन वाले वृषभध्वज प्रभु को प्रणाम करके प्रेम से रोमाञ्चित शरीर वाले देवगण और मुनियो ने उनसे पूछा था ॥१॥ देवो ने कहा—हे भगवन् ! हे शङ्कर ! द्विजातियो को किस मार्ग के द्वारा अर्थात् किस विधान से वहाँ पर और किस रूप से पूजा करनी चाहिए—इसे आप बताने के योग्य होते हैं ॥२॥ हे प्रभो ! किस ब्राह्मण का पूजा करने मे अधिकार होता है । हे वृसभध्वज ! क्षत्रियो तथा वैश्यो को किस प्रकार से पूजा करनी चाहिए ? ॥३॥ स्त्री तथा शूद्रो को एव कुण्ड और गोलक आदि को किस प्रकार से अर्चना करनी चाहिए (पति के होते हुए पर पुरुष से और पति के अभाव मे जार से समुत्पन्न सन्तति गोलक कुण्डक कही जाती है)। हे प्रभो ! समस्त जगतो के हित के लिये यह आप हमको बता देने के योग्य होते हैं ॥४॥ सूतजी ने कहा—भगवान् नील लोहित शिव ने उनके भावो को भली-भाँति समझ कर मण्डल मे स्थित भगवान् सदाशिव प्रभु गम्भीर वाणी से बोले—॥५॥ मण्डल मे आगे उमा के सहित देवो के भी देव का दर्शन करते हुए समस्त मुनिगण और देवो ने देखा कि सामने विद्युत्कोटि के समान प्रभा से युक्त आठ बाहुओ

वाले-चार मुखों से संयुत-बारह नेत्रों वाले तथा महान् भुजाओं से समन्वित प्रभु विद्यमान हैं। वे अर्ध नारीश्वर देव जटा तथा मुकुट के धारण करने वाले हैं ॥६॥७॥

सर्वाभरणसंयुक्तं रक्तमाल्यानुलेपनम् ।
रक्तांबरधरं सृष्टिस्थितिसंहारकारकम् ॥८
तस्य पूर्वमुख पीतं प्रसन्न पुरुषात्मकम् ।
अघोर दक्षिणं वक्त्र नीलाजनचयोपमम् ॥६
दंष्ट्राकरालमत्युग्रं ज्वालामालासमावृतम् ।
रक्तश्मश्रुं जटायुक्तं चोत्तरे विद्रुमप्रभम् ॥१०
प्रसन्नं वामदेवाख्य वरदं विश्वरूपिणम् ।
पश्चिमं वदन तस्य गोक्षीरधवलं शुभम् ॥११
मुक्ताफलमयैर्हारैर्भूषितं तिलकोज्ज्वलम् ।
सद्योजातमुखं दिव्यं भास्करस्य स्मरारिणः ॥१२
आदित्यमग्रतो पश्यन्पूर्ववच्चतुराननम् ।
भास्कर पुरतो देव चतुर्वक्त्र च पूर्ववत् ॥१३
भानु दक्षिणतो देवं चतुर्वक्त्र च पूर्ववत् ।
रविमुत्तरतोऽपश्यत्पूर्वं वच्चतुराननम् ॥१४

वह समस्त प्रकार के आभूषणों से युक्त हैं रक्त वर्ण की माला और अनुलेपन वाले हैं—रक्त वस्त्र धारण किये हुए हैं—इस सम्पूर्ण सृष्टि की स्थिति और सहार के करने वाले हैं ॥८॥ उनका पूर्व मुख पीत-प्रसन्न और तत्पुरुष रूप है। दक्षिण मुख अघोर और नील अजन के ढेर के समान है ॥६॥ दंष्ट्रा से कराल, अत्यन्त उग्र और ज्वाला की माला से समावृत-रक्तश्मश्रु से युक्त जटा से समन्वित तथा विद्रुम की प्रभा के समान प्रभा वाला उत्तर में है ॥१०॥ परम प्रसन्न वामदेव नाम वाला-वर देने वाला-विश्व के रूप से युक्त और गौ के दुग्ध के तुल्य श्वेत एवं शुभ उसका पश्चिम मुख है ॥११॥ मुक्ता फलों से परिपूर्ण हारों से विभूषित-तिलक से अत्यन्त समुज्ज्वल-स्मर के अरि भास्कर का सद्योजात मुख परम दिव्य है ॥१२॥ अब उनके परिवार देवों को बतलाया जाता

है—शिव के ही सदृश आगे आदित्य जो कि चार मुख वाले हैं उनको देख रहे हैं। सामने पूर्ववत् अर्थात् शिव के ही समान चार मुख वाले भास्कर देव हैं ।।१३।। पूर्व की भाँति चार मुखों से युक्त दक्षिण मे भानु देव हैं। उत्तर मे शिव के ही तुल्य चतुरानन रवि हैं जिनको कि देखा था ।।१४।।

विस्तारा मडले पूर्वे उत्तरा दक्षिणे स्थिताम् ।
बोधनी पश्चिमे भागे मडलस्य प्रजापते ।।१५
अध्यायनी च कौवेर्यामिकवक्त्रा चतुर्भुजाम् ।
सर्वाभरणसपन्ना. शक्तय सर्वसमता: ।।१६
ब्रह्माण दक्षिणे भागे विष्णुं वामे जनार्दनम् ।
ऋग्यजु साममार्गेण मूर्तित्रयमय शिवम् ।।१७
ईशान वरद देवमीशान परमेश्वरम् ।
ब्रह्मासनस्थ वरद धर्मज्ञानासनोपरि ।।१८
वैराग्यैश्वर्यसयुक्ते प्रभूते विमले तथा ।
सार सर्वेश्वर देवमाराध्य परम सुखम् ।।१९
सितपकजमध्यस्थ दीप्त दीरभिर्संवृतम् ।
दीप्ता दीपशिखाकारा सूक्ष्मा विद्युत्प्रभा शुभाम् ।।२०
जयामग्निशिखाकारा प्रभा कनकसप्रभाम् ।
विभूति विद्रुमप्रख्या विमला पद्मसन्निभाम् ।।२१
अमोघा कर्णिकाकारा विद्युत विश्ववर्णिनीम् ।
चतुवक्त्रा चतुर्वर्णा देवी वै सर्वतोमुखीम् ।।२२

पूर्व मण्डल म विस्तारा-दक्षिण मे स्थित उत्तरा-पश्चिम भाग मे प्रजापति के मण्डल की बोधनी और कौवेरी मे चार भुजाओ वाली और एक वक्त्र से युक्त अध्यायनी इस प्रकार से सम्पूर्ण आभरणो से समन्वित एव सर्व सम्मत शक्तियाँ हैं ।।१५।।१६ दक्षिण भाग मे ब्रह्मा वाम भाग म जनार्दन विष्णु तथा ऋक्, यजु और साम के मार्ग से तीन मूर्त्तियों से परिपूर्ण शिव हैं ।।१७।। वर प्रदान करने वाले ईशान देव परमेश्वर ईशान धर्म और ज्ञान के आसन के ऊपर वरद ब्रह्मासन पर स्थित हैं ।।१८।।

वैराग्य और ऐश्वर्य से संयुक्त-प्रभूत एवं विमल आसन पर हैं जो सार स्वरूप-आराधना करने के योग्य एवं परम सुख स्वरूप देव हैं ॥१६॥ श्वेत पंकज के मध्य भाग में संस्थित और दीप्ताद्य पहिले बताई हुई नौ शक्तियों से अभिसवृत हैं। दीप्ता-दीप की शिखा के आकार वाली सूक्ष्मा-विद्युत्प्रभा-शुभा-जया अग्नि की शिखा के आकार वाली-रभा-कनकप्रभा-विभूति-विद्रुमप्रख्या विमला-पद्म सन्निभा-अमोघा-कांति के आकार से युक्ता विद्युत्-विश्व वर्णिनी-चार मुख वाली-चार वर्णों से संयुत और सर्वतोमुखी देवी को देखा था ॥२०॥२१॥२२॥

सोमभगारकं देवं बुधं बुद्धिमतां वरम् ।
बृहस्पतिं बृहद्बुद्धिं भार्गवं तेजसां निधिम् ॥२३
मदं मदगतिं चैव समं शास्तस्य ते सदा ।
सूर्यः शिवो जगन्नाथः सोमः साक्षादुमा स्वयम् ॥२४
पञ्चभूतानि शेषाणि तन्मयं च चराचरम् ।
दृष्ट्वैव मुनयः सर्वे देवदेवमुमापतिम् ॥२५
कृतांजलिपुटाः सर्वे मुनयो देवतास्तथा ।
अस्तुवन्वाग्भिरिष्टाभिर्वरदं नीललोहितम् ॥२६
नमः शिवाय रुद्राय कद्रुद्राय प्रचेतसे ।
मीढुष्माय सर्वाय शिपिविष्टाय रंहसे ॥२७
प्रभूते विमले सारे ह्याधारे परमे सुखे ।
नवशक्त्यावृतं देवं पद्मस्थं भास्करं प्रभुम् ॥२८

उसके चारों ओर सदा सोम-मङ्गारक देव बुद्धिमानों में परम श्रेष्ठ बुध-बृहद् बुद्धि वाले बृहस्पति-तेजों की खान भार्गव (शुक्र एवं मन्दगति से चलने वाले शनैश्चर को देखा था। सूर्य-शिव-जगन्नाथ सोम और साक्षात् स्वयं उमा तथा शेष भौमादि पञ्च रूप वाले पंच भूत गगनादि समस्त चर और अचर तन्मय है। इस प्रकार से समस्त मुनियों ने देवों के भी देव उमा पति प्रभु का दर्शन करके हाथ जोड़ लिये थे तथा सब देव और मुनियों ने वरद भगवान् नील लोहित प्रभु की इष्ट वाणियों के द्वारा स्तुति की थी। ॥२३॥२४॥२५॥२६॥ ऋषियों ने कहा भगवान्

शिव रुद्र-कद्रुद्र प्रचेता के लिये हमारा सब का नमस्कार है। मीढुष्टम-सव शिपि विष्ट रह के लिये नमस्कार है ॥२७॥ प्रभून विमल मार परम सुख आधार पर सस्थित नव शक्तियो से समावृत पद्मपर स्थित भास्कर प्रभु देव को हमारा प्रणाम है ॥२८॥

आदित्य भास्कर भानुं रवि देव दिवाकरम् ।
उमा प्रभां तथा प्रज्ञा सध्या सावित्रिकामपि ॥२९
विस्तारामुत्तरा देवी बोधनी प्रणमाम्यहम् ।
आप्यायनी च वरदा ब्रह्माण केशव हरम् । ३०
सोमादिवृ द च यथाक्रमेण सपूज्य मन्त्रैर्विहितक्रमेण ।
स्मरामि देव रविमडलस्थ सदाशिव शकरमादिदेवम् ॥३१
इन्द्रादिदेवाश्च तथेश्वराश्च नारायण पद्मजमादिदेवम् ।
प्रागाद्यधोर्ध्वं च यथाक्रमेण वज्रादिपद्म च तथा स्मरामि ३२
सिंदूरवर्णाय समडलाय सुवर्णवज्राभरणाय तुभ्यम् ।
पद्माभनेत्राय सपक्जाय ब्रह्मेंद्रनारायणकारणाय ॥३३
रय च सप्ताश्वमनूरुवीर गणं तथा सप्तविध क्रमेण ।
ऋनुप्रवाहेण च वानखिल्यान्स्मरामि मदेहगणक्षय च ॥३४
हुत्वा तिलाद्यैर्विविधैस्तथाग्नौ पुन समाप्यैव तथैव सर्वम् ।
उद्वास्य हृ पकजमध्यसस्थ स्मरामि बिब तव देवदेव ॥३५

आदित्य भास्कर भानु रवि-देव दिवाकर को हमारा नमस्कार है। उमा-प्रभा प्रज्ञा सन्ध्या सावि त्रिका विस्तारा उत्तरा देवी और बोधनी को मैं प्रणाम करता हूँ। आप्यायनी वरदा को मेरा प्रणाम है। ब्रह्मा केशव हर और सोमादि के वृन्द की यथा विधि एव क्रम के अनुसार विहित क्रम से भली भाँति मन्त्रो के द्वारा पूजन करके रवि के मण्डल म सस्थित आदिदेव सदाशिव शङ्कर का मैं स्मरण करता हूँ। २९।३०।३१॥ इन्द्रादि देवा का-तथा ईश्वरा का-नारायण-पद्मज-आदिदेव-यथाक्रम से प्रागादि अधोर्ध्व तथा वज्रादि पद्म का मैं स्मरण करता हूँ ॥३२॥ सिन्दूर जैसे वर्ण वाले-मण्डल से युक्त और सुवर्ण वज्र क आभरण वाले आप के लिये मैं प्रणाम करता हूँ तथा स्मरण करता हूँ। पद्माभ नेत्र

वाले—पपङ्कज—ब्रह्मा, इन्द्र और नारायण के भी कारण स्वरूप के लिये नमस्कार है ॥३२।३३॥ सात अश्वो से युक्त रथ-अनुरुवीर गण तथा वसन्तादि के क्रम से सात प्रकार के गण जो कि ऋतुओ के प्रवाह से होते हैं और मदेह गण क्षय अर्थात् तन्नामक असुर नाशक एव बाल खिल्य का मैं स्मरण करता हूँ ॥३४॥ हे देवदेव ! तिल आदि विविध पदार्थों के द्वारा अग्नि मे आहूतियाँ देकर और फिर सम्पूर्ण कृत्य को उसी भाँति समाप्त करके आपके मण्डल विश्व को जो कि हृदय कमल के मध्य मे सस्थित है त्रिकाल कर मैं स्मरण करता हूँ ॥३५॥

स्मरामि बिम्बानि यथाक्रमेण रक्तानि पद्मामललोचनानि ।
पद्म च सव्ये वरद च वामे करे तथा भूषितभूषणानि ॥३६
दंष्ट्राकराल तव दिव्यवक्त्र विद्युत्प्रभ दैत्यभयकर च ।
स्मरामि रक्षाभिरत द्विजाना मदेह रक्षोगणभर्त्सन च ॥३७
सोम सित भूमिजमग्निवर्णं चामीकराभ बुधमिंदुसूनुम् ।
बृहस्पति काचनसन्निकाश शुक्र सित कृष्णतर च मदम् ॥३८
स्मरामि सव्यमभय वाममूरुगत वरम् ।
सर्वेषा मद्पर्यंत महादेव च भास्करम् ॥३९
पूर्णेंदुवर्णेन च पुष्पगधप्रस्थेन तोयने शुभेन पूर्णम् ।
पात्र दृढ ताम्रमय प्रकल्प्य दास्ये तवार्घ्यं भगवन्प्रसीद ॥४०
नम शिवाय देवाय ईश्वराय कपर्दिने ।
रुद्राय विष्णवे तुभ्य ब्रह्मणे सूर्यमूर्तये ॥४१
य शिव मडले देव सपूजयेत्र समाहित ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने पठेत्स्तवमनुत्तमम् ॥४२
इत्थ शिवेन सायुज्य लभते नात्र सशय ॥४३

मैं पद्मामललोचन यथाक्रम से रक्त बिम्बो का स्मरण करता हूँ । दक्षिण मे पद्म को और वाम कर मे वरद को तथा भूषित भूषणो का स्मरण करता हूँ ॥३६॥ आपका दिव्य मुख दंष्ट्राओ से कराल है और यह विद्युत् के तुल्य प्रभा स युक्त है एव दैत्यो को भय समुत्पन्न करने वाला है । मन्देह नामक राक्षसो के समुदाय का नाश करने वाला एव भर्त्सना

दन वाला है और द्विजो को रक्षा करने मे निरत है उसका मैं स्मरण करता हूँ ।।३७।। सित वर्ण वाले सोम-अग्नि के समान मङ्गल सुवर्ण को तुल्य इन्दु के पुत्र बुध काञ्चन के सदृश बृहस्पति-श्वेत शुक्र और अत्यन्त कृष्ण वर्ण वाले शनि-अभय सब्य तथा अपगत वर वाम-मन्दपर्यंत सब के कारण स्वरूप भास्कर महादेव का मैं स्मरण करता हूँ।।३८।। ।।३६।। पूर्ण इन्दु के वर्ण वाले पुण्य एव गन्ध प्रस्थ से युक्त शुभ तोय के द्वारा दृढ ताम्रमय पात्र को प्रकल्पित करके हे भगवन् ! मैं आपको अर्घ्य देता हूँ आप प्रसन्न होइए ।।४०।। शिव देव क लिये नमस्कार है । ईश्वर कपर्दी रुद्र-विष्णु-सूर्य की मूर्त्ति वाले ब्रह्म आपके लिये नमस्कार है ।।४१।। सूतजी ने कहा—जो इस प्रकार से मण्डल मे समाहित होकर शिव देव का भली भाँति पूजनार्चन करके प्रात -मध्याह्न और सायङ्काल म इस सर्वोत्तम स्तव का पाठ किया करता है वह इस प्रकार से भगवान् शिव के सायुज्य को प्राप्त होता है—इसमे कुछ भी सशय नहीं है । ।।४२।।४३।।

।। ८९—महेश्वर पूजा मे अधिकार निरूपण ।।

अथ रुद्रो महादेवो मडलस्थ पितामह ।
पूज्यो वै ब्राह्मणाना च क्षत्रियाणा विशेषत ।।१
वैश्याना नैव शूद्राणा शुश्रूषा पूजकस्य च ।
स्त्रीणा नैवाधिकारोऽस्ति पूजादिषु न सशय ।।२
स्त्रीशूद्राणा द्विजेन्द्रैश्च पूजया तत्फल भवेत् ।
नृपाण मुपकारार्थं ब्राह्मणैश्चैविशेषत ।।३
एव सपूजयेयुर्वै ब्राह्मणाद्या सदाशिवम् ।
इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रस्तत्रवातरधात्स्वयम् ।।४
ते देवा मुनय सर्वे शिवमुद्दिश्य शङ्करम् ।
प्रणेमुश्च महात्मानो रुद्रध्यानेन विह्वला ।।५
जग्मुर्यथागत देवा मुनयश्च तपोधना ।
तस्मादभ्यर्चयेन्नित्यमादित्य शिवरूपिणम् ।।६

धर्मकामार्थमुक्त्यर्थं मनसा कर्मणा गिरा ।
रोमहर्षण सर्वज्ञ सर्वशास्त्रभृतां वर ॥७
व्यासशिष्य महाभाग वाह्नेयं वद साम्प्रतम् ।
शिवेन देवदेवेन भक्तानां हितकाम्यया ॥८

(महेश्वर पूजा के अधिकार निरूपण) इस अध्याय मे मण्डलार्चन मे शिव के द्वारा अधिकारी बताये गये हैं और अग्नियोक्त विधान से शैव दीक्षा का निरूपण किया जाता है । सूतजी ने कहा - इसके अनन्तर मण्डल मे स्थित पितामह रुद्र महादेव ब्राह्मणों का और विशेष कर क्षत्रियो का और वैश्यो का पूज्य होता है ।। ।। शूद्रो को इस प्रकार से पूज्य नही होता है और स्त्रियो को भी इस विधि से पूजा करने का अधिकार नही है । इनको तो जो मण्डल की पूजा करने का अधिकारी है उसकी शुश्रूषा से ही मण्डल-पूजा का फल प्राप्त होता है । स्त्री और शूद्रो को द्विजेन्द्रो के द्वारा की हुई पूजा के द्वारा ही फल प्राप्ति हुआ करती है । राजाओ के उपकार के लिये ब्राह्मणादि के द्वारा यजन कराने से अपने आप से किये हुए से भी अधिक फल वाली होती है ॥२॥३॥ इस प्रकार से ब्राह्मण आदि लोगो को सदा सदाशिव का पूजन करना चाहिए—इतना कहकर भगवान् रुद्र स्वय वहां पर ही अन्तर्धान हो गये थे ॥४॥ वे समस्त देवगण और मुनिगण भगवान् शिव का उद्देश्य करके महात्मा रुद्र के ध्यान मे विकुल होते हुए प्रणाम करने लगे ॥५॥ वय के धन वाले देव और मुनि लोग जैसे ही आये थे चले गये थे । इस लिये शिव स्वरूप वाले भगवान् आदित्य का नित्य ही अर्चन करना चाहिए ॥६॥ धर्म काम अर्थ और मुक्ति के लिये मन-कर्म और वाणी के द्वारा यजन करना चाहिए । ऋषियो ने कहा—हे रोमहर्षण ! आप तो सभी कुछ के ज्ञाता हैं और समस्त शास्त्रो को धारण करने वालो मे परम श्रेष्ठ हैं । हे महान् भाग्य वाले श्री व्यास देव के शिष्य ! अब आप हमारे सामने वाह्नेय विधान का वर्णन कीजिए जिसे देवो के देव भगवान् शिव ने अपने भक्तो की हित-कामना से कहा है ॥७॥८॥

वेदात् षडंगादुद्धृत्य सांख्ययोगाच्च सर्वतः ।

तपश्च विपुल तप्त्वा देवदानवदुश्चरम् ॥६
अथदेशादिमयुक्तं गूढमज्ञाननिंदितम् ।
वर्णाश्रमकृतर्धर्मैविपरीत क्वचित्समम् ॥१०
शिवेन कथित शास्त्रं धर्मकामार्थमुक्तये ।
शतकोटिप्रमाणेन तत्र पूजा कथ विभो ॥११
स्नानयोगादयो वापि श्रोतुं कौतूहल हि न ।
पुरा सनत्कुमारेण मेरुपृष्ठे सुशोभने ॥ २
पृष्टो नदीश्वरो देव शैलादि शिवसमत. ।
पृष्टोय प्रणिपत्यैव मुनिमुख्यैश्च सर्वत. ॥१३
तस्मै सनत्कुमाराय नदिना कुलनादिना ।
कथित यच्छिवज्ञान शृण्वतु मुनिपुङ्गवा ॥१४

भगवान् शिव ने इसे षडङ्गो वाले वेद से उद्धृत करके और सब ओर से सांख्य योग से इनका उद्धरण करके कहा है। देव तथा दानवो के द्वारा भी परम दुश्चर बहुत तप करके अर्थ देश आदि से सयुक्त गूढ और अज्ञान निन्दित तथा वर्णाश्रम कृत धर्मों से विपरीत और कही पर उनके ही समान भगवान् शिव ने धर्म-काम-अर्थ और मुक्ति के लिये इस शास्त्र का कथन किया है। वहाँ पर शत कोटि प्रमाण से विभु की पूजा कैसे होती है ॥६॥१ ॥११॥ हमको स्नान योग आदि सब के श्रवण करने का महान् कौतूहल हो रहा है। सूतजी ने कहा—पहिले परम शोभन मेरु पृष्ठ पर सनत्कुमार ने शिव के परम सम्मत देव शैलादि नन्दीश्वर से पूछा था। मुनियो मे परम प्रमुखो के द्वारा प्रणिपात करके उनसे इस प्रकार पूछा गया था ॥१२॥१ ॥ उस सनत्कुमार से कुलनन्दी नन्दी ने जो शिव का ज्ञान कहा था हे मुनिश्रेष्ठो ! उसका अब आप लोग श्रवण करें ॥१४॥

शैव सक्षिप्य वेदोक्त शिवेन परिभाषितम् ।
स्तुतिनिन्दादिरहित सद्य. प्रत्ययकारकम् ॥१५
गुरुप्रसादज दिव्यमनायासेन मुक्तिदम् ।
भगवन्सर्वभूतेश नंदीश्वर महेश्वर ॥१६

कथं पूजादय. शम्भोर्धर्मकामार्थमुक्तये ।
वक्तुमर्हसि शैलादे विनयेनागताय मे ॥१७
सम्प्रेक्ष्य भगवान्नन्दी निशम्य वचनं पुनः ।
कालवेलाधिकाराद्यमवदद्वदतां वरः ॥१८
गुरुतः शास्त्रतश्चैवमधिकारं ब्रवीम्यहम् ।
गौरवाच्चैव संक्षेपाच्छिवाचार्यस्य नान्यथा ॥१९
स्वयमाचरते यस्तु आचारे स्थापयत्यपि ।
आचिनोति च शास्त्रार्थानाचार्यस्तेन चोच्यते ॥२०
तस्माद्वेदार्थतत्त्वज्ञमाचार्यं भस्मशायिनम् ।
गुरुमन्वेषयेद्भक्तः सुभगं प्रियदर्शनम् ॥२१

भगवान् शिव ने उस वेद में कहे हुए शैव ज्ञान को संक्षिप्त करके कहा था। वह स्तुति और निन्दा आदि से रहित है तथा तुरन्त ही विश्राम कराने वाला है ॥१५॥ गुरु के प्रसाद से उत्पन्न होने वाला परम ईश्वर है और बिना ही किसी आयास के मुक्ति का प्रदान करने वाला है। सनत्कुमार ने कहा—हे भगवन् ! हे समस्त भूतों के स्वामिन् ! हे नन्दीश्वर ! हे महेश्वर ! हे शैलादे ! विनय पूर्वक आये हुए मुझे आप धर्म कामार्थ और मुक्ति के लिये शम्भु की पूजा आदि को बताने के योग्य होते हैं ॥१६॥१७॥ सूतजी ने कहा—भगवान् नन्दी ने भली-भाँति देखकर और पुन. वचन का श्रवण करके बोलने वालों में परम श्रेष्ठ ने काल वेलाधिकार से जिसको कहा था ॥१८॥ शैलादि ने कहा—मैं गुरु से और शास्त्र से इस प्रकार से अधिकार को बताता हूँ। शिवाचार्य के गौरव से यह सत्य है अन्यथा नहीं है ॥१९॥ जो स्वयं आचरण किया करता है और अन्यों को भी आचार में स्थापित करता है तथा शास्त्र के अर्थों का सब ओर से चयन किया करता है वह व्यक्ति ही 'आचार्य'—इस नाम से कहा जाता है ॥२०॥ इस कारण से वेदों के अर्थों के तत्त्वों के ज्ञाता-भस्म में शयन करने वाले गुरु आचार्य का भक्त का अन्वेषण करना चाहिए जो कि सुभग एवं देखने में भी प्रिय लगता है ॥२१॥

प्रतिपद्य जनानंदं श्रुतिस्मृतिपथानुगम् ।

विद्ययाभयदातारं लौल्यचापल्यवर्जितम् ॥२२
आचारपालकं धीरं समयेषु कृतास्पदम् ।
तं दृष्ट्वा सर्वभावेन पूजयेच्छिववद्गुरुम् ॥२३
आत्मना च धनेनैव श्रद्धावित्तानुसारतः ।
तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोऽसौ यथा भवेत् ॥२४
सुप्रसन्ने महाभागे सद्य पाशक्षयो भवेत् ।
गुरुर्मान्यो गुरुः पूज्यो गुरुरेव सदाशिवः ॥२५
संवत्सरत्रयं वाथ शिष्यान्विप्रान्परीक्षयेत् ।
प्राणद्रव्यप्रदानेन आदेशैश्च इतस्ततः ॥२६
उत्तमश्चाधमे योज्यो नीच उत्तमवस्तुषु ।
आक्रुष्टास्ताडिता वापि ये विषादं न यान्ति वै ॥२७
ते योग्या शिवधर्मिष्ठा. शिवधर्मपरायणा. ।
संयता धर्मसंपन्ना श्रुतिस्मृतिपथानुगा ॥२८

आचार्य ऐसा ही होना चाहिए जो प्रतिपन्न अर्थात् शरणागति मे आ गये हैं उन पुरुषो को आनन्द प्रदान करने वाला हो और श्रुति तथा स्मृति के मार्ग का अनुगमन करने वाला हो। आचार्य सर्वदा अपनी विद्या के द्वारा अभय के देने वाला होना है तथा चचलता एव अस्थिरता से रहित होना चाहिए ॥२२॥ सत्पुरुषो के आचार का पूर्णतया पालन करने वाला तथा समयो पर अर्थात् सन्ध्या आदि के काल पर समुचित स्थानो पर स्थित रहने वाले हो—ऐसे उपर्युक्त गुणो से विशिष्ट आचार्य को प्राप्त कर उस गुरुदेव की शिव की भाँति पूजा करनी चाहिए ।२३॥ अपने शरीर और मन से और श्रद्धा तथा वित्त के अनुसार धन के द्वारा भी शिष्य को तब तक गुरु की समाराधना करनी चाहिए जब तक वह पूर्णतया प्रसन्नता प्राप्त कर लेवें ॥२४॥ महाभाग गुरु के प्रसन्न हो जाने पर तुरन्त ही सम्पूर्ण पापो का क्षय हो जाया करता है। गुरु परम मान्य एव पूजा के योग्य होते हैं और गुरु ही साक्षात् सदाशिव हैं ॥२५॥ गुरु देव आचार्य को आरम्भ मे तीन वर्ष तक विप्र शिष्यो की भली-भाँति परीक्षा करनी चाहिए। प्राण द्रव्य के प्रदान के द्वारा तथा इधर-उधर

के अनेकों आदेशों के देने के द्वारा जाँच करे ॥२६॥ उत्तम तथा अधम प्रकार के कार्यों में योजित करे और उत्तम एवं अधम वस्तुओं में उन्हें आकृष्ट करे। ताड़ना देने पर भी जो शिष्य विषाद को प्राप्त नहीं होते हैं अर्थात् गुरु के द्वारा ताड़ित होकर भी खिन्नता नहीं होती है ॥२७॥ वे ही शिष्य वस्तुतः शिष्य धर्म के पालन करने के योग्य हुआ करते हैं। ऐसे शिष्य शिव धर्म में नियुक्त होते हैं और शिव धर्म में परायण भी होते हैं। परम संयत-धर्म से सम्पन्न एवं श्रुति-स्मृति मार्ग के अनुयायी हुआ करते हैं ॥२८॥

सर्वद्वन्द्वसहा धीरा नित्यमुद्युक्तचेतसः ।
परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणे रताः ॥२९
आर्जवा मार्दवाः स्वस्था अनुकूलाः प्रियंवदाः ।
अमानिनो बुद्धिमन्तस्त्यक्तस्पर्धा गतस्पृहाः ॥३०
शौचाचारगुणोपेता दम्भमात्सर्यवर्जिताः ।
योग्या एव द्विजाः सर्वे शिवभक्तिपरायणाः ॥३१
एवंवृत्तसमोपेता वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
शोध्या एव नियाश्चैव तत्त्वानां च विशुद्धये ॥३२
शुद्धो विनयसम्पन्नो मिथ्यावादविवर्जितः ।
गुर्वाज्ञापालकश्चैव शिष्योऽनुग्रहमर्हति ॥३३
गुरुश्च शास्त्रवित्प्राज्ञस्तपस्वी जनवत्सलः ।
लोकाचाररतो ह्येव तत्त्वविन्मोक्षदः स्मृतः ॥३४
सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वशास्त्रविशारदः ।
सर्वोपायविधानज्ञस्तत्त्वहीनस्य निष्फलम् ॥३५

सब प्रकार के द्वन्द्वों को सहन करने वाले-धीर-नित्य ही उद्युक्त चित्त वाले-दूसरों के उपकार में निरत रहने वाले तथा गुरु की सेवा में अनुराग करने वाले-सरल चित्त से मृदु-कोमल व्यवहार वाले-नीरोग-अनुकूल प्रिय बोलने वाले अमानी बुद्धिमान् स्पर्धा के भाव को छोड़ देने वाले किसी भी प्रकार की इच्छा न रखने वाले-शौच एवं आचार के गुणों से समन्वित दम्भ तथा मत्सरता का त्याग वाले इस प्रकार से

योग्य और शिव की भक्ति में जो परायण द्विज हो वे ही शिष्यता के प्राप्त करने के अधिकारी हुआ करते है ॥२६॥३०॥३१॥ इस प्रकार के आचरण से युक्त मन-वाणी और कर्म के द्वारा जो हो ऐसे ही तत्वो को विशुद्धि के लिये शोधन करने के योग्य अधिकारी होते हैं ॥३२॥ जो शुद्ध विनय से सम्पन्न मिथ्या भाषण और कटूक्ति करने वाला न हो तथा गुरु की आज्ञा का पूर्ण पालन करने वाला हो वह ही शिष्य गुरु चरण की अनुकम्पानुग्रह का वास्तविक पात्र हुआ करता है ॥३३॥ और गुरु भी शास्त्रो का वेत्ता-प्राम-तपस्वी सब साधारण शिष्यो पर वात्सल्य रखने वाला लौकिक आचारो मे रति रखने वाला मोक्ष का दाता तथा तत्त्वो का ज्ञान रखने वाला बताया गया है । जो गुरु हो उसमे उपर्युक्त गुण सभी होने चाहिए । ॥३४॥ गुरु सभी लक्षणो से सुसम्पन्न तथा समस्त शास्त्रो का पण्डित होना चाहिए । सब प्रकार के उपायो के विधानो का ज्ञाता गुरु होवे । जो तत्त्वहीन है वह तो निष्फल ही होता है ॥३५॥

स्वसंवेद्ये परे तत्त्वे निश्चयो यस्य नात्मनि ।
आत्मनोऽनुग्रहो नास्ति परस्यानुग्रहः कथम् ॥३६
प्रबुद्धस्तु द्विजो यस्तु स शुद्धः साधयत्यपि ।
तत्त्वहीने कुतो बाध कुतो ह्यात्मपरिग्रह. ॥३७
परिग्रहविनिर्मुक्तास्ते सर्वे पशवोदिता. ।
पशुभिः प्रेरिता ये तु सर्वे ते पशवः स्मृताः ॥३८
तस्मात्तत्त्वविदो ये तु ते मुक्ता मोचयत्यपि ।
सर्वित्तिजननं तत्त्वं परानंदसमुद्भवम् ॥३६
तत्त्वं तु विदित येन स एवानददर्शक ।
न पुनर्नाममात्रेण संवित्तिरहितस्तु यः ॥४०
अन्योऽन्यं तारयेन्नैव कि शिला तारयेच्छिलाम् ।
येषां तन्नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका ॥४१
योगिना दर्शनाद्वापि स्पर्शनाद्भाषणादपि ।
सद्य संजायते चाज्ञा पाशोपक्षयकारिणी ॥४२

जिसकी आत्मा में स्वसंवेद्य पर तत्त्व में निश्चय नहीं होता है वह स्वयं अपने ऊपर ही अनुग्रह करने अर्थात् अपना श्रेय सम्पादन करने में असमर्थ होता है तो फिर दूसरे (शिष्य) का कैसे अनुग्रह (कल्याण) कर सकता है ? ॥३६॥ जो द्विज प्रबुद्ध है और शुद्ध है वह तो साधन भी कर सकता है किन्तु जो तत्त्वहीन है उसमे बोध कैसे हो सकता है और क्या उससे आत्म परिग्रह हो सकता है ? ॥३७॥ जो आत्म परिग्रह अर्थात् आत्म-ज्ञान से रहित हैं वे सब पशु ही कहे गये हैं और ऐसे पशु स्वरूप गुरुओं से जो प्रेरणा प्राप्त करने वाले वे भी पशु ही कहे गये हैं ॥३८॥ इसलिये अपने और पराये कल्याण के लिये तत्त्वज्ञान परमावश्यक है। जो पुण्य तत्त्व वेत्ता है वे स्वयं भी मुक्त हो चुकते हैं और फिर अन्य शिष्यों को भी मुक्त कर दिया करते हैं। संवित्ति का उत्पन्न हो जाना ही तत्त्व होता है जो कि परानन्द को उत्पादित किया करता है ॥३९॥ जिसने तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया है वह ही आनन्द का दर्शक होता है। जो संवित्ति से रहित होता है वह केवल नाम मात्र से आनन्द को दिखाने वाला नहीं हो सकता है ॥४०॥ परस्पर में ऐसा पुरुष कभी उद्धार नहीं किया करता है क्या कोई शिला किसी शिला को तार सकती है ? जिनके नाम मात्र से ही नाम मात्र की ही मुक्ति होती है वास्तविकी कभी नहीं हुआ करती है ॥४१॥ योगियो के दर्शन से-स्पर्श करने से अथवा उनके साथ भाषण से भी पापों के उपशय करने वाली आज्ञा अर्थात् अनुग्रह तुरन्त ही होती है ॥४२॥

अथवा योगमार्गेण शिष्यदेहं प्रविश्य च ।
बोधयेदेव योगेन सर्वतत्त्वानि शोध्य च ॥४३
षडध्वशुद्धिविहिना ज्ञानयोगेन योगिनाम् ।
शिष्यं परीक्ष्य धर्मज्ञं धार्मिकं वेदपारगम् ॥४४
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं बहुदोषविवर्जितम् ।
ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य कराति कर्णागतेन तु ॥४५
दीपाद्दीपो यथा चान्यः संचरेद्विधिवद्गुरुः ।
भोजनं च पदं चैव वर्णाख्यं मात्रमुत्तमम् ॥४६

कालाध्वरं महाभाग तत्त्वाख्यं सर्वसंमतम् ।
भिद्यते यस्य सामर्थ्यादाज्ञामात्रेण सर्वतः ॥४७
तस्य सिद्धिश्च मुक्तिश्च गुरुकारुण्यसंभवा ।
पृथिव्यादीनि भूतानि आविशंति च भौवने ॥४८
शब्दः स्पर्शस्तथा रूप रसो गन्धश्च भावतः ।
पद वर्णात्मक विप्र बुद्धीद्रियविकल्पनम् ॥४९
कर्मेन्द्रियाणि मात्र हि मनो बुद्धिरतः परम् ।
अहंकारमथाव्यक्तं कालाध्वरमिति स्मृतम् ॥५०
पुरुषादिविरिच्यतमुन्मनत्वं परात्परम् ।
तथेशत्वमिति प्रोक्तं सर्वतत्त्वार्थ बोधकम् ॥५१
अयोगी नैव जानाति तत्त्वशुद्धि शिवात्मिकाम् ॥५२

गुरु का सामर्थ्य-समन्वित कर्त्तव्य बताते हुए कहते हैं—अथवा गुरु देव योग के मार्ग के द्वारा स्वयं शिष्य के देह मे प्रवेश करके उसकी शुद्धि करके योग से ही समस्त तत्वों को बोधित कर दिया करते हैं ॥४३॥ योगियों के ज्ञान योग से षडर्धं अर्थात् गुण त्रय की शुद्धि हो जाती है । शिष्य की गुरु की परीक्षा कर लेनी चाहिए कि वह धर्म का ज्ञाता धर्म का आचरण करने वाला-वेदों के ज्ञान का पारगामी है ॥४४॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कोई भी इनमें द्विजातियों मे से हो जो कि बहुत-से दोषों से वर्जित हो फिर कान से कान मे आये हुए अर्थात् गुरु परम्परा के मार्ग से प्राप्त होने वाले ज्ञान के द्वारा ज्ञेय का अवलोकन करे ॥४५॥ जिस प्रकार से एक दीपक से दूसरा दीपक जला दिया जाता है वैसे ही गुरु को विधि-विधान से सचरण करना चाहिए । भुवन मे होने वाला पद वर्ण नाम वाला उत्तम मात्र होता है ॥४६॥ हे महाभाग सनत्कुमार ! कालाध्वर सब का सम्मत तत्त्वाख्य अर्थात् सकल तत्त्वों की संज्ञा वाला होता है । उनकी शक्ति के प्रभाव से सर्व गुरु की आज्ञा मात्र से जिस शिष्य को भिद्यमान होता है उस शिष्य की सिद्धि और मुक्ति तो गुरुदेव की करुणानुकम्पा से ही उत्पन्न होने वाली होती हैं । भौवन पद मे पृथिवी आदि भूत आविष्ट हुआ करते हैं ॥४७॥४८॥ शब्द स्पर्श-रूप-

रस और गन्ध स्वभाव से हे सनत्कुमार विप्र ! पाँच ज्ञानेन्द्रियों का विकल्पम वर्णाह्य यह होता है ॥४६॥ कर्मेन्द्रिय मात्र उस संज्ञा वाली हैं और मन बुद्धि आदि का चतुष्टय कालाध्वर कहा गया है ॥५०॥ मानुष आनन्द से आरम्भ करके ब्रह्म पद पर्यन्त परात्पर श्रेष्ठ मनस्तत्त्व होता है वह समस्त तत्त्वों का अव बोधक ईशत्व कहा गया है। जो योगी नहीं है वह शिव स्वरूपा तत्त्व शुद्धि को नहीं जान सकते हैं जो कि कल्याण रूपा होती है ॥५१॥५२॥

॥ ६०—तंत्रोक्त शिव दीक्षा विधि ॥

परीक्ष्य भूमि विधिवद्गंधवर्णरसादिभिः ।
अलंकृत्य वितानाद्यैरीश्वरावाहनक्षमाम् ॥१
एकहस्तप्रमाणेन मडलं परिकल्पयेत् ।
आलिखेत्कमलं मध्ये पंचरत्नसमन्वितम् ॥२
चूर्णैरष्टदलं वृत्तं सितं वा रक्तमेव च ।
परिवारेण संयुक्तं बहुशोभासमन्वितम् ॥३
आवाह्य कर्णिकायां तु शिवं परमकारणम् ।
अर्चयेत्सर्वयत्नेन यथाविभवविस्तरम् ॥४
दलेषु सिद्धयः प्रोक्ताः कर्णिकायां सदामुने ।
वैराग्यज्ञाननालं च धर्मकंदं मनोरमम् ॥५
वामा ज्येष्ठा च रौद्री च काली विकरणी तथा ।
बलविकरणी चैव बलप्रमथिनी क्रमात् ॥६
सर्वभूतस्य दमनी केसरेषु च शक्तयः ।
मनोन्मनी महामाया कर्णिकायां शिवासने ॥७

(तन्त्रोक्त शिव-दीक्षा विधि — इस अध्याय में शैव दीक्षा की तन्त्रोक्त विधि और शिव-पूजा के शुभ नियमों का निरूपण किया जाता है तथा उसका फल भी बतलाया जाता है। सूतजी ने कहा — प्रथम गन्ध-वर्ण और रसादि से भूमि की विधि के साथ परीक्षा करनी चाहिए इसके उपरान्त वितानादि के द्वारा उस भूमि को समलंकृत करे जो कि ईश्वर

सद्यमष्टप्रकारेण प्रभिद्य च कलामयम् ।
वामं त्रयोदशाविधैर्विभिद्य वितत प्रभुम् ॥२१
अघोरमष्टधा कृत्वा कलारूपेण संस्थितम् ।
पुरुषं च चतुर्धा वै विभज्य च कलामयम् ॥२२
ईशान पंचधा कृत्वा पचमूर्त्या व्यवस्थितम् ।
हं सहमेति मंत्रेण शिवभक्त्या समन्वितम् । २३

शिव-सदाशिव और देव महेश्वर इससे भी पर रुद्र विष्णु और विरञ्चि को सर्ग, स्थिति और लय के क्रम से भावना का आधार बनावे ॥१५॥ अब गगन आदि पाँच भूतों के विग्रह का स्तवन करने वाले पाँच मन्त्रों को कहते हैं—रुद्ररूप वाले शिव शान्त्यतीत शम्भु शान्त-शात दैत्य चन्द्रमा के लिये नमस्कार है ॥१६॥ वेद्य-विद्या के आधार-वह्नि वह्नि-वर्चस-काल-प्रतिष्ठा-तारक दैत्य के अन्तक के लिये नमस्कार है ॥१७॥ निवृत्ति-धनदेव-धारा-धारणा-इन मन्त्रों के द्वारा महाभूतविग्रह श्री सदाशिव ईशान मुकुट, देव, पुरातन, पुरुषास्य अघोर हृदय-हृष्ट-वाम गुह्य-महेश्वर-सद्यमूर्त्ति-देव का स्मरण करना चाहिए जो सत् और असत् व्यक्ति का कारण है, जिनके पाँच मुख हैं-दश भुजाऐं हैं और जो अड़तीस कलाओं से परिपूर्ण है ॥१८॥१९॥२०॥ उस सद्य कलामय प्रभु का आठ प्रकार से प्रभेद करे तथा वितत प्रभु वाम का तेरह प्रकारों से विभेदन करे। अघोर को आठ प्रकार से विभिन्न करे जो कि कला रूप से संस्थित है। कलामय पुरुष का चार प्रकारों से प्रभेद करे तथा ईशान को पाँच प्रकारों से प्रभिन्न करे जो पाँच मूर्तियों में व्यवस्थित रहा करता है। शिव की भक्ति से समन्वित हंस हंस' – इस मन्त्र के द्वारा करे। "हंस हंसाय विद्महे परम हंसाय धीमहि। तन्नो हंस: प्रचोदयात्"— यह हंस गायत्री मन्त्र होता है ॥२१॥२२॥२३॥

ओंकारमात्रमोंकारमकार समरूपिणम् ।
आ ई ऊ ए तथा अं वानुक्रमेणात्मरूपिणम् । २४
प्रधानसहितं देवं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम् ।
अणोरणीयासमजं महतोऽपि महत्तमम् ॥२५

उर्ध्वरेतसमीशानं विरूपाक्षमुमापतिम् ।
सहस्रशिरसं देवं सहस्राक्ष सनातनम् ।।२६
सहस्रहस्तचरणं नादांतं नादविग्रहम् ।
खद्योतसदृशाकारं चद्ररेखाकृति प्रभुम् । २७
द्वादशांते भ्रुवोर्मध्ये तालुमध्ये गले क्रम तु ।
हृद्देशेऽवस्थितं देव स्वानंदममृतं शिवम् । २८
विद्युद्वलयसकाशं विद्युत्कोटिसमप्रभम् ।
श्यामं रक्त कलाकार शक्तित्रयकृतासनम् । २९
सदाशिव स्मरेद्देवं तत्त्वत्रयसमन्वितम् ।
विद्यामूर्तिमय देव पूजयेच्च यथाक्रमात् । ३०

ओङ्कार मात्र अर्थात् प्रणव से जिसको ओरमान किया जाता है उसका जो त्राण करता है वह ओङ्कार मात्र ब्रह्म रूप है । अकार मकार सम ब्रह्म तुल्य रूप वाला सम रूपी अर्थात् सगुण रूप वाला है । आ-ई-ऊ और ए-ये चारो वर्ण चतुष्कोश रूप देवता के वाचक हैं । ए-अम्बा है इसी प्रकार के अनुक्रम से देवी-गणेश-सूर्य और विष्णु के क्रम से पञ्चायतनरूप विग्रह से युक्त हैं । ऐसे आत्मरूपी-प्रलयता उत्पत्ति से रहित प्रधान के सहित देव हैं । जो अणु से भी अणीमान्-अजन्मा-महान् से भी महत्तम ऊर्ध्वरेता-ईशान विरूपाक्ष सहस्र शिरों वाले सहस्र नेत्रों से युक्त-सनातन उमा के पति सहस्र हाथों और चरणों वाले-अन्त में नाद वाले अर्थात् प्रणव स्वरूप नाद के द्वारा प्रतिपाद्य विग्रह वाले-सूर्य के सदृश आकार वाले एव चन्द्र के समान आकृति से समन्वित प्रभु को द्वादशान्त परतत्व में भ्रूओं के मध्य में तालु मध्य में-क्रम से गले में और स्वानन्द, अमृत, शिव देव को जो कि हृद्देश में अवस्थित रहते हैं विद्युत् के वलय के तुल्य हैं, विद्युत्कोटि के समान प्रभा से युक्त है, श्याम-रक्त, कलाकार एव तीनो शक्तियों का आसन करने वाले और तत्त्व त्रय से समन्वित देव सदाशिव हैं उनका स्मरण करना चाहिए और यथाक्रम विद्या की मूर्ति से पूर्ण देव की पूजार्चना करनी चाहिए ।।२४।। ।।२५।।२६।।२७।।२८।।२९।।३०।।

लोकपालांस्तथास्त्रेण पूर्वाद्यान्पूजयेत् पृथक् ।
चरुं च विधिनासाद्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥३१
अर्धं शिवाय दत्त्वैव शेषार्धेन तु होमयेत् ।
अघोरेणाथ शिष्याय दापयेद्भोक्तुमुत्तमम् ॥३२
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा पुरुष विधिना यजेत् ।
पंचगव्यं ततः प्राश्य ईशानेनाभिमन्त्रितम् ॥३३
वामदेवेन भस्माङ्गी भस्मनोद्धूलयेत्क्रमात् ।
कर्णयोश्च जपेद्देवी गायत्री रुद्रदेवताम् ॥३४
ससूत्रं सपिधानं च वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् ।
तत्पूर्वं हेमरत्नौघैर्वासितं वै हिरण्मयम् ॥३५
कलशान्विन्यसेत्पंच पंचभिर्ब्राह्मणैस्ततः ।
होमं च चरुणा कुर्याद्यथाविभवविस्तरम् ॥३६
शिष्यं च वासयेद्भक्तं दक्षिणे मण्डलस्य तु ।
दर्भशय्यासमारूढं शिवध्यानपरायणम् ॥३७
अघोरेण यथान्यायमष्टोत्तरशतं पुनः ।
घृतेन हुत्वा दुःस्वप्नं प्रभाते शोधयेन्मलम् ॥३८

अस्त्रों से युक्त पूर्वाद्य इन्द्रादि लोक पालों का पृथक् पूजन करे और चरु प्राप्त करके विधि के सहित शिव को समर्पित करना चाहिए ॥३१॥ आधा चरु का भाग तो शिव को निवेदित करे तथा शेषार्ध भाग से होम करना चाहिए। होम के अनन्तर जो हुत शेष चरु हो उसे शिष्य को भोजन करने के लिये दिला देना चाहिए ॥३२॥ उपस्पर्शन करके तथा पूर्णतया शुचि होकर विधि विधान से पुरुष का यजन करना चाहिए। ईशान मन्त्र से अभिमन्त्रित करके पंचगव्य का प्राशन करे ॥३३॥ वाम देव मन्त्र से भस्म पूर्ण अङ्गों वाला बनें और क्रम से भस्म से उद्धूलित करना चाहिए और कानों में रुद्र देवता वाली गायत्री देवी का जाप करे ॥३४॥ होम से पूर्व किये जाने वाले कृत्य बतलाते हैं सूत्र से युक्त तथा ढक्कन के सहित वस्त्र युग्म से भली-भाँति वेष्टित एवं इसके पूर्व हेम रत्नों के समूह से वासित हिरण्मय पाँच कलशों को विन्यास करे। अपने

वैभव के विस्तार के अनुसार पाँच ब्राह्मणों के द्वारा चरु से होम करना चाहिए ॥३५॥३६॥ मण्डल के दक्षिण भाग में शिष्य का स्थापन करे। वह शिष्य परम भक्त और शिव के ध्यान में परायण होना चाहिए। उसे दर्भों की शय्या निर्मित कर उस पर समारूढ करे। प्रातःकाल में अघोर मन्त्र के द्वारा घृत से एकसौ आठ बार आहूतियाँ देकर दुःस्वप्न मल का शोधन करे। ॥३७॥३८॥

एवं चोपोषितं शिष्यं स्नातं भूषितविग्रहम् ।
नववस्त्रोत्तरीयं च सोष्णीषं कृतमङ्गलम् ॥३६
दुकूलाद्यन वस्त्रेण नेत्रं बद्धा प्रवेशयेत् ।
सुवर्णपुष्पसमिश्रं यथाविभवविस्तरम् ॥४०
ईशानेन च मंत्रेण कुर्यात्पुष्पांजलिं प्रभोः ।
प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा रुद्राध्यायेन वा पुनः ॥४१
केवलं प्रणवेनाथ शिवध्यानपरायण ।
ध्यात्वा तु देवदेवेशमीशाने सक्षिपेत्स्वयम् ॥४२
यस्मिन्मन्त्रे पतेत्पुष्प तन्मन्त्रस्तस्य सिध्यति ।
शिवांभसा तु संस्पृश्य अघोरेण च भस्मना ॥४३
शिष्यमूर्धनि विन्यस्य गंधाद्यैः शिष्यमर्चयेत् ।
चारुण परमं श्रेष्ठ द्वार वै सर्ववर्णिनाम् ॥४४
क्षत्रियाणां विशेषेण द्वारं वै पश्चिमं स्मृतम् ।
नेत्रावरणमुन्मुच्य मंडल दर्शयेत्तत ॥४५

इस प्रकार से जो उपोषित शिष्य है उसको स्नान कराकर तथा उसके शरीर भूषित करावे, नवीन वस्त्र और उत्तरीय से युक्त एवं उष्णीष (शिरो वस्त्र) से सहित मङ्गल किये जाने वाले शिष्य के दुकूलादि वस्त्र से नेत्र बाँधकर प्रवेश कराना चाहिए। फिर अपनी धन की शक्ति के अनुसार सुवर्ण से युक्त पुष्प ग्रहण कर ईशान मन्त्र के द्वारा प्रभु को पुष्पाञ्जलि समर्पित करे। फिर रुद्राध्याय के द्वारा तीन परिक्रमा करे ॥३६॥४०॥४१॥ शिव के ध्यान में पूर्णतया परायण होकर केवल प्रणव से ही देवों के देव का ध्यान करे और ईशान में

संक्षिप्त करे ॥४२॥ मन्त्र की सिद्धि के अनुमापक के विषय मे कहते हैं कि जिस मन्त्र मे पुष्प का पात हो जावे वही मन्त्र उसको सिद्ध हो जाता है। मङ्गलादेक और अघोर भस्म से संस्पर्श करके शिष्य के मस्तक पर अपने हाथ को रखकर गन्धादि प्रमुख पूजनोपचारो के द्वारा शिष्य का समर्चन करे। प्रवेश द्वार के विषय मे बताते हैं कि समस्त वर्ण वालो के लिये वरुण द्वार परम श्रेष्ठ होता है ॥४३॥४४॥ क्षत्रियो के लिये विशेष रूप से पश्चिम द्वारा बताया गया है। नत्रो को जो वस्त्र से आवृत किया था उसे आवरण के वस्त्र को हटाकर मण्डल का दर्शन करा देना चाहिए ॥४५॥

कुशासने तु सस्थाप्य दक्षिणामूर्तिमास्थित. ।
तत्त्वशुद्धिं तत कुर्यात्पंचतत्त्वप्रकारत. ॥४६
निवृत्त्या रुद्र पर्यंतमडमण्डोद्भवात्मज ।
प्रतिष्ठया तदूर्ध्वं च यावदव्यक्तगोचरम् ॥४७
विश्वेश्वरात वै विद्या कलामात्रेण सुव्रत ।
तदूर्ध्वमार्गं संशोध्य शिवभक्त्या शिवं नयेत् ॥४८
समर्चनाय तत्त्वस्य तस्य भोगेश्वरस्य वै ।
तत्त्वत्रयप्रभेदेन चतुर्भिरुत वा तथा ॥४९
होमयेदग मन्त्रेण शान्त्यतीतं सदाशिवम् ।
सद्यादिभिस्तु शान्त्यंत चतुर्भिः कलया पृथक् ॥५०
शान्त्यतीतं मुनिश्रेष्ठ ईशानेनाथवा पुन. ।
प्रत्येक मष्टोत्तरशत दिशाहोम तु कारयेत् ॥५१
ईशान्या पंचमेनाथ प्रधान परिगीयते ।
समिदाज्यचरूँल्लाजान्सर्षपांश्च यवान्तिलान् ॥५२
द्रव्याणि सप्त होतव्यं स्वाहान्त प्रणवादिकम् ।
तेषां पूर्णाहुतिर्विप्र ईशानेन विधीयते ॥५३

दक्षिणा मूर्ति सज्ञा वाले शिव के ध्यान मे समास्थित होकर कुशा के आसन पर शिष्य को सन्निवेशित करके फिर पच तत्त्वो के प्रकार से तत्त्व शुद्धि करे ॥४६॥ पार्थिवादि लय पर्यन्त क्रम से अहङ्कारा वधि

वाले रुद्र पर्यन्त हे ब्रह्माण्डोद्भव के आत्मज ! निवृत्ति द्वारा तथा अहङ्कार के ऊपर प्रकृति पर्यन्त स्थिति के द्वारा हे सुव्रत ! ज्ञान की कला की पूर्णता से पुरुष पर्यन्त ज्ञान प्राप्त करके उसके भी ऊपर भगवान् शिव के प्राप्ति पथ को शिव की भक्ति के द्वारा ही सशोधित करके अर्थात् शिव की परम भक्ति से निरावरण कराके तुरीय शिव की प्राप्ति शिष्य को करानी चाहिए ॥४७॥४८॥ योगेश्वर उसके तत्व की समर्चना के लिये पुरुष प्रकृति और ईश के तत्त्व त्रय क क्रम से अथवा अहङ्कारादि चारो के द्वारा शान्त्यतीत सद्यादि चार के द्वारा शान्त्यन्त सदाशिव का हे मुनिश्रेष्ठ ! ईशान मन्त्र से होम करे। फिर प्रत्येक दिग्देवता का अष्टोत्तरशत दिशा होम करना चाहिए ॥४६॥५०॥५१॥ ईशान दिशा मे पचम ईशान मन्त्र से प्रधान याग परिगीत किया जाता है। समिधा-घृत-चरु-लाजा-सर्षप-यव-तिल इन सात द्रव्यो का आदि मे प्रणव तथा अन्त मे स्वाहा के द्वारा हवन करना चाहिए। हे विप्र ! उनकी पूर्णाहुति ईशान मन्त्र के द्वारा ही की जाती है। ॥५२॥५३॥

सहंसेन यथान्याय प्रणवाद्येन सुव्रत ।
अघोरेण च मन्त्रेण प्रायश्चित्त विधीयते ॥५४
जयादिस्विष्टपर्यंतमग्निकार्यं क्रमेण तु ।
गुण संख्याप्रकारेण प्रधानेन च योजयेत् ॥५५
भूतानि ब्रह्मभिर्वापि मौनी बीजादिभिस्तथा ।
अथ प्रधानमात्रेण प्राणापानौ नियम्य च ॥५६
दण्डेन भेदयेदात्मप्रणवात कुलाकुलम् ।
अन्योऽन्यमुपसंहृत्य ब्रह्माण केशव हरम् ॥५७
रुद्रं रुद्रं तमीशाने शिवे देवं महेश्वरम् ।
तस्मात्सृष्टिप्रकारेण भावयेद्भवनाशनम् ॥५८
स्थाप्यात्मानममुं जीवं ताडन द्वारदर्शनम् ।
दीपनं ग्रहण चैव बंधनं पूजया सह ॥५६
अमृतीकरण चैव कारयेद्विधिपूर्वकम् ।
पश्चात् सद्यसयुक्त तृतीयेन समन्वितम् ॥६०

फडत सहृति प्रोक्ता पंचभूतप्रकारत ।
सद्याद्य पष्ठमहित शिखातं सफडनकम् ॥६१
ताडन कथित द्वार तत्वानामपि योगिन ।
प्रधान सपुटीकृत्य तृतीयेन च दीपनम् ॥६२

हे सुव्रत ! आदि मे प्रणव लगाकर इस गायत्री मन्त्र के सहित अघोर मन्त्र से प्रायश्चित्त किया जाता है ॥५४॥ जयाम्यातानादि होम से युक्त स्विष्ट कृत के अन्त तक अग्नि का कार्य क्रम से तीन प्रकार से और पूर्वोक्त प्रधान होम से युक्त करना चाहिए ॥५५॥ अब दीक्षा विधि का उपसहार बताया जाता है। गुरु को मौन म युक्त हाकर पृथिवी आदि भूतो को सद्याजातादि मन्त्र के द्वारा केवल ईशान मन्त्र से प्राणायामो को नियमित करके पष्ठ 'नमोहिरण्य वाहवे'—इस मन्त्र से आत्म वाचक प्रणव के अन्त नाद से व्याप्त ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करना चाहिए। ब्रह्मा केशव और हर का अन्योन्य उपसहार करे। सहार मूर्ति रुद्र को रुद्र मे, महेश्वर देव का ईशान शिव मे सृष्टि के प्रकार स भाव नाशन रुद्र का चिंतन करना चाहिए ॥५६॥५ ॥५८॥ इस शिष्य जीव को रुद्र सस्थापित करके ताडन द्वार दशन दीपन ग्रहण पूजा के साथ बन्धन और अमृती करण शिष्य के द्वारा विधि पूर्वक कराना चाहिए। उपसहृति का प्रकार बतलाने हुए कहते हैं कि स्थ सना वाले मन्त्र का आद्य जो कि तृतीय अघोर मन्त्र से समर्पित है फट् जिसके अन्त मे होता है इस प्रकार की पृथिवी आदि पच भूत प्रकार से सहृति कही गई है। योगी-जन दीक्षा के योग वाले आदि मे रहने वाले सद्य पष्ठ के सहित शिखान्त और सफडन्तक ताडन एव तत्वों का द्वार भी कहा गया है। तीसरे अघोर सन्त्र से सम्पुटित करके प्रधान ईशान मन्त्र ही दीपन कहा गया है ॥५९॥६०॥६१॥६२॥

प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च कलासक्रमणं स्मृता ।
तत्त्ववर्णकलायुक्तं भुवनेन यथाक्रमम् ॥६५
मन्त्रैः पादैः स्तवं कुर्याद्विशोध्य च यथाविधि ।
आद्येन योनिबीजेन कल्पयित्वा च पूर्ववत् ॥६६
पूजासंप्रोक्षणं विद्धि ताडन हरणं तथा ।
संहृतस्य च सयोगं विक्षेपं च यथाक्रमम् ॥६७
अर्चना च तथा गर्भधारणं जनन पुनः ।
अधिकारो भवेद्भानोर्लयश्चैव विशेषतः ॥६८
उत्तमाद्य तथाऽन्त्येन योनिबीजेन सुव्रत ।
उद्धारे प्रोक्षणे चैव ताडने च महामुने ॥६९
अघोरेण फडंतेन संसृतिश्च न संशयः ।
प्रतितत्त्व क्रमो ह्येष योग मार्गेण सुव्रतः ॥७०

आद्य सद्य मन्त्र से सम्पुटी करण करके प्रधान मन्त्र जो होता है वही ग्रहण कहा जाता है। जहाँ पूर्व की भाँति ही प्रथम मन्त्र से ही प्रधान का सम्पुटी करण होता है वहाँ बन्धन होता हो जाता है और समग्र अमृत से त्र्यम्बक मन्त्र से प्लावन एवं अमृती करण होता है। इस पूर्वोक्त विधि के अनन्तर शान्त्यतीता प्रतिष्ठा नाम कला क्रमसा विद्या है और शान्ति निवृत्ति नाम कला बताई गई है। प्रतिष्ठा और निवृत्ति कला सक्रमण कहा गया है। तत्त्व वर्ण कला अर्थात् अकार से आदि लेकर विसर्ग के अन्त तक षोडश को भुवनाष्टक के साथ यथाक्रम पूर्वोक्त कलाओं का सक्रमण करना चाहिए ॥६३॥६४॥६५॥ पादों से अर्थात् शिव के प्रतिपादको मन्त्रो से विशोधन करके विधि के अनुसार स्तवन करे और इसके पूर्व "ह्री" इस योनि बीज से पूर्व की तरह कल्पना कर लेवे ॥६६॥ पूजा-सम्प्रोक्षण-ताडन-हरण-अत्यन्त शुद्ध मन का सयोग और यथाक्रम विक्षेप-अर्चना वागीशी गर्भ में स्थापन और पुनः जनन भानु का अधिकार और विशेष रूप से तत्तद्दृश ज्ञान निवारक तथा अविद्या नाश होता है—ऐसा जानो ॥६७॥६८॥ हे सुव्रत ! हे महामुने ! हे सनत्कुमार ! जिससे उत्तम ईशान मन्त्र अन्तिम योनि बीज के साथ ही उसे उद्धार-प्रोक्षण

और ताडन मे जानना चाहिए। अघोर फडन्त से सस्मृति होती है—इसमे सशय नही है यह योग मार्ग से प्रति तत्त्व क्रम होता है ॥६९॥७०॥

मुष्टिना चैव यावच्च तावत्कालं नयेत्क्रमात् ।
विषुवेण तु योगेन निवृत्त्यादि शिवान्तिकम् ॥७१
एकत्र समता याति नान्यथा तु पृथक्पृथक् ।
नासाग्रे द्वादशान्तेन पृष्ठेन सह योगिनाम् ॥७२
क्षंतव्यमिति विप्रेन्द्र देवदेवस्य शासनम् ।
हेमराजतताम्राद्यैर्विधिना कल्पितेन च ॥७३
सकूर्चेन सवस्त्रेण तन्तुना वेष्टितेन च ।
तीर्थाम्बुपूरितेनैव रत्नगर्भेण सुव्रत ॥७४
संहितामन्त्रितेनैव रुद्राध्यायस्तुतेन च ।
सेचयेच्च ततः शिष्यं शिवभक्तं च धार्मिकम् ॥७५
सोऽपि शिष्य. शिवस्याग्रे गुरोरग्रे च सादरम् ।
वह्नेश्च दीक्षां कुर्वीत दीक्षितश्च तथाचरेत् ॥७६
वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा ।
न त्वनभ्यर्च्य भुंजीयाद्भगवन्तं सदाशिवम् ॥७७

मुष्टि से अर्थात् तत्सदृश प्राणायाम से जब तक स्थिति रहे उतने काल पर्यन्त विषुव योग से निवृत्ति आदि शिवान्तिक को प्राप्त करना चाहिए ॥७१॥ एक ही स्थान मे तुल्यता को प्राप्त होता है पृथक् २ अन्य स्थानो मे नही होता है। नासिका के अग्रभाग मे योगियो के चरमावयव भूत द्वादशान्त परम तत्त्व शिव के साथ समता के प्राप्त करने को तुल्यता-प्राप्ति कहा गया है ॥७२॥ हे विप्रेन्द्र ! सुख दु खादि के द्वन्द्व को दीक्षित के द्वारा सहन करना चाहिए-यह देवो के देव भगवान् शिव का नियोग है। अब शिष्य की दीक्षाभिषेक की विधि को बतलाते हैं—सुवर्ण चाँदी अथवा ताम्रादि धातु के विधिपूर्वक निर्मित पात्र हो जो कि कूर्च के सहित एव वस्त्र से युक्त होना चाहिए तथा तन्तु से वेष्टित भी होवे। जिसके मध्य मे रत्न हो और तीर्थों के जल से परिपूर्ण किया जावे। सहिता के मन्त्रो से अभिमन्त्रित और रुद्राध्याय के द्वारा सस्तुत करके उस पात्र से

शिव के भक्त परम धार्मिक शिष्य का रोचन करना चाहिए ॥७३॥७४॥ ॥७५॥ वह शिष्य भी भगवान् शिव के आगे गुरु और वह्नि के आगे आदर के सहित दीक्षा ग्रहण करे और फिर दीक्षित होकर उसी प्रकार का आचरण भी करे ॥७६॥ प्राणों को त्याग करना पड़े तो वह अधिक उत्तम है और मस्तक का छेदन भी होता हो तो उसे भी स्वीकार कर लेना ज्यादा अच्छा है किन्तु भगवान् शिव की अभ्यर्चना करने के पूर्व भोजन करना उचित नहीं है अर्थात् बिना शिव के पूजन किये कभी भोजन नहीं करना चाहिए ॥७७॥

एवं दीक्षा प्रकर्तव्या पूजा चैव यथाक्रमम् ।
त्रिकालमेककालं वा पूजयेत्परमेश्वरम् ॥७८
अग्निहोत्रं च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणा ।
शिवलिंगार्चनस्यैते कलांशेनापि नो समाः ॥७९
सदा यजति यज्ञेन सदा दानं प्रयच्छति ।
सदा च वायुभक्षश्च सकृद्योऽभ्यर्चयेच्छिवम् ॥८०
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव वा ।
येऽर्चयंति महादेवं ते रुद्रा नात्र संशयः ॥८१
नारुद्रस्तु स्पृशेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमर्चयेत् ।
नारुद्रः कीर्तयेद्रुद्रं नारुद्रो रुद्रमाप्नुयात् ॥८२
एवं संक्षेपतः प्रोक्तो ह्यधिकारिविधिक्रमः ।
शिवार्चनार्थं धर्मार्थकाममोक्षफलप्रदः ॥८३

इसी प्रकार से दीक्षा करनी चाहिए और क्रम के अनुसार पूजा भी करनी चाहिए । परमेश्वर का पूजन प्रतिदिन तीन बार अथवा एक ही समय में अवश्य ही पूजन करना चाहिए ॥७८॥ अग्निहोत्र-वेद यज्ञ जिनमें कि बहुत अधिक दक्षिणा दी जाती है—ये सभी भगवान् शिव के लिङ्ग की अर्चना के एक कलांश की भी समता नहीं कर सकते हैं ॥७९॥ जो भक्त एक बार भी शिव लिङ्ग की अर्चना करता है वह सदा ही यज्ञ का यजन किया करता है—शिव पूजक सर्वदा ही दान दिया करता है और वह सदा वायु का भक्षण करने वाला ही होता है ॥८०॥ एक समय में-

दो काल में तथा तीनों कालों मे नित्य ही जो महादेव की अर्चना किया करते हैं वे साक्षात् रुद्र ही होते हैं – इसमे तनिक भी संशय नही है ॥८१॥ जो रुद्र से भिन्न है वह कभी रुद्र का स्पर्श नही किया करता है और अरुद्र कभी रुद्र की अर्चना भी नहीं करता है। अरुद्र रुद्र का कभी कीर्त्तन नही करता है और जो रुद्र नहीं है वह रुद्र की प्राप्ति भी नहीं करता है ॥८२॥ इस प्रकार से यह संक्षेप में अधिकारी और विधि का क्रम बता दिया गया है जो कि शिव की अर्चना करने के लिये है और धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष का प्रदान करने वाला है ॥८३॥

॥ ९१–सौर स्नान विधि निरूपण ॥

स्नानयागादिकर्माणि कृत्वा वै भास्करस्य च।
शिवस्नानं ततः कुर्याद्भस्मस्नान शिवार्चनम् ॥१
षष्ठेन मृदमादाय भक्त्या भूमौ न्यसेन्मृदम्।
द्वितीयेन तथाभ्युक्ष्य तृतीयेन च शोधयेत् ॥२
चतुर्थेनैव विभजेन्मलमेकेन शोधयेत्।
स्नात्वा षष्ठेन तच्छेषां मृदं हस्तगतां पुनः ॥३
त्रिधा विभज्य सर्वं च चतुर्भिर्मध्यमं पुनः।
षष्ठेन सप्तवाराणि वामं मूलेन चालभेत्।
दशवारं च षष्ठेन दिशो बंधः प्रकीर्तितः ॥४
वामेन तीर्थं सव्येन शरीरमनुलिप्य च।
स्नात्वा सर्वं स्मरन् भानुमभिषेकं समाचरेत् ॥५
शृंगेण पर्णपुटकैः पालाशेन दलेन वा।
सौरै रेभिश्च विविधैः सर्वसिद्धिकरैः शुभैः ॥६
सौराणि च प्रवक्ष्यामि बाष्कलाद्यानि सुव्रत।
अङ्गानि सर्वदेवेषु सारभूतानि सर्वतः ॥७
ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः
ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म।
नवाक्षरमयं मंत्र बाष्कलं परिकीर्तितम्।

न क्षरतीति लोकानि ऋतमक्षरमुच्यते ।
सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोतकम् ।।८

(सौर स्नान विधि निरूपण)-इस अध्याय में यथा विधि सौर स्नान और वाष्कलादि मनुओं के द्वारा भास्कर भगवान् की अर्चा का निरूपण किया जाता है — शैलादि ने कहा—शिव के अर्चन करने का अधिकार तभी प्राप्त होता है जब पहिले भगवान् भास्कर का अर्चन मानव पूर्ण कर लिया करता है । अतएव भास्कर का याग स्नान आदि कर्मों को करके ही फिर शिव स्नान-भस्म स्नान और शिवार्चन आदि करे ।।१।। सौर स्नान की विधि बताते हुए कहते हैं षष्ठ मन्त्र से (ओम् तप) मिट्टी लेकर भक्ति से उसे भूमि में स्थापित करे । द्वितीय "ॐ भुवः"—इस मन्त्र से अभ्युक्षण करके फिर तृतीय 'ॐ स्व" इस मन्त्र से शोधन करना चाहिए ।।२।। फिर चौथे "ॐ महः"-इस मन्त्र से मल का विभाजन करे और प्रथम 'ॐ भू" इस मन्त्र के द्वारा शोधन करना चाहिए । फिर छटे "ॐ तप"-इस मन्त्र से स्नान करके उस शेष मृत्तिका को पुन. हाथ में लेकर तीन बार विभाग करके फिर चारों मन्त्रों से मध्यम का विभक्त करे । छटे मन्त्र के द्वारा सात बार बाँये हाथ को मूल मन्त्र से आलभन करे और दश बार छटे मन्त्र से दिशाओं का बन्ध बताया गया है ।।३।।४।। वाम से तीर्थ का आलभन करके फिर सव्य अर्थात् दाहिने हाथ से शरीर का अनुलेपन करे और स्नान करके समस्त मन्त्रों के द्वारा भगवान् सूर्य का स्मरण करते हुए तीर्थ जल का अभिषेक करना चाहिए ।।५।। शृङ्ग से पत्तों के पुटकों के द्वारा अथवा पलाश के दल से अभिषेक करना चाहिए । फिर इन विविध 'ॐ भू ॐ भुव" इत्यादि परम शुभ तथा समस्त सिद्धियों के करने वाले मन्त्रों के द्वारा अभिषेक करे ।।६।। हे सुव्रत ! समस्त देवों में परम सार भूत वाष्कलादि अङ्गों को मैं बतलाऊँगा ।।७।। ॐ भू -ॐ भुव ॐ स्व ॐ मह -ॐ जनः-ॐ तप ॐ सत्यम् ॐ ऋतम्-ॐ ब्रह्म ये नवाक्षर मन्त्र वाष्कल कहे गये हैं । इनकी यौगिकाक्षर संज्ञा बताते हैं-सात लोक प्रलय की अवधि तक क्षरित अर्थात् नष्ट नहीं होते हैं और ऋत अर्थात् अक्षर कहा जाता है ।

प्रणव से आदि लेकर नमः-इसके अन्त तक सत्य अक्षर कहा गया है ।।८।।

ॐ भूर्भुवः सुवः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धिया यो नः प्रचोदयात् ।
ॐ नमः सूर्याय खखोल्काय नमः ।।९
मूलमंत्रमिदं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः ।
नवाक्षरेण दीप्तास्यं मूलमंत्रेण भास्करम् ।।१०
पूजयेदगमंत्राणि कथयामि यथाक्रमम् ।
वेदादिभिः प्रभूतार्च प्रणवेन च मध्यमम् ।।११
ॐ भूः ब्रह्म हृदयाय ॐ भुवः विष्णुशिरसे ॐस्वः रुद्रशिखायै
ॐभूर्भुवः स्वः ज्वाला मालिनीशिखायै ॐ महः महेश्वराय
कवचाय ॐजनः शिवाय नेत्रेभ्य ॐतपः तापकायअस्त्राय फट्।
मत्राणि कथितान्येवं सौराणि विविधानि च ।
एतैः भृङ्गादिभिः पात्रै स्वात्मानमभिषेचयेत् ।।१२
ताम्रकुंभेन वा विप्र क्षत्रियो वैश्य एव च ।
सकुशेन सपुष्पेण मंत्रैः सर्वैः समाहितः ।।१३
रक्तवस्त्रपरीधानः स्वाचामेद्विधिपूर्वकम् ।
सूर्यश्चेति दिवा रात्रौ चाग्निश्चेति द्विजोत्तमः ।।१४

अब मूल मन्त्र बताते हैं–'ॐ भूर्भुवः सुवः तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि। धियो योनः प्रचोदयात् । ॐ नमः सूर्याय खखोल्काय नमः" ।।९।। यह भगवान् भास्कर का मूल मन्त्र बताया गया है । इस नवाक्षर मूल मन्त्र से दीप्त मुख वाले महात्मा भास्कर का पूजन करना चाहिए अब अङ्ग मात्रों का क्रम के अनुसार कहता हूँ जो कि प्रणव से प्रभूत आद्य वाला और वेदादि व्याहृतियों से मध्यम है ।।१०।।११।। सात अङ्ग मन्त्र ये होते हैं-ॐ भूः ब्रह्म हृदयाय-ॐ भुवः विष्णु शिरसे-ॐ स्वः रुद्र शिखायै ॐ भूर्भुवः स्वः ज्वाला मालिनी शिखायै-ॐ महः महेश्वराय कवचाय ॐ जनः शिवाय नेत्रेभ्य-ॐ तापकाय अस्त्राय फट् । ये सौर विविध मन्त्र बता दिये गये हैं । इन मन्त्रों से भृङ्गादि पात्रों के द्वारा स्वात्मा का अभिषेचन करना चाहिए ।।१२।। विप्र-क्षत्रिय और वैश्य हो

अर्थात् मुद्रादि को छोड़कर कुशों और पुष्पों के सहित अथवा ताम्र कुम्भ से समाहित होकर इन समस्त मन्त्रों से अभिषेक करें ॥१३॥ रक्त वर्ण के वस्त्र का परिधान करने वाला द्विजोत्तम "सूर्यश्च"—इत्यादि मन्त्र से दिन में और 'अग्निश्च'—इत्यादि मन्त्र से सायङ्काल में विधि पूर्वक आचमन करे ॥१४॥

आप पुनन्तु मध्याह्ने मन्त्राचमनमुच्यते ।
षष्ठेन शुद्धिं कृत्वैव जपेदाद्यमनुत्तमम् ॥१५
चौपहंत तथा मूलं नवाक्षरमनुत्तमम् ।
करशाखा तथांगुष्ठमध्यमानामिकां न्यसेत् ॥१६
तले च तर्जन्यगुष्ठं मुष्टिमागानि विन्यसेत् ।
नवाक्षरमयं देहं कृत्वाग्नेरपि पावितम् ॥१७
सूर्योऽहमिति सञ्चिन्त्य मंत्रैरेतैर्यथाक्रमम् ।
वामहस्तगतैरद्भिर्गन्धसिद्धार्थकान्वितैः ॥१८
कुशपुंजेन चाभ्युक्ष्य मूलाग्रैरष्टधा स्थितैः ।
आपो हिष्ठादिभिश्चैव शेषमाघ्राय वै जलम् ॥१९
वामनासापुटेनैव देहे संभावयेच्छिवम् ।
अर्घ्यमादाय देहस्य सव्यनासापुटेन च ॥२०
कृष्णवर्णेन बाह्यस्थं भावयेच्च शिला गतम् ।
तर्पयेत्सर्वदेवेभ्य ऋषिभ्यश्च विशेषतः ॥२१
भूतेभ्यश्च पितृभ्यश्च विधिनार्घ्यं च दापयेत् ।
व्यापिनी च परा ज्योत्स्ना संध्या सम्यगुपासयेत् ॥२२

मध्याह्न के समय में 'आप पुनन्तु'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा आचमन करना बताया जाता है। षष्ठ मन्त्र से शुद्धि करके ही आद्य सर्वोत्तम चौपहन्त नवाक्षर मन्त्र का एक प्रहर तक जाप करना चाहिए ॥१५॥ कर न्यास बताते हुए कहते हैं-कर की शाखाऐं जो अंगुष्ठ-मध्यमा-अनामिका तर्जनी तल और मुष्टि भाग हैं उनमें विन्यास करना चाहिए। यह देह नवाक्षर मय है-ऐसा करके पूर्वोक्त अग्नि मन्त्रों के द्वारा पावित करना चाहिए। ॥१६॥१७॥ मैं स्वयं सूर्य हूँ ऐसा चिन्तन करके इन

मन्त्रों के द्वारा यथा क्रम से गन्ध और सिद्धार्थक से युक्त बांये हाथ में रहने वाले जल से कुश पुंज के द्वारा मूलाग्र आठ प्रकार से स्थित "आयोदिष्ठा मयो भुवः"—इत्यादि मन्त्रों से अभ्युक्षण करे और शेष जल को वाम नासा पुट से सूंघ कर देह मे शिव का चिन्तन करना चाहिए। उस आघ्राण जल को लेकर जो कि अपने देह मे स्थित अज्ञान है उसे कृष्ण वर्ण वाले पाप पुरुष के सहित वाम नासिका के पुट के द्वारा बाहरस्थ करके शिला गत होने की भावना करनी चाहिए। फिर सम्पूर्ण देवों का तथा विशेष रूप से ऋषियो का तर्पण करना चाहिए ॥१८॥ ॥१६॥२०॥२१॥ भूतों के लिये और पितृगण के लिये विधि के साथ अर्घ्य देना चाहिए। फिर परा व्यापिनी ज्योत्स्ना सन्ध्या की भली-भाँति उपासना करे ॥२२॥

प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने अर्घ्यं चैव निवेदयेत् ।
रक्तचंदनतोयेन हस्तमात्रेण मंडलम् ॥२३
सुवृत्तं कल्पयेद्भूमौ प्रार्थयेत द्विजोत्तमाः ।
प्राङ्मुखस्ताम्रपात्रं च सगध प्रस्थपूरितम् ॥२४
पूरयेद्गंधतोयेन रक्तचंदनकेन च ।
रक्तपुष्पैस्तिलैश्चैव कुशाक्षतसमन्वितैः ॥२५
दूर्वापामार्गगव्येन केवलेन घृतेन च ।
आपूर्य मूलमंत्रेण नवाक्षरमयेन च ।
जानुभ्यां धरणीं गत्वा देवदेवं नमस्य च ॥२६
कृत्वा शिरसि तत्पात्रमर्घ्यं मूलेन दापयेत् ।
अश्वमेधायुतं कृत्वा यत्फलं परिकीर्तितम् ॥ ७
तत्फलं लभते दत्त्वा सौरार्घ्यं सर्वसम्मतम् ।
दत्त्वैवार्घ्यं यजेद्भक्त्या देवदेवं त्रियंबकम् ॥ ८

प्रतिदिन तीन बार प्रातःकाल-मध्याह्न और सायङ्काल में अर्घ्य समर्पित करना चाहिए। अब सौर अर्घ्य की विधि बतलाते हुए कहते हैं कि भूमि मे रक्त चन्दन के जल से एक हाथ भर के प्रमाण वाला सुवृत्त मण्डल की कल्पना करे और प्रार्थना करनी चाहिए। पूर्व की ओर मुख

करके स्थित हो प्रस्थ पूरित गन्ध से युक्त ताम्र पात्र को रक्त चन्दन वाले गन्ध जल से पूरित कर देवे। उसमें रक्त वर्ण के पुष्प-तिल-कुश-अक्षत दूर्वा अपामार्ग-गव्य अथवा केवल घृत से ही भरकर रक्खे। इसकी पूर्त्ति नवाक्षर मय मूल मन्त्र से करे। घुटनों को पृथ्वी पर टेककर देवों के देव को नमस्कार करके शिर पर उस पात्र को करके मूल मन्त्र के द्वारा अर्घ्य देना चाहिए। इसका फल एक अयुत अश्वमेध के समान बताया गया है ॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥ अयुत (दश सहस्र) अश्व-मेध यज्ञों के तुल्य ही सौर अर्घ्य का सर्व सम्मत फल देने वाला प्राप्त किया करता है। इस अर्घ्य को देकर फिर भक्ति भाव के साथ भगवान् देवदेव त्र्यम्बक का यजन करना चाहिए ॥२८॥

अथवा भास्कर चेष्ट्वा आग्नेय स्नानमाचरेत्।
पूर्ववद्धि शिवस्नानं मंत्रमात्रेण भेदितम् ॥२९
दनध्यानपूर्वं च स्नानं सौरं च शाङ्करम्।
विघ्नेश वरुणं चैव गुरुं तीर्थे समर्चयेत् ॥३०
बद्धा पद्मासनं तीर्थे तथा तीर्थं समर्चयेत्।
तीर्थं सगृह्य विधिना पूजास्थानं प्रविश्य च ॥३१
स गॅराध्यं रविनेत्र तदाक्रम्य च पादुकम्।
पूर्ववत्करविन्यास देहविन्यासमाचरेत् ॥३२
अर्घ्यस्य सादन चव समासात्परिकीर्तितम्।
बद्धा पद्मा न योगी प्राणायाम समभ्यसेत् ॥३३
रक्तपुष्पाणि सगृह्य कमलाद्यानि भावयेत्।
आत्मनो दक्षिणे स्थ प्य जलभाण्ड च वामतः ॥३४
ताम्रपात्राणि सौरा ण सव कामार्थसिद्धये।
अर्घ्यपात्र सम दाय प्रक्षाल्य च यथाविधि ॥३५

भास्कर की समर्चना के अनन्तर सबसे पूर्व शिवार्चन करना चाहिए और उसके लिये शिव स्नान करे। उसी स्नान की विधि बताते हुए कहा जाता है कि सूर्य का यजन करके आग्नेय स्नान करे। सौर स्नान की भाँति ही शिव स्नान भी मन्त्र द्वारा पूर्ववत् होता है केवल मन्त्रों का

ही भेद होता है ॥२६॥ पूर्व मे दन्त धावन आदि शारीरिक कृत्य समाप्त करके सौर तथा फिर शाङ्कर स्नान करना चाहिए। विघ्नो के स्वामी गणेश-वरुण और गुरु का अर्चन तीर्थ मे करे ॥३०॥ तीर्थ मे पद्मासन बाँध कर स्थित हो जावे और फिर तीर्थ की अर्चना करनी चाहिए। विधि के साथ तीर्थ का सग्रह करे और फिर पूजा के स्थान मे प्रवेश करना चाहिए ॥३१॥ अर्घ्य से पवित्र मार्ग के द्वारा तथा पादुकाएँ धारण कर वहाँ प्राप्त होवे। पूर्व मे बताये हुए करन्यास तथा अङ्गो के विन्यास करने चाहिएँ ॥३२॥ अर्घ्य का सादन सक्षेप से कीर्तित किया गया है। योगी को पद्मासन बाँधकर प्राणायाम करने का अभ्यास करना चाहिए ॥३३॥ रक्त वर्ण के पुष्पो का सग्रह करके तथा कमल आदि की भावना करनी चाहिए। इन पुष्पो को अपने दाहिनी ओर रक्खें और जल के पात्र को बाँई ओर स्थापित करना चाहिए ॥३४॥ सौर ताम्र पात्र सम्पूर्ण कामो की सिद्धि के लिये होते हैं। अर्घ्य पात्र को लेकर उसे विधि के अनुसार प्रक्षालन करे ॥३५॥

पूर्वोक्तेनाबुना सार्ध जलभाडे तथैव च ।
अस्त्रोदकेन चैवार्घ्यमर्घ्यद्रव्यसमन्वितम् ॥३६
सहितामत्रित कृत्वा सपूज्य प्रथमेन च ।
तुरीयेण वगु ठ्य व स्थापयेदात्मनो परि ॥३७
पाद्यमाचमनीय च गधपुष्पसमन्वितम् ।
अ मसा शोधिते पात्रे स्थापयेत्पूर्ववत्पृथक् ।
सहितां चैव विन्यस्य कवचेनावगु ठ्य च ॥३८
अर्घ्याबुना समभ्युक्ष्य द्रव्याणि च विशेषत ।
आदित्य च जपेद्दे व सवदेवनमस्कृतम् ॥३६
आदित्यो वै तेज ऊर्जो बल यश िवधति ।
इत्यादिना नमस्कृत्य कल्पयेदासन प्रभो ॥४०

पहिले कहे हुए जल के साथ उसी प्रकार से जल के पात्र मे अर्घ्य द्रव्यो से युक्त अर्घ्य को अस्त्रोदक से देना चाहिए ॥३६॥ सहिता के मन्त्र से अभिमन्त्रित करके तथा प्रथम मन्त्र से भली भाँति पूजन करके एव

तुरीय मन्त्र से अवगुण्ठन करके अपने ऊपर स्थापित करना चाहिए ।।३७।। पाद्य तथा आचमनीय को गन्ध एवं पुष्पों से समन्वित करके पूर्व की भाँति जल से शोधित किये हुए पात्र मे पृथक् स्थापित करें। संहिता का विन्यास करके और कवच से अवगुण्ठित करके अर्घ्य के जल से विशेष तौर पर द्रव्यों का अभ्युक्षण करे। फिर समस्त देवों के द्वारा वन्द्यमान आदित्य देव का जाप करना चाहिए ।।३८।।३९।। आदित्य निश्चय ही तेज ऊज बल और यश को विशेष रूप से बढाते हैं—इत्यादि के द्वारा नमस्कार करके प्रभु के आसन की कल्पना करनी चाहिए ।।४०।।

प्रभूत विमल सारमाराध्य परम सुखम् ।
आग्नेय्यादिषु कोणेषु मध्यमात हृदा न्यसेत् ।।४१
अ ग प्रविन्यसेच्चैव बीजमकुरमेव च ।
नाल सुषि संयुक्त सूत्रकटकसंयुतम् ।।४२
दल दल ग्र सु वेत हेमाभ रक्तमेव च ।
कर्णिकाकेसरोपेत दीप्ताद्यै शक्तिभिर्वृतम् ।।४३
दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला क्रमात् ।
अघोरा विकृता चैव दीप्ताद्याश्च ष्टशक्तय ।।४४
भास्कराभिमुखा सर्वा ।
कृताञ्जलिपुटा शुभा ।
अथवा पद्महस्ता वा सर्वाभरणभूषिता ।।४५
मध्यतो वरदा देवी स्थापयेत्सर्वतोमुख म् ।
आवाहयेत्ततो देवों भास्कर परमेश्वरम् ।।४६
नवाक्षरेण मन्त्रेण ग्राकृष्णेनेत्येन भास्करम् ।
आवाहने च सान्निध्यमनेनैव विधीयते ।।४७

प्रभूत विमल सार आराध्य परम सुख आसनो को आग्नेय आदि कोणो मे और मध्यमान्त अर्थात् महरन्त व्याहृति चतुष्टय को हृदय से न्यास करना चाहिए ।।४१।। पूर्वोक्त अङ्ग का न्यास करे पर बीज धर्म क द रूप अ कुर छिद्र युक्त नाल सूत्र कण्टक स संयुत दल शुक्ल, रक्ताभ हमाभ दलाग्र और दीप्ता आदि शक्तियों से युक्त तथा कर्णिका

एव केसर से समन्वित कमल का चिन्तन करना चाहिए ।।४२।।४३।। अब दीप्ता आदि आठ शक्तियों को बतलाते हैं–उन आठों शक्तियों के नाम ये हैं–दीप्ता-सूक्ष्मा-जया भद्रा-विभूति-विमला-अमोघा और विद्युता ये आठ शक्तियाँ हैं ।।४४।। ये समस्त शक्तियाँ भास्कर के अभिमुख रहने वाली हैं । ये परम शुभ एव अञ्जलि पुट को बाँधे हुए रहा करती हैं । अथवा ये पद्म हाथों मे लिये रहती हैं और सम्पूर्ण आभरणों से विभूषित होती हैं ।।४५।। इन सब के मध्य मे सर्वतोमुखी-वरदा गायत्री देवी को स्थापित करे और इसके अनन्तर देवी का आवाहन करे । परमेश्वर भास्कर देव का बाष्कलोक्त नवाक्षर मन्त्र के द्वारा आवाहन मे सान्निध्य करे ।।४६।।४७।।

मुद्रा च पद्ममुद्राख्या भास्करस्य महात्मन ।
मूलेनार्घ्यं ततो दद्यात्पाद्यमाचमन पृथक् ।।४८
पुनरर्घ्यप्रदानेन बाष्कलेन यथाविधि ।
रक्तपद्मानि पुष्पाणि रक्तचदनमेव च ।।४९
दीपधूपादिनैवेद्य मुखवासादिरेव च ।
ताम्बूलवर्तिर्द प द्य बाष्कलेन विधीयते । ५०
आग्नेय्या च तथैशान्या नैर्ऋत्या वायुगोचरे ।
पूर्वस्या पश्चिमे चैव षट्प्रकार विधीयते ।।५१
नेत्राख विधिनाऽभ्यर्च्य प्रणवादिनमोनकम् ।
कर्णिकाया प्रविषस्य रूपकध्यान माचरेत् ।।५२
सर्व विद्युत्प्रभा शान्ता रौद्रमस्त्रं प्रकीर्तितम् ।
दंष्ट्राकरालवदन घ्रुटमूर्ति भयकरम् ।।५३
वरद दक्षिण हस्त वाम पद्मविभूषितम् ।
सर्वाभरणसपन्ना रक्तस्रगनुलेपना ।।५४
रक्ताबरधरा सर्वा मृतयस्तस्य सस्थिता ।
समडलो महादेवः सिंदूरारुण विग्रह ।।५५

महान् आत्मा वाले भगवान् भास्कर की पद्ममुद्रा नाम वाली मुद्रा है । इसके अनन्तर मूल मन्त्र से अर्घ्य देना चाहिए और पाद्य तथा

आचमन पृथक् देवे ।।४८।। पुनः अर्घ्य प्रदान के द्वारा जो कि वाष्कल से यथा विधि ही जाना चाहिए। रक्त चन्दन-रक्त वर्ण वाले पुष्प एव कमल-धूप दीप-नैवेद्य मुख वासादि ताम्बूल और आत्ति दीर आदि वाष्कल मन्त्र से ही की जाती है ।।४६।।५०।। छै प्रकार का यजन किया जाता है-पूर्व पश्चिम-याम्यवी-ऐशानी नैर्ऋत्य और वायव्य दिशोदिशाओं मे किया जाता है ।।५१।। प्रणव से आदि लेकर नमः-इसके अन्त तक विधि से तत्तद वयव शब्दो के द्वारा नेत्रान्त तक अभ्यर्चन करके अपने हृदय कमल की कर्णिका में विन्यास करे और फिर प्रतिबिम्ब का ध्यान करना चाहिए ।।५२।। सम्पूर्ण हृदय आदि परम शान्त और विद्युत् के समान प्रभा से परिपूर्ण हैं और रौद्र अस्त्र है। दृष्ट्रा से विकराल वदन वाले-आठ मूर्तियों (शक्तियों) से युक्त भयङ्कर हैं ।।५३।। दक्षिण हाथ से वरदान देने वाले और वाम हस्त मे पद्म शोभित हो रहा है। उसकी समस्त मूर्तियाँ सम्पूर्ण भूषणों से विभूषित हैं तथा रक्त स्रक् और रक्त अनुलेपन से युक्त हैं। सभी रक्त वर्ण के वस्त्र धारण किये हुए हैं। इस प्रकार से संस्थित मूर्तियों का ध्यान करना चाहिए। सिन्दूर से अरुण विग्रह वाले मण्डल से युक्त महादेव है ।।५४।।

पद्महस्तोऽमृतास्त्रश्च द्विहस्तनयनः प्रभुः ।
रक्ताभरणसंयुक्तो रक्तस्रगनुलेपनः ।।५५
इत्थरूपधरं ध्यायेद्भास्करं भुवनेश्वरम् ।
पद्मवाह्ये शुभं चाग्र मडलेपु समंततः ।।५७
सोममंगारकं चैव बुधं बुद्धिमतांवरम् ।
बृहस्पतिं महाबुद्धिं रुद्रपुत्रं च भार्गवम् ।।५८
शनैश्चरं तथा राहुं केतुं धूम्रं प्रकीर्तितम् ।
सर्वे द्विनेत्रा द्विभुजा राहुश्चोर्ध्वशरीरधृक् ।।५९
विवृतास्योंजलिं कृत्वा भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः ।
शनैश्चरश्च दंष्ट्रास्यो वरदाभयहस्तधृक् ।।६०
स्वैःस्वैर्भावैः स्वनाम्ना च प्रणवादिनमोंतकम् ।
पूजनीयाः प्रयत्नेन धर्मकामार्थसिद्धये ।।६१

सप्तसप्तगणांश्चैव वहिर्देवस्य पूजयेत् ।
ऋषयो देवगंधर्वाः पन्नगाप्सरसां गणाः ॥६२
ग्रामण्यो यातुधानाश्च तथा यक्षाश्च मुख्यतः ।
सप्ताश्वान् पूजयेदग्रे सप्तच्छदोमयान् विभोः ॥६३
वालखिल्यगणं चैव निर्माल्यग्रहणं विभोः ।
पूजयेदासनं मूर्तेर्देवतामपि पूजयेत् । ६४

भुवनेश्वर भगवान् भास्कर का ध्यान इस प्रकार से करना चाहिए कि उनके हस्त में पद्म है और वे अमृत मुख वाले हैं। उनके दो हस्त तथा दो नयन हैं और रक्त आभरण से युक्त एवं लाल माला और अनुलेपन वाले हैं ॥५६॥ ऐसे स्वरूप वाले सूर्य देव का ध्यान करे। चारों ओर मण्डलो मे इनके पद्म हैं जो कि परम शुभ हैं ॥५७॥ सूर्य देव के आस पास अन्य सोम भौम बुध जो कि बुद्धिमानो मे अतिश्रेष्ठ हैं—महान् बुद्धिशाली बृहस्पति-रुद्र पुत्र भार्गव-शनैश्चर राहु केतु और धूम्र स्थित हैं। ये सभी दो नेत्र और दो भुजा वाले हैं। राहु ऊर्ध्व शरीर के धारण करने वाला है ॥५८॥५६॥ मण्डलो मे इन सब की पूजा करनी चाहिए। राहु विवृत (खुले हुए) मुख वाला है और अञ्जलि करके भृकुटियो से कुटिल दृष्टि वाला है। शनैश्चर दष्ट्रा से युक्त मुख वाला तथा वर और अभय हाथो मे धारण करने वाला है ॥६०॥ अपने २ भावो से तथा अपने उनके नाम से प्रणव से लेकर नम -इस के अन्त तक धर्म-काम और अर्थ की सिद्धि के लिये प्रयत्न पूर्वक ये सभी पूजा करने के योग्य हैं ॥६१॥ देव के बहिर्भाग मे सात-सात गणो की पूजा करे। ऋषि देव गन्धर्व-पन्नग-अप्सराओ के गण हैं। ग्रामणी-यातुधान तथा मुख्यतया यक्ष इनके गण हैं। पहिले विभु के छन्दोमय सात अश्वो का पूजन करे ॥६२॥६३॥ विभु के निर्माल्य ग्रहण करने वाले वालयखिल्य गण का यजन करे। मूर्ति के आसन को तथा देवता का भी पूजन करना चाहिए ॥६४॥

अर्घ्यं च दापयेत्तेषां पृथगेव विधानतः ।
आवाहने च पूजाते तेषामुद्वासने तथा ॥६५

सहस्र वा तदर्धं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ।
बाष्कलं च जपेदग्रे दशांशेन च योजयेत् ॥६६
कुंडं च पश्चिमे कुर्याद्वर्तुलं चैव मेखलम् ।
चतुरंगुलमानेन चोत्सेधाद्विस्तरादपि ॥६७
एकहस्तप्रमाणेन नित्ये नैमित्तिके तथा ।
कृत्वाश्वत्थदलाकारं नाभिं कुंडे दशांगुलम् ॥६८
तदर्धेन पुरस्तात्तु गजोष्ठसदृशं स्मृतम् ।
गलमेकांगुलं चैव शेषं द्विगुणविस्तरम् ॥६९
तत्प्रमाणेन कुंडस्य त्यक्त्वा कुर्वीत मेखलाम् ।
यत्नेन साधयित्वैव पश्चाद्धोमं च कारयेत् ॥७०

पृथक् विधान से उनको अर्घ्य देना चाहिए । उन सूर्यादि के आवाहन मे और पूजा के अन्त मे उद्वासन मे एक सहस्र-पाँच सौ अथवा अष्टोत्तर शत बाष्कल मन्त्र का आगे जाप करे और उसका दशांश हवन करना चाहिए ॥६५॥६६॥ अब हवन की विधि बताई जाती है—मण्डल के पश्चात् भाग मे कुण्ड की रचना करे जो कि वर्तुल होना चाहिए । ऊँचाई और विस्तार मे चार अंगुल प्रमाण से युक्त होवे ॥६७॥ नित्य नैमित्तिक कर्म में एक हाथ प्रमाण वाला बनावे जो कि पीपल के पत्ते का आकार वाला होना चाहिए । उस कुण्ड मे दश अंगुल की नाभि करनी चाहिए ॥६८॥ इसके आधे प्रमाण वाला अर्थात् पाँच अंगुल से युक्त गज के ओठ के समान गल की रचना करे । एक अंगुल और शेष द्विगुण विस्तार वाला बनावे ॥६९॥ कुण्ड के दो अंगुल प्रमाण भाग को त्याग करके मेखला की रचना करे । इस प्रकार से यत्न से साधन करके पीछे होम करना चाहिए ॥७०॥

पद्मेनोल्लेखनं कुर्यात्प्रोक्षयेद्वारिणा पुनः ।
आसनं कल्पयेन्मध्ये प्रयत्नेन समाहितः ॥७१
प्रभावती ततः शक्तिमाद्यनैव तु विन्यसेत् ।
बाष्कलेनैव संपूज्य गंधपुष्पादिभिः क्रमात् ॥७२
बाष्कलेनैव मन्त्रेण क्रियां प्रति यजेत्पृथक् ।

मूलमंत्रेण विधिना पश्चात्पूर्णाहुतिर्भवेत् ॥७३
क्रमादेव विधानेन सूर्या ग्नर्जनितो भवेत् ।
पूर्वोक्तेन विधानेन प्रागुक्त कमल न्यसेत् ॥७४
मुखोपरि समभ्यर्च्य पूर्ववद्भास्करं प्रभुम् ।
दशैव हुतयो देया बाष्कलेन महामुने ॥७५
अ गाना च तथैकैकं संहिताभि पृथक् पुनः ।
जयादिस्विष्टपर्यंत मिध्मप्रक्षेपमेव च ॥७६
सामान्य सर्वम गेषु पारपर्यक्रमेण च ।
निवेद्य देवदेवाय भास्करायामितात्मने ॥७७
पूजाहोमादिक सर्वं दत्त्वार्घ्यं च प्रदक्षिणम् ।
अ गे संपूज्य संक्षिप्य हृद्युद्वास्य नमस्य च ॥७८

पद्य से उल्लेखन करे और जल से प्रोक्षण करे और पूर्णतया समाहित होकर प्रथम से मध्य मे आसन की कल्पना करनी चाहिए और आद्य के द्वारा ही प्रभावती शक्ति का वहाँ पर विन्यास करना चाहिए। फिर बाष्कल मन्त्र के द्वारा ही गन्धाक्षत पुष्पादि से क्रम पूर्वक यजन करना चाहिए। इसके पश्चात् मूल मन्त्र से पूर्णाहुति होनी चाहिए। ॥७१॥७२॥७३॥ क्रम से इस प्रकार के विधान से सूर्याग्नि जनित होती है। पहिले कहे हुए विधान से प्रथमोक्त कमल का न्यास करना चाहिए ॥७४॥ हे महामुने ! मुख के ऊपर पूर्व की भाँति भास्कर प्रभु की अभ्यर्चना करे और फिर बाष्कल मन्त्र से दश आहूतियाँ देनी चाहिएँ ॥७५॥ सहिता की ऋचाओं से फिर अङ्गों की पृथक् एक-एक आहुति देवें। जयादि से स्विष्ट पर्यन्त पारम्पर्य क्रम से सर्व भागों में सामान्य इध्म का प्रक्षेप करे ॥७६॥ देवो के देव अमित आत्मा वाले भास्कर के लिये पूजा तथा होम आदि सब को निवेदित करे और अर्घ्य द र प्रदक्षिणा करे। अङ्गों के द्वारा भली भाँति पूजा करके फिर उपसहार करे। हृदय कमल मे विसर्जन करके नमस्कार करे ॥७७॥७८॥

शिवपूजां तत कुर्याद्धर्मकामार्थसिद्धये ।
एवं संक्षेपत. प्रोक्तं यजनं भास्करस्य च ॥७९

य सकृद्वा यजेद्देवं देवदेवं जगद्गुरुम् ।
भास्कर परमात्मानं स याति परमां गतिम् ॥८०
सर्वपापविनिर्मुक्त सर्वपाप विवर्जित ।
सर्वैश्वर्यसमोपेतस्तेजसाप्रतिमश्च स· ॥८१
पुत्रपौत्रादिमित्रैश्च बाधवैश्व समतत. ।
भुक्त्वैव विपुलान् भोगानिहैव धनधान्यवान् ॥८२
यानवाहनसपन्नो भूषणैर्विविधैरपि ।
काल गतोपि सूर्येण मोदते कालमक्षयम् ॥८३
पुनस्तस्मादिहागत्य राजा भवति धार्मिक ।
वेदवेदागसपन्नो ब्राह्मणो वात्र जायते ॥८४
पुन प्राग्वासनायोगाद्धार्मिको वेदपारग ।
सूर्यमेव समभ्यर्च्य सूर्ये सायुज्यमाप्नुयात् ॥८५

इसके अनन्तर भगवान् शिव की पूजा धर्म और कामार्थ की सिद्धि के लिये करनी चाहिए । इस प्रकार से भगवान् भास्कर देव के यजन को अति सक्षेप से कह दिया है ॥७९॥ जो कोई पुरुष देवो के देव जगत् के गुरु परमात्मा भास्कर देव का यजन एकबार किया करता है वह परम गति को प्राप्त किया करता है ॥८०॥ भास्कर का याजक भक्त समस्त प्रकार के पापो से छुटकारा पाने वाला हो जाया करता है और वह सभी पापो से सर्वदा रहित होता है । भास्कर के पूजन करने वाला सब ऐश्वर्यों से सयुक्त और तज से अनुपम हुआ करता है ॥८१॥ भास्कर भक्त पुत्र पौत्र आदि मित्रो तथा बान्धवो के सहित चारो ओर यहाँ पर बहुत से भोगो का उपभोग करके धन धान्य से सयुत होकर, यानो और वाहनो सम्पन्न होता हुआ एव अनेक प्रकार के भूषणो से विभूषित होकर मृत्यु को प्राप्त होकर भी सूर्यदेव के द्वारा अक्षय काल पर्यन्त मोद को प्राप्त होता है ॥८२॥८३॥ पुन यहाँ ससार मे उत्पन्न होकर परम धर्म निष्ठ राजा हुआ करता है अथवा वेद तथा वेद के सम्पूर्ण अङ्गों में ज्ञान वाला ब्राह्मण होता है । ॥८४॥ चाहे क्षत्रिय रज वश मे समुत्पन्न होकर या वेद वेदाङ्ग का ज्ञाता ब्राह्मण कुल मे जन्म ग्रहण करके पूर्व जन्म

की वासना के योग से वेदों का पारगामी धार्मिक पुरुष इस जन्म में भी वह सूर्य की अर्चना करके अन्त में सूर्य के सायुज्य को प्राप्त होता है।८५।

।। ९२–अंग मंत्र-विद्या सहित शंकरार्चन ।।

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि शिवार्चनमनुत्तमम् ।
त्रिसन्ध्यमर्चयेदीशमग्निकार्यं च शक्तितः ।।१
शिवस्नानं पुरा कृत्वा तत्वशुद्धिं च पूर्ववत् ।
पुष्पहस्तः प्रविश्याथ पूजास्थानं समाहितः ।।२
प्राणायामत्रयं कृत्वा दाहनाप्लावनानि च ।
गंधादिवासितकरो महामुद्रां प्रविन्यसेत् ।।३
विज्ञानेन तनुं कृत्वा ब्रह्माग्नेरपि यत्नतः ।
अव्यक्तबुद्ध्यहंकारतन्मात्रासंभवां तनुम् ।।४
शिवामृतेन संपूतां दिव्यस्य च यथातथम् ।
अधोनिष्ठ्या वितस्त्या तु नाभ्यामुपरि तिष्ठति ।।५
हृदयं तद्विजानीयाद्विश्वस्यायतनं महत् ।
हृत्पद्मकर्णिकायां तु देवं साक्षात्सदाशिवम् ।।६
पंचवक्त्रं दशभुजं सर्वाभरणभूषितम् ।
प्रतिवक्त्रं त्रिनेत्रं च शशांककृतशेखरम् ।।७
बद्धपद्मासनासीनं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
ऊर्ध्वं वक्त्रं सितं ध्यायेत्पूर्वं कुंकुमसन्निभम् ।।८
नीलाभं दक्षिणं वक्त्रमतिरक्तं तथोत्तरम् ।
गोक्षीरधवलं दिव्यं पश्चिमं परमेष्ठिनः ।।९

(अङ्ग मन्त्र विद्या सहित शिवार्चन)–इस अध्याय में मूर्ति विद्या के सहित अङ्ग मन्त्रों के द्वारा मानस शिवार्चन का निरूपण किया जाता है। शैलादि ने कहा—इसके अनन्तर मैं सर्वोत्तम शिव के अर्चन को बताऊँगा तीनों सन्ध्याओं के समय में ईश का अर्चन करे और शक्ति से अग्नि कार्य करना चाहिए।।१।। पहिले शिव स्नान करके फिर पूर्व की भाँति तत्वों की शुद्धि करनी चाहिए। हाथों में पुष्प लेकर पूजा के

स्थान मे प्रवेश करे और समाहित होकर तीन प्राणायाम करे तथा भूत शुद्धि मे कहे हुए दाहन प्लावन करे और गन्धादि से सुवासित करो वाला होकर महामुद्रा का विन्यास करना चाहिए ।।२।।३।। अव्यक्त बुद्धि अहङ्कार और तन्मात्राओ से समुत्पन्न तनु को शुद्ध ज्ञान से यत्न पूर्वक दग्ध करे और ब्रह्मज्ञान की अग्नि से भी उसे दग्ध करे ।।४।। अत्यन्त कल्याण अमृत से सपूत और शिव के योग्य ग्रीवा बन्ध से नीचे नाभि मे ऊपर वितस्ति मे विश्व का महत् आयतन स्थित रहता है ऐसा जानना चाहिए ।।५।। हृदय कमल की कर्णिका मे मध्य मे क्रीडा करते हुए साक्षात् देव सदाशिव का ध्यान करना चाहिए ।।६।। सदाशिव के ध्यान मे उनका स्वरूप पाँच मुखो वाला दश भुजाओ से युक्त तथा सम्पूर्ण आभरणो से सभूषित है । सदाशिव के प्रत्येक मुख मे तीन नेत्र हैं तथा चन्द्रशेखर वाले है ।।७।। पद्मासन बाँध कर विराजमान और शुद्ध स्फटिक मणि के तुल्य वर्ण वाले हैं । ऊर्ध्व मुख का श्वेत वर्ण है ऐसा ध्यान करना चाहिए । पूर्व की ओर रहने वाला मुख कुकुम के समान आभा से युक्त है । दक्षिण मुख नीली आभा से सम्पन्न है और उत्तर की ओर मुख अत्यधिक रक्त वर्ण वाला है । परमेष्ठी का पश्चिम की ओर वाला मुख गौ के दुग्ध के तुल्य दिव्य एव धवल है ।।८।।९।।

शूल परशुखड्ग च वज्र शक्ति च दक्षिणे ।
वामे पाशाकुश घटा नाग नाराचमुत्तमम् ।।१०
वरदाभयहस्त वा शेष पूर्ववदव तु ।
सर्वाभरणसंयुक्त चित्रावरधर शिवम् ।।११
ब्रह्मागविग्रह देव सर्वदेवोत्तमोत्तमम् ।
पूजयेत्सर्वभावेन ब्रह्मागैर्ब्रह्मणः पतिम् ।।१२
उक्तानि पच ब्रह्माणि शिवागानि शृणुष्व मे ।
शक्ति भूतानि च तथा हृदयादीनि सुव्रत ।।१३
ॐ ईशान. सर्वविद्याना हृदयाय शक्तिबीजाय नमः ।
ॐ ईश्वर· सर्वभूतानाममृताय शिरसे नमः ।।१४

सदाशिव के दक्षिण हस्त में शूल-परशु-खड्ग-वज्र-शक्ति आयुध

शोभित है । बाँये हाथ में पाश-अंकुश-धारा-नाग और उत्तम नाराच विराजमान है ॥१०॥ शेष हाथ पूर्ववत् वरदान तथा अभयदान देने वाले हैं । शिव समस्त प्रकार के आभरणों से अलंकृत हैं और चित्र अम्बर के धारण करने वाले हैं ॥११॥ सद्योजातादङ्ग से विशिष्ट विग्रह वाले तथा सम्पूर्ण देवों में सर्वोत्तम देव ब्रह्मा के पति का सर्व भाव से ब्रह्माङ्गों से पूजन करना चाहिए ॥१२॥ हे सुव्रत ! शिव के अङ्ग पाँच ब्रह्म कहे गये हैं । उनको तुम मुझ से श्रवण करो । और शक्तिभूत हृदयादि को सुन लो ॥१३॥ अब ये मन्त्र बताये जाते हैं—ओम् सर्व विद्याओं के ईशान शक्ति बीज हृदय के लिये नमस्कार है । ॐ सर्व भूतों के ईश्वर अमृत शिर के लिये नमस्कार है ॥१४॥

ॐ ब्रह्माधिपतये कालाग्निरूपाय शिखायै नमः ।
ॐ ब्रह्मणोधिपतये कालचक्रमारनाय कवचाय नमः ॥१५
ॐ ब्रह्मणे बृंहणाय ज्ञानमूर्तये नेत्राय नमः ।
ॐ शिवाय सदाशिवाय पाशुपतास्त्राय अप्रतिहताय फट्फट् १६
ॐ सद्योजाताय भवेभवेनाति भवे-
भवस्य मां भवोद्भवाय शिवमूर्तये नमः ।
ॐ हंसशिखाय विद्यादेहाय आत्मस्वरूपाय-
परापराय शिवाय शिवतमाय नमः ॥१७
कथितानि शिवांगानि मूर्तिविद्या च तस्य वै ।
ब्रह्मांगमूर्ति विद्यांगसहितां शिवशासने ॥१८
सौराणि च प्रवक्ष्यामि वाष्कलाद्यानि सुव्रत ।
अ गानि सर्ववेदेषु सारभूतानि सुव्रत ॥१९
ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः-
ॐ तप. ॐ सत्यम् ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म ।
नवाक्षरमयं मंत्रं वाष्कलं परिकीर्तितम् ।
न क्षरतीति लोकेऽस्मिंस्ततो ह्यक्षरमुच्यते ।
सत्यमक्षरमित्युक्तं प्रणवादिनमोंतकम् ॥२०
ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात् ।
नमः सूर्याय खखोल्काय नमः ॥२१

ॐ ब्रह्म के अधिपति कालाग्नि के स्वरूप वाले शिखा के लिये नमस्कार है। ॐ ब्रह्म के अधिपति काल चण्ड मारुत कवच के लिये नमस्कार है ॥१५॥ ॐ ब्रह्मा बृहण ज्ञान मूर्त्ति नेत्र के लिये नमस्कार है। ओ शिव सदाशिव पाशुपत अस्त्र वाले अप्रति हत के लिये फट् फट् है ॥१६॥ ये छै अङ्गों का न्यास प्रकार है। अब मूर्त्ति का कथन किया जाता है। ॐ सद्योजात-प्रत्येक जन्म मे जन्म के अतिभव वाले-इस ससार के भी कारण स्वरूप शिव मूर्त्ति के लिये नमस्कार है। विद्या का निरूपण करते हैं-ओम् हम शिव के लिये विद्या (ज्ञान) के देह वाले-आत्म स्वरूप-पर से भी पर-परम कल्याण शिव के लिये नमस्कार है ॥१७॥ शिव के अङ्ग-शिव की मूर्त्ति और उस शिव की विद्या कथित कर दी गई है। शिव शासन मे विद्याण सहित ब्रह्माङ्ग मूर्त्ति को जानना चाहिए ॥१८॥ हे सुव्रत ! वाष्कलादि और अङ्ग जो कि वेदो मे सार भूत हैं उनको बताऊ गा ॥१९॥ अब नवाक्षर मन्त्र का स्वरूप वर्णित किया जाता है—"ॐ भू-ॐ भुव, ॐ स्व ॐ मह ॐ जन ॐ तप ॐ सत्यम्-ॐ ऋतम् ॐ ब्रह्म-यह नव अक्षरमय वाष्कल मन्त्र परिकीर्तित किया गया है। जिसका क्षरण नही होता है उसे इस लोक मे अक्षर कहा जाता है। जिसके आदि मे प्रणव और अन्त मे 'नम.'-यह होता है उसे 'सत्य-अक्षरम्' कहा गया है ॥१९॥२०॥ ॐ भूर्भुव स्व तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न प्रचोदयात्। नम सूर्याय खखोल्काय नम.'—यह महात्मा भास्कर देव का मूल मन्त्र कहा गया है। नवाक्षर मूल मन्त्र के सहित दीप्तादि शक्तियो के मन्त्र हैं जो कि अङ्ग मन्त्र कहे जाते हैं उनसे भगवान् भास्कर का पूजन करना चाहिए ॥२१॥

मूलमन्त्रमिति प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः ।
नवाक्षरेण दीप्ताद्या मूलमंत्रेण भास्करम् ॥२२
पूजयेदं।मन्त्राणि कथयामि समासतः ।
वेदादिभिः प्रभूताद्य प्रणवेन तु मध्यमम् ॥२३

ॐ भू ब्रह्मणे हृदयाय नम ।
ॐ भुव विष्णवे शिरसे नम ।
ॐ स्व रुद्राय शिखायै नम ॐ भूर्भुव स्व ज्वाला-
मालिन्यै देवाय नम ॐ महः महेश्वराय कवचाय नम ।
ॐ जन शिवाय नेत्रेभ्यो नम ।
ॐ तपस्तापनाय अस्त्राय नम ।
एव प्रसगादेवेह सौराणि कथितानि ह ।
शवानि च समासेन न्यास योगेन सुव्रत ॥२४
इत्थ मन्त्रमय देव पूजयेद्धृदयाबुजे ।
नाभौ होम तु कर्तव्य जनजितश यथाक्रमम् ॥२५
मनसा सर्व कार्याणि शिव ज्ञो देवमीश्वरम् ।
पचब्रह्मागसभूत शिवमूर्ति सदाशिवम् ॥२६
रक्तपद्मासनासीन सकलीकृत्य यत्नत ।
मूलेन मूर्तिमन्त्रेण ब्रह्मागाद्यैस्तु सुव्रत ॥२७
समिदाज्याहुतीर्हुत्वा मनसा चद्रमडलात् ।
चद्रस्थानात्समुत्पन्ना पूर्णधारामनुस्मरेत् ॥२८
पूर्णाहुतिविधानेन ज्ञानिना शिवशासने ।
शिव वक्त्रगत ध्यायेत्तेजोमात्र च शाकरम् ॥२९
ललाटे देवदेवेश भ्रूमध्ये वा स्मरेत्पुन ।
यद्वा हृत्कमले सर्वं समाप्य विधिविस्तरम् ॥३०
शुद्धदीपशिखाकार भावयेद्भवनाशनम् ।
लिगे च पूजयेद्देव स्थडिले वा सदाशिवम् ॥३१

वेदादि से प्रभूताद्य और प्रणव से मध्यम को मैं सक्षेप से कहता हूँ ॥२२॥२३॥ ओम् भू ब्रह्मा हृदय के लिये नमस्कार है। ओम् भुव विष्णु सिर के लिये नमस्कार है। ॐ स्व रुद्र शिखा के लिये नमस्कार है। ॐ भूर्भुव स्व ज्वाला मालिनी देव के लिये नमस्कार है। ॐ महेश्वर कवच के लिए नमस्कार है। ॐ जन शिव के लिये, नेत्रो के लिये नमस्कार है। ॐ तप तापन अस्त्र के लिये नमस्कार है। इस प्रकार से

यहाँ पर प्रसङ्ग से ही सौर मन्त्र कहे हैं और हे सुव्रत ! न्यास योग से संक्षेप में शैव मन्त्र कहे गये हैं ॥२४॥ इस प्रकार से मन्त्रमय देव का हृदय कमल में पूजन करना चाहिए। अब मानस होम की विधि का वर्णन किया जाता है—नाभि के स्थान में विधि पूर्वक अग्नि को उत्पन्न करके होम करना चाहिए ॥२५॥ मन के द्वारा ही समस्त कार्य करने चाहिएँ और शिवाग्नि में पञ्च ब्रह्माङ्गमभूत शिव मूर्ति सदाशिव ईश्वर देव का जो कि रक्त पद्म पर संस्थित हैं, यत्न पूर्वक सकली करण करके मूल मूर्ति मन्त्र से और ब्रह्माङ्गादि मन्त्रों से समिधा एवं घृत की आहुतियाँ देकर हवन करे फिर मन से ही चन्द्र मण्डल से चन्द्र के स्थान से समुत्पन्न पूर्ण धारा का अनुस्मरण करना चाहिए ॥२६॥२७॥२८॥ ज्ञानियों के शिव शासन में पूर्ण आहुति के विधान से मुख गत शिव का तथा तेजोमय शङ्कर का ध्यान करे ॥२९॥ ललाट में भ्रूओं के मध्य स्थल में शिव के तेज का स्मरण करे। पहिले बताया हुआ जो हृदय कमल में समग्र विधि का विस्तार है उस सब को समाप्त करके फिर सांसारिक बाधाओं के नाश करने वाले शुद्ध दीप की शिखा के आकार के समान हैं उनका चिन्तन करना चाहिए। लिङ्ग में अथवा स्थण्डिल में सदाशिव देव की अर्चना करनी चाहिए। प्रारम्भ में ज्ञानियों की मुख्य अर्चना का बताकर अन्त में प्रतिमा का अन्तार्चन बताया गया है ॥३०॥३१॥

॥ ६३–तंत्रोक्त विधान से शिवार्चन ॥

व्याख्यां पूजाविधानस्य प्रवक्ष्यामि समासतः।
शिवशास्त्रोक्तमार्गेण शिवेन कथितं पुरा ॥१
अथोभौ चन्दनचर्चितौ हस्तौ बोधकाद्यमन्त्रि कृत्वा मूर्ति-
विद्याशिवादीनि जप्त्वा अंगुष्ठादिकनिष्ठान्तं ईशानाद्य
कनिष्ठादिकम् तु हृदयादित्रीयात् तुरीय मगुष्ठेनाना-
मिकया पंचमं तलद्वयेन षष्ठं नर्जनयगुष्ठाभ्यां नाराच-
प्रयोगेन पुनरपि मूल जप्त्वा तुरीयेणावगुंठ्य शिवहस्त-

मित्युच्यते ॥२
शिवार्चना तेन हस्तेन कार्या ॥२
तत्त्वगतमात्मानं व्यवस्य एव तत्त्वशुद्धि पूर्ववत् ॥३
क्ष्माम्भोग्निवायुव्योमांतं पचचतुःशुद्ध कोटच ते
धारासहितेन व्यवस्थाप्य तत्त्वशुद्धि पूर्वं कुर्यात् ॥४
तत्त्वशुद्धि पष्ठेन सद्येन तृतीयेन फडंताद्धार।शुद्धि ॥६
पष्ठसहितेन सद्येन तृतीयेन फडन्तेन वारितत्त्वशुद्धि. ॥७

(तन्त्रोक्त विधान से शिवार्चन) इस अध्याय मे विशेष रूप से तान्त्रिकोक्त विधि-विधान से श्री भगवान् शङ्कर की अर्चा का पद्य एवं गद्य के द्वारा निरूपण किया जाता है। शैलादि ने कहा—मैं अब पूजा के विधान को व्याख्या सक्षेप से बताता हूँ। यह पहिले भगवान् शिव ने कहा था। मैं उसी शिव शास्त्रोक्त मार्ग के द्वारा इस समय बता रहा हूँ ॥१॥ शिव स्नान और भस्म स्नान के अनन्तर दोनो हाथो को चन्दन से चर्चित कर लेवे और फिर वौषट् अस्त्र से शास्त्राञ्जलि करके पूर्वोक्त मूर्ति विद्या और शिवादि अर्थात् शैवाङ्गो का जाप करे। इसके अनन्तर अगुष्ठ से लेकर कनिष्ठिका के अन्त तक ईशानादि पाँच मन्त्रो का न्यास करना चाहिए। न्यास करने का क्रम यह है कि कनिष्ठिका जिसमे आदि है और तर्जनी मध्यमा जिसमे अन्त है तथा हृदय जिसमे आदि है और तीसरा अघोर मन्त्र जिसमे अन्त है इस प्रकार से करे। अगुष्ठ के साथ तुरीय तत्पुरुष मन्त्र को अनामिका से पश्चम को और तल द्वय से षष्ठ मन्त्र को जपकर फिर तर्जनी और अङ्गुष्ठ से नाराचास्त्र प्रयोग के द्वारा मूल पचाक्षर मन्त्र का जप करे फिर चतुर्थ मन्त्र से अवगुण्ठन करे—यह शिव हस्त-इस नाम से कहा जाता है। उस हस्त शिव की अर्चना करनी चाहिए ॥२॥३॥ आत्मा को तत्व गत अर्थात् तत्त्वो मे व्यवस्थापित करे और पूर्व की भाँति ही तत्त्व शुद्धि करनी चाहिए। यह तत्त्व शुद्धि पहिले करे। पृथ्वी-जल अग्नि वायु और व्योम इन पाँचों में तथा अहङ्कार महत्तत्त्व प्रकृति और ब्रह्म रूप चारो मे शुद्ध कोटि के अन्त मे अमृतधारा से युक्त सुषुम्ना मार्ग मे व्यवस्थापित करके तत्त्वो की शुद्धि करनी चाहिए

॥४॥५॥ अब पृथिवी आदि तत्वों की शुद्धि को विस्तृत रूप से बतलाते हैं—"नमोहिरण्य बाहव" इस षष्ठ मन्त्र से-सद्य तृतीय अघोर मन्त्र से और फडन्त से धरा की शुद्धि करे ॥६॥ षष्ठ से युक्त सद्य तृतीय फडन्त मन्त्र से वारि तत्त्व की शुद्धि की जाती है ॥७॥

बाह्नेयतृतीयेन फडतेनाग्निशुद्धिः ॥८

वायव्यचतुर्थेन षष्ठमहितेन फडतेन वायुशुद्धि ॥९

षष्ठेन ससद्येन तृतीयेन फडंतेनाकाशशुद्धिः ॥१०

उपसंहृत्यैवं सद्यषष्ठेन तृतीयेन मूलेन फडंतेन ताडनं तृतीयेन संपुटीकृत्य ग्रहणं मूलमेव योनिबीजेन संपुटीकृत्वा बन्धं वधः ॥११

एवं क्षानानीतादिनिवृत्तिपर्यंतं पूर्ववत्कृत्वा प्रणवेन तत्त्वत्रयक्रमनुध्याय आत्मानं दीपशिखाकारं पुर्यष्टकमति त्रयातीतं शक्तिक्षोभेणामृतधारा सुषुम्णाया ध्यात्वा ॥१२

शांत्यतीतादिनिवृत्तिपर्यंतान्ता चातनादिबिंदुकारोकारमकारांतं शिवं सदाशिव रुद्रविष्णुब्रह्मान्तं सृष्टिक्रमेणामृतीकरणं ब्रह्मन्यासं कृत्वा पंचवक्त्रेषु पदवदशनयन विन्यस्य मूलेन पादादिकेशांतं महामुद्रामपि बद्धा शिवोऽहमिति ध्यात्वा शक्त्यादीनि विन्यस्य हृदि शक्त्याबीजांकुरानतरात्मसुषिरसूत्रकंटकपत्रकेसरधर्मज्ञ नवैराग्यैश्वर्यसूर्यसोमाग्निवामाज्येष्ठारौद्रीकालीकालविकरणीबलविकरणीबलप्रथमनीसर्वभूतदमनी. केशरेषु कर्णिकाया मनोन्मनीमपि ध्यात्वा ॥१३

फडन्त वाह्नेय तृतीय मन्त्र से अग्नि की शुद्धि होती है ॥ ॥ षष्ठ के सहित वायव्य चौथे फट् जिसके मन्त्र में है ऐसे मन्त्र से वायु की तत्त्व शुद्धि होती है ॥९॥ सद्य के सहित तृतीय और षष्ठ फडन्त से आकाश की शुद्धि होती है ॥१०॥ अब ताडन-ग्रहण बन्धनों को बताते हैं। इस तरह पूर्वोक्त प्रकार से उपसंहार करके सद्य से युक्त षष्ठ के सहित तृतीय फडन्त मूल मन्त्र से ताडन करे—मूल को तृतीय से सम्पुटीकरण करके ग्रहण और मूल को ही योनि बीज 'ह्रीं' इस बीज से सम्पुटीकरण करके निबन्ध करना चाहिए ॥११॥ इस तरह से पहिले इक्कीसवें अध्याय में

कहे हुए की भाँति शान्तातीत आदि को निवृत्ति पर्यन्त करके प्रणव के द्वारा ब्रह्म विष्णु रुद्र रूप तत्त्व त्रय का ध्यान करके दीप शिखा के आकार वाले-योग शास्त्रोक्त मूलाधारादि स्वरूप अष्टक से सहित विश्वादि त्रय से परे कुण्डली के प्रबोध द्वारा आत्मा का और सुषुम्णा में अमृत धारा का ध्यान करे ॥१२॥ शान्त्यतीतादि निवृत्ति पर्यन्त कलाओं के मध्य में नाद बिन्दु अकार-उकार और मकार के अवसान वाले उस रुद्र-विष्णु ब्रह्मान्त सदाशिव शिव का ध्यान करे और सृष्टि के क्रम से अमृती करण ब्रह्मन्यास करके मूल मन्त्र से पाँच मुखों में पन्द्रह नेत्रों का विन्यास करे। फिर पद से लेकर केशों के अन्त पर्यन्त महामुद्रा को बाँध कर 'मैं शिव हूँ'— ऐसा ध्यान करके हृदयाकाश में शक्ति के सहित बिना किसी व्यवधान के बीजाङ्कुरों का ध्यान करे जिनमें सुषिर सूत्र कण्टक पत्र केसर धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य सूर्य सोम अग्नि इन सब का ध्यान करे और केसरों में वामा ज्येष्ठा रौद्री-काली-कल विकरणी बल विकरणी-बल प्रमथनी और सर्व भूत दमनी इन अठारह शक्तियों का तथा कर्णिका में मनोन्मनी का ध्यान करे ॥१३॥

आसन परिकल्प्यैव सर्वोपचारसहित बहिर्योगोपचारेणातः-करण कृत्वा नाभौ वह्निकुण्डे पूर्ववदासन परिकल्प्य सदाशिव ध्यात्वा बिन्दुतोऽमृतधारा शिवमण्डले निपतिता ध्यात्वा ललाटे महेश्वर दीपशिखाकार ध्यात्वा आत्मशुद्धिरित्थं प्राणापानौ सयम्य सुषुम्णया वायु व्यवस्थाप्य षष्ठेन तालुमुद्रा कृत्वा दिग्बन्ध कृत्वा षष्ठेन स्थानशुद्धिर्वस्त्रादि पूतातरर्घ्यपात्रादिषु प्रणवेन तत्वत्रय विन्यस्य तदुपरि बिंदु ध्यात्वा त्वभमा विपूर्य द्रव्याणि च विधाय अमृतप्लावन कृत्वा पद्यपात्रादिषु तेषामर्घ्यवदासन परिकल्प्य सहितयाभिमन्त्राद्येनाभ्यर्च्य द्वितीयेनामृतीकृत्वा तृतीयेन विशोध्यचतुर्थेनावगुण्ठ्य पंचमेनावलोक्यषष्ठेन रक्षा विधाय चतुर्थेन कुशपुञ्जेनार्घ्याम्भसाभ्युक्ष्य आत्म नमपि द्रव्याणि पुनरर्घ्याम्भसाभ्युक्ष्य सपुष्पेण सर्वद्रव्याणि पृथक्पृथक् शोधयेत् ॥१४

सद्य न गध वामेन वस्त्रम् ।

अघोरेण आभरणं पुरुषेण नैवेद्यम् ।
ईशानेन पुष्पाणि अथाभिमंत्रयेत् ॥१५
शिवगायत्र्या शेषं प्रोक्षयेत् ॥१६
पंचामृतपंचगव्यादीनि ब्रह्मागमूलाद्यै रभिमन्त्रयेत् ॥१७

पृथक्पृथङ् मूलेनार्घ्यं धूप दत्त्वाचमनीयं च तेषामपि धेनुमुद्रा च दर्शयित्वा कवचेनावगुण्ठ्यास्त्रेण रक्षा च विधाय द्रव्यशुद्धि कुर्यात् ॥१८

अर्घ्योदकमग्रे हृदा गंधमादायास्त्रेण विशोध्य पूजाप्रभृति करणं रक्षांत कृत्वैव द्रव्यशुद्धि पूजासमर्पणांतं मौनमास्थाय पुष्पांजलि दत्त्वा सर्वमन्त्राणि प्रणवादिनमोतान्जपित्वा पुष्पांजलि त्यजेन्मंत्र शुद्धिरित्यम् ॥१६

अग्रे सामान्यार्घ्यपात्र पयसापूर्य गंधपुष्पादिना संहितयाभिमंत्र्य धेनुमुद्रा दत्त्वा कवचेनावगुंठ्यास्त्रेण रक्षयेत् ।

पूजा पर्युषितां गायत्र्या समभ्यर्च्य सामान्यार्घ्यं दत्त्वा गंधपुष्पधूपाचमनीयं स्वधांत नमांत वा दत्त्वा ब्रह्मभि. पृथक्पृथक्पुष्पांजलि दत्त्वा फडंतास्त्रेण निर्माल्यं व्यपोह्य ईशान्या चंडमभ्यर्च्यासनमूर्ति चतुः सामान्यास्त्रेण लिंगपीठं शिवं च मुक्तास्त्रेण विशोध्य मूर्ध्नि पुष्प निधाय पूजयेल्लिंगशुद्धिः ॥२०

अब आत्म-शुद्धि का प्रकार बतलाया जाता है-इसमें स्थान और द्रव्य शुद्धि का भी विधान है-बहिर्योगोपचार से अन्य सामग्री का करके पहिले बताये हुए प्रकार से सर्वोपचार सहित आसन की परिकल्पना करके नाभि में वह्नि कुण्ड में पूर्ववत् आसन का कल्पित करे और उस पर भगवान् सदाशिव का ध्यान करे। ललाट में दीप की शिखा के आकार वाले महेश्वर का ध्यान करे और बिन्दु से शिव मण्डल में अमृत की धारा को निपतित होती हुई का ध्यान करे-इस विधि से आत्म शुद्धि करनी चाहिए। प्राण और अपान वायुओं का संयम करके सुषुम्ना से वायु को व्यवस्थापित करे फिर वस्तु मन्त्र से ताल मुद्रा तथा खेचरी मुद्रा करके शरीर-शुद्धि और स्थान शुद्धि करे। द्वार के द्वार मध्य भाग को

पवित्र करके अर्घ्य पात्रादि मे तत्त्वत्रय का विन्यास करके उन तत्त्वादि के पाद्य पात्रादि मे अमृत प्लावन करे। पुष्पो के सहित जल से पूजा के समस्त द्रव्यो को पृथक् २ शोधन करना चाहिए। अर्घ्य की भाँति आसन की कल्पना करके संहिता के द्वारा अभिमन्त्रित करे। आद्य से अभ्यर्चना करे-द्वितीय से अमृती करण करे तृतीय से विशोधन करे चतुर्थ से अवगुण्ठन करे-पचम से अवलोकन और षष्ठ से रक्षण करे। चतुर्थ से कुश पुञ्ज से अर्घ्य जल के द्वारा अभ्युक्षण करे ॥१४॥ अब गन्धादि अभिमन्त्रण की विधि बताई जाती है। इसके अनन्तर सद्यादि के द्वारा गन्धादि को अभिमन्त्रित करे—सद्य से गन्ध को—वाम से वस्त्र को-अघोर से आभरण को-पुरुष से नैवेद्य को और ईशान से पुष्पो को अभिमन्त्रित करना चाहिए ॥१५॥ शिव गायत्री से शेष को प्रोक्षित करे ॥१६॥ ब्रह्माङ्ग मूलादि अर्थात् पचाक्षर बीजो से पचामृत और पच गन्ध आदि को अभिमन्त्रित करना चाहिए ॥१७॥ पृथक् पृथक् मूल मन्त्र से अर्घ्य धूप और आचमनीय देकर तथा उनको धेनु मुद्रा दिखाकर कवच से अवगुण्ठन करके और अस्त्र से रक्षा करके द्रव्य शुद्धि करनी चाहिए ॥१८॥ अब मन्त्र शुद्धि का निरूपण किया जाता है-सर्व प्रथम अर्घ्य गन्ध को हृदय मन्त्र से लेकर अस्त्र से उसका विशोधन करे और पूजा से लेकर समर्पण के अन्त तक मौन रहकर पुष्पाञ्जलि देवे तथा सम्पूर्ण मत्रो को प्रणव से लेकर नम पर्यन्त जप करे फिर पुष्पाञ्जलि छोड़े-इस प्रकार से मन्त्र शुद्धि की जाती है। ॥१९॥ लिङ्ग शुद्धि की विधि बताई जाती है—आगे साधारण अर्घ्य-पात्र को पय से भरकर गन्ध पुष्पादि से संहिता के द्वारा अभिमन्त्रित करके धेनुमुद्रा दिखाकर कवच से अवगुण्ठन करे और अस्त्र से रक्षा करनी चाहिए। पर्युषित पूजा को गायत्री मन्त्र से समभ्यर्चना करके अर्घ्य देवे। फिर स्वधान्त या नमोन्त गन्ध पुष्प-धूप और आचमनीय देकर ब्रह्मो के द्वारा पृथक् २ पुष्पाञ्जलि देकर फट्कारान्त से निर्माल्य का व्यपोहन करे और ईशानी दिशा मे चण्ड का समर्चन करके आसा । मूर्ति चण्ड को सामान्यास्त्र से लिङ्ग पीठ शिव का पशु पतास्त्र से विशोधन करके मस्तक पर पुष्प रखकर पूजा करनी चाहिए-

अधिक दीपक की शिखा के आकार वाले सब ओर मुख और हस्त से युक्त व्याप्य व्यापक का आवाहन करके स्थापन करे ।।२२।। पहिले हृदय मन्त्र से शिव शक्ति समवाय से अर्थात् तादात्म्य से एकी करण अमूर्ती करण, फिर हृदय मन्त्र पूर्वक मूल मन्त्र के सहित सद्य से आवाहन-हृदय मन्त्र से मूल मन्त्र के ऊपर वाम मन्त्र से स्थापन और इसी प्रकार से सन्निधी करण करे हृदय और मूल मन्त्र के सहित ईशान मन्त्र से पूजन करना चाहिए—यह उपदेश है ।।२३।। पहिले जिस प्रकार से पंच मन्त्र के सहित से आत्मा के देह का निर्माण किया जाता है उसी प्रकार से देव का और वह्नि का भी करे यह उपदेश है ।।२४।।

रूपकध्यानं कृत्वा मूलेन नमस्कारातमापाद्य स्वधांतमाचमनीयं सर्वं नमस्कारांत वा स्वाहाकारांतमर्घ्यं मूलेन पुष्पाञ्जलिं वौषडंतेन सर्वं नमस्कारांत हृदा वा ईशानेन वा रुद्रगायत्र्या ॐ नमः शिवायेति मूलमन्त्रेण वा पूजयेत् ।।२५

पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुनर्धूपाचमनीयं षष्ठेन पुष्पावसरणं विसर्जनं मन्त्रोदकेन मूलेन सस्नाप्य सर्वद्रव्याभिषेकमीशानेन प्रतिद्रव्यमष्टपुष्पं दत्त्वैवमर्घ्यं च गंधपुष्पधूपाचमनीयं फट्तास्त्रेण पूजापसरणं शुद्धोदकेन मूलेन सस्नाप्य विष्णमलकादिभिः ।।२६

उष्णोदकेन हरिद्रार्चनं लिंगमूर्ति पीठसहितां विशोध्य गन्धोदकहिरण्योदकमन्त्रोदकेन रुद्राध्याय पठमान. नीलरुद्रत्वरितरुद्रपंचब्रह्मादिभि नम शिवायेति स्नापयेत् ।।२७

मूर्ध्नि पुष्पं निधायैव न शून्यं लिंगमस्तकं कुर्यादित्र श्लोक ।।२८

प्रतिबिम्ब का ध्यान करके फिर मूल से नमस्कार के अन्त तक करके स्वधान्त आचमनीय अथवा नमस्कार के अन्त तक सब-स्वाहा कारान्त अर्घ्य मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि वौषडन्त से सब नमस्कार के अन्त तक हृदय मन्त्र से अथवा ईशान या रुद्र गायत्री से किम्बा "ॐ नम शिवाय" इस मूल मन्त्र से पूजा करना चाहिए ।।२५।। पुष्पाञ्जलि समर्पित करके फिर धूप-आचमनीय षष्ठ मन्त्र से पुष्पा वसरण विसर्जन करके मूल मन्त्रोदक से सस्नपन करके समस्त द्रव्य पंचामृतादि का अभिषेक करके-

ईशान मन्त्र से प्रति द्रव्य आठ पुष्प वाला अर्घ्य गन्ध पुष्प धूप आचमनीय देकर पूजा का अपसरण करके पिसे हुए आँवले आदि के साथ शुद्ध जल से स्नपन करावे ।।२६।। पंचामृत आदि के स्नान के अनन्तर अभिषेक की विधि बताते हैं – हरिद्रा आदि के चूर्ण के सहित उष्ण जल से मूल मन्त्र के द्वारा पीठ के सहित लिङ्ग मूर्त्ति का विशोधन करे फिर गन्धोदक-हिरण्योदक और मन्त्रोदक से रुद्राध्याय का पाठ करते हुए नील रुद्रत्वरित रुद्र पच ब्रह्मादि से 'नम. शिवाय'-इससे स्नपन कराना चाहिए ।।२७।। इस प्रकार से पूर्वोक्त अभिषेक करके मस्तक पर पुष्प रखे और लिङ्ग के मस्तक को शून्य न करे–इस विषय में श्लोक है—।।२८।।

यस्य राष्ट्रे तु लिंगस्य मस्तकं शून्यलक्षणम् ।
तस्यालक्ष्मीर्महारोगो दुर्भिक्षं वाहनक्षयः ।।२९
तस्मात्परिहरेद्राजा धर्मकामार्थमुक्तये ।
शून्ये लिंगे स्वयं राजा राष्ट्रं चैव प्रणश्यति ।।३०
एवं सुस्नाप्यार्घ्यं च दत्वा संमृज्य वस्त्रेण गंधपुष्पवस्त्रालंकारादींश्च मूलेन दद्यात् ।।३१
धूपाचमनीयदीपनैवेद्यादींश्च मूलेन प्रधानेनोपरि पूजनं पवित्रीकरणमित्युक्तम् ।।३२
आरार्तिदीपादींश्चैव धेनुमुद्रामुद्रितानि कवचेनावगुंठितानि पष्ठेन रक्षितानि लिंगोपरि लिंगे च लिंगस्याधः साधारणं च दर्शयेत् ।।३३

जिसके राष्ट्र में शून्य लक्षण वाला लिङ्ग का मस्तक होता है उसको अलक्ष्मी, महान् रोग, दुर्भिक्ष और वाहनों का क्षय होता है ।।२९।। इसलिये राजा को धर्म-अर्थ-काम और मुक्ति के लिये इस का परिहार करना चाहिए । लिङ्ग के शून्य रहने पर स्वय राजा और उसका राष्ट्र प्रनष्ट हो जाया करता है ।।३०।। इस प्रकार से जो कि पहिले भली-भाँति विधि सहित बताया गया है सस्नपन कराकर-अर्घ्य देकर-वस्त्र से समार्जन करके मूल मन्त्र से गन्धाक्षत पुष्प वस्त्र आदि का समर्पण करे ।।३१।। धूप-आचमनीय-दीप और नैवेद्य आदि का मूल मन्त्र से, प्रणव से लिङ्ग

अधिक दीपक की शिखा के आकार वाले सब ओर मुख और हस्त से युक्त व्याप्य व्यापक का आवाहन करके स्थापन करे ।।२२।। पहिले हृदय मन्त्र से शिव शक्ति समवाय से अर्थात् तादात्म्य से एकी करण-अमृती करण, फिर हृदय मन्त्र पूर्वक मूल मन्त्र के सहित मन्त्र से आवाहन-हृदय मन्त्र से मूल मन्त्र के ऊपर वाम मन्त्र से स्थापन और इसी प्रकार से सन्नि-धी करण करके हृदय और मूल मन्त्र के सहित ईशान मन्त्र से पूजन करना चाहिए—यह उपदेश है ।।२३।। पहिले जिस प्रकार से पंच मन्त्र के सहित से आत्मा के देह का निर्माण किया जाता है उसी प्रकार से देव का और वह्नि का भी करे यह उपदेश है ।।२४।।

रूपकध्यानं कृत्वा मूलेन नमस्कारान्तमापाद्य स्वधान्तमाचमनीयं सर्वं नमस्कारान्तं वा स्वाहाकारान्तमर्घ्यं मूलेन पुष्पाञ्जलिं वौषड-न्तेन सर्वं नमस्कारान्तं हृदा वा ईशानेन वा रुद्रगायत्र्या ॐ नमः शिवायेति मूलमन्त्रेण वा पूजयेत् ।।२५

पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुनर्धूपाचमनीयं पञ्चेन पुष्पावसरणं विसर्जनं मन्त्रोदकेन मूलेन सस्नाप्य सर्वद्रव्याभिषेकमीशानेन प्रतिद्रव्यमष्ट-पुष्पं दत्त्वैवमर्घ्यं च गंधपुष्पधूपाचमनीयं फडंतास्त्रेण पूजापसरणं शुद्धोदकेन मूलेन सस्नाप्य पिष्टामलकादिभिः ।।२६

उष्णोदकेन हरिद्राद्येन लिंगमूर्तिं पीठसहितां विशोध्य गंधोदक-हिरण्योदकमंत्रोदकेन रुद्राध्यायं पठमानः नीलरुद्रत्वरितरुद्रपंच-ब्रह्मादिभिः नमः शिवायेति स्नापयेत् ।।२७

मूर्ध्नि पुष्पं निधायैवं न शून्यं लिंगमस्तकं कुर्यादिति श्रुतिः ।।२८

प्रतिबिम्ब का ध्यान करके फिर मूल से नमस्कार के अन्त तक पर-मे स्वधान्त आचमनीय अथवा नमस्कार के अन्त तक सब-स्वाहा कारान्त अर्घ्य मूल मन्त्र से पुष्पाञ्जलि-वौषडन्त से सब नमस्कार के अन्त तक हृदय मन्त्र से अथवा ईशान या रुद्र गायत्री से किम्वा "ॐ नमः शिवाय" इस मूल मन्त्र से पूजन करना चाहिए ।।२५।। पुष्पाञ्जलि समर्पित करके फिर धूप-आचमनीय-पञ्च मन्त्र से पुष्पा वसरण विसर्जन करके मूल मन्त्रोदक से सन्नपन करके समस्त द्रव्य पंचामृतादि का अभिषेक करके-

ईशान मन्त्र से प्रति द्रव्य आठ पुष्प वाला अर्घ्य गन्ध पुष्प धूप आचमनीय देकर पूजा का अपसरण करके घिसे हुए आंवले आदि के साथ शुद्ध जल से स्नपन करावे ।।२६।। पचामृत आदि के स्नान के अनन्तर अभिषेक की विधि बताते हैं – हरिद्रा आदि के चूर्ण के सहित उष्ण जल से मूल मन्त्र के द्वारा पीठ के सहित लिङ्ग मूर्ति का विशोधन करे फिर गन्धोदक-हिरण्योदक और मन्त्रोदक से रुद्राध्याय का पाठ करते हुए नील रुद्रस्वरित रुद्र पच ब्रह्मादि से 'नम शिवाय'-इससे स्नपन कराना चाहिए ।।२७।। इस प्रकार से पूर्वोक्त अभिषेक करके मस्तक पर पुष्प रक्खे और लिङ्ग के मस्तक को शून्य न करे—इस विषय मे श्लोक है—।।२८।।

यस्य राष्ट्रे तु लिंगस्य मस्तकं शून्यलक्षणम् ।
तस्यालक्ष्मीर्महारोगो दुर्भिक्ष वाहनक्षयः ।।२६
तस्मात्परिहरेद्राजा धर्मकामार्थमुक्तये ।
शून्ये लिंगे स्वयं राजा राष्ट्रं चैव प्रणश्यति ।।३०
एवं सुस्नाप्यार्घ्यं च दत्वा समृज्य वस्त्रेण गन्धपुष्पवस्त्रालंकारादींश्च मूलेन दद्यात् ।।३१
धूपाचमनीयदीपनैवेद्यादींश्च मूलेन प्रधानेनोपरि पूजन पवित्रीकरणमित्युक्तम् ।।३२
आरातिदीपादींश्चैव धेनुमुद्रामुद्रितानि कवचेनावगुंठिनानि षष्ठेन रक्षितानि लिंगोपरि लिंगे च लिंगस्याधः साधारणं च दर्शयेत् ।।३३

जिसके राष्ट्र मे शून्य लक्षण वाला लिङ्ग का मस्तक होता है उसको अलक्ष्मी, महान् रोग, दुर्भिक्ष और वाहनों का क्षय होता है ।।२६।। इसलिये राजा को धर्म-अर्थ-काम और मुक्ति के लिये इस का परिहार करना चाहिए। लिङ्ग के शून्य रहने पर स्वयं राजा और उसका राष्ट्र प्रनष्ट हो जाया करता है ।।३०।। इस प्रकार से जो कि पहिले भली-भांति विधि सहित बताया गया है सुस्नपन कराकर-अर्घ्य देकर-वस्त्र से समार्जन करके मूल मन्त्र से गन्धादात पुष्प वस्त्र आदि का समर्पण करे ।।३१।। धूप-आचमनीय-दीप और नैवेद्य आदि का मूल मन्त्र से, प्रणव से लिङ्ग

के मस्तक के ऊपर पवित्री करण और पूजन कह दिया गया है ॥३२॥ आरात्ति दीप आदि-धेनु मुद्रा मुद्रित को कवच से अवगुण्ठित एवं पत्र मन्त्र से रक्षित करके लिङ्ग के ऊपर-लिङ्ग के मध्य मे-लिङ्ग के नीचे साधारण रूप से जिस तरह से वैसे दिखाना चाहिए ॥३३॥

मूलेन नमस्कार विज्ञाप्यावाहनस्थापनसन्निरोधसान्निध्यपाद्याचमनीयार्घ्यगंधपुष्पधूपनैवेद्याचमनीयहस्तोद्वर्तनमुखवासाद्युपचारयुक्त ब्रह्मागभोगमार्गेण पूजयेत् ॥३४

सकलध्यान निष्कलस्मरण परावरध्यानं मूलमन्त्रजपः।
दशांश ब्रह्मागजपसमर्पणमात्मनिवेदनस्तुतिनमस्कारादयश्च
गुरुपूजा च पूर्वतो दक्षिणे विनायकस्य ॥३५

आदौ चाते च सपूज्यो विघ्नेशो जगदीश्वरः।
देवतैश्च द्विजैश्चैव सर्वकमर्थिसिद्धये ॥३६

य. शिव पूजयेदेव लिंगे वा स्थंडिलेपि वा।
स याति शिवसायुज्यं वर्षमात्रेण कर्मणा ॥३७

लिंगार्चनश्च षण्मासान्नात्र कार्या विचारणा।
सप्त प्रदक्षिणा कृत्वा दडवत्प्रणमेद्बुधः ॥३८

प्रदक्षिणक्रमपादेन अश्वमेध फलं शतम्।
तस्मात्सपूजयेन्नित्य सर्वकमर्थिसिद्धये ॥३९

भोगार्थी भोगमाप्नोति राज्यार्थी राज्यम प्नुयात्।
पुत्रार्थी तनयं श्रेष्ठं रोगी रोगात्प्रमुच्यते ॥४०

याग्यांश्चिंतयते कामांस्तांस्तान्प्राप्नोति मानव. ॥४१

मूल मन्त्र से नमस्कार को विज्ञापित करके फिर आवाहन-स्थापन-सन्निरोध सन्निधी करण-पाद्य-आचमनीय-अर्घ्य गन्ध पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-हस्तोद्वर्तन-मुख वास ताम्बूलादि का समन्वित करके ब्रह्म मन्त्र रूप पादादि अङ्गों के उपचार क्रम से पूजन करे ॥३४॥ पूर्ण ध्यान-निष्कल का स्मरण-परावर का ध्यान-मूल मन्त्र का जाप-दशांश समर्पण-मार्जनादि-ब्रह्माङ्ग जप समर्पण-आत्म निवेदन-स्तवन और नमस्कार आदि तथा पहिले गुरु का अर्चन और दक्षिण मे गणेश का यजन करना चाहिए

॥३५॥ आदि और अन्त मे जगत् के ईश्वर विघ्नो के स्वामी गणेश का पूजन करना चाहिए। दैवत और द्विजो को समस्त कर्मों के अर्थ की सिद्धि के लिये करना चाहिए ॥३६॥ जो पुरुष इस विधि से लिङ्ग मे अथवा स्थण्डिल मे शिव का पूजन किया करता है वह एक ही वर्ष के कर्म से भगवान् शिव के सायुज्य की प्राप्ति किया करता है ॥३७॥ जो शिव लिङ्ग की अर्चना करने वाला है वह छै मास मे ही शिव सायुज्य का लाभ कर लेता है—इसमे कुछ भी विचारणा नही करनी चाहिए। बुध पुरुष को सात प्रदक्षिणा करके दण्ड की भाँति भूमि पर गिर कर प्रणाम करना चाहिए। ॥३८॥ प्रदक्षिणा के करने मे एक २ पद पर सौ अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। अतएव समग्र कर्मों के अर्थ की सिद्धि के लिये नित्य ही सम्यक् रूप से पूजा करनी चाहिए। ॥३९॥ जो भोगो के प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष है वह भोगो की प्राप्ति करता है—राजा लाभ का इच्छुक राज्य प्राप्त करता है—पुत्र प्राप्त करने की अभिलाषा वाला श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है और रोग ग्रसित मानव रोग से छुटकारा पा जाया करता है ॥४०॥ इनके अतिरिक्त मनुष्य जिन-जिन कामनाओ की चिन्ता करता है उन-उन सब की प्राप्ति किया करता है ॥४१॥

॥ ९४—त्रिविध अग्नि कार्य प्रतिपादन ॥

शिवाग्निकार्य वक्ष्यामि शिवेन परिभाषितम् ।
जनयित्वाग्रत प्राची शुभे देशे सुसस्कृते ॥१
पूर्वाग्रमुत्तराग्र च कुर्यात्सूत्रत्रय शुभम् ।
चतुरस्रीकृते क्षेत्रे कुर्यात्कुण्डानि यत्नत. ॥२
नित्यहोमाग्निकुण्ड च त्रिमेखलसमायुतम् ।
चतुस्त्र्यंगुलायामा मेखला हस्त मात्रतः ॥३
हस्तमात्र भवेत्कुंड योनिः प्रादेशमात्रतः ।
अश्वत्थपत्रवद्योनि मेखलोपरि कल्पयेत् ॥४
कुंडमध्ये तु नाभिः स्यादष्टपत्रं सकर्णिकम् ।

प्रादेशमात्र विधिना कारयेद्ब्रह्मणा. सुन ।।५
षष्ठेनोल्लेखन प्रोक्तं प्रोक्षणं वर्मणा स्मृतम् ।
नेत्रेणालोक्य वै कुंड षड्रेखा. कारयेद्बुधः ।।६
प्रागायतेन विप्रेंद्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
उत्तराग्रा. शिवा रेखाः प्रोक्षयेद्वर्मणा पुनः ।।७

इस अध्याय मे भगवान् शिव के द्वारा वर्णित तीन प्रकार का पद्य गद्यो से परम शोभन अग्नि-कार्य वर्णित किया जाता है। शैलादि ने कहा—अब मैं भगवान् शिव के द्वारा वर्णित शिवाग्नि कार्य को बताऊगा। सर्व प्रथम प्राची दिशा का साधन करे। किसी परम शुभ एवं भली-भाँति सस्कार किये हुए भाग मे शुभ पूर्वाग्र और उत्तराग्र सूत्र न्यय को करे। चोकोर किये हुए क्षेत्र मे यत्न पूर्वक कुण्ड निर्मित करे।।१।। ।।२।। नित्य होमाग्नि कुण्ड को तीन मेखलाओ से युक्त बनाना चाहिए। एक हाथ के प्रमाण वाली दो-तीन और चार अंगुल याम वाली मेखला बनावे।।३।। कुण्ड एक हाथ प्रमाण वाला होना चाहिए और उसके प्रादेश मात्र में योनि की रचना करे। मेखला के ऊपर पीपल वृक्ष के पत्ते के आकार के तुल्य योनि की रचना की जावे।।४।। कुण्ड के मध्य मे अष्ट पत्र और कर्णिका के सहित प्रादेश प्रमाण वाली नाभि को विधि से करना चाहिए।।५।। षष्ठ अस्त्र मन्त्र से उल्लेखन बताया गया है और कवच मन्त्र के द्वारा प्रोक्षण कहा गया है। बुध को नेत्र से कुण्ड का आलोकन करके छै रेखा करनी चाहिए।।६।। प्रागायत रेखा त्रय के सहित उत्तराग्र शिव रेखाऐं जो कि ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर के रूप वाली हैं उन का कवच मन्त्र से प्रोक्षण करना चाहिए।।७।।

शमीपिप्पलसंभूतामरणी षोडशाङ्गुलाम् ।
मथित्वा वह्निबीजेन शक्तिन्यास हृदेव तु ।।८
प्रक्षिपेद्विधिना वह्निमन्वाधाय यथाविधि ।
तूष्णीं प्रादेशमात्रैस्तु याज्ञिकैः शकलैः शुभैः ।।९
परिसंमोहनं कुर्याज्जलेनाष्टसु दिक्षु वै ।
परिस्तीर्य विधानेन प्रागाद्यमनुक्रमात् ।।१०

उत्तराग्रं पुरस्ताद्धि प्रागग्र दक्षिणे पुन ।
पश्चिमे चोत्तराग्रं तु सौम्ये पूर्वाग्रमेव तु ॥११
ऐन्द्रे चेन्द्राग्नमावाह्य याम्य एवं विधीयते ।
सौम्यस्योपरि चाद्राग्नं वारुणाग्नमधस्तत ॥१२
द्वद्वरूपेण पात्राणि बर्हि:ष्वासाद्य सुव्रत ।
अधोमुखानि सर्वाणि द्रव्याणि च तथोत्तरे ॥१३
तस्योपरि न्यसेद्दर्भाञ्छिव दक्षिणतो न्यसेत् ।
पूजयेन्मूलमंत्रेण पश्चाद्धोम समाचरेत् ॥१४

शमी और पीपल मे समुत्पन्न अरणी को सोलह अङ्गुल लेकर उस-का वह्नि "रम्"— इस बीज से मथन करे और हृद् मन्त्र से शक्ति न्यास करे तथा विधि के अनुसार अन्वाधान करके वह्नि का प्रक्षेपण करे। तूष्णी भाव से प्रादेश मात्र शुभ याज्ञिक शकलो से योजित करना चाहिए ॥८॥९॥ इस प्रकार से प्रागादि के अनुक्रम से विधान से परिस्तरण कर-के आठो दिशाओ मे जल से परि सम्मोहन करना चाहिए ॥१०॥ अब परि स्तरण करने की विधि को बतलाते हैं—पहिले उत्तराग्र फिर प्राग् और पुन दक्षिण तथा तदनन्तर पश्चिम मे करे। सौम्य मे उत्तराग्र और पूर्वाग्र का करे ॥११॥ दिशाओ के देवताओ का आवाहन बताते हैं—पूर्वदिग्भाग मे इन्द्राग्नि दैवत का-दक्षिण दिग्भाग मे यामाग्नि दैवत का-उत्तर दिग्भाग मे चान्द्राग्नि दैवत का और इसके अनन्तर पूर्वदिग्भाग से नीचे पश्चिम दिग्भाग मे वारुणाग्न दैवत का आवाहन करना चाहिए ॥१२॥ पात्रासादन विधि को बताया जाता है कि हे सुव्रत! वर्हियो मे द्वन्द्व रूप से पात्रो का आसादन करके समस्त द्रव्यो को उत्तर मे अधोमुख करे ॥१३॥ उसके ऊपर दक्षिण मे शिव दर्भों का न्यास करे और मूल मन्त्र से पूजन करके पीछे होम करना चाहिए ॥१४॥

प्रोक्षणीपात्रमादाय पूरयेदवुना पुनः ।
प्रादेशमात्रौ तु कुशौ स्थापयेदुदको परि ॥१५
प्लावयेन्न कुशाग्रं तु वसो: सूर्यस्य रश्मिभि ।
विकीर्य सर्वपात्राणि सुसंप्रोक्ष्य विधानत ॥१६

प्रणीतापात्रमादाय पूरयेदम्बुना पुनः ।
अन्योदककुशाग्रैस्तु सम्यगाच्छाद्य सुव्रत ॥१७
हस्ताभ्यां नासिकं पात्रमैशान्यां दिशि विन्यसेत् ।
आज्याधिश्रयणं कुर्यात्पश्चिमोत्तरतः शुभम् ॥१८
भस्मविश्रान्तथाङ्गारान् ग्राहयेत्सकलेन वै ।
पश्चिमोत्तरतो नीत्वा तत्र चाज्यं प्रतापयेत् ॥१९
कुशानग्नौ तु प्रज्वाल्य पर्यग्नि त्रिभिराचरेत् ।
तान्सर्वांस्तत्र निःक्षिप्य चाग्नेः चाज्यं निधापयेत् ॥२०
अंगुष्ठमात्रौ तु कुशौ प्रक्षाल्य विधिनैव तु ।
पर्यग्नि च ततः कुर्यात्तैरेव नवभिः पुनः ॥२१

फिर प्रोक्षणी पात्र का ग्रहण कर जल से पूर्ण करे और प्रादेश मात्र कुशाग्रो को उदक के ऊपर स्थापित करे। ॥१५॥ कुशाग्र का वसु सूर्य की रश्मियो से प्लावित करे और सम्पूर्ण पात्रो को विकीर्ण करके विधान से सम्प्रोक्षण करे ॥१६॥ फिर प्रणीता पात्र को लेकर जल से प्रपूरित करे और अन्योदक युक्त कुशा के अग्र भागो से भली-भाँति समाच्छादन करना चाहिए ॥१७॥ हाथो से प्रणीता पात्र को नासिका के समीप तक लाकर फिर ऐशानी दिशा मे उसका विन्यास कर देवे तथा पश्चिमोत्तर मे आज्य (घृत) का शुभ स्थापन करना चाहिए ॥१८॥ उपवेष से भस्म से मिश्रित अङ्गारो का ग्रहण करे और पश्चिमोत्तर से लेकर आज्य को तपावे ॥१९॥ अग्नि मे कुशाओ को प्रज्वलित करके अग्नि के चारो ओर तीन बार परि चरण करे। उन सब को वहाँ डाल कर आग मे आज्य को निधापित करना चाहिए ॥२०॥ विधि से अङ्गुष्ठ मात्र दो कुशाओ का प्रक्षालन कर अग्नि के चारो ओर करे। उनसे ही फिर नौ से करना चाहिए ॥२१॥

पर्यग्नि च पुनः कुर्यात्तदाज्यमवरोपयेत् ।
अथापकर्षयेत् पार्श्वं क्रमेणोत्तरपश्चिमे ॥२२
संयुज्य चाग्नि काष्ठेन प्रदाल्यारोप्य पश्चिमे ।
आज्यस्योत्पवनं कुर्यात्पवित्राभ्यां सहैव तु ॥२३

पृथगादाय हस्ताभ्यां प्रवाहेण यथाक्रमम् ।
अंगुष्ठानामिकाभ्यां तु उभाभ्यां मूलविद्यया ॥२४
अभ्युक्ष्य दापयेदग्नौ पवित्रे घृतपंकिते ।
सौवर्णं स्रुक्स्रुव कुर्यादरत्निमात्रेण सुव्रत ॥२५
राजत वा यथान्यायं सर्वलक्षणसंयुतम् ।
अथवा याज्ञिकैर्वृक्षै कर्तव्यौ स्रुक्स्रुवा शुभौ ॥२६
अरत्निमात्रमायाम तत्पोत्रे तु बिल भवेत् ।
षडंगुलपरीणाहं दडमूल महामुने ॥२७
तदर्ध कठनालं स्यात्पुष्करं मूलवद्भवेत् ।
गोवालसदृश दडं स्रुवाग्र नासिकासमम् ॥२८

फिर पर्यग्नि करे—इस क्रिया से दो बार पर्यग्नि करण समझना चाहिए । तब आज्य का अवरोपण करे । इसके अनन्तर क्रम से उत्तर पश्चिम मे पात्र का अपकर्षण करे ॥२२॥ उपवेष से अग्नि का सयोजन करके पश्चिम मे आरोपण करे और उपवेष का निरसन कर धोकर जल का उपस्पर्शन करे पवित्र सज्ञा वाले दर्भों के सहित अङ्गुलियो से आज्य का उत्पवन करना चाहिए ॥२३॥ यथाक्रम याज्ञिकोक्त मार्ग से हाथो से पृथक् लेकर मूल विद्या से अङ्गुष्ठ-अनामिका दोनो से अभ्युक्षण करके घृत पकित पवित्र अग्नि मे दिलाना चाहिए । हे सुव्रत ! अरत्नि मात्र से स्रुक् और स्रुवा को सौवर्ण करे ॥२४॥२५। अथवा समग्र लक्षणो मे सयुत यथाविधि स्रुक स्रुवा को चाँदी का बनवावे । किम्वा ये दोनो याज्ञिक वृक्षो से बनवाने चाहिए ॥२६॥ इनका आयाम अरत्नि मात्र होना चाहिए और मुख मे एक बिल होना चाहिए । हे महामुने ! दण्ड का मूल छै अगुल परीणाह वाला होना चाहिए ॥२७॥ उसके आधे अर्थात् तीन अगुल परीणाह वाला कण्ठनाल तथा पुष्कर अर्थात् मुख गोपुच्छ के सदृश होवे । स्रुवा का अग्र भाग नासिका के समान करावे ॥२८॥

पुटद्वयसमायुक्तं मुक्तार्धेन प्रपूरितम् ।
षट्त्रिंशदंगुलायाममष्टागुलसविस्तरम् ॥२९

उत्सेधस्तु तदर्धं स्यात्सूत्रेण समितं ततः ।
सप्तांगुल भवेदास्यं विस्तरायामतः पुनः ॥३०
त्रिभागैकं भवेदग्रं कत्वा शेषं परित्यजेत् ।
कंठं च द्वयं गुलायामं विस्तार चतुरंगुलम् ॥३१
वेदिरष्टांगुलायामा विस्तारस्तत्प्रमाणतः ।
तस्य मध्ये बिलं कुर्याच्चतुरंगुलमानतः ॥३२
बिल सुवर्तितं कुर्यादष्टपत्रं सुकर्णिकम् ।
परितो बिलबाह्ये तु पट्टिकार्धांगुलेन तु ॥३३
तद्बाह्ये च विनिद्रं तु पद्मपत्रविचित्रितम् ।
यवद्वयप्रमाणेन तद्बाह्ये पट्टिका भवेत् ॥३४
वेदिकामध्यतो रध्रं कनिष्ठांगुलमानतः ।
खातं यावन्मुखान्तं स्याद्बिलमानं तु निम्नगम् ॥३५

अब पूर्णाहुति आदि बृहत् स्रुव के विधान को बताते हैं— युट द्वय से समायुक्त और मुक्ता आदि से प्रपूरित जिस का आयाम छत्तीस अंगुल होता है और विस्तार आठ अंगुल का होता है। उसकी ऊंचाई उससे आधी अर्थात् चार अंगुल होती है। सूत्र से समित सात अंगुल का मुख विस्तार और आयाम से होता है ॥२९॥३०॥ तीन भागों में से एक भाग अर्थात् बारह अंगुल उसका अग्र भाग होता है। शेष दो भाग को अग्र बाह्य करने के लिये त्याग देना चाहिए। दो अंगुल के आयाम वाला कण्ठ और चार अंगुल का विस्तार होता है ॥३१॥ आठ अंगुल के आयाम से युक्त वेदि होती है और उसके प्रमाण से ही विस्तार भी होता है। उसके मध्य मे चार अंगुल का बिल होता है ॥३२॥ बिल आठ पत्रों वाला सुन्दर कर्णिका से युक्त सुवर्तित बनवाना चाहिए। बिल के बाह्य भाग म चारों ओर अर्धाङ्गुल की पट्टिका बनावे ॥३३॥ उस बिल के बाह्य भाग मे पत्रों से विचित्र विकसित पद्म बनाना चाहिए। उस पद्म के बहिर्भाग मे दो यवों के परिमाण वाली पट्टिका होनी चाहिए ॥३४॥ वेदिका के मध्य मे कनिष्ठांगुल मान वाला रन्ध्र जब तक मुखान्त हो तब तक बिल का मान गम्भीर प्रवाह निम्नग खात होवे ॥३५॥

दडं षडंगुलं नालं दंडाग्रे दंडिकात्रयम् ।
अर्धांगुलविवृद्धया तु कर्तव्यं चतुरंगुलम् ॥३६
त्रयोदशांगुलायामं दंडमूले घटं भवेत् ।
द्व्यंगुलस्तु भवेत्कुंभो नाभिं विद्याद्दशांगुलम् ॥३७
वेदिमध्ये तथा कृत्वा पादं कुर्याच्च द्वयंगुलम् ।
पद्मपृष्ठसमाकारं पादं वै कणिकाकृतिम् ॥३८
गजोष्ठसदृशाकारं तस्य पृष्ठाकृतिर्भवेत् ।
अभिचारादिकार्येषु कुर्यात्कृष्णायसेन तु ॥३६
पञ्चविंशत्कुशैनैव स्रुक्स्रुवौ मार्जयेत्पुनः ।
अग्रमग्रेण संशोध्य मध्यं मध्येन सुव्रत ॥४०
मूलं मूलेन विधिना अग्नौ ताप्य हृदा पुनः ।
आज्यस्थाली प्रणीता च प्रोक्षणी तिस्र एव च । ४१
सौवर्णी राजती वापि ताम्री वा मृन्मयी तु वा ।
अन्यथा नैव कर्तव्य शांतिके पौष्टिके शुभे ॥४२

नाल दण्ड मूल दण्ड छै अंगुल का बनावे । दण्ड के अग्र मे चार अंगुल और अर्धाङ्गुल की विवृद्धि से कर्त्तव्य करना चाहिए ॥३६॥ त्रयोदश अंगुल के आयाम वाला दण्ड के अग्र भाग मे घट अर्थात् शिर करना चाहिए । दो अंगुल के आयाम वाला कुम्भ अर्थात् कम्बु ग्रीव और दश अंगुल वाला नाभि जानना चाहिए ॥३७॥ वेदि के मध्य मे पद्म के पृष्ठ के समान आकार से युक्त दशांगुल नाभि करके फिर कर्णिका के आकृति वाला दो अंगुल पाद करना चाहिए ॥३८॥ उस स्रुव की पृष्ठ की आकृति गज के ओठ के आकार के समान होनी चाहिए । अभिचार के कर्मों मे अर्थात् जारण-मारणादि के प्रयोगों मे इस की रचना कृष्ण लोहे से करानी चाहिए ॥३६॥ हे सुव्रत ! फिर स्रुक और स्रुव का मार्जन संस्कार पच्चीस कुशाओं से करे । अग्र भाग से अग्र को और मध्य भाग से मध्य भाग का संशोधन करे ॥४०॥ अब आगे पात्र का विधान निरूपित किया जाता है—मूल विधि से मूल को और फिर हृत् मन्त्र से अग्नि मे तपावे । आज्य स्थाली-प्रणीता और प्रोक्षणी ये तीनों

ही केवल अभिचार कर्मों में लोहे की बनावे अन्यथा अन्य शुभ कर्मों में सुवर्ण-चादी-ताम्र अथवा मृन्मयी निर्मित करानी चाहिए। इनके अतिरिक्त पौष्टिक शुभ कर्मों मे अन्य किसी की नहीं करानी चाहिए ॥४१॥४२॥

आयसो स्वभिचारे तु शांतिके मृन्मयी तु वा ।
षडंगुलं सुविस्तीर्णं पात्राणां मुखमुच्यते ॥४३
प्रोक्षणी द्वयंगुलोत्सेधा प्रणीता द्वयंगुलाधिका ।
आज्यस्थाली ततस्तस्या उत्सेधा द्वयगुलाधिकः ॥४४
यैः समिद्भिर्हुतं प्रोक्तं तैरेव परिधिर्भवेत् ।
मध्यांगुलपरीणाहा अवक्रा निर्व्रणाः समाः ॥४५
द्वात्रिंशदंगुलायामास्तिस्रः परिधयः स्मृताः ।
द्वात्रिंशदंगुलायामैस्त्रिंशद्भिः परिस्तरेत् ॥४६
चतुरंगुलमध्ये तु ग्रथितं तु प्रदक्षिणम् ।
अभिचारादिकार्येषु शिवाग्न्याधान वर्जितम् ॥४७
अकोमलाः स्थिरा विप्र सग्राह्यास्त्वाभिचारिके ।
समग्राः सुसमाः स्थूलाः कनिष्ठांगुलसमिताः ॥४८
अवक्रा निर्व्रणाः स्निग्धा द्वादशांगुलसंमिताः ।
समिधस्थं प्रमाणं हि सर्वकार्येषु सुव्रत ॥४९

अभिचार मे आयसी अर्थात् लोहे की निर्मित होवे और शान्तिक कर्म मे मृत्तिका से निर्मित होनी चाहिए। पात्रों का मुख छैः अंगुल वाला सुविस्तीर्ण कहा जाता है। ॥४३॥ प्रोक्षणी पात्र दो अंगुल उत्सेध (ऊंचाई) वाला होवे और प्रणीता पात्र दो अंगुल अधिक होना चाहिए। आज्य स्थाली पात्र का उत्सेध उससे भी दो अंगुल अधिक होना चाहिए ॥४४॥ जिन समिधाओं के द्वारा हवन बताया गया है उन्हीं से परिधि होनी है। समिधाएँ मध्यमा अंगुलि के बराबर प्रमाण वाली-सीधी बिना व्रण वाली और समान होनी चाहिए ॥४५॥ बत्तीस अंगुल के आयाम वाली तीन परिधियाँ बताई गई हैं। बत्तीस अंगुल के आयाम से युक्त तीस दर्भों से परिस्तरण करना चाहिए ॥४६॥ चार

अंगुल मध्य में प्रदक्षिण ग्रथित करे किन्तु जब अभिचार आदि के कर्म करते हो तो उसमें शिवाग्नि का आधान वर्जित होता है ॥४७॥ आभिचारिक अर्थात् मारण प्रभृति कर्मों में हे विप्र ! समिधाऐं कोमलता से रहित अर्थात् कठोर और स्थिर संगृहीत करनी चाहिए। समग्र गुणमान अर्थात् एक-सी, स्थूल और कनिष्ठ अंगुलि के सहित समिधाऐं होनी चाहिऐं ॥४८॥ हे सुव्रत ! समस्त अन्य कार्यों में समिधाओं का प्रमाण द्वादश अंगुल होता है। अभिचार के अतिरिक्त अन्य कर्मों में समिधाऐं सीधी वक्रता से रहित-निर्व्रण और स्निग्ध रखनी चाहिए ॥४९॥

गव्य घृतं ततः श्रेष्ठं कापिलं तु ततोऽधिकम् ।
आहुतीना प्रमाणं तु स्रुवं पूर्णं यथा भवेत् ॥५०
अन्नमक्षप्रमाणं स्याच्छु क्तमात्रेण वै तिलः ।
यवानां च तदर्धं स्यात्फलानां स्वप्रमाणतः ॥५१
क्षीरस्य मधुनो दध्न. प्रमाणं घृतवद्भवेत् ।

आदि कर्मों मे लौकिक अग्नि मे हवन करे। हे सुव्रत ! अन्य समस्त कर्मों मे शिवाग्नि को उत्पन्न करके हवन करना चाहिए। ॥५४॥ शिवाग्नि मे सात जिह्वाओ की प्रकल्पना करके सम्पूर्ण कार्य करे। अथवा समस्त कार्य साधक के जिह्वाओ की सम्पूर्णता से सिद्ध होते हैं। हे विप्रेन्द्रो ! साधक की *जिह्वा मात्र से शिवाग्नि की सिद्धि होती है।* ॥५५॥५६॥

ॐ बहुरूपायै मध्यजिह्वायै अनेकवर्णायै दक्षिणोत्तरमध्यगायै शान्तिकपौष्टिकमोक्षादिफलप्रदायै स्वाहा ॥५७

ॐ हिरण्यायै चामीकराभायै ईशानजिह्वायै ज्ञानप्रदायै स्वाहा ॥५८

ॐ कनकायै कनकनिभायै रम्यायै ऐन्द्रजिह्वायै स्वाहा ॥५९

ॐ रक्तायै रक्तवर्णायै आग्नेयजिह्वायै अनेकवर्णायै विद्वेषणमोहनायै स्वाहा ॥६०

ॐ कृष्णायै नैर्ऋतजिह्वायै मारणायै स्वाहा ॥६१

ॐ सुप्रभायै पश्चिमजिह्वायै मुक्ताफलायै शान्तिकायै पौष्टिकायै स्वाहा ॥६२

ॐ अभिव्यक्तायै वायव्यजिह्वायै शत्रूच्चाटनायै स्वाहा ॥६३

ॐ वह्नये तेजस्विने स्वाहा । ६४

अब सात जिह्वाओ की कल्पना को बताते हैं—सात जिह्वाओ के भिन्न २ मन्त्र निम्न प्रकार से दिये जाते हैं—ओम् बहुत रूपो वाली—मध्य जिह्वा से सम्पन्न विभिन्न वर्णों से युक्त-दक्षिणोत्तर के मध्य मे गमन करने वाली-शान्ति, पौष्टिक और मोक्ष आदि के फल को प्रदान करने वाली के लिये स्वाहा अर्थात् नमस्कार है ॥५७॥ ॐ हिरण्य स्वरूपा सुवर्ण के समान आभा वाली ईशान जिह्वा तथा ज्ञान प्रदान करने वाली के लिये स्वाहा है ॥५८॥ ॐ कनक स्वरूपा-कनक (सुवर्ण) के सदृशी रम्य रूपा और ऐन्द्र जिह्वा वाली के लिये स्वाहा है ॥५९॥ ॐ रक्त वर्णा रक्ता-आग्नेय दिशा मे जिह्वा वाली-अनेक वर्णों से संयुक्त तथा विद्वेषण और मोहन कर देने वाली के लिये स्वाहा है ॥६०॥ ॐ कृष्णा-नैर्ऋत जिह्वा और मारण कर देने वाली के लिये स्वाहा है

॥६१॥ ॐ सुन्दर प्रभा वाली-पश्चिम दिशा की ओर जिह्वा वाली-मुक्ता फला शान्तिका तथा पौष्टिका के लिये स्वाहा है ॥६२॥ ॐ अभि व्यक्ता-वायव्य जिह्वा और शत्रुओ के उच्चाटन कर देने वाली के लिये स्वाहा है ॥६३॥ सातो जिह्वा मन्त्रो को कहकर प्रधान मन्त्र बताते हैं—"ॐ वह्नये तेजस्विने स्वाहा"—अर्थात् वह्नि स्वरूप तेजो युक्त के लिये स्वाहा अर्थात् नमस्कार है ॥६४॥

एतावद्वह्निसंस्कारमथवा वह्निकर्मसु ।
नैमित्तिके च विधिना शिवाग्नि कारयेत्पुन. ॥६५

निरीक्षण प्रोक्षण ताडनं च षष्ठेन फडंतेन अभ्युक्षणं चतुर्थेन खननोत्किरणं षष्ठेन पूरण समीकरणमाद्यन सेचनं वौषडंतेन कुट्टनं षष्ठेन संमार्जनोपलेपने तुरीयेण कुंडपरिकल्पनं निवृत्त्या त्रिभिरेव कुंडपरिधानं चतुर्थेन कुंडार्चनमाद्येन रेखाचतुष्टयसपादन षष्ठेन फडंतेन वज्रीकरणं चतुष्पदापादनमाद्येन एवं कुंड-संस्कारमष्टादशविधम् ॥६६

कुंडसंस्कारानंतरमक्षपाटन षष्ठेन विष्टरन्यासमाद्येन वज्रासने वागीश्वर्यावाहनम् ॥६७

ॐ ह्रीं वागीश्वरी श्यामवर्णीं विशालाक्षीं यौवनोन्मत्तविग्रहाम् ।
ऋतुमतो वागीश्वरशक्तिमावाहयामि ॥६८

वागीश्वरी पूजयामि ॥६९

पुनर्वागीश्वरावाहनम् । ७०

इस तरह से पूर्व मे कथित इतना वह्नि का सस्कार करे अथवा वह्नि कर्मों मे और नैमित्तिक कर्म मे विधि के सहित शिवाग्नि को करना चाहिए ॥६५॥ अब शिवाग्नि विधि बताई जाती है इस मे अठारह प्रकार के कुण्ड के सस्कार होते है षष्ठ मन्त्र से निरीक्षण-प्रोक्षण और ताडन करे, फडन्त से अभ्युक्षण करे-चतुर्थ मन्त्र से खननोत्किरण करना चाहिए। षष्ठ से पूरण एव समी करण करे-आद्य से सेचन-वौषडन्त से कुट्टन षष्ठ से समार्जन और उपलेपन करे तुरीय मन्त्र से कुण्ड परि कल्पन-प्राति लोम्य से तीनो अघोर, वाम और सद्य से कुण्ड परिधान अर्थात्

मेखला करण-चतुर्थ से कुण्डार्चन-आद्य मन्त्र से रेखा चतुष्टय का सम्पादन-षडन्त षष्ठ से वज्रीकरण तथा चतुष्पदा पावन और इसी प्रकार से आद्य मन्त्र से कुण्ड संस्कार करना चाहिए ॥६६॥ कुण्ड संस्कार के पश्चात् अक्षयाटन-षष्ठ से विष्टर न्यास आद्य से वज्र और आसन-वागीश्वरी मन्त्र से आवाहन करना चाहिए ॥६७॥ वागीश्वरी मन्त्र ॐ वाणी की ईश्वरी-श्याम वर्ण वाला-विशाल नेत्रों से युक्त यौवन से उन्मत्त शरीर के धारण करने वाली और ऋतु से युक्त वाक् की ईश्वर शक्ति का मैं आवाहन करता हूँ ॥६८॥ वागीश्वरी का पूजन करता हूँ ॥६९॥ फिर वागीश्वर का आवाहन है। ॥७०॥

एकवक्त्र चतुर्भुज शुद्धस्फटिकाभ वरदाभयहस्तं परशुमृगधरं जटामुकुटमण्डित सर्वाभरणभूषितमावाहयामि ॥७१

ॐ ई वागीश्वराय नम.।

आवाहनस्थापनसन्निधानसन्निरोधपूजातं वागीश्वरी संभाव्य गर्भाधानवह्निसंस्कारम् ॥७२

अरणीजनित वातोद्भवंवा अग्निहोत्रजवा ताम्रपात्रेशरावेवा आनीय निरीक्षणताडनाभ्युक्षणप्रक्षालनमाद्येनक्रव्यादांशिवपरित्यागोपि प्रथमेन वह्नि संस्कारेण जठरभ्रू मध्यादावाह्याग्नि वैकारणमूर्नाग्नेयेन उद्घापनमाद्येन पुरुषेण सहितया धारणा धेनुमुद्रा तुरीयेणावगुंठ्य जानुभ्यामवनिं गत्वा शरावोत्थापन कुंडोपरि निधाय प्रदक्षिणमावर्त्य तुरीयेणात्मसम्मुखा वागीश्वरी गर्भनाड्या गर्भाधानातरीयेण कमलप्रदानमाद्यन वौषडनेन कुशार्घ्यं दत्वा ईंधनप्रदानमाद्यन प्रज्वालन गर्भाधान चसद्येनाद्येन पूजन पुंसवन वामेन पूजन द्वितायेन सीमतोन्नयनमघोरेण तृतीयेन पूजनम् ॥७३

अब वागीश्वर के आवाहन करने का मन्त्र बतलाया जाता है–एक मुख वाले–चार भुजाओं से सम्पन्न विशुद्ध स्फटिक मणि के समान आभा से युक्त वरदान और अभय प्रदान करने वाले हाथों वाले परशु तथा मृग को धारण करने वाले-जटा और मुकुट को मस्तक पर धारण करने

वाले और सम्पूर्ण आभूषणों से समलङ्कृत का मैं आवाहन करता हूँ ॥७१॥ फिर उक्त मन्त्र से आवाहन करके 'ॐ ई वागीश्वरीय नमः' — इस मन्त्र से समुचित मुद्राओं को प्रदर्शित करते हुए आवाहन-स्थापन-सन्निधान सन्निरोध करके पूजा की समाप्ति पर्यन्त वागीश्वरी का सत्कार करके गर्भाधान वह्नि-सत्कार करना चाहिए ॥७२॥ अब वह्नि की सत्कार-विधि का निरूपण किया जाता है—अरणी लता की लकडी के पारस्परिक संघर्ष करके समुत्पन्न की हुई-सूर्य कान्त मणि के संयोग से समुत्पादित अथवा किसी श्रोत्रिय के अग्निहोत्र से उत्पन्न उसके घर से लाई हुई अग्नि को ताम्र पात्र या शराव (सकोरा-एक मिट्टी का पात्र) में लाकर आद्य मन्त्र से निरीक्षण ताडन-अभ्युक्षण-प्रक्षालन-अग्नि का क्रव्यादा शिव परित्याग करके फिर त्रिवर्ग साधन जठर भ्रू मध्य से आवाहन आवाहित मूर्ति में आग्नेय मन्त्र से उद्दीपन करे। आद्य के सहित पुरुष संहिता से धेनुमुद्रा करनी चाहिए। तुरीय मन्त्र से अवगुण्ठन करे। दूसरे पात्र से आच्छादन करे। फिर शराव को उठाकर कुण्ड के ऊपर रक्खे, तुरीय मन्त्र से प्रदक्षिणा करके अपने सामने वागीश्वरी का ध्यान करे। गर्भ नाल में गर्भाधान मध्य काल बौषडन्त आद्य मन्त्र के द्वारा कमल प्रदान करे। फिर कुशा का अर्घ्य देकर आद्य के द्वारा इन्धन प्रदान करना चाहिए। सद्याद्य से अग्नि का प्रदीप्त करण गर्भाधान पूजन-वामन में पुंसवन और द्वितीय से सीमन्तोन्नयन और अघोर मन्त्र से समर्चन करना चाहिए ॥७३॥

अवयवव्याप्तिवक्त्रोद्घाटनं वक्त्रनिष्कृतिरिति तृतीयेन गर्भजात-कर्मपुरुषेण पूजनं तुरीयेण षष्ठेन प्रोक्षणं सूतकशुद्धये चाग्निसूनु-रक्षाकुशास्त्रेण वक्त्रेणाऽग्नौ मूलमीशाग्र नैर्ऋतिमूल वायव्याग्र वायव्यमूलमीशाग्रमिति कुशास्तरणमितिपूर्वोक्त मिध्ममग्रमूलघृ-ताक्त लालापनोदाय षष्ठेन जुहुयात् ॥७४

पंचपूर्वात्तिक्रमेण परिधिविष्टरन्यासोऽपि आद्येन विष्टरोपरि हिर-ण्यगर्भं हरनारायणानपि पूजयेत् ॥७५

इन्द्रादिलोकपालांश्च पूजयेत् ॥७६

वज्रावर्तपर्यंतानपि पूजयेत् ॥७७

वागीश्वरवागीश्वरीपूजाद्येनमुद्रास्य हुतं विमर्जयेत् ॥७८

इसके अनन्तर अवयव व्याप्ति वक्त्रोद्घाटन वक्त्र निष्कृति इस पूर्व मे कहे हुए प्रकार से तृतीय मन्त्र से करे। गर्भजात कर्म तुरीय से पूजन-षष्ठ से सूतक शुद्धि के लिये प्रोक्षण वक्त्र से अग्निरूप पुत्र की कुश युक्त अस्त्र मन्त्र से रक्षा करनी चाहिए। आग्नेयी दिशा मे मूल ऐशानी मे ईशाग्र नैऋ ति मूल-वायव्य मे अग्र इस पूर्वोक्त प्रकार से कुशाग्रो का आस्तरण करे। इसी तरह पूर्व कथित रीति से घृत मे अग्र मूल को व्यक्त करके लालापनोदन के लिये षष्ठ मन्त्र से हवन करे ॥७४॥ सद्योजातादि पाँचो मे पूर्व के अतिक्रम से अर्थात् वामादि चार मन्त्रो से परिधि युक्त विष्टर का न्यास करना चाहिए। आद्य के द्वारा भद्रासन के ऊपर हिरण्य-गर्भ हरनारायणो का भी पूजन करना चाहिए ॥७५॥ इन्द्र आदि लोक पालो का भी पूजन करे। ॥७६॥ वज्र से लेकर त्रिशूल पर्यन्त आठो लोकपालो के आयुध विशेषो का भी यजनार्चन करना चाहिए ॥७७॥ वागीश्वर-वागीश्वरी की पूजा आदि करके और इसको उद्वासित करके होम द्रव्य को विसर्जित करे अर्थात् हवन करे ॥७८॥

स्रुक्स्रुवसस्कारमथो निरीक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणादीनि पूर्व-वत् स्रुक् स्रुवं च हस्तद्वये गृहीत्वा सस्थापनमाद्येन ताडनमपि स्रुक्स्रुवोपरि दर्भानुलेखनमूलमध्यमाऽग्रेण त्रितेन स्रुक्शक्ति स्रुवमपि शभु दक्षिणपार्श्वे कुशोपरि शक्तये नम शभवे नम. ॥७९

ततो ह्यग्निसूत्रेण स्रुक्स्रुवौ तुरीयेण वेष्टयेदर्चयेच्च ॥८०

धेनुमुद्रा दर्शयित्वा तुरीयेणावगुंठ्य षष्ठेन रक्षा विधाय स्रुक्-स्रुवसस्कार पूर्वमेवोक्त ॥८१

पुनराज्यसस्कार पूर्वमेवोक्त निरोक्षणप्रोक्षणताडनाभ्युक्षणादीनि पूर्ववत् ॥८२

आज्यप्रतापनमैशान्या वा षष्ठेन वेद्युपरि विन्यस्य घृतपात्र वित-स्तिमात्रं कुशपवित्रं वामहस्तागुष्ठानामिकाग्र गृहीत्वा दक्षिणागु-ष्ठानामिका मूल गृहीत्वाग्निज्वालोत्पवन स्वाहांतेन तुरीयेण पुनः

पड् दर्भान् गृहीत्वा पूर्ववत्स्वात्मसंस्नवन स्वहातेनाद्येन कुशद्वय-पवित्रबधन चाद्येन घृते न्यसेदिति पवित्रीकरणम् ॥८३

दभद्वय प्रगृह्याग्निप्रज्वालन घृत निधा वर्तयेत् ।
मप्रोक्ष्याग्नौ निधापयेदिति नीराजनम् ॥८४

इसके अनन्तर स्रुक और स्रुव का सस्कार करे। इन दोनो को हाथ मे ग्रहण करके पूर्व की भाँति निरीक्षण-प्रोक्षण ताडन और अभ्युक्षण आदि करे फिर आद्य मन्त्र से क्रम से सस्थापन और ताडन भी करे। स्रुक स्रुव के ऊपर मूल मध्यमाग्र से तीन प्रकार के दर्भो से अनुलेखन करके स्रुक शक्ति-स्रुव को भी और शम्भु को दक्षिण पार्श्व मे कुशा के ऊपर 'शक्तये नम —शम्भवे नम —इन दो मन्त्रो से न्यास करना चाहिए ॥७६॥ इसके पश्चात् समीप वर्ती सूत्र से स्रुक स्रुव को तुरीय मन्त्र के द्वारा वेष्टित करे और अर्चन करे ॥८०॥ धेनुमुद्रा को दिखाकर तुरीय मन्त्र से अवगुण्ठन करे और षष्ठ से रक्षा करके स्रुक और स्रुव का सस्कार पहिले बताया हुआ ही करना चाहिए ॥८१॥ फिर पूर्व मे कथित पूर्व की ही भाँति निरीक्षण-प्रोक्षण-ताडन अभ्युक्षणादि के द्वारा राज्य सस्कार करना चाहिए ॥८२॥ ऐशानी दिशा में आज्य का प्रतापन उस दिशा मे षष्ठ मन्त्र से वेदि के ऊपर न्यास करके पवित्री करण करे। एक वितस्त प्रमाण वाला कुशा का पवित्र को बाँये हाथ के अङ्गुष्ठ और अनामिका के अग्र भाग को तथा दक्षिण हस्त के अंगूठे और अनामिका के मूल को ग्रहण करके अग्नि ज्वाला मे उत्पवन और स्वाहा अन्त मे लगा कर तुरीय मन्त्र से फिर छै दर्भो को ग्रहण कर स्वदेह मे सप्लवन तथा स्वाहान्त आद्य मन्त्र से दो कुशाओं के द्वारा पवित्र बन्धन और आद्य से घृत मे न्यास करे—यह पवित्री करण है ॥८३॥ दो दर्भ ग्रहण करके अग्नि प्रज्वालन घृत को तीन बार परिभ्रमण करे। सम्प्रोक्षण कर अग्नि मे निधापित करे—यह नीराजन है ॥८४॥

पुनर्दर्भान् गृहीत्वा कीटकादि निरीक्ष्यार्घ्येण सप्रोक्ष्य दर्भानग्नौ निधाय इत्यवद्योतनम् ॥८५

दर्भद्वय गृहीत्वाग्निज्वालया घृतं निरीक्षयेत् ॥८६

दर्भेण गृहीत्वा तेनाग्रद्वयेन शुक्लपक्षद्वयेनाद्येनेति कृष्णपक्षागंघा नं घृतं त्रिभागेन विभज्य स्रुवेणैकभागेनाज्येनाग्नये स्वाहा द्वितीयेनाज्येन सोमाय स्वाहा आज्येन ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा आज्येनाग्नये स्विष्टकृते स्वाहा ॥८७

पुनः कुशेन गृहीत्वा संहिताभिमंत्रेण नमोन्तेनाभिमन्त्रयेत् ॥८८

अभिमन्त्र्य धेनुमुद्राप्रदर्शनकवचनावगुण्ठनास्त्रेण रक्षाम् ।

अथ संस्कृते निधापयेत् आज्यमग्रतः ॥८९

आज्येन स्रुवदनेन नामाभिधारणं शक्तिबीजादीशानमूर्तये स्वाहा ।
पूर्ववत्पुरुषवक्त्राय स्वाहा अघोरहृदयाय स्वाहा वामदेवाय गुह्याय स्वाहा सद्योजातमूर्तये स्वाहा ।

इति वक्त्रोद्घाटनम् ॥९०

स्रुक् के मुख मे स्थापित घृत से चक्रावधारण हवि को अर्थात् द्रव्य मे चक्र के सदृश अभिधारण किया हुआ "ईशान मूर्तये स्वाहा"—पूर्ववत् "पुरुष वक्त्राय स्वाहा"—"अघोर हृदयाय स्वाहा"—"वाम देवाय गुह्याय स्वाहा"—'सद्योजात मूर्त्तये स्वाहा"—इत्यादि मन्त्रों के द्वारा हवन करना चाहिए। यह वक्त्रोद्घाटन है ॥६०॥

ईशानमूर्तये तत्पुरुषवक्त्राय स्वाहा तत्पुरुषवक्त्राय अघोरहृदयाय स्वाहा अघोरहृदयाय वामगुह्याय सद्योजातमूर्तये स्वाहा इति वक्त्रसधानम् ॥६१

ईशानमूर्तये तत्पुरुषाय वक्त्राय अघोरहृदयाय वामदेवाय गुह्याय सद्योजाताय स्वाहा इति वक्त्रैक्यकरणम् ॥६२

शिवाग्नि जनयित्वैव सर्वकर्माणि कारयेत् ।
केवलं जिह्वया वापि शान्तिकाद्यानि सर्वदा ॥६३
गर्भाधानादिकार्येषु वह्नौ प्रत्येकमव्ययः ।
दश आहुतयो देया योनिबीजेन पचधा ॥६४
शिवाग्नौ कल्पयेद्दिव्य पूर्ववत्परमासनम् ।
आवाहन तथा न्यासं यथा देवे तथार्चनम् ॥६५
मूलमत्रं सकृज्जप्त्वा देवदेव प्रणम्य च ।
प्राणायाम त्रयं कृत्वा सगर्भं सर्वसमतम् ॥६६
परिषेचनपूर्वं च तदिध्ममभिधार्य च ।
जुहुयादासनमध्ये तु ज्वलितेऽथ महामुने ॥६७
आघारावपि चाधाय चाज्येनैव तु षण्मुखे ।
आज्यभागौ तु जुहुयाद्विधिनैव घृतेन च ॥६८

अब वक्त्र सन्धान बतलाया जाता है—"ईशान मूर्ति-तत्पुरुष वक्त्र-अघोर हृदय वाले-अघोर हृदय वाम गुह्य और सद्योजात मूर्ति के लिये स्वाहा है—यह इस प्रकार से वक्त्र का सन्धान किया जाता है। पुनः इसी उक्त प्रकार के मन्त्र से ईशानमूर्तये इत्यादि से सद्योजात मूर्त्तये इत्यन्त पर्यन्त बोलकर आहुति देते हुए वक्त्रैक्य करण करना चाहिए ॥६१॥६२॥ इस प्रकार से शिव की अग्नि का जनन करके सम्पूर्ण कर्म

कराने चाहिए। केवल जिह्वा से सर्वदा शान्तिकादि कर्म करे ॥६३॥ गर्भाधान आदि कार्यों में अग्नि में दस या योनि बीज से पाँच प्रकार की आहुतियाँ देनी चाहिए ॥६४॥ शिवाग्नि में पूर्व की भाँति परम आसन की कल्पना करे। जिस तरह से देव का अर्चन होता है उसी प्रकार से आवाहन और न्यास करना चाहिए। मूल मन्त्र का एक बार जाप करके और देवों के देव को प्रणाम करे। तीन बार प्राणायाम सगर्भ सर्व सम्मत करके हे महामुने! परिषेचन पूर्वक उस इध्म का अभिधारण कर प्रज्वलित अग्नि में मध्य में हवन करना चाहिए ॥६४॥६५॥६६॥६७॥ आधारों का भी आधान करके छै सद्योजातादि जिसके मुख के समान हैं उसमें विधि पूर्वक घृत से आज्य भागों का हवन करे ॥६८॥

चक्षुषी चाज्यभागौ तु चाग्नये च तथोत्तरे ।
आत्मनो दक्षिणे चैव सोमायेति द्विजोत्तम ॥६६
प्रत्यङ्मुखस्य देवस्य शिवाग्नेर्ब्रह्मणः सुत ।
शक्ति वै दक्षिणे चैव चोत्तरं चोत्तरं तथा ॥१००
दक्षिणां तु महाभाग भवत्येव न संशयः ।
आज्येनाहुतयस्तत्र मूलेनैव दशैव तु ॥१०१
चरुणा च यथावद्धि समिद्भिश्च तथा स्मृतम् ।
पूर्णाहुतिं ततो दद्यान्मूलमंत्रेण सुव्रत ॥१०२
सर्वावरणदेवानां पंचपंचैव पूर्ववत् ।
ईशानादिक्रमेणैव शक्तिबीजक्रमेण च ॥१०३
प्रायश्चित्तमघोरेण स्वेष्टातं पूर्ववत्स्मृतम् ।
त्रिप्रकारं मया प्रोक्तमग्निकार्यं सुशोभनम् ॥१०४
यथावसरमेवं हि कुर्यान्नित्यं महामुने ।
जीवितान्ते लभेत्स्वर्गं लभते अग्निदीपनम् ॥१०५
नरकं चैव नाप्नोति यस्य कस्यापि कर्मणः ।
अहिंसकं चरेद्धोमं साधको मुक्तिकाङ्क्षकः ॥१०६
हृदिस्थं चिंतयेदग्निं ध्यानयज्ञेन होमयेत् ।
देहस्थं सर्वभूतानां शिवं सर्वजगत्पतिम् ॥१०७

त ज्ञात्वा होमयेद्भक्त्या प्राणायामेन नित्यशः ।
वाह्यहोमप्रदाता तु पाषाणे दर्दु रो भवेत् ।।१०८

हे द्विजोत्तम ! अपने उत्तर भाग मे दोनों आज्य भागों का अग्नि के लिये और दक्षिण भाग मे सोम के लिये हवन करना चाहिए ।।६६।। अब उक्त अप सव्य होम का कारण बताते हैं—हे ब्रह्मा के पुत्र ! प्रत्यङ्मुख देव शिवाग्नि की दक्षिण अक्षि (नेत्र) और उत्तर-उत्तर उसी प्रकार से दक्षिण होता ही है । हे महाभाग ! इसमे सशय नही है । यहाँ पर मूल मन्त्र के द्वारा आज्य की दश आहुतियाँ देनी चाहिएँ ।।१००।।१०१।। ये यथावत् चरु से तथा समिधाओ से कही गई हैं । हे सुव्रत ! इसके अनन्तर मूल मन्त्र से पूर्णाहुति देनी चाहिए ।।१०२।। समस्त आवरण देवों की पूर्व की भाँति पाँच-पाँच ही ईशानादि क्रम से और शक्ति बीज के क्रम से देवे ।।१०३।। प्रायश्चित्त स्वेष्टान्त तक अघोर मन्त्र से पूर्व के ही समान बताया गया है । इस तरह मैंने तीन प्रकार का सुशोभन अग्निकार्य कहा है ।।१०४।। हे महामुने ! अवसर के अनुसार इस प्रकार से नित्य ही करना चाहिए । जीवन के अन्त मे ऐसा करने वाला मानव स्वर्ग की प्राप्ति करता है और अग्नि दीपन का लाभ किया करता है ।।१०५।। जिस किसी कर्म के करने पर भी कभी नरक की प्राप्ति नहीं किया करता है। जो मुक्ति की इच्छा रखने वाले साधक को अहिंसक होम का समाचरण करना चाहिए ।।१०६।। हृदय में अग्नि का चिन्तन करे और ध्यान क यज्ञ से होम करना चाहिए । देह मे स्थित-समस्त भूतो के शिव और सम्पूर्ण जगतों के पति का ध्यान करे । ऐसे प्रभु को पहिचान करके भक्ति-भाव के साथ होम करे और नित्य ही प्राणायाम के द्वारा करे । जो बाह्य होम के प्रदान करने वाला होता है वह पाषाण में दर्दुर होता है ।।१०७।।१०८।।

।। ६५—शिव लिङ्ग अघोर अर्चन विधि ।।

अथवा देवमीशानं लिंगे संपूजयेच्छिवम् ।
ब्राह्मणः शिवभक्तश्च शिवध्यानपरायण. ।।१

अग्निरित्यादिना भस्म गृहीत्वा ह्यग्निहोत्रजम् ।
उद्धूलयेद्धि सर्वाङ्गमापादतलमस्तकम् ॥२
आचामेद्ब्रह्मतीर्थेन ब्रह्मसूत्री ह्युदङ्मुखः ।
अथोंनमः शिवायेति तनुं कृत्वात्मनः पुनः ॥३
देव च तेन मंत्रेण पूजयेत्प्रणवेन च ।
सर्वस्मादधिका पूजा अघारेशस्य शूलिनः ॥४
सामान्य यजनं सर्वमग्नि कार्यं च सुव्रत ।
मत्रभेदः प्रभोस्तस्य अघोरध्यानमेव च ॥५
अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः
सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥६
अघोरेभ्यः प्रशांतहृदयाय नमः ।
अथ घोरेभ्यः सर्वात्मब्रह्मशिरसे स्वाहा ।
घोरघोरतरेभ्यः ज्वालामालिनी शिखायै वषट् ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यः पिंगलकवचाय हुम् ।
नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः नेत्रत्रयाय वषट् ।
सहस्राक्षाय दुर्भेदाय पाशुपतास्त्राय हुं फट् ।
स्नात्वाचम्य तनुं कृत्वा समभ्युक्ष्याघमर्षणम् ।
तर्पणं विधिना चार्घ्यं भानवे भानुपूजनम् ॥७
सर्व चाघोरपूजाया मंत्रमात्रेण भेदितम् ।
मार्गशुद्धिस्तथा द्वारि पूजां वास्त्वधिपस्य च ॥८

(शिव लिङ्ग अघोर-अर्चन विधि वर्णन) इस अध्याय मे उत्तम अघोरार्चन का वर्णन किया जाता है-अथवा ईशान शिव देव का लिङ्ग मे समर्चन करे । ब्रह्म और शिव का भक्त शिव के ध्यान मे परायण होकर पूजन करे ॥१॥ 'अग्नि'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा अग्नि होत्र से समुत्पन्न भस्म का ग्रहण कर पाद तल से लेकर मस्तक पर्यन्त सम्पूर्ण अङ्ग को उद्धूलित करे अर्थात् सब शरीर मे भस्म लगावे ॥२॥ ब्रह्म सूत्री उत्तर की ओर मुख करके ब्रह्म तीर्थ से आचमन करे । इसके अनन्तर पुनः "ओम् नम. शिवाय"—इस मन्त्र से अपने शरीर को पवित्र

करे ॥३॥ इसी मन्त्र से अथवा केवल प्रणव से देव का अर्चन करना चाहिए । अघोरेश शूली की पूजा सबसे अधिक महत्त्व वाली होती है ॥४॥ हे सुव्रत ! अन्य सम्पूर्ण यजन और अग्नि कार्य सामान्य होता है । उस प्रभु का मन्त्र भेद होता है और अघोर का ध्यान उसमें किया जाता है ॥५॥ उसका मन्त्र यह है—"अघोरों के लिये-घोरों के लिये-घोर तरों के लिये-सब शर्वों के लिये-रुद्र रूपो के लिये नमस्कार होवे" ॥६॥ अब इसके न्यास बताते हैं-जिस अङ्ग का न्यास हो उसी अङ्ग पर हस्त रखना चाहिए 'अघोरेभ्यः प्रशान्त हृदयाय नमः'—इससे हृदय पर न्यास करे। 'घोरेभ्यः सर्वात्म ब्रह्म शिरसे स्वाहा'–इससे सिर पर न्यास करे। 'घोर घोर तरेभ्यः ज्वाला मालिनी शिखायै वषट्'–इससे शिखा पर न्यास करे। "सर्वेभ्यः सर्व शर्वेभ्यः पिङ्गल कवचाय हुम्"–इससे बाहुओं पर न्यास करे। 'नमस्ते अस्तु रुद्र रूपेभ्यः नेत्र मयाय वषट्"—इससे नेत्रों पर न्यास करे। सहस्रा क्षाय दुर्भेदाय पाशुपतास्त्राय हु फट्"–इससे कर तल से न्यास करे। अब पूजा की विधि को बतलाया जाता है-स्नान करके-आचमन करके तथा शरीर का अभ्युक्षण करके अघमर्षण-तर्पण और भानु के लिये अर्घ्य और पूजन समान रूप से पूर्व तुल्य करके अघोर की पूजा में मन्त्र मात्र से भिन्न करना चाहिए। मार्ग की शुद्धि तथा द्वार पर वास्तु के अधिप की पूजा करे ॥७॥८॥

कृत्वा कर विशोध्याग्रे स शुभासनमास्थितः ।
नासाग्रकमले स्थाप्य दग्धाक्षः क्षुभिकाग्निना ॥९
वायुना प्रेर्य तद्भस्म विशोध्य च शुभांभसा ।
शक्त्यामृतमये ब्रह्मकला तत्र प्रकल्पयेत् ॥१०
अघोरं पंचधा कृत्वा पचांगसहितं पुनः ।
इत्थ ज्ञानक्रियामेव विन्यस्य च विधानतः ॥११
न्यासस्त्रिनेत्रसहितो हृदि ध्यात्वा वरासने ।
नाभौ वह्निगतं स्मृत्वा भ्रू मध्ये दीपवत्प्रभुम् ॥१२
धारया बीजांकुरानतपर्माद्य रपि संयुते ।
सोमसूर्याग्निसंपन्ने मूर्तित्रयसमन्विते ॥१३

वामादिभिश्च सहिते मनोन्मन्याप्यधिष्ठिते ।
शिवासनेत्ममूर्तिस्यमक्षयाकार रूपिणम् ।।१४
अष्टत्रिशत्कलादेहं त्रितत्त्वसहित शिवम् ।
अष्टादशभुजं देव गजचर्मोत्तरीयकम् ।।१५

शुभ आसन पर समासीन होकर सबसे पूर्व हाथ को विशुद्ध करे फिर नासाग्र के समीप हस्त कमल में भस्म को स्थापित करके शुभवाग्नि से दग्ध व्यवहार वाले वायु से प्रेर्य उस भस्म को शुभ जल से विशोधित करे । ब्रह्ममय उस भस्म में शक्ति के साथ ब्रह्म कला की कल्पना करे ।।६।।१०।। अघोर सज्ञा वाले मन्त्र को पाँच प्रकार का करके पञ्चाङ्ग भस्म से विलेपन युक्त करे । इस प्रकार से विधि-विधान से ज्ञान युक्ता क्रिया का विन्यास करके हे वरानने ! अघोर मूर्ति के सहित न्यास करना चाहिए । हृदय के श्रेष्ठ आसन पर ध्यान करके नाभि मे वह्निगत का स्मरण करके भौंहो के मध्य मे दीप की शिखा की भाँति प्रभु का चिन्तन करे ।।११।१२।। अब ध्यान का प्रकार बताते हैं शान्ति और बीजाङ्कुर अनन्त धर्मादो से सयुत सोम सूर्याग्नि से समन्वित मूर्ति त्रय से युक्त-वामादि से सयुत और मनोन्मनी से अधिष्ठत शिवासन पर आत्म मूर्ति मे सस्थित-अक्षय आकार और रूप वाले-अडतीस कला से युक्त देह वाले-तीन तत्त्वो के सहित शिव का ध्यान करे जिनकी अठारह भुजाऐं हैं और जो गज के चर्म के उत्तरीय वाले देव हैं ।।१३।।१४।।१५।।

सिंहाजिनाम्बरधरमघोर परमेश्वरम् ।
द्वात्रिंशाक्षररूपेण द्वात्रिंशच्छक्तिभिर्वृतम् ।।१६
सर्वाभरणसंयुक्तं सर्वदेवनमस्कृतम् ।
कपालमालाभरण सर्ववृश्चिकभूषणम् ।। ७
पूर्णेन्दुवदनं सौम्य चन्द्रकोटिसमप्रभम् ।
चंद्ररेखाधर शक्त्या सहित नीलरूपिणम् ।। ८
हस्ते खड्गं खेटकं पाशमेके रत्नैश्चित्र चांकुशं नागकक्षाम् ।
शरासन पाशुपत तथास्त्र दड च खट्वागमथापरे च ।।१६
तंत्रीं च घटा विपुलं च शूलं तथापरे डामरुकं च दिव्यम् ।

वज्रं गदां टङ्कमेकं च दीप्तं समुद्गरं हस्तमथास्य शंभो । २०
वरदाभयहस्तं च वरेण्यं परमेश्वरम् ।
भावयेत्पूजयेच्चापि वह्नौ होमं च कारयेत् ॥२१

यह देव सिंह के चर्म का वस्त्र धारण करने वाले हैं। अघोर स्वरूप-परमेश्वर बत्तीस अक्षरों के रूप से बत्तीस शक्तियों से समावृत हैं॥१६॥ सम्पूर्ण आभरणों से समलङ्कृत-समस्त देवों के द्वारा वन्द्यमान-कपाल अर्थात् नर मुण्डों की माला के भूषण से विभूषित समग्र बिच्छुओं की भूषा से सुशोभित हैं ॥१७॥ पूर्ण चन्द्र के तुल्य मुख वाले-परम सौम्य स्वरूप-करोड़ों चन्द्रमाओं की प्रभा के तुल्य प्रभा से सम्पन्न-चन्द्र की रेखा के धारण करने वाले-शक्ति के सहित और नील रूप वाले हैं॥१८॥ एक हाथ में खड्ग है और एक हस्त में खेटक तथा पाश लिये हुए है। किसी हाथ में रत्नों से जटित परम विचित्र अंकुश है तो किसी हाथ में नाग कक्षा है। शरासन पाशुपत अस्त्र, दण्ड और खट्वाङ्ग धारण किये हुए हैं। तन्त्री घण्टा-विपुल शूल और दूसरे हाथ में दिव्य डामरुक लिये हुए हैं। वज्र गदा-टङ्क दीप्त मुद्गर शम्भो के हाथ में विराजमान हैं ॥१९॥२०॥ वरदान अभय दोनों हाथों में रखने वाले-परम वरेण्य-परमेश्वर की भावना करे और फिर पूजन करनी चाहिए और होम करे ॥२१॥

होमश्च पूर्ववत्सर्वो मन्त्रभेदश्च कीर्तितः ।
अष्टपुष्पादि गन्धादि पूजास्तुतिनिवेदनम् ॥२२
अंतर्बलिं च कुंडस्य वाह्ये येन विधानतः ।
मंडलं विधिना कृत्वा मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमम् ॥२३
रुद्रेभ्यो मातृगणेभ्यो यक्षेभ्योऽसुरेभ्यो ग्रहेभ्यो राक्षसेभ्यो नागेभ्यो नक्षत्रेभ्यो विश्वगणेभ्य क्षेत्रपालेभ्य. अथ वायुवरुणदिग्भागे क्षेत्रपाल बलिं क्षिपेत् ।
अर्घ्यं गंधं पुष्पं च धूप दीप च सुव्रता. ।
नैवेद्यं मुखवासादि निवेद्य वै यथाविधि । २४
विज्ञाप्यैव विसृज्याथ अष्टपुष्पैश्च पूजनम् ।
सर्वसामान्यमेतद्धि पूजायां मुनिपुंगवा ॥२५

एवं सक्षेपतः प्रोक्तमघोरार्चादि सुव्रत ।
अघोरार्चाविधानं च लिंगे वा स्थंडिलेऽपि वा ॥२६
स्थंडिलात्कोटिगुणित लिंगार्चनमनुत्तमम् ।
लिंगार्चनरतो विप्रो महापातकसभवै. ॥२७
पापैरपि न लिप्येत पद्मपत्रमिवाम्भसा ।
लिंगस्य दर्शनं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं वरम् ॥२८
अर्चनादधिक नास्ति ब्रह्मपुत्र न सशयः ।
एव सक्षेपत प्रोक्तमघोरार्चनमुत्तमम् ॥२६
वर्षकोटिशतेनापि विस्तरेण न शक्यते ॥३०

होम करने का वही प्रकार होता है जो पहिले बता दिया गया है केवल मन्त्रो का ही सिर्फ भेद होता है। अष्ट पुष्पादि और गन्धादि से पूजा तथा फिर स्तवन का निवेदन करना चाहिए। ॥२२॥ वह्नि पुराण में वर्णित विधान से कुण्ड की अन्तर्वलि होम करना चाहिए। इन मन्त्रो से क्रमानुसार विधि पूर्वक मण्डल करे ॥२३॥ रुद्रो के लिये मातृगण-यक्ष-असुर ग्रह-राक्षस-नाग नक्षत्र विश्वगण क्षेत्रपाल बलि देवे और वायु वरुण दिग्भाग में क्षेत्रपाल की बलि देनी चाहिए। हे सुव्रतो ! अर्घ्य गन्ध पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य और मुख वास आदि यथाविधि समर्पित करे ॥२४॥ इस प्रकार से विशेष जापन करके और विसर्जन करके हे मुनिश्रेष्ठो ! पूजा में आठ पुष्पो से यह पूजन सर्व सामान्य होता है ॥२५॥ हे सुव्रत ! इस तरह से अघोरार्चादि सक्षेप से कह दिया गया है। अघोरार्चा का विधान लिङ्ग मे तथा स्थण्डिल मे दोनो प्रकार का होता है ॥२६॥ स्थण्डिल से करोड़ो गुणा उत्तम लिङ्गार्चन माना जाता है। लिङ्गार्चन मे निरत रहने वाला पुरुष महा पातकी से होने वाले पापो से भी जल से पद्मपत्र की भाँति लिप्त नही हुआ करता है। लिङ्ग के दर्शन से महा पुण्य होता है और दर्शन से भी स्पर्श करना परम श्रेष्ठ होता है ॥२७॥२८॥ लिङ्ग के अर्चन से अधिक तो हे ब्रह्मपुत्र ! कुछ भी अन्य श्रेष्ठतम नही होता है-इसमे सशय नही है। इस प्रकार से सक्षेप से उत्तम अघोरार्चन का विधान निरूपित कर दिया है। इसका विस्तार पूर्वक वर्णन यदि कोई

करना चाहे तो करोड़ों वर्षों मे भी नही किया जा सकता है ॥२९॥३०॥

॥ ६६—श्री जयाभिषेक वर्णन ॥

प्रभावो नंदिनश्चैव लिंगपूजाफलं श्रुतम् ।
श्रुतिभिः संमितं सर्वं रोमहर्षण सुव्रत ॥१
जयाभिषेक ईशेन कथितो मनवे पुरा ।
हिताय मेरुशिखरे क्षत्रियाणां त्रिशूलिना ॥२
तत्कथं षोडशविधं महादानं च शोभनम् ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं सूत बुद्धिमतांवर ॥३
जीवच्छ्राद्धं पुरा कृत्वा मनुः स्वायंभुवः प्रभुः ।
मेरुमासाद्य देवेशमस्तौषीन्नीललोहितम् ॥४
तपसा च विनीताय प्रहृष्टः प्रददौ भवः ।
दिव्यं दर्शनमीशानस्तेनापश्यत्तमव्ययम् ॥५
नत्वा संपूज्य विधिना कृताञ्जलि पुटः स्थितः ।
हर्षगद्गदया वाचा प्रोवाच च ननाम च ॥६
देवदेव जगन्नाथ नमस्ते भुवनेश्वर ।
जीवच्छ्राद्धं महादेव प्रसादेन विनिर्मितम् ॥७
पूजितश्च ततो देवो दृष्टश्चैव मयाधुना ।
शक्राय कथितं पूर्वं धर्मकामार्थमोक्षदम ॥८
जयाभिषेक देवेश वक्तुमर्हसि मे प्रभो ।
तस्मै देवो महादेवो भगवान्नीललोहितः ॥९

जयाभिषेक वर्णन । इस अध्याय मे मनु के लिये परम सन्तुष्ट महेश के द्वारा वर्णित जयाभिषेक का निरूपण किया जाता है । ऋषियों ने कहा—हे सुव्रत रोमहर्षण ! नन्दी का प्रभाव और श्रुति से समित सम्पूर्ण लिङ्ग पूजा का फल हमने श्रवण कर लिया है ॥१॥ मेरु शिखर मे क्षत्रियो के कल्याण के लिये पहिले समय मे भगवान् महेश त्रिशूली के द्वारा जयाभिषेक का वर्णन किया गया है ॥२॥ हे बुद्धिमानों में परम श्रेष्ठ सूतजी ! वह परम शोभन सोलह प्रकार का महादान किस प्रकार का

होता है यह आप हमारे सामने दर्शन करने को योग्य होते हैं। ॥३॥ सूतजी ने कहा—प्राचीन काल मे प्रभु स्वायम्भुव मनु ने जीवच्छ्राद्ध करके मेरु शिखर मे प्राप्त हुए और वहाँ देवेश भगवान् नील लोहित का स्तवन किया था ॥४॥ तपश्चर्या से परम विनय से युक्त मनु को भगवान् भव ने परम प्रहृष्ट होकर अपना दिव्य दर्शन दिया था। इससे उन अव्यय ईशान को मनु ने देखा था ॥५॥ मनु ने उन को प्रणाम किया था और भली-भाँति से पूजन करके हाथ जोड़कर भगवान् के समक्ष मे मनु स्थित हो गये। उन्होने प्रणाम किया और हर्ष से गद्गद वाणी मे बोले ॥६॥ हे देवो के भी देव! आप समस्त भुवनो के ईश्वर और इस जगत् स्वामी हैं। महादेव के प्रसाद से मैंने जीवित रहते हुए श्राद्ध किया है ॥७॥ और इसके अनन्तर देव का पूजन किया है और इस समय मैंने आपका दर्शन भी प्राप्त कर लिया है। पहिले समय मे इन्द्रदेव के लिये जो धर्मार्थ काम तथा मोक्ष का प्रदान करने वाला जयाभिषेक कहा था। हे देवेश! वही अब मुझे बताने की कृपा कीजिए। सूतजी ने कहा - उस समय में नील लोहित भगवान् महादेव ने उसको यह सम्पूर्ण जयाभिषेक स्वय ही कहा था ॥८॥९॥

जयाभिषेकमखिलमवदत्परमेश्वरः।
जयाभिषेकं वक्ष्यामि नृपाणां हितकाम्यया ॥१०
अपमृत्युजयार्थं च सर्वं शत्रुजयाय च।
युद्धकाले तु संप्राप्ते कुर्य्यादेवमभिषेचनम् ॥११
स्वर्पति चाभिषिच्यैव गच्छेच्छत्रोर्द्धु रणाजिरे।
विधिना मडप कृत्वा प्रपा वा कूटमेव वा ॥१२
नवधा स्थापयेद्वह्नि ब्राह्मणो वेदपारग।
ततः सर्वाभिषेकार्थं सूत्रपातं च कारयेत् ॥१३
प्रागाद्य वर्णसूत्रं च दक्षिणार्द्ध तथा पुनः।
सहस्राणां द्वय तत्र शताना च चतुष्टयम् ॥१४
दोषमेव शुभं कोष्ठं तेषु कोष्ठं तु संहरेद्।
बाह्ये वीथ्यां पदं चैकं समंतादुपसंहरेत् ॥१५

अंगसूत्राणि संगृह्य विधिना पृथगेव तु ।
प्रागाद्यं वर्णसूत्रं च दक्षिणाद्यं तथा पुनः ॥१६
प्रागाद्य दक्षिणाद्यं च षट्त्रिंशत्सहरेत्क्रमात् ।
प्रागाद्याः पंक्तयः सप्त दक्षिणाद्यास्तथा पुनः ॥१७

भगवान् श्री महादेव ने कहा—अब मैं इस जयाभिषेक का वर्णन राजाओं के हित की कामना से तुम्हारे समक्ष में करूंगा ॥१०॥ जिस समय युद्ध का काल उपस्थित हो जाता है तो उस समय में अपमृत्यु के जय करने के लिये और शत्रुओं पर पूर्णतया जय प्राप्त करने के लिये इस अभिषेक को करे ॥११॥ पहिले अपने स्वामी शिव का अभिषेचन करके फिर रणक्षेत्र में युद्ध करने के लिये जाना चाहिए। विधि पूर्वक मण्डप की रचना करे उसमें पानीय शाला या निश्चल स्थान का निर्माण करना चाहिए ॥१२॥ वेदों के पारगामी ब्राह्मण को वह्नि की नौ प्रकार से स्थापना करनी चाहिए। इसके अनन्तर सब के अभिषेक के लिये सूत्रपात करे अर्थात् रेखा करण करे ॥१३॥ प्रागाद्य और दक्षिणाद्य वर्ण सूत्र जिस तरह होवे वैसे दो सहस्र और चार सौ शेष शुभ उक्त शेष भागों में मध्य स्थान करना चाहिए। कोष्ठ के बाहिर के भाग में वीथी में चारों ओर एक पद की उपकल्पना करनी चाहिए ॥१४॥१५॥ अवान्तर सूत्रों का संग्रह करके विधि से पृथक् ही प्रागाद्य और दक्षिणाद्य वर्ण सूत्र के साथ छत्तीस रेखाएँ करे। प्रागाद्य सात तथा दक्षिणाद्या सात पंक्तियाँ करनी चाहिए ॥१६॥१७॥

तस्मादेकोनपञ्चाशत्पंक्तयः परिकीर्तिताः ।
नव पंक्तीर्हरेन्मध्ये गन्धगोमयवारिणा ॥१८
कमलं चालिखेत्तत्र हस्तमात्रेण शोभनम् ।
अष्टपत्रं सितं वृत्तं कर्णिकाकेसरान्वितम् ॥ १
अष्टाङ्गुलप्रमाणेन कर्णिका हेमसन्निभा ।
चतुरङ्गुलमानेन केसरस्थानमुच्यते ॥२०
धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च यथाक्रमम् ।
आग्नेयादिषु कोणेषु स्थापयेत्प्रणवेन तु ॥२१

अव्यक्तादीनि वै दिक्षु गात्राकारेण वै न्यसेत् ।
अव्यक्तं नियतः कालः कालो चेति चतुष्टयम् ॥२२
सितरक्तहिरण्याभकृष्णा धर्मादयः क्रमात् ।
हंसाकारेण वै गात्रं हेमाभासेन सुव्रताः ॥२३
आधारशक्तिमध्ये तु कमल सृष्टिकारणम् ।
बिंदुमात्रं कलामध्ये नादाकारमतः परम् ॥२४
नादोपरि शिवं ध्यायेदोंकाराख्य जगद्गुरुम् ।
मनोन्मनी च पद्माभं महादेवं च भावयेत् ॥२५

इस प्रकार से उनचास पंक्तियाँ परिकीर्त्तित की गई हैं। मध्य भाग में गन्ध गोमय और जल से लिप्त करके नौ पंक्तियाँ ग्रहण करनी चाहिएँ ॥१८॥ उसमें एक हाथ के प्रमाण वाला परम शोभन कमल का आलेखन करे जिस कमल में सित एव वृत्त आठ पत्र होवें और कर्णिका भी केसर से युक्त होनी चाहिए ॥१६॥ वह कर्णिका हेम के सदृश आठ अंगुल के प्रमाण वाली विरचित करे। चार अंगुल के प्रमाण से युक्त केसर का स्थान कहा जाता है ॥२०॥ प्रणव के द्वारा यथाक्रम धर्म ज्ञान-वैराग्य और ऐश्वर्य आग्नेयादि कोणों में स्थापित करे ॥२१॥ वाह्य पत्राकार से दिशाओं मे अव्यक्त आदि का न्यास करना चाहिए। अव्यक्त नियत काल है और चतुष्टय काली होता है ॥२२॥ धर्म अर्थ आदि का क्रम से वर्ण सित-रक्त-हिरण्याभ और कृष्ण होता है। गात्र की कल्पना हेमाभ हंसाकार से करे। ॥२३॥ आधार शक्ति के मध्य मे कमल सृष्टि का कारण माना गया है। कला मध्य मे बिन्दु मात्र नाद का आकार है। इससे पर नाद के ऊपर ओङ्कार नाम वाले जगत् के गुरु भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिए। मनोन्मनी पद्माभ महादेव की भावना करनी चाहिए ॥२४॥२५॥

वामादयः क्रमेणात्र प्रागाद्या- केसरेषु वै ।
वामा ज्येष्ठा तथा रौद्री काली विकरणी तथा ॥ ६
बला प्रमथिनी देवी दमनी च यथाक्रमम् ।
वामदेवादिभिः सार्धं प्रणवेनैव विन्यसेत् ॥२७

नमोऽस्तु वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय शूलिने ॥२८
रुद्राय कालरूपाय कलाविकरणाय च ।
बलाय च तथा सर्वभूतस्य दमनाय च ॥२६
मनोन्मनाय देवाय मनोन्मन्यै नमोनमः ।
मन्त्रैरेतैर्यथान्याय पूजयेत्परिमंडलम् ॥३०
प्रथमावरण प्रोक्तं द्वितीयावरण शृणु ।
द्वितीयावरणे चैव शक्तय षोडशैव तु ॥३१
तृतीयावरणे चैव चतुर्विशदनुक्रमात् ।
पिशाच वीथिर्वै मध्ये नाभिवीथिः समंततः ॥३२

केसरों मे प्रागाद्या वामा आदि क्रम से ही विन्यस्त करे। वामा-ज्येष्ठा-रौद्री-काली-विकरणी-बला-प्रमथिनी-देवी-और दमनी इनका क्रम के अनुसार वामादि के साथ ही प्रणव के द्वारा विन्यास करना चाहिए ॥२६॥२७॥ वामदेव के लिये नमस्कार है-ज्येष्ठ शूली के लिये नमस्कार है ॥२८॥ कालरूप रुद्र के लिये-कला विकरण के लिये बल तथा सर्व भूतो के दमन करने वाले के लिये मनोन्मन देव तथा मनोन्मनी के लिये बारम्बार नमस्कार है। इन मन्त्रों के द्वारा परिमण्डल का पूजन करना चाहिए ॥२६॥३०॥ अब तक प्रथम आवरण का निरूपण किया गया है। अब द्वितीय आवरण का श्रवण करो। द्वितीय आवरण मे सोलह ही शक्तियाँ हैं ॥३१॥ तीसरे आवरण मे क्रमानुसार चौबीस हैं। मध्य मे पिशाच वीथी है और चारो ओर नाभि वीथी है ॥३२॥

मन्त्रैरेतैर्यथान्याय पिशाचानां प्रकीर्तिता ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु पदमष्टारसंयुतम् ॥३३
तेपुतेपु पृथक्त्वेन पदेपु कमल क्रमात् ।
कल्पयेच्छालिनीवारगोधूमैश्च यवादिभिः ॥३४
तंडुलैश्च निर्लवॉथ गौरसर्षपसंयुतैः ।
अथवा कल्पयेदेतैर्यथाकालं विधानतः ॥३५
अष्टपत्रं लिखेत्तेपु कर्णिकाकेसरान्वितम् ।
शालीनामाढक प्रोक्तं कमलानां पृथक् पृथक् ॥३६

तडुलाना तदर्धं स्यात्तदर्धं च यवादय ।
द्रोण प्रधानकु भस्य तदर्धं त डुलाः स्मृता ॥३७
तिलानामाढक मध्ये यवाना च तदर्धकम् ।
अथामसा समभ्युक्ष्य कमल प्रणवेन तु ॥३८

इन वक्ष्य माण मन्त्रों के द्वारा पिशाचो की पूजा कही गई है। आठ कोणो वाले एक सहस्र आठ स्थान करना चाहिए ॥३३॥ उन-उन प्रत्येक स्थानो मे शालिनीवार गोधूम-यव आदि से कमल की पृथक् रूप से कल्पना करे ॥३४॥ तण्डुल-तिल और सर्षप आदि से सयुत इन के द्वारा इनसे यथा काल विधान से कल्पना करे ॥३५॥ उन कमलों में कर्णिका और केसर से अन्वित अष्ट पत्र की रचना करे। प्रत्येक कमल की रचना करने के लिये एक आढक शाली का परिमाण होना चाहिए यदि तण्डुलो से रचना की जावे तो इनका मान शाली से आधा होना चाहिए। और यव से काम लिये जावे तो इनका प्रमाण तण्डुल से आधा होना चाहिए। प्रधान कुम्भ का चतुर्गुण द्रोण है उसका आधा भाग तण्डुल कहे गये हैं ॥३६॥३७॥ तिलो का परिमाण एक आढ़क है और मध्य मे यव उसके अध भाग होने चाहिए। इसके अनन्तर जल से प्रणव के द्वारा कमल का अभ्युक्षण करे ॥३८॥

तेषु सर्वेषु विधिना प्रणव विन्यसेत्क्रमात् ।
एव समाप्य चाभ्युक्ष्य पदसाहस्रमुत्तमम् । ३६
कलशाना सहस्राणि हैमानि च शुभानि च ।
उक्तलक्षणयुक्तानि कारयेद्राजतानि वा ॥४०
ताम्रजानि यथान्याय प्रणवेनार्घ्यवारिणा ।
द्वादशागुलविस्तारमुदरे समुदाहृतम् ॥४१
वर्तित तु तदर्धेन नाभिस्तस्य विधीयते ।
कठ तु त्र्य गुलोत्सेध विस्तार चतुरगुलम् ॥४२
ओष्ठ च त्र्यगुलोत्सेध निर्गम द्व्य गुल स्मृतम् ।
तसद्द्वि द्विगुण दिव्य शिवकु भे प्रकीर्तितम् ॥४३
यवमात्रातर सम्यक्त तुना वेष्टयेद्विधैं ।

अवगुंठ्य तथाभ्युक्ष्य कुशोपरि यथाविधि ॥४४
पूर्ववत्प्रणवेनैव पूरयेद्गन्धवारिणा ।
स्थापयेच्छिवकुंभाढ्यं वर्धनी च विधानतः ॥४५
मध्यपद्मस्य मध्ये तु सकूर्चं साक्षत क्रमात् ।
आवेष्ट्य वस्त्रयुग्मेन प्रच्छाद्य कमलेन तु ॥४६
हैमेन चित्ररत्नेन सहस्रकलशं पृथक् ।
शिवकुंभे शिव स्थाप्य गायत्र्या प्रणवेन च ॥४७

उन-उन समस्त कमलो में विधि पूर्वक प्रणव का विन्यास करना चाहिए । इस प्रकार से उत्तम एक सहस्र पद का अभ्युक्षण पूरा समास करे ॥३९॥ इसके उपरान्त एक सहस्र परम शुभ सुवर्ण के कलश अथवा उक्त लक्षण से युक्त चादी के कलशो का निर्माण करावे ॥४०॥ अथवा ताम्र के न्याय के अनुसार बनवावे और प्रणव के द्वारा अर्घ्य के जल से प्रोक्षण करे। उदर मे कलश का विस्तार बारह अगुल होना चाहिए ॥४१॥ उस का आधा परिमाण वाली वृत्ताकार नाभि की जाती है । दो अंगुल ऊँचाई वाला और चार अगुल विस्तार से युक्त कण्ठ होना चाहिए । ॥४२॥ दो अगुल उत्सेध वाला ओष्ठ कल्पित करे और दो अगुल वाला निर्गम कहा गया है । वह शिव कुम्भ मे दिव्य और द्विगुण बताया गया है ॥४३॥ यव के प्रमाण के अन्तर पर भली-भाँति तन्तु से वेष्टित करे । अवगुण्ठन करके तथा अभ्युक्षण करके यथाविधि कुशा के ऊपर पूर्व की भाँति गन्ध युक्त जल से पूरित करना चाहिए । शिव कुम्भ से समृद्ध वर्धनी अर्थात् खड्ग रूपिणी को विधान से स्थापित करे ॥४४॥४५॥ मध्य मे जिसके पद्म है ऐसे मध्य पद्म कुम्भ के मध्य मे कूर्च और अक्षतो के सहित जैसे हो वैसे दो वस्त्रो से क्रम से आवेष्टित करके हैम चित्र रत्न कमल से सहस्र कलश को पृथक् परिच्छादन करे । गायत्री और प्रणव से शिव कुम्भ में शिव की स्थापना करे ॥४६॥४७॥

विद्महे पुरुषायैव महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥४८
मंत्रेणानेन रुद्रस्य सान्निध्यं सर्वदा स्मृतम् ।

तंडुलानां तदर्धं स्यात्तदर्धं च यवादयः ।
द्रोण प्रधानकुम्भस्य तदर्धं तंडुलाः स्मृता. ॥३७
तिलानामाढक मध्ये यवाना च तदर्धकम् ।
अथाम्भसा समभ्युक्ष्य कमल प्रणवेन तु ॥३८

इन वक्ष्य माण मन्त्रों के द्वारा दिशाओं की पूजा कही गई है। आठ कोणो वाले एक सहस्र आठ स्थान करना चाहिए ॥३३॥ उन-उन प्रत्येक स्थानो मे शालिनीवार गोधूम-यव आदि से कमल की पृथक् रूप से कल्पना करे ॥३४॥ तण्डुल-तिल और सर्षप आदि से सयुत इन के द्वारा इनसे यथा काल विधान से कल्पना करे ॥३५॥ उन कमलो में कर्णिका और केसर से अन्वित अष्ट पत्र की रचना करे। प्रत्येक कमल की रचना करने के लिये एक आढक शाली का परिमाण होना चाहिए यदि तण्डुलो से रचना की जावे तो इनका मान शाली से आधा होना चाहिए। और यव से काम लिये जावे तो इनका प्रमाण तण्डुल से आधा होना चाहिए। प्रधान कुम्भ का चतुर्गुण द्रोण है उसका आधा भाग तण्डुल कहे गये हैं ॥३६॥३७॥ तिलो का परिमाण एक आढक है और मध्य मे यव उसके अर्ध भाग होने चाहिए। इसके अनन्तर जल से प्रणव के द्वारा कमल का अभ्युक्षण करे ॥३८॥

तेषु सर्वेषु विधिना प्रणवं विन्यसेत्क्रमात् ।
एवं समाप्य चाभ्युक्ष्य पद्मसाहस्रमुत्तमम् । ३६
कलशानां सहस्राणि हैमानि च शुभानि च ।
उक्तलक्षणयुक्तानि कारयेद्राजतानि वा ॥४०
ताम्रजानि यथान्याय प्रणवेनार्घ्यवारिणा ।
द्वादशांगुलविस्तारमुदरे समुदाहृतम् ॥४१
वर्तितं तु तदर्धेन नाभिस्तस्य विधीयते ।
कंठं तु व्यंगुलोत्सेध विस्तरं चतुरंगुलम् ॥४२
ओष्ठं च व्यंगुलोत्सेधं निर्गम द्व्यंगुलं स्मृतम् ।
तत्तद्द्विगुण दिव्यं शिवकुंभे प्रकीर्तितम् ॥४३
यवमात्रांतरं सम्यक् तंतुना वेष्टयेद्धि वै ।

अवगुंठ्य तथाभ्युक्ष्य कुशोपरि यथाविधि ॥४४
पूर्ववत्प्रणवेनैव पूरयेद्गन्धवारिणा ।
स्थापयेच्छिवकुंभाढ्यं वर्धनीं च विधानतः ॥४५
मध्यपद्मस्य मध्ये तु सकूर्चं साक्षत क्रमात् ।
आवेष्टय वस्त्रयुग्मेन प्रच्छाद्य कमलेन तु ॥४६
हैमेन चित्ररत्नेन महस्त्र कलशं पृथक् ।
शिवकुंभे शिव स्थाप्य गायत्र्या प्रणवेन च ॥४७

उन-उन समस्त कमलों में विधि पूर्वक प्रणव का विन्यास करना चाहिए । इस प्रकार से उत्तम एक सहस्र पद का अभ्युक्षण पूरा समाप्त करे ॥३६॥ इसके उपरान्त एक सहस्र परम शुभ सुवर्ण के कलश अथवा उक्त लक्षण से युक्त चांदी के कलशों का निर्माण करावे ॥४०॥ अथवा ताम्र के न्याय के अनुसार बनवावे और प्रणव के द्वारा अर्घ्य के जल से प्रोक्षण करे। उदर में कलश का विस्तार बारह अंगुल होना चाहिए ॥४१॥ उस का आधा परिमाण वाली वृत्ताकार नाभि की जाती है । दो अंगुल ऊँचाई वाला और चार अंगुल विस्तार से युक्त कण्ठ होना चाहिए । ॥४२॥ दो अंगुल उत्सेध वाला ओष्ठ कल्पित करे और दो अंगुल वाला निर्गम कहा गया है । वह शिव कुम्भ में दिव्य और द्विगुण बताया गया है ॥४३॥ यव के प्रमाण के अन्तर पर भली-भाँति तन्तु से वेष्टित करे । अवगुण्ठन करके तथा अभ्युक्षण करके यथाविधि कुशा के ऊपर पूर्व की भाँति गन्ध युक्त जल से पूरित करना चाहिए । शिव कुम्भ से समृद्ध वर्धनी अर्थात् खड्ग रूपिणी को विधान से स्थापित करे ॥४४॥४५॥ मध्य में जिसके पद्म है ऐसे मध्य पद्म कुम्भ के मध्य में कूर्च और अक्षतों के सहित जैसे हो वैसे दो वस्त्रों से क्रम से आवेष्टित करके हैम चित्र रत्न कमल से सहस्र कलश की पृथक् परिच्छादन करे। गायत्री और प्रणव से शिव कुम्भ में शिव की स्थापना करे ॥४६॥४७॥

विद्महे पुरुषायैव महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥४८
मंत्रेणानेन रुद्रस्य सान्निध्यं सर्वदा स्मृतम् ।

वर्धन्यां देविगायत्र्या देवी संस्थाप्य पूजयेत् ।४६
गणाम्बिकायै विद्महे महातपायै धीमहि ।
तन्नो गौरी प्रचोदयात् ।।५०
प्रथमावरणे चैव वामाद्याः परिकीर्तिताः ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीय वरणं शृणु ।।५१
शक्तयः षोडशैवात्र पूर्वाद्यतेषु सुव्रत ।
ऐंद्र व्यूहस्य मध्ये तु सुभद्रां स्थाप्य पूजयेत् ।।५२
भद्रामाग्नेयचक्रे तु याम्ये तु कनकांडजाम् ।
अंबिकां नैर्ऋते व्यूहे मध्यकुंभे तु पूजयेत् ।।५३
श्रीदेवी वारुणे भागे वागीशां वायुगोचरे ।
गोमुखीं सौम्यभागे तु मध्यकुंभे तु पूजयेत् ।।५४

"पुरुषाय विद्म हे महादेवाय धीमहि, तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्" यह रुद्र गायत्री मन्त्र है अर्थात् हम पुरुष का ज्ञान प्राप्त करते हैं और महादेव का ध्यान करते हैं। वह रुद्रदेव हम को प्रेरणा प्रदान करें। इस मन्त्र से रुद्र का सान्निध्य सर्वदा बताया गया है। वर्धनी मे देवि गायत्री से देवी को संस्थापित कर उस का पूजन करना चाहिए ।।४८।।४६।। देवि गायत्री मन्त्र यह होता है—"गणाम्बिकायै विद्म हे-महा तपायै धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोदयात्"। अर्थात् गणों की अम्बिका को ज्ञान द्वारा प्राप्त करते हैं और महा तप का हम ध्यान किया करते हैं। वह देवी गौरी हमको प्रेरणा प्रदान करे ।।५०।। प्रथम आवरण मे वामाद्या परि कीर्त्तित की गई हैं। इस तरह प्रथम आवरण तो बता दिया गया है अब द्वितीय आवरण के विषय मे श्रवण करो-।।५१।। हे सुव्रत! इस द्वितीय आवरण में पूर्वान्तों मे शक्तियाँ तो सोलह ही होती हैं। ऐन्द्र व्यूह के मध्य में सुभद्रा की स्थापना करके पूजन करना चाहिए ।।५२।। आग्नेय चक्र में भद्रा को और याम्य में कनकाण्डजा को नैर्ऋत मे अम्बिका को कुम्भ के मध्य में व्यूह में पूजन करे ।।५३।। वारुण भाग में श्री देवी को-वायुगोचर में वागीशा को-सौम्य भाग मे गो मुखी को मध्य कुम्भ में पूजित करना चाहिए ।।५४।।

रुद्रव्यूहस्य मध्ये तु भद्रकर्णी समर्चयेत् ।
ऐंद्राग्नि विदिशामध्ये पूजयेदणिमा शुभाम् ॥५५
य म्यपावकयोर्मध्ये लघिमां कमले न्यसेत् ।
राक्षसान्तकयोर्मध्ये महिमां मध्यतो यजेत् ॥५६
वरुणासुरयोर्मध्ये प्राप्ति वै मध्यतो यजेत् ।
वरुणानिलयोर्मध्ये प्राकाम्य कमले न्यसेत् ॥५७
वित्तेशानिलयोर्मध्ये ईशित्व स्थाप्य पूजयेत् ।
वित्तेशेशानयोर्मध्ये वशित्वं स्थाप्य पूजयेत् ॥५८
ऐंद्रेशेशानयोर्मध्ये यजेत्कामावसायकम् ।
द्वितीयावरणं प्रोक्तं तृतीयावरणं शृणु ॥५९
शक्तयस्तु चतुर्विंशत्प्रधानकलशेषु च ।
पूजयेद्व्यूहमध्ये तु पूर्ववद्विधिपूर्वकम् ॥६०
दीक्षां दीक्षायिका चैव चडां चंडांशुनायिका म् ।
सुमति सुमत्यायी च गोपा गोपायिका तथा । ६१
अथ नंद च नदायी पितामहमतः परम् ।
पितामहायीं पूर्वाद्यं विधिना स्थाप्य पूजयेत् ॥६२

रुद्र व्यूह के मध्य मे भद्र कर्णी का अर्चन करे । ऐन्द्राग्नि विदिशाओं के मध्य मे शुभा अणिमा का यजन करे ॥५५॥ याम्य और पावक विदिशाओं के मध्य मे कमल मे लघिमा का न्यास करे । राक्षस और अन्तक विदिशाओं के मध्य मे मध्य मे महिमा का पूजन करना चाहिए । वरुण सुरों के मध्य मे प्राप्ति का पूजन करे और वरुणानिलों के मध्य मे कमल मे प्राकाम्य सिद्धि का न्यास करे ॥५६॥५७॥ वित्तेश और अनिल के मध्य मे ईशित्व को स्थापित कर उसका पूजन करे । वित्तेश और ईशान के मध्य मे वशत्व सिद्धि की स्थापना करके उसका समर्चन करना चाहिए ॥५८॥ ऐन्द्र और ईशान दिशाओं के मध्य भाग मे कामावसायक का अर्चन करे । यह द्वितीय आवरण भी बतला दिया गया है । इसके अनन्तर अब तीसरे आवरण को सुनो ॥५९॥ इसमे चौबीस शक्तियां हैं और प्रधान कलशों मे व्यूह के मध्य मे पूर्व की भांति विधि-विधान

के साथ पूजन करना चाहिए ॥६०॥ दीक्षा दीक्षायिका-चण्डा चण्डांशु नायिका-सुमति-सुमत्यायी-गोपा-गोपायिका नन्द-नन्दायी पितामह-पितामहायी इनको पूर्वोक्त विधि से स्थापित करके अर्चन करे ॥६१॥६२॥

एवं संपूज्य विधिना तृतीयावरणं शुभम् ।
सोभद्र व्यूहमास च प्रथमावरणे क्रमात् । ६३
प्रागाद्यं विधिना स्थाप्य शक्त्यष्टकमनुक्रमात् ।
द्वितीयावरणे चैव प्रागाद्यं शृणु शक्तयः ॥६४
षोडशैव तु अभ्यर्च्य पद्ममुद्रां तु दर्शयेत् ।
बिंदुका बिंदुगर्भा च नादिनी नादगर्भजा ॥६५
शक्तिका शक्तिगर्भा च परा चैव परापरा ।
प्रथमावरणेऽष्टौ च शक्तयः परिकीर्तिताः ॥६६
चंडा चंडमुखी चैव चंडवेगा मनोजवा ।
चंडाक्षी चंडनिर्घोषा भृकुटी चंडनायिका ॥६७
मनोत्सेधा मनोध्यक्षा मानसी माननायिका ।
मनोहरी मनोह्लादी मन.प्रीतिमहेश्वरी ।।६८
द्वितीयावरणे चैव षोडशैव प्रकीर्तिता. ।
सौभद्रः कथितो व्यूहो भद्रं व्यूह शृणुष्व मे ॥६९
ऐंद्री हौताशनी याम्या नैर्ऋती वारुणी तथा ।
वायव्या चैव कौबेरी ऐशानी चाष्टशक्तय. ॥७०

इस तरह से विधि के साथ शुभ तृतीयावरण का पूजन करके प्रथमावरण मे क्रम से सौभद्र व्यूह को प्राप्त करके विधि पूर्वक प्रागाद्य को स्थापित करके शक्तियो के अष्टक को अनुक्रम से पूजन करे । अब द्वितीयावरण में प्रागाद्य शक्तियो का श्रवण करो ॥६३॥६४॥ सोलह प्रागाद्य का अभ्यर्चन करके पद्म मुद्रा को दिखलाना चाहिए । बिन्दुका-बिन्दुगर्भा-नादिनी-नाद गर्भजा-शक्ति का-शक्ति गर्भा परा और परापरा ये प्रथम आवरण मे आठ ही शक्तियाँ कीर्तित की गई हैं ॥६५॥६६॥ चण्डा-चण्ड मुखी-चण्ड वेगा-मनोजवा-चण्डाक्षी-चण्ड निर्घोषा-भृकुटी-चण्ड नायिका-मनोत्सेधा-मनोध्यक्षा-मानसी-मान नायिका-मनोहरी-मनोह्लादी-मन.

प्रीति और महेश्वरी—ये द्वितीय आवरण में सोलह परि कीर्त्तित की गई हैं। सौभद्र व्यूह कहा गया है। अब भद्र व्यूह को मुझ से सुनो। ६७॥ ॥ ६८॥६९॥ ऐन्द्री-हौताशनी-याम्या-नैर्ऋती-वारुणी-वायव्या-कोवेरी-और ऐशानी ये आठ शक्तियाँ होती हैं ॥७०॥

प्रथमावरण प्रोक्तं द्वितीयावरण शृणु ।
हरिणी च सुवर्णा च काचनी हाटकी तथा ॥७१
रुक्मिणी सत्यभामा च सुभगा जंबुनायिका ।
व.ग्भवा वाक्पथा वाणी भीमा चित्ररथा सुधो. ॥७२
वेदमाता हिरण्याक्षी द्वितीयावरणे स्मृता ।
भद्राख्य. कथितो व्यूहः कनकाख्य शृणुष्व मे ॥७३
वज्रं शक्ति च दंडं च खड्ग पाश ध्वज तथा ।
गदा त्रिशूलं क्रमशः प्रथमावरणे स्मृताः ॥७४
युद्धा प्रबुद्धा चडा च मुंडा चैव कपालिनी ।
मृत्युहन्त्री विरूपाक्षी कपर्दा कमलासना ॥७५
दंष्ट्रिणी रंगिणी चैव लबाक्षी कंकभूषणी ।
सभावा भाविनी चैव षोडशैव प्रकीर्तिताः ॥७६
कथित कनकव्यूहो ह्यम्बिकाख्य शृणुष्व मे ।
खेचरी चात्मना सा च भवानी वह्निरूपिणी ॥७७
वह्निनी वह्निनामा च महिमामृत लालसा ।
प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तय. सर्वसमताः ॥७८

प्रथम आवरण कह दिया गया है अब द्वितीय आवरण का श्रवण करो। हरिणी-सुवर्णा-काचनी-हाटकी-रुक्मिणी-सत्यभामा सुभगा-जम्बुनायिका-वाग्भवा-वाक्पथा वाणी-भीमा-चित्ररथा-सुधी-वेदमाता-हिरण्याक्षी-ये द्वितीय आवरण में बताई गई हैं। भद्र नाम वाला व्यूह कहा गया है। अब कनक नामक को मुझसे सुन लो ॥७१॥७२॥७३॥ वज्र शक्ति-दण्ड-खड्ग-पाश-ध्वज-गदा-त्रिशूल-ये क्रम से प्रथम आवरण में कहे गये हैं ॥७४॥ युद्धा-प्रबुद्धा-चण्डा-मुण्डा कपालिनी-मृत्यु हन्त्री-विरूपाक्षी-कपर्दा-कमलासना-दंष्ट्रिणी-रंगिणी-लम्बाक्षी-कंकभूषणी-सम्भावा-भाविनी

ये सोलह कीर्तित की गई हैं ।।७५।।७६।। कनक व्यूह वर्णित किया गया है। अब आगे अम्बिकाख्य व्यूह को आप लोग मुझसे श्रवण कर लो। खेचरी-आत्मना-भवानी-वह्नि रूपिणी-वह्निनी-वह्निनाभा-महिमा-अमृत लालसा-ये प्रथम आवरण में आठ शक्तियाँ सब के सम्मत होती हैं। ।।७७।।७८।।

क्षमा च शिखरा देवी ऋतुरत्ना शिला तथा ।
छाया भूतपनी धन्या इंद्र माता च वैष्णवी ।।७९
तृष्णा रागवती मोहा कामकोपा महोत्कटा ।
इन्द्रा च बधिरा देवी पोडशैता: प्रकीर्तिता: ।।८०
कथितश्चांबिका व्यूह: श्रीव्यूहं शृणु सुव्रत ।
स्पर्शा स्पर्शवती गंधा प्राणापाना सम निका ।।८१
उदाना व्याननामा च प्रथमावरणे स्मृता: ।
तमोहता प्रभामोघा तेजिनी दहिनी तथा ।।८२
भीमास्या जालिनी चोषा शोषिणी रुद्रनायिका ।
वीरभद्रा गणाध्यक्षा चंद्रहासा च गह्वरा ।।८३
गणमातांबिका चैव शक्तय: सर्वसंमता: ।
द्वितीयावरणे प्रोक्ता: पोडशैव यथाक्रमात् ।।८४
श्रीव्यूह: कथितो भद्रं वागीशं शृणु सुव्रत ।
धारा वारिधरा चैव वह्निकी नाशकी तथा ।।८५
मर्त्यातीता महामाया वज्रिणी कामधेनुका ।
प्रथमावरणेऽप्येवं शक्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिता: ।।८६
पयोष्णी वारुणी शांता जयंती च वरप्रदा ।
प्लाविनी जलमाता च पयोमाता महांबिका ।।८७
रक्ता कराली चंडाक्षी महोच्छुष्मा पयस्विनी ।
माया विद्येश्वरी काली कालिका च यथाक्रमम् ।।८८
पोडशैव समाख्याता: शक्तय: सर्वसंमता: ।
व्यूहो वागीश्वर: प्रोक्तो गोमुखो व्यूह उच्यते ।।८९
शंकिनी हालिनी चैव लंकावर्णा च कल्किनी ।

यक्षिणी मालिनी चैव वमनी च रसात्मनी ॥९०
प्रथमावरणे चैव शक्तयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ।
चंडा घंटा महानादा सुमुखी दुर्मुखी बला ॥९१
रेवती प्रथमा घोरा सैन्या लीना महाबला ।
जया च विजया चैव अपरा चापराजिता ॥९२
द्वितीयावरणे चैव शक्तय. षोडशैव तु ।
कथितो गोमुखीव्यूहो भद्रकर्णीं शृणुष्व मे ॥९३

क्षमा-शिखरा-देवी ऋतुरत्ना-शिला छाया सूतविनी-धन्या-इन्द्रमाता-वैष्णवी-तृष्णा-रागवती-मोहा-काम कोपा-महोत्कटा-इन्द्रा वधिरा-और देवी—ये षोडश बताई गई है ॥७९॥८०॥ यह अम्बिका व्यूह निरूपित कर दिया गया है। आगे अब हे सुव्रत ! श्री व्यूह को सुनो । स्पर्शा-स्पर्शवती-गन्धा-प्राणापाना-समानिका-उदाना-व्यान नामा ये प्रथम आवरण मे वर्णित की गई है । तमोहता-प्रभामोघा तेजिनी दहिनी भीमास्या-ज्वालिनी-चापा-शोषिणी-रुद्र नायिका-वीरभद्रा-गणाध्यक्षा चन्द्रहासा-गह्वरा-गण माता और अम्बिका ये शक्तियाँ सर्व सम्मत हैं । द्वितीय आवरण में यथा क्रम सोलह ही बताई गई हैं ॥८१॥८२॥८३॥८४॥ हे सुव्रत ! यह श्री व्यूह बता दिया है । अब भद्र कामोद व्यूह का श्रवण करो । धारा-वारिधरा-वह्निकी-नाशकी-मर्त्यातीता महा माया वज्रिणी कामधेनुका—ये प्रथम आवरण मे आठ शक्तियाँ कीर्तित की गई हैं ॥८५॥८६॥ पयोष्णी-वारुणी-शान्ता-जयन्ती-वरप्रदा-प्लाविनी-जलमाता पयोमाता महाम्बिका । रक्ता-कराली-चण्डाक्षी-महोच्छुष्मा-पयस्विनी-माया-विश्वेश्वरी-काली और यथाक्रम कालिका ये षोडश ही शक्तियाँ सब के द्वारा सम्मत समाख्यात की गई हैं । यह कामोश्वर व्यूह निरूपित कर दिया गया है । अब गोमुख व्यूह कहा जाता है ॥८७॥८८॥८९॥ शङ्खिनी ह्लादिनी-लङ्कावर्णा-वलिनी-यक्षिणी-मालिनी-वमनी-रसात्मनी-ये प्रथम आवरण मे आठ ही शक्तियाँ कही गई हैं । चन्द्रा घण्टा-महानादा-सुमुखी-दुर्मुखी-बला-रेवती-प्रथमा-घोरा-सैन्या-लीना-महाबला-जया-विजया-अपरा-अपराजिता—ये द्वितीय आवरण मे सोलह ही शक्तियाँ

होती हैं। यह गोमुखी व्यूह तो कह दिया गया है। आगे भद्रकर्णी व्यूह को मुझ से तुम श्रवण कर लो ॥६०॥६१॥६२॥६३॥

महाजया विरूपाक्षी शुक्लाभाकाशमातृका ।
संहारी जातहारी च दंष्ट्राली शुष्करेवती ॥६४
प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तयः परिकीर्तिता ।
पिपीलिका पुष्पहारी अशनी सर्वहारिणी ॥६५
भद्रहा विश्वहारी च हिमा योगेश्वरी तथा ।
छिद्रा भानुमती छिद्रा सैंहिकी सुरभी समा ॥६६
सर्वभव्या च वेगाख्या शक्तयः षोडशैव तु ।
महाव्यूहाष्टकं प्रोक्तमुपव्यूहाष्टकं शृणु ॥६७
अणिमाव्यूहमावेष्ट्य प्रथमावरणे क्रमात् ।
ऐंद्रा तु चित्रभानुश्च वारुणी दण्डिरेव च ॥६८
प्राणरूपी तथा हंसः स्वात्मशक्तिः पितामहः ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥६९
केशवो भगवान् रुद्रश्चंद्रमा भास्करस्तथा ।
महात्मा च तथा ह्यात्मा ह्यंतरात्मा महेश्वरः ॥१००
परमात्मा ह्यणुर्जीवः पिंगलः पुरुषः पशुः ।
भोक्ता भूतपतिर्भीमो द्वितीयावरणे स्मृता ॥१०१

महाजया, विरूपाक्षी, शुक्लाभा, आकाश मातृका, संहारी, जातहारी दंष्ट्राली, शुष्क रेवती—ये प्रथम आवरण में आठ शक्तियाँ परि कीर्तित की गई हैं। पिपीलिका, पुष्प हारी, अशनी, सर्वहारिणी, भद्रहा, विश्वहारी, हिमा, योगेश्वरी, छिद्रा, भानुमती, छिद्रा सैंहिकी, सुरभी, समा, सर्वभव्या और वेगाख्या—ये सोलह ही शक्तियाँ होती हैं। महा व्यूहाष्टक कह दिया गया है। आगे अब उप व्यूहाष्टक का श्रवण करो ॥६४॥६५॥६६॥ ॥६७॥ प्रथम आवरण में क्रम से अणिमा व्यूह को आवेष्टित करके ऐन्द्रा, चित्रभानु, वारुणी, दण्डि, प्राण रूपी, हंस, स्वात्म शक्ति, पितामह, यह प्रथमा वरण कहा गया है। आगे द्वितीय आवरण को सुनो ॥६८ ६९॥ केशव, भगवान्, रुद्र, चन्द्रमा, भास्कर महात्मा, आत्मा, अन्तरात्मा, महे-

श्वर, परमात्मा, अरण्ड, जीव, पिङ्गल, पुरुष, पशु, भोक्ता, भूतपति और भीम ये द्वितीय आवरण मे कहे गये हैं ॥१००॥१०१॥

कथितश्चाणिमाव्यूहो लघिमाख्यं वदामि ते ।
श्रीकठोतश्च सूक्ष्मश्च त्रिमूर्तिः शशकस्तथा ॥१०२
अमरेशः स्थितीशश्च दारतश्च तथाष्टमः ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥१०३
स्थाणुहरश्च दंडेशो भौक्तीशः सुरपुंगवः ।
सद्योजातोऽनुग्रहेशः क्रूरसेनः सुरेश्वरः ॥१०४
क्रोधीशश्च तथा चड. प्रचंडः शिव एव च ।
एकरुद्रस्तथा कूर्मश्च कनेत्रश्चतुर्मुखः ॥१०५
द्वितीयावरणे रुद्राः षोडशव प्रकीर्तिताः ।
कथितो लघिमाव्यूहो महिमां शृणु सुव्रत ॥१०६
अजेशः क्षेमरुद्रश्च सोमोऽशो लागलो तथा ।
दडाख्यश्चार्धनारी च एकांतश्चांत एव च ॥१०७
पाली भुजंगनामा च पिनाकी खड्गिरेव च ।
काम ईशस्तथा श्वेतो भृगु. षोडश वै स्मृता ॥१०८
कथितो महिमाव्यूहः प्र प्तिव्यूहं शृणुष्व मे ।
संवर्तो लकुलीशश्च वाडवो हस्तिरेव च ॥१०९
चडयक्षो गणपतिर्महात्मा भृगुजोऽष्टमः ।
प्रथमावरण प्राक्तं द्वितीयावरण शृणु ॥११०

अणिमा व्यूह तो निरूपित कर दिया गया है आगे अब मैं लघिमा नामक व्यूह को बतलाता हूँ। श्री कण्ठ, अन्तः, सूक्ष्म, त्रिमूर्ति, शशक, अमरेश, स्थितीश, और दारत अष्टम होता है। यह प्रथम आवरण बता दिया गया है। आगे द्वितीय आवरण का श्रवण करो ॥१०२॥१०३॥ स्थाणु, हर, दण्डेश, भौक्तीश, सुरपुङ्गव, सद्योजात, अनुग्रहेश, क्रूरसेन, सुरेश्वर, क्रोधीश, चण्ड, प्रचण्ड, शिव एक रुद्र, कूर्म, एक नेत्र और चतुर्मुख ये द्वितीय आवरण में षोडश ही रुद्र कीर्तित किये गये हैं। यह लघिमा नामक व्यूह तो बता दिया गया है। इसके आगे अब हे सुव्रत !

तुम महिमा नामक व्यूह का श्रवण करो। अजेश, क्षेम रुद्र, सोम, अंश, लाङ्गली, दण्डारु, अर्ध नारी, एकान्त, अन्त, पाली, भुजङ्ग नामा, पिनाकी, खड्गि, काम, ईश, श्वेत, भृगु ये सोलह कहे गये हैं। यह महिमा व्यूह कह दिया गया है। इस के आगे मुझसे आप लोग प्राप्ति व्यूह का श्रवण करो। सवर्त:-लकुलीश-वाडव-हस्ति-चण्डयक्ष-गणपति-महात्मा और आठवाँ भृगुज होता है। यह प्रथम आवरण कह दिया है। इसके आगे द्वितीय आवरण सुनो ॥१०९ से ११० तक॥

त्रिविक्रमो महाजिह्वो ऋक्षः श्रीभद्र एव च।
महादेवो दधीचश्च कुमारश्च परावरः ॥१११
महादंष्ट्रः करालश्च सूचकश्च सुवर्धनः।
महाध्वांक्षो महानंदो दंडी गोपालकस्तथा ॥११२
प्राप्तिव्यूहः समाख्यातः प्राकाम्यं शृणु सुव्रत।
पुष्पदंतो महानागो विपुलानंदकारकः। ११३
शुक्लो विशालः कमलो बिल्वश्चारुण एव च।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥११४
रतिप्रियः सुरेशानश्चित्राङ्गश्च सुदुर्जयः।
विनायकः क्षेत्रपालो महामोहश्च जंगलः ॥११५
वत्सपुत्रो महापुत्रो ग्रामदेशाधिपस्तथा।
सर्वावस्थाधिपो देवो मेघनादः प्रचंडकः ॥११६
कालदूतश्च कथितो द्वितीयावरणं स्मृतम्।
प्राकाम्यः कथितो व्यूह ऐश्वर्यं कथयामि ते ॥११७

त्रिविक्रम, महाजिह्व, ऋक्ष, श्रीभद्र, महादेव, दधीच, कुमार, परावर महादंष्ट्र, कराल, सूचक, सुवर्धन, महाध्वाक्ष, महानन्द, दण्डी, गोपालक, यह प्राप्ति व्यूह कह दिया है। इसके अनन्तर हे सुव्रत! प्राकाम्य व्यूह को सुनो। पुष्पदन्त, महा नाग, विपुलानन्द कारक, शुक्ल, विशाल, कमल, बिल्व अरुण—यह प्रथम आवरण कहा गया है। इसके आगे इसका द्वितीय आवरण सुनो ॥१११॥११२॥११३॥११४॥ रति प्रिय, सुरेशान, चित्राङ्ग, सुदुर्जय, विनायक, क्षेत्रपाल, महामोह, जंगल, वत्स-

पुत्र, महापुत्र, ग्रामदेशाधिप, सर्वावस्थाधिप, देव, मेघनाद, प्रचण्डक और काल दूत, यह द्वितीय आवरण बताया गया है। प्राकाम्य व्यूह भी कह दिया गया है। इसके अनन्तर ऐश्वर्य को तुम्हारे आगे मैं बतलाता हूँ। ॥११५॥११६॥११७॥

मंगला चर्चिका चैव योगेशा हरदायिका।
भासुरा सुरमाता च सुंदरी मातृकाष्टमी ॥११८
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणे शृणु।
गणाधिपश्च मंत्रज्ञो वरदेवः षडाननः ॥११९
विदग्धश्च विचित्रश्च अमोघो मोघ एव च।
अश्वी रुद्रश्च सोमेशश्चोत्तमोद्'बरस्तथा ॥१२०
नारसिंहश्च विजयस्तथा इन्द्रगुहः प्रभुः।
अपांपतिश्च विधिना द्वितीयावरणं स्मृतम् ॥१२१
ऐश्वर्यः कथितो व्यूहो वशित्वं पुनरुच्यते।
गगनो भवनश्चैव विजयो ह्यजयस्तथा ॥१२२
महाजयस्तथा गारो व्यंगारश्च महायशाः।
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणे शृणु ॥१२३
सुंदरश्च प्रचडेशो महावर्णो महासुरः।
महारोमा महागर्भः प्रथमः कनकस्तथा ॥१२४
खरजो गरुडश्चैव मेघनादोऽथ गर्जक।
गजश्च च्छेदको बाहुश्शिखो मारिरेव च ॥१२५
वशित्वं कथितो व्यूहः शृणु कामावसायिकम्।
विनाशो विकटश्चैव वसनोऽभय एव च ॥१२६
विद्युन्महाबलश्चैव कमलो दमनस्तथा।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥१२७

मङ्गला, चर्चिका, योगेशा, हरदायिका, भासुरा, सुरमाता, सुन्दरी और आठवीं मातृका ये आठ शक्तियाँ हैं ॥११८॥ प्रथम आवरण कह दिया है। अब द्वितीय आवरण में सुनो। गणाधिप, मन्त्रज्ञ, वरदेव, षडानन, विदग्ध, विचित्र, अमोघ, मोघ, अश्वी, रुद्र, सोमेश, उत्तम,

उदुम्बर, नारसिंह, विजय, इन्द्रगृह, प्रभु और प्रपांपति—ये विधि से दूसरा आवरण कहा गया है ॥१६॥२०॥२१॥ यह ऐश्वर्य व्यूह कहा गया है। अब आगे वशित्व कहा जाता है। गगन, भवन, विजय अजय, महाजय, अङ्गार, व्यङ्गार, महायशा, महाजय—ये प्रथम आवरण मे कहे गये हैं। द्वितीय आवरण मे श्रवण करो ॥२२॥२३॥ सुन्दर, प्रचण्डेश, महावर्ण, महासुर, महारोमा, महागर्भ, प्रथम, कनक, खरज, गरुड, मेघनाद, गर्जक, गज, छेदक, बाहु, त्रिशिख और मारि—वशित्व व्यूह निरूपित कर दिया है। अब कामावसायिक को सुनो। विनाद, विकट, वसन्त, अभय, विद्युत्, महाबल, कमल, दमन—यह प्रथम आवरण कहा गया है। इसके उपरान्त दूसरा आवरण सुनो ॥१२४ से १२७॥

धर्मश्चातिबलः सर्पो महाकायो महाहनुः ।
सबलश्चैव भस्मागी दुर्जयो दुरतिक्रमः ॥१२८
वेतालो रौरवश्चैव दुधरो भोग एव च ।
वज्रः कालाग्निरुद्रश्च सद्योन दो महागुहः ॥१२९
द्वितीयावरणं प्रोक्त व्यूहश्चैवावसायिकः ।
कथितः षोडशो व्यूहो द्वितीयावरण शृणु ॥१३०
द्वितीयावरणे चैव दक्षव्यूहे च शक्तयः ।
प्रथमावरणे चाष्टौ बाह्ये षोडश एव च ॥३१
मनोहरा महानादा चित्रा चित्ररथा तथा ।
रोहिणी चैव चित्रांगी चित्ररेखा विचित्रिका ॥३२
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणं शृणु ।
चित्रा विचित्ररूपा च शुभदा कामदा शुभा ॥३३
क्रूरा च पिंगला देवी खड्गिका लम्बिकासती ।
दंष्ट्राली राक्षसी ध्वंसो लालुपा लोहितामुखी ॥३४
द्वितीयावरणे प्रोक्ताः षोडशैव समासतः ।
दक्षव्यूहः समाख्यातो दाक्षव्यूहं शृणुष्व मे ॥३५
सर्वासतो विश्वरूप. लंपटा चामयप्रिया ।
दीर्घदंष्ट्रा च वज्रा च लम्बोष्ठी प्राणहारिणी ॥३६

प्रथमावरण प्रोक्तं द्वितीयावरण शृणु ।
गजकर्णाश्विकर्णा च महाकाली सुभीषणा ॥२७
वातवेगरवा घोरा घनाघनरवा तथा ।
वरघोषा महावर्णा सुघंटा घटिका तथा ॥२८
घंटेश्वरी महाघोरा घोरा चैवातिघोरिका ।
द्वितीयावरणे चव षोडशैव प्रकीर्तिता ॥२९

घर्म-प्रतिबल-सर्प-महाकाय-महाहनु-सबल-भस्माङ्गी दुर्जय-दुरति क्रम वेताल रौरव दुर्धर-भोग-वज्र-कालाग्नि रुद्र-सद्योनाद-महा गुह-द्वितीय आवरण बता दिया है और यावसायिक व्यूह कह दिया है । षोडश व्यूह कहा गया है । द्वितीय आवरण सुनो ॥२८॥२६॥३०। द्वितीय आवरण में और दश व्यूह में शक्तियाँ हैं—प्रथम आवरण में आठ और बाह्य मे सोलह हैं ॥३१॥ उन आठ शक्तियों के ये नाम होते हैं—मनोहरा-महा नादा-चित्रा-चित्र रथा-रोहिणी-चित्राङ्गी-चित्र रेखा विचित्रिता ये प्रथम आवरण में निरूपित की गई हैं । दूसरे आवरण में सुनो—चित्रा-विचित्र रूपा-शुभदा-कामदा-शुभा-क्रूरा-पिङ्गला-देवी-खड्गिका लम्बिका सती दं-ष्ट्राली-राक्षसी-ध्वंसी-लोलुपा-लोहिता मुखी—ये दूसरे आवरण सोलह अशेष में बतलाई गई हैं । दश व्यूह समाख्यात हैं । आगे दाश व्यूह मुझ से श्रवण करो ॥३२॥३३॥३४॥३५॥ सर्वा सती-विश्वरूपा लम्पटा-आमिष प्रिया-दीर्घदंष्ट्रा-वज्रा-लम्बोष्ठी-प्राण हारिणी—यह प्रथमावरण कहा है । द्वितीय आवरण सुनो—गजकर्णा-अश्वकर्णा-महाकाली सुभीष-णा वात वेगरवा घोरा घनाघन रवा-वरघोषा-महावर्णा सुघण्टा-घण्टिका-घण्टेश्वरी-महाघोरा-घोरा-अतिघोरिका—ये द्वितीय आवरण में सोलह ही कही गई हैं ॥१६६ से १२६॥

दाशव्यूहः समाख्यातस्त्व्यूह शृणुष्व मे ।
अतिघंटा चातिघोरा करालाऽकरभा तथा ॥१४०
विभूतिर्भोगदा कांति शंखिनी पाद्मनी स्मृता ।
प्रथमावरणे प्रोक्ता द्वितीयावरणे शृणु ॥४१
पत्रिणी चैव गांधारी योगमाता सुपीवरा ।

रक्ता मालांशुका वीरा संहारी मांसहारिणी ॥४२
फलहारी जीवहारी स्वेच्छाहारी च तुंडिका ।
रेवती रंगिणी संगा द्वितीये षोडशैव तु ॥४३
चंडव्यूहः समाख्यातश्चंडाव्यूहस्तथो च्यते ।
चंडी चंडमुखी चंडा चडवेगा महारवा ॥४४
भ्रुकुटी चंडभूश्चैव चडरूपाष्टमी स्मृता ।
प्रथमावरण प्रोक्तं द्वितीयावरण शृणु ॥४५
चंद्रघ्राणा बला चैव बलजिह्वा बलेश्वरी ।
बलवेगा महाकाया महाकोपा च विद्युता ॥४६
कंकाली कलशी चैव विद्युता चडघोषिका ।
महाघोषा महारावा चडभाऽनगचडिका ॥४७
चडार्या कथितो व्यूहो हरव्यूह शृणुष्व मे ।
चडाक्षी कामदा देवी सूकरी कुक्कुटानना ॥४८
गाधारी दुदुभी दुर्गा सौमित्रा चाष्टमी स्मृता ।
प्रथमावरण प्रोक्तं द्वितीयावरण शृणु ॥४९

दाक्ष व्यूह तो निरूपित कर दिया है अब मुझसे आप लोग चण्ड व्यूह श्रवण करो ॥४०॥ प्रतिघण्टा प्रतिघोरा-कराला-करभा-विभूति-भोगदा-कान्ति और आठवी शङ्खिनी कही गई है। ये प्रथमावरण मे कही गई हैं। आगे दूसरे आवरण मे सुनो ॥४१॥ पद्मिणी गान्धारी-योगमाता-सुपीवरा रक्ता-माला शुका-वीरा-सहारी-मास हारिणी फलहारी जीवहारी-स्वेच्छाहारी तुण्डिका-रेवती-रंगिणी-सगा— ये दूसरे आवरण मे सोलह हैं ॥४२॥४३॥ चड व्यूह तो कह दिया है। अब चडा व्यूह कहा जाता है। चडी, चण्डमुखी, चण्डा, चण्ड वेगा, महारवा, भ्रुकुटी, चण्डभू, चण्डरूपा आठवी है। इसका प्रथम आवरण कह दिया है। दूसरा आवरण सुनो—॥४४॥४५॥ चन्द्रघ्राणा, बला, बल जिह्वा, बलेश्वरी, बल वेगा, महा काया, महा कोपा, विद्युता, कङ्काली, कलशी, विद्युता, चण्ड घोषिका, महा घोषा, महारावा, चण्डभा, अनङ्ग चण्डिका इस प्रकार से यह चण्डा व्यूह का निरूपण कर दिया है। इसके आगे

अब हरव्यूह को सुनो । चण्डाक्षी, वामदा, देवी, सूकरी, कुक्कुटासना, गान्धारी, दुन्दुभी, दुर्गा और आठवी सौमित्रा कही जाती है । इस व्यूह का यह प्रथम आवरण कह दिया है । अब दूसरे आवरण की नामावलि का श्रवण करो ॥१४६॥४७॥१४८॥१४६॥

मृतोद्भवा महालक्ष्मावर्णदा जीवरक्षिणी ।
हरिणी क्षीणजीवा च दडवक्त्रा चतुर्भुजा ॥१५०
व्योमचारी व्योमरूपा व्योमव्यापी शुभोदया ।
गृहचारी सुचारी च विपाहारी विषार्तिहा ॥५१
हरव्यूहः समाख्यातो हराया व्यूह उच्यते ।
जभाच्युता च कंकारी देविका दुर्धरावहा ॥५२
चडिका चपला चेति प्रथमावरणे स्मृताः ।
चंडिका चामरी चैव भडिका च शुभानना ॥५३
पिडिका मुंडिनी मुंडा शाकिनी शाङ्करी तथा ।
कर्तरी भर्तरी चैव भागिनी यज्ञदायिनी ॥५४
यमदष्ट्रा महादंष्ट्रा कराला चेति शक्तयः ।
हरायाः कथितो व्यूह शौंडव्यूहं शृणुष्व मे ॥५५
विकराली कराली च कालजंघा यशस्विनी ।
वेगा वेगवती यज्ञा वेदांगा चाष्टमी स्मृता ॥५६
प्रथमावरणं प्रोक्त द्वितीयावरणं शृणु ।
वज्रा शंखातिशखा था बला चैवाबला तथा ॥५७
अंजनी मोहिनी माया विकटागी नली तथा ।
गंडकी दडकी घोणा शोणा सत्यवती तथा ॥५८
कल्लोला चेति क्रमश. षोडशैव यथाविधि ।
शौडव्यूह समाख्यातः शौडाया व्यूह उच्यते ॥१५६

मृतोद्भवा, महालक्ष्मी, वर्णदा, जीवाक्षिणी, हरिणी, क्षीण जीवा, दण्डवक्त्रा, चतुर्भुजा, व्योमचारी, व्योमरूपा, व्योम व्यापी, शुभोदया, गृहचारी, सुचारी, विषाहारी, विषार्तिहा–यह हर व्यूह वर्णित किया गया है । अब हराका, व्यूह कहा जाता है । जम्भाच्युता, कंकारी, देविका,

दुर्धरावहा, चण्डिका, चपला ये प्रथम आवरण मे बताई गई हैं। चडिका चामरी, भण्डिका, शुभानना, पिण्डिका, मुण्डिनी मुण्डा, शाकिनी, शाङ्करी, कर्त्तरी, भर्त्तरी, भगिनी, यज्ञ दायिनी, यमदंष्ट्रा, महादंष्ट्रा और कराला ये द्वितीय आवरण की शक्तियाँ हैं। यह हरा का व्यूह भी कह दिया है। अब आप लोग मुझ से शौण्ड व्यूह को सुनो ॥५०॥५१॥५२॥ ॥५३॥५४॥५५॥ विकराली, कराली काल जङ्घा, यशस्विनी, वेगा, वेग वती, यज्ञा और इस आवरण मे आठवी वेदाङ्गा शक्ति होती है ॥५६॥ प्रथमावरण इसका वर्णित कर दिया है। इसका दूसरा आवरण सुनो। वच्चा, शखा अति शखा, बला, अबला, अ जनी, मोहिनी, माया, विकटाङ्गी नली, गण्डकी, दण्डकी, घोणा, शोणा, सत्यवती और कल्लोला ये यथाविधि षोडश ही हैं। यह शौण्ड व्यूह भी वर्णित हो गया है। इस के आगे शौण्डा का व्यूह सुनो जो कि कहा जा रहा है ॥१५७ से १५९॥

दतुरा रौद्रभागा च अमृता सकुला शुभा ।
चलजिह्वायनेत्रा च रूपिणी दारिका तथा ॥१६०
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ।
खादिका रूपनामा च संहारो च क्षमांतका ॥६१
कंडिनी पेषिणी चैव महात्रासा कृतांतिका ।
दंडिनी किंकरी बिंबा वर्णिनी चामलांगिनी ॥६२
द्राविणी द्राविणी चैव शक्तय षोडशैव तु ।
कथितो हि मनोरम्यः शौंडाया व्यूह उत्तमः । ६३
प्रथमाख्यं प्रवक्ष्यामि व्यूहं परमशोभनम् ।
प्लविनी प्लावनी शोभा मदा चैव मदोत्कटा ॥६४
मदाऽऽक्षेपा महादेवी प्रथमावरणं स्मृताः ।
कामसंदीपिनी देवी अतिरूपा मनोहरा ॥६५
महावशा मदग्राहा विह्वला मदविह्वला ।
अरुणा शोषणा दिव्या रेवती भाडनायिका ॥६६
स्तम्भिनी घोररक्ताक्षी स्मररूपा सुघोषणा ।
व्यूहः प्रथम आख्यातः स्वायंभुव यथा तथा ॥६७

कथित प्रथमव्यूह प्रवक्ष्यामि शृणुष्व मे ।
घोरा घोरतराघोरा अतिघोराघनायिका ॥१६८

दन्तुरा, रौद्रभागा, अमृता, सकुला, शुभा, चन्द्र जिह्वा, प्रार्यनेत्रा; रूपिणी, दारिका ये प्रथमावरण की शक्तियाँ कह दी गई हैं। अब दूसरे आवरण की शक्तियों के नाम सुनो खादिका, रूप नामा, संहारी; क्षमा तथा; खण्डिनी, पेषिणी, महात्रासा, कृतान्तका, दण्डिनी, विद्युरी बिम्बा, वलिनी, चामलागिनी, द्रविणी और द्राविणी ये सोलह ही शक्तियाँ होती हैं। यह परम मनोरम्य एवं उत्तम जोण्डा का व्यूह कहा गया है। अब प्रथमावरण परम शोभन व्यूह बतलाऊगा। प्लविनी प्लाविनी-शोभा-मन्दा मदोत्कटा-मन्त्रा आक्षेपी-महादेवी-ये प्रथम आवरण में शक्तियाँ होती हैं। वाम सन्दीपिनी देवी प्रतिरूपा-मनोहरा-महावदा मस्प्राहा-विह्वला-महाविह्वला-प्ररणा शोषणा दिव्या-रेवती भाण्ड नायिका स्तम्भिनी घोर रक्ताक्षी स्मर रूपा-सुघोषणा यह प्रथम व्यूह कहा गया है जैसा स्वायम्भुव है उसी तरह है। कथित प्रथम व्यूह को बताऊगा। उसे मुझसे श्रवण करो ॥१६० से १८=॥

घावनी क्रोष्टुका मुंडा चाष्टमी परिकीर्तिता ।
प्रथमावरण प्रोक्त द्वितीयावरण शृणु । १६६
भीमा भीमतरा भीमा शस्ता चैव सुवर्तुला ।
स्तम्भिनी रोदनी रौद्रा रुद्रवत्यचला चला ॥१७०
महाबला महाशान्ति शाला शांता निराशिया ।
कृतरसा महानास घोडशैव प्रकीर्तिता ॥७१
प्रथमाया. मम क्राशौ मत्मव्यूह उच्यते ।
मासराणी च बाला च कल्याणी कलिता निया ॥७२
दृष्टिस्तुटि प्रसिद्धा च प्रथमावरण स्मृता ।
ख्याति पुष्टिश्च तुष्टिश्च सा चैव स्मृतिपूर्ति ॥७३
कामदा शुभदा सौम्या तेजिनी कान्तनिका ।
धर्मा धर्मवती दीपा वासदा धर्मरक्षिनी ॥७४
स मया कथितो व्यूहो मतप्राया शृणुष्व मे ।

धर्मरक्षा विधाना च धर्मा धर्मवती तथा ।।७५
सुमतिर्दुर्मतिर्मेधा विमला चाष्टमी स्मृता ।
प्रथमावरणं प्रोक्त द्वितीयावरणं शृणु ।।१७६

घोरा घोरतरा-अघोरा-अतिघोरा-अघनायिका-धावनी-क्रोष्टुका-मुण्डा आठ ये शक्तियाँ हैं जो कि कीर्त्तित की गई हैं। यह इस व्यूह का प्रथम आवरण कहा गया है। अब इसका दूसरा आवरण सुनो ।।६६।। भीमा-भीम तरा भीमा-शस्ता-सुवर्त्तला-स्तम्भिनी-रोदनी-रौद्रा रुद्रवती-अचला-चला-महाबला महा शान्ति-शाला शान्ता-शिवाशिवा बृहत्कक्षा-महानासा-ये सोलह शक्तियाँ कीर्त्तित की गई हैं ।।७०।।७१।। यह प्रथमा का व्यूह तो बता दिया गया है अब मन्मथ व्यूह कहा जा रहा है। तालकर्णी-वशा-कल्याणी-कपिला-शिवा-इष्टि-तुष्टि-प्रतिज्ञा ये प्रथम आवरण में कही गई हैं। ख्याति पुष्टिकरी तुष्टि-जला श्रुति-धृति-कामदा-शुभदा सौम्या-तेजिनी-काम तन्त्रिका-धर्मा धर्म वशा-शीला-पापहा-धर्म वर्धिनी यह इस प्रकार से मन्मय व्यूह की शक्तियाँ बताई गई हैं। अब मन्मथा के व्यूह को मुझसे सुनो। धर्मरक्षा-विधावा-धर्मा धर्मवती-सुमति-दुर्मति-मेधा और अष्टम शक्ति इस व्यूह में विमला होती है। इस व्यूह का यह प्रथम आवरण कहा गया है। आगे दूसरा आवरण सुनो ।।१७२ से १७६।।

शुद्धिर्बुद्धिर्धृति कान्तिर्वर्तुला मोहवर्धिनी ।
बला चातिबला भीमा प्राणवृद्धिकरी तथा ।।७७
निर्लज्जा निघृणा मदा सर्वपापक्षयंकरी ।
कपिला चातिविधुरा षोडशैता प्रकीर्तिता. ।।७८
मन्मथायिक उक्तस्ते भीमव्यूह वदामि च ।
रक्ता चैव विरक्ता च उद्वेगा शोकवर्धिनी ।।७६
काम तृष्णा क्षुधा मोहा चाष्टमी परिकीर्तिता ।
प्रथमावरण प्रोक्त द्वितीयावरण शृणु ।।८०
जया निद्रा भयालस्या जलतृष्णोदरी दरा ।
कृष्णा कृष्णाङ्गिनी वृद्धा शुद्धोच्छिष्टाशनो वृषा ।।८१
कामना शोभिनी दग्धा द.खदा सखदावली ।

भीमव्यूह समाख्यातो भीमायो व्यूह उच्यते ॥८२
आनदा च सुनंदा च महानंदा शुभंकरी ।
वीतरागा महोत्साहा जितरागा मनोरथा ॥८३
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ।
मनोन्मनी मनःक्षोभा मदोन्मत्ता मदाकुला ॥८४
मदगर्भा महाभासा कामानंदा सुविह्वला ।
महावेगा सुवेगा च महाभोगा क्षया वहा ॥८५
क्रमिणी क्रामिणी चक्रा द्वितीयावरणे स्मृताः ।
कथित तव भीमाय व्यूह परमशोभनम् ॥१८६

शुद्धि बुद्धि-द्युति-कान्ति-वर्त्तुला-मोह वर्धिनी बला-प्रति बला-भीमा-प्राण वृद्धिकरी-निर्लज्जा निर्घृणा-मन्दा सर्व पाप क्षयङ्करी-कपिला-प्रति विधुरा ये सोलह शक्तियाँ द्वितीय आवरण मे कही गई हैं ॥७७॥७८॥ यहाँ तक मन्मथायिक व्यूह बताया गया है अब भीम व्यूह मैं बताता हूँ। रक्ता विरक्ता उद्वेगा शोक वर्धिनी-कामा-तृष्णा क्षुधा-मोहा ये आठ कही गई हैं। यह प्रथमावरण कहा गया है। द्वितीयावरण इस व्यूह का सुनो ॥७६॥८०॥ जया-निद्रा-भया-आलस्या-जल तृष्णोदगी दरा-कृष्णा कृष्णाङ्गिनी-वृद्धा शुद्धा-उच्छिष्टाशिनी वृषा-कामना-शोभिनी-दग्धा दु खदा सुखदावली यह इस प्रकार से भीम व्यूह की शक्तियाँ बतादी गई हैं। अब भीमायी व्यूह कहा जाता है—॥८१॥८२॥ आनन्दा-सुनन्दा-महानन्दा-शुभकरी वीतरागा-महोत्साहा जितरागा-मनोरथा-यह प्रथम आवरण कह दिया गया है। द्वितीयावरण इस व्यूह का सुनो-मनोन्मनी मन क्षोभा-मदोन्मत्ता मदाकुला-मन्दगर्भा-महाभासा-कामानन्दा-सुविह्वला-महावेगा-सुवेगा महाभोगा क्षयावहा क्रमिणी-क्रामणी-चक्रा-ये द्वितीय आवरण की शक्तियाँ होती हैं। भीमायी नाम वाला परम शोभन व्यूह कह दिया है। ॥१८३ से १८६॥

शाकुनं कथयाम्यद्य स्वायंभुव मनोरमूकम् ।
योगा वेगा सुवेगा च प्रतिवेगा सुवासिनी ॥१८७
देवी मनोरथा वेगा जलावर्ता च घोमती ।

प्रथमावरणं प्रोक्त द्वितीयावरणं शृणु ॥८८
रोधिनी क्षोभिणी बाला विप्राशेपासुशोषिणी ।
विद्युता भासिनी देवी मनोवेगा च चापला ॥८९
विद्युज्जिह्वा महाजिह्वा भृकुटीकुटिलानना ।
फुल्ज्वाला महाज्वाला सुज्वाला च क्षयांतिका ॥९०
शाकुनः कथितो व्यूहः शाकुनायाः शृणुष्व मे ।
ज्वालिनी चंव भस्मामी तथा भस्मांतगा तता ॥९१
भाविनी च प्रजा विद्या ख्यातिश्च वाष्टमी स्मृता ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥९२
उल्लेखा च पताका च भोगाभोगवती खगा ।
भोगभोगव्रता योगा भोगाख्या योगपारगा ॥९३
ऋद्धिर्बुद्धिर्धृतिः कांतिः स्मृतिः साक्षाच्छ्रुतिर्धरा ।
शाकुनाया महाव्यूहः कथितः कामदायकः ॥९४
स्वायंभुव शृणु व्यूह सुमत्याख्यं सुशोभनम् ।
परेष्टा च परा दृष्टा ह्यमृता फलनाशिनी ॥९५
हिरण्याक्षी सुवर्णाक्षी देवी साक्षात्कपिजला ।
कामरेखा च कथित प्रथमावरणं शृणु ॥९६
रत्नद्वीपा च सुद्वीपा रत्नदा रत्नमालिनी ।
रत्नशोभा सुशोभा च महाशोभा महाद्युतिः ॥९७
शांवरी बंधुरा ग्रंथिः पादकर्णा करानना ।
हयग्रीवा च जिह्वा च सर्वभासेति शक्तयः ॥९८
कथितः सुमतिव्यूहः सुमत्या व्यूह उच्यते ।
सर्वाशी च महाभक्षा महादंष्ट्रातिरौरवा ॥९९
विस्फुलिंगा विलिंगा च कृतांता भास्करानना ।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥२००

अब स्वायम्भुव मनोसुक शाकुन व्यूह कहता हूँ—योगा-वेगा-सुवेगा-प्रति वेगा-सुवासिनी देवी-मनोरथा-वेगा-जला वर्त्ता-धीमती-यह प्रथमावरण हुआ। इसका दूसरा आवरण सुनो-रोधिनी-क्षोभिणी बाला-विप्रा-

शोषा-सुतोषिणी-विद्युता-भासिनी-देवी-मनोवेगा-चापला-विद्युज्जिह्वा-महाजिह्वा-भृकुटी-कुटिलानना-फुल्लज्वाला-महाज्वाला-सुज्वाला-क्षयान्तिका, यह शाकुन व्यूह कहा गया है। अब शाकुना का व्यूह सुनो-ज्वालिनी-भस्माङ्गी-भस्मान्तगा-तथा-भाविनी प्रजा विद्या-ख्याति-ये आठ शक्तियाँ हैं। प्रथमावरण कहा गया है। इसका दूसरा आवरण श्रवण करो-उल्लेखा-पताका-भोगा-भोगवती-खगा-भोग भोग वता-योगा-भोगाख्या-योग पारगा-ऋद्धि बुद्धि-धृति-कान्ति स्मृति-साक्षाच्छ्रुति-धरा-यह शाकुना का कामदायक महान् व्यूह कहा गया है। अब सुमत्याख्य एवं परम सुशोभन स्वायम्भुव व्यूह का श्रवण करो – परेष्टा, परा, दृष्टा, अमृता, फलनाशिनी हिरण्याक्षी, सुवर्णाक्षी, देवी, साक्षात्क पिङ्गला और कामरेखा ये आठ शक्तियाँ प्रथमावरण की कही गई हैं। रत्नग्रीवा, सुग्रीवा, रत्नदा, रत्न मालिनी, रत्न शोभा, सुशोभा, महा शोभा, महा द्युति, शाम्वरी, बन्धुरा, ग्रन्थि, पादकर्णा, वरानना, हयग्रीवा, जिह्वा, सर्वभासा—ये शक्तियाँ होती हैं। सुमति व्यूह बता दिया है अब सुमरया व्यूह सुनो—सर्वाशी, महाभक्षा, महादंष्ट्रा, अतिरौरवा, विस्फुलिङ्गा, विलिङ्गा कृतान्ता, भास्करानना, यह प्रथमावरण कहा गया है। इस व्यूह का दूसरा आवरण सुनो। ॥ १८७ से २०० तक ॥

रागा रागवती श्रेष्ठा महाक्रोधा च रौरवा।
क्रोधनी वमनी चैव कलहा च महाबला ॥२०१
कलतिका चतुर्भेदा दुर्गा वै दुर्गमालिनी।
नाली सुनाली सौम्या च इत्येयं कथितं मया ॥२०२
गोप व्यूह वदाम्यत्र श्रृणु स्वायंभुवाखिलम्।
पाटली पाटवी चैव पाटी विटिपिटा तथा ॥२०३
कंकटा सुपटा चैव प्रघटा च घटोद्भवा।
प्रथमावरणं चात्र भावया कथितं मया ॥२०४
नादाक्षी नादरूपा च सर्वकारी गमागमा।
अनुचारी सुचारी च चंडनाडी सुवाहिनी ॥२०५
सुयोगा च वियोगा च हंसाख्या च विलासिनी।

सर्वगा सुविचारा च वचनी चेति शक्तयः ॥२०६
गोपव्यूह. समाख्यातो गोपायीव्यूह उच्यते ।
भेदिनी च्छेदिनी चैव सर्वकारी क्षुराशनी ॥२०७
उच्छुष्मा चैव गाधारी भस्माशी वडवानला ।
प्रथमावरण चैव द्वितीयावरण शृणु ॥२०८
अंधा बाह्लासिनी बाला दीक्षपामा तथैव च ।
अक्षा व्यक्षा च हृल्लेखा हृद्गता मायिकापरा ॥२०६
आमयासादिनी भिल्ली सह्यासह्या सरस्वती ।
रुद्रशक्तिर्महाशक्तिर्महामोहा च गोनदी ॥२१०
गोपायी कथितो व्यूहो नदव्यूह वदामि ते ।
नंदिनी च निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च यथाक्रमम् ॥२११
विद्यानासा खग्रसिनी चामुण्डा प्रियदर्शिनी ।
प्रथमावरण प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥२१२

रागा, रगवती, श्रेष्ठा, महाक्रोधा, रौरवा, क्रोधनी, वसनी, कलहा, महाबला, कलन्तिका, चतुर्भेदा, दुर्गा, दुर्ग मानिनी, नाली, सुनाली, सौम्या, ये इतनी मैंने कहदी हैं। यहाँ गोप व्यूह बतलाता हूँ उस स्वायम्भुवाखिल को सुनो। पाटली, पाटवी, पाटी, विटपिटा, कराटा, सुपटा, प्रघटा, घटोद्भवा-यह यहाँ पर मैंने प्रथमावरण माया के द्वारा कह दिया है। नादाक्षी, नादरूपा, सर्वकारी, गमा, अगमा, अनुसारी, सुचारी, चण्ड नाडी, सुवाहिनी, सुयोगा, नियोगा, हसाख्या, विलासिनी, सर्वगा, सुविचारा और वच्चिनी ये सोलह शक्तियाँ हैं ॥२०१ से २०६॥ गोप व्यूह समाख्यात हो गया है। अब गोपायी व्यूह कहा जाता है—भेदिनी, छेदिनी, सर्वकारी, क्षुधाशनी, उच्छुष्मा, गान्धारी भस्माशी, वडवानला-यह प्रथमावरण कहा गया है। इसका द्वितीयावरण सुनो—अन्धा, आह्लासिनी बाला, दीक्षपामा, अक्षा, व्यक्षा, हृल्लेखा, हृद्गता, मायिका परा, आमयासादिनी, भिल्ली, सह्या, असह्या, सरस्वती, रुद्र शक्ति, महाशक्ति, महामोहा, गो नदी-यह गोपायी व्यूह कहा गया है। अब तुम को मैं नन्द व्यूह बतलाता हूँ—नन्दिनी, निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या नासा,

खड्गिनी, चामुण्डा, प्रियदर्शिनी यह प्रथमावरण की शक्तियाँ बताई गई हैं। दूसरा आवरण सुनो—॥२०७ से २१२॥

गुह्या नारायणी मोहा प्रजा देवी च चक्रिणी।
ककटा च तथा काली शिवाघोषा तत परम् ॥२१३
विरामा सा च वागीशी वाहिनी भीषणी तथा।
सुगमा चैव निर्दिष्टा द्वितीयावरणे स्मृता ॥१४
नंदव्यूहो मया ख्यातो नंदाया व्यूह उच्यते।
विनायकी पूर्णिमा च रंकारी कुंडली तथा ॥१५
इच्छा कपालिनी चैव ह्लादिनी च जयन्तिका।
प्रथमावरणे चाष्टौ शक्तयः परिकीर्तिता ॥१६
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु।
पावनी चाम्बिका चैव सर्वात्मा पूतना तथा ॥१७
छगली मोदिनी साक्षाद्देवी लंबोदरी तथा।
संहारी कालिनी चैव कुसुमा च यथाक्रमम् ॥१८
शुक्रा तारा तथा ज्ञाना क्रिया गायत्रिका तथा।
सावित्री चेति विधिना द्वितीयावरणं स्मृतम् ॥१९
नंदाया कथितो व्यूहः पैतामहमत. परम्।
नंदिनी चैव फेत्कारी क्रोधा हंसा षडंगुला ॥२०
यानदा वसुदुर्गा च सहारा ह्यमृताष्टमी।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु ॥२१

गुह्या, नारायणी मोहा, प्रजा, देवी चक्रिणी, ककटा काली, शिवाघोषा, विरामा, वागीशी, वाहिनी, भीषणी, और सुगमा, एवं निर्दिष्ट ये दूसरे आवरण में कही गई हैं ॥१३॥१४॥ मैंने नन्द व्यूह तो बतला दिया है। अब नन्दा का व्यूह कहा जाता है—विनायकी, पूर्णिमा, रंकारी, कुण्डली, इच्छा, कपालिनी, ह्लादिनी, जयन्तिका—ये प्रथम आवरण में आठ ही शक्तियाँ कीर्तित की गई हैं। यह प्रथमावरण कहा गया है। इसके अब दूसरा आवरण सुनो-पावनी अम्बिका, सर्वात्मा, पूतना, छगली, मोदिनी, साक्षाद्देवी, लम्बोदरी, संहारी, कालिनी,

कुसुमा, शुक्ला, तारा ज्ञाना, क्रिया, गायत्रिका, तथा सावित्री-यह विधि से द्वितीयावरण कहा गया है ।।१५।।१६।।१७।।१८।।१६।। नन्दा का व्यूह कहा गया है । इससे आगे पैतामह व्यूह बताते हैं—नन्दिनी, फेत्कारी, क्रोधा, हृसा, षड्मुला आनन्दा; वसु; दुर्गा; सहारा और आठवी शक्ति अमृता होती है। यह प्रथमावरण बताया गया है । आगे दूसरा आवरण सुनो ।।२२०।।२२१।।

कुलांतिकानला चैव प्रचंडा मर्दिनी तथा ।
सर्व भूताभया चैव दया च वडवामुखी ।।२२२
लंपटा पन्नगा देवी कुसुमा विपुलांतका ।
केदारा च तथा कूर्मा दुरिता मदरोदरी ।।२३
खड्ग चक्रे तिविधिना द्वितीयावरण स्मृतम् ।
व्यूहः पैतामह. प्रोक्तो धर्मकामार्थमुक्तिद ।।२४
पितामहाया व्यूह च कथयामि शृणुष्व मे ।
वज्रा च नदना शावारात्रिका रिपुभेदिनी ।।२५
रूपा चतुर्थी योगा च प्रथमावरणे स्मृताः ।
भूता नादा महाबाला खर्परा च तथा परा ।।२६
भस्मा कांता तथा वृष्टिर्द्विभुजा ब्रह्मरूपिणी ।
सैह्या वैकारिका जाता कर्ममोटी तथापरा ।।२७
महामोहा महामाया गाधारी पुष्पमालिनी ।
शब्दापी च महाघोषा षोडशैव तथांतिमे ।।२२८

कुलान्तिका, अमला; प्रचण्डा, मर्दिनी; सर्वभूताभया, दया वडवा मुखी, लम्पटा; पन्नगा; देवी; कुसुमा; विपुलान्तका; केदारा, कूर्मा, दुरिता; मन्दोदरी और खड्ग चक्रा-इस विधि से दूसरा आवरण कहा गया है । धर्म काम अर्थ और मोक्ष का प्रदान करने वाला यह पैतामह व्यूह कह दिया गया है । अब पितामहा का व्यूह कहता हूँ । उसे मुझसे श्रवण करो—वज्रा-नन्दना-शावा रात्रिका-रिपुभेदिनी-रूपा चतुर्थी-और योगा ये प्रथमावरण में कही गई हैं । भूता-नादा-महा बाला-खर्परा-परा-भस्मा-कान्ता-वृष्टि द्विभुजा-ब्रह्मरूपिणी-सैह्या वैकारिका

जाता–कर्ममोटी–अपरा–महामोहा महामाया–गान्धारी–पुष्प मालिनी–शब्दापी–महाघोषा ये सोलह ही शक्तियाँ हैं ॥२२२ से २२८॥

सर्वाश्च द्विभुजा देव्यो बालभास्करसन्निभाः ।
पद्मशङ्खधराः शांता रक्तस्रग्वस्त्रभूषणा. ॥२२९
सर्वाभरणसंपूर्णा मुकुटाद्यैरलंकृताः ।
मुक्ताफलमयैर्दिव्यै रत्नचित्रैर्मनोरमैः ॥३०
विभूषिता गौरवर्णा ध्येया देव्यः पृथक्पृथक् ।
एवं सहस्रकलश ताम्रजं मृन्मयं तु वा ॥३१
पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तं रुद्रक्षेत्रे प्रतिष्ठितम् ।
भवाद्यैर्विष्णुना प्रोक्तं र्नाम्नां चैव सहस्रकैः ॥३२
संपूज्य विन्यसेदग्रे सेचयेद्बाणविग्रहम् ।
अभिषिच्य च विज्ञाप्य सेचयेत्पृथिवीपतिम् ॥२३३

ये सभी देवियाँ दो भुजाओं वाली हैं और बाल भास्कर के समान प्रकाश पूर्ण हैं। पद्म शंख धारण करने वाली—परम शान्त तथा रक्त वर्ण की माला धारण करने वाली और रक्त भूषण तथा वस्त्रों से विभूषित हैं ॥२९॥ समस्त आभूषणों से समलङ्कृत तथा मुकुट आदि से सुभूषित हैं। मुक्ता फल से परिपूर्ण परम दिव्य एवं मनोरम विचित्र रत्नों से विभूषित हैं ॥२३०॥ ये सब गौर वर्ण वाली हैं। इनका अलग-अलग ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार से एक सहस्र ताम्र के अथवा मृत्तिका के कलश पूर्व में कहे हुए लक्षणों से सम्पन्न रुद्र क्षेत्र में प्रतिष्ठित करे। विष्णु के द्वारा प्रोक्त भवादि के सहस्र नामों से उनका भली-भाँति पूजन करे। आगे में विन्यास करे और बाणलिङ्ग का सेचन करे। अभिषेचन करके विज्ञापन करे और पृथिवी के स्वामी का सेचन करना चाहिए ॥२३१ से २३३॥

एवं सहस्र कलशं सर्वसिद्धिफलप्रदम् ॥२३४
चत्वारिंशन्महाव्यूहं सर्वलक्षणसंयुतम् ॥३५
तथा कनकसंयुक्ता देवस्य पूर्णपूरिताः ।
दधिरेण वाथ दध्ना वा पंचगव्येन वा पुनः ॥३६

ब्रह्मकूर्चेन वा मध्यमभिषेको विधीयते ।
रुद्राध्यायेन रुद्रस्य नृपतेः शृणु सत्तम ॥३७
अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥३८
मन्त्रेणानेन राजानं सेचयेदभिषेचितम् ।
होमं च मन्त्रेणानेन अघारेणाघहारिणा ॥२३६

सम्पूर्ण लक्षणों से लक्षित यह चालीस महाव्यूह से युक्त इस प्रकार से सहस्र कलश वाला अभिषिंचन सम्पूर्ण सिद्धियों के प्रदान करने वाला है ।।२४।।३५।। तथा सम्पूर्ण कलश कनक से युक्त और देव के घृत से पूरित होने चाहिए । क्षीर-दधि पञ्चगव्य अथवा ब्रह्मकूर्च से मध्याभिषेक किया जाता है । रुद्र का अभिषेक रुद्राध्याय से किया जाता है । राजा के अभिषेक के विषय में सुनो । ।।३६।।३७।। "अघोरेभ्यो ऽथ घोरेभ्यो घोर घोर तरेभ्य. । सर्वेभ्य. सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्र रूपेभ्यः"— (इसका शब्दार्थ पहिले वर्णित किया जा चुका है) इस मन्त्र से अभिषेचित राजा का अभिषेक करना चाहिए । अघों के हरण करने वाले --- --- मन्त्र से होम करे ।।२३८।।२३६।।

प्रागाद्यं देवकुंडे वा स्थंडिले वा घृतादिभिः ।
समिदाज्यचरुं लाजशालिनीवारतंडुलैः ॥२४०
अष्टोत्तरशतं हुत्वा राजानमभिवासयेत् ।
पुण्याहं स्वस्ति रुद्राय कौतुकं हेमनिर्मितम् ॥४१
भसितं च मृणालेन बंधयेद्दक्षिणे करे ।
त्र्यंबकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनम् ॥४२
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
मंत्रेणानेन राजानं सेचयेद्वाथ होमयेत् ॥४३
सर्वद्रव्याभिषेकं च होमद्रव्यैर्यथाक्रमम् ।
प्रागाद्यं ब्रह्मभि. प्रोक्तं सर्वद्रव्यैर्यथाक्रमम् ॥४४
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥४५

स्वाहांतं पुरुषेणैवं प्रावकुण्डं होमयेद्द्विजः ।
अघोरेण च याम्ये-च होमयेत्कृष्णवाससा ॥४६
वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः ।
इत्याद्युक्तक्रमेणैव जुहुयात्पश्चिमे नरः ॥४७
सद्येन पश्चिमे होमः सर्वद्रव्यैर्यथाक्रमम् ।
सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः ॥ ४८

देव कुण्ड मे अथवा स्थण्डिल मे घृतादि से युक्त लाज शालिनीवार तण्डुलों के सहित समिधा एव आज्य चरु की अष्टोत्तर शत आहुतियाँ देकर प्रागाद्य अर्थात् प्र ङ्मुख राजा का अधिवास करना चाहिए । पुण्याह वाचन-स्वस्ति वाचन और रुद्राय वाचन कराके हेम से विनिर्मित कौतुक (कङ्कण) मृणाल के सहित असित दक्षिण कर मे बांधना चाहिए । फिर 'त्र्यम्बक यजामहे सुगन्धि पुष्टि वर्धनम्"-इस त्र्यम्बक मन्त्र से राजा का सेचन करे अथवा होम करे ॥४०॥४१॥४२॥ उर्वा रुक मिव बन्धना न्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्"-इस मन्त्र से राजा का सेचन करे तथा होम करे । ॥२४३॥ क्रम के अनुसार लाजा आदि होम द्रव्यों से सर्व द्रव्याभिषेक करे । 'ब्रह्मभिः"-इत्यादि पांच ब्रह्म मन्त्रो से समस्त द्रव्यों यथाक्रम प्रागाद्य हवन करना चाहिए ॥२४४॥ अब हवन की विधि बतलाते हैं-द्विज को "तत्पुरुषाय विद्महे, महादेवाय धीमहि, तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्"—इस मन्त्र से अन्त में स्वाहा' इसे लगाकर इस तरह से प्राक्कुण्ड में होम करना चाहिए । अघोर मन्त्र से कृष्ण वस्त्र वाले आचार्य के द्वारा याम्य दिशा मे हवन करना चाहिए ॥४५॥४६॥ 'वामदेवाय नम -ज्येष्ठाय नम श्रेष्ठाय नम रुद्राय नम '- इत्यादि उक्त क्रम से मनुष्य को पश्चिम में हवन करना चाहिए ॥४७॥ सद्य मन्त्र से यथाक्रम सम्पूर्ण द्रव्यों से पश्चिम में हवन करे । 'सद्योजात प्रपद्यामि सद्यो जाताय वै नमः"-यह मन्त्र है । इसका अर्थ है-सद्योजात की मैं शरण में जाता हूं सद्योजात के लिये नमस्कार है ॥२४८॥

भवे भवेनाति भवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ।
स्वाहांत जुहुयात्तो मन्त्रेणानेन बुद्धिमान् ॥२४९

आग्नेय्यां च विधानेन ऋचा रौद्रेण होमयेत् ।
जातवेदसे सुनवाम सोममित्यादिना ततः ।
नैर्ऋते पूर्ववद्द्रव्यै. सर्वहोमो विधीयते ॥५०
मन्त्रेणानेन दिव्येन सर्वसिद्धिकरेण च ।
निमि निशि दिश स्वाहा खड्ग राक्षस भेदन ॥५१
रुधिराज्यार्द्रं नैर्ऋत्यै स्वाहा नमः स्वधानमः ।
यथेष्टं विधिना द्रव्यैर्मन्त्रेणानेन होमयेत् ॥५२
यम्या हि विविधैर्द्रव्यैरीशानेन द्विजोत्तमाः ।
ईशान्यामथ पूर्वोक्तैर्द्रव्यैर्होममथाचरेत् ॥५३
इशानाय कद्रुद्राय प्रचेतसे त्र्यंबकाय शर्वाय
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥५४
प्रधान पूर्ववद्द्रव्यैरीशानेन द्विजोत्तमाः ।
प्रतिद्रव्यं सहस्रेण जुहुयान्नृपसन्निधौ ॥५५

"भवे भवे नाति भवे भवस्व मा भवोद्भवाय नम."-अर्थात् ससार में जन्म लेकर मैं प्रति भव को प्राप्त हो रहा हूं मेरा उद्धार करो । इस ससार के उत्पत्ति स्वरूप आपके लिये मेरा नमस्कार है । इस मन्त्र के अन्त मे 'स्वाहा'-इसे लगाकर इससे बुद्धिमान् को अग्नि मे हवन करना चाहिए ॥४६॥ आग्नेयी दिशा मे रौद्र ऋचा से विधान के साथ होम करे "जातवेद से सुनवाम सोमम्"—इत्यादि मन्त्र से नैर्ऋत दिशा में पूर्व की ही भाँति समस्त द्रव्यो से होम करना चाहिए ॥५०॥ यह समस्त सिद्धियो के करने वाला परम दिव्य मन्त्र है-इससे होम करे । 'निमि निशि दिश स्वाहा खड्ग राक्षस भेदन । रुधिराज्यार्द्रं नैर्ऋत्यै स्वाहा नम. स्वधा नमः"—इस मन्त्र से यथेष्ट विधि से द्रव्यों से होम करना चाहिए । ॥५१॥५२॥ हे द्विजोत्तमो ! वायव्य दिशा मे ईशान मन्त्र से अनेक द्रव्यों के द्वारा होम करे । ईशानी दिशा मे पूर्वोक्त द्रव्यों से होम का आचरण करे ॥५३॥ "ईशानाय कद्रुद्राय प्रचेतसे त्र्यम्बकाय शर्वाय तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्"—यह ईशान मन्त्र है । इससे मुख्य को पूर्ववत् ॥ से प्रति द्रव्य एक सहस्र आहुतियाँ नृप की सन्निधि में देवे ।

॥२५४॥२५५॥

स्वय वा जुहुयादग्नौ भूपति शिववत्सलः ।
ईशान सर्वविद्यानामीश्वर सर्वभूताना ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणो-
ऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे ग्रस्तु सदाशिवाम् ॥२५६
प्रायश्चित्तमघारेण शेप सामान्यमाचरेत् ।
कृताधिवास राजान शखभेर्यादिनिस्वन ॥५७
जयशब्दरवैर्दिव्यैर्वेदघोषै सुशोभनै ।
सेचयेत्कूर्चतोयेन प्रोक्षयेद्वा नृपोत्तमम् ॥५८
रुद्राध्यायेन विधिना रुद्रभस्माङ्गधारिणम् ।
शखचामरभेर्याद्य छत्र चद्र समप्रभम् ॥५९
शिबिका वैजयन्ती च साधयन्नृपते शुभाम् ।
राज्याभिषेकयुक्ताय क्षत्रियायेश्वराय वा ॥ ०
नृपचिह्नानि नान्येषा क्षत्रियाणा विधीयते ।
प्रमाण चत्र सर्वेषा द्वादशागुलमुच्यते ।६१
पलाशोदुम्बराश्वत्थवटा पूर्वादित क्रमात् ।
तोरणाद्यानि वै तत्र पट्टमाश्रेग पट्टिका ॥६२
अष्टमागुलसयुक्तदर्भमालासमावृतम् ।
दिग्ध्वज छत्रसयुक्त द्वारकुभै सुशोभनम् ॥२६३

अथवा शिव का प्रेमी राजा स्वय भी अग्नि म हवन करे। समस्त विद्याओ के स्वामी समस्त भूतो के ईश्वर ब्रह्मा के स्वामी-ब्रह्मा के अधिपति ब्रह्मा और शिव मेरे लिये शिवोऽस्तु होवें अर्थात् कल्याण करने वाले हो ॥५६॥ अघोर मन्त्र म प्रायश्चित्त करे और शेष सामान्य का आचरण करना चाहिए। अधिवास करने वाले राजा का सेचन शख भेरी आदि वाद्यो की ध्वनि जय शब्द और वेद मन्त्रोच्चारण के घोष के सहित जो कि परम शोभन हैं, कूर्च जल से करे अथवा नृपोत्तम का प्रोक्षण करना चाहिए ॥५७॥५८॥ रुद्राध्याय के द्वारा विधिपूर्वक सम्पूर्ण अङ्गो म रुद्र भस्म के धारण करने वाले शख चमर भेरी आदि छत्र चन्द्र की प्रभा के समान प्रभा वाला शिबिका और शुभ वैजयन्ती आदि से राजा की सुख-

पूजा करे। यह सब उसी के लिये करे जो राज्याभिषेक के लिये योग्य क्षत्रिय स्वामी हो और देव तुल्य हो ॥५६॥६०॥ राजा के ये चिह्न क्षत्रिय कुल मे समुत्पन्नों के ही होते हैं अन्यो के नही होते है। इन सब का प्रमाण द्वादश अङ्गुल कहा जाता है जो कि पलाश-उदुम्बर अश्वत्थ और वट की शाखाएँ पूर्वादि क्रम से होती हैं-इनको बांधे। वहाँ अभिषेक मण्डप मे तोरण आदि पट्टिका दुकूल से ही करनी चाहिए ॥६१॥ ॥६२॥ द्वार स्थित कुम्भो को आठ अङ्गुल दर्भ माला मे समावृत और दिग्ध्वजाष्टक से संयुक्त परम सुशोभन करे ॥२६३॥

हेमतोरणकुम्भैश्च भूषित स्नापयेन्नृपम् ।
सर्वोपरि समासीनं शिवकुम्भेन सेचयेत् ॥२६४
तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि ।
तन्न शिवः प्रचोदयात् ॥६५
मंत्रेणानेन विधिना वधन्या गौरिगीतया ।
रुद्राध्यायेन वा सर्वमघोरायाथ वा पुन ॥६६
दिव्यैराभरणैः शुक्लैर्मुकुटं चैः सुकल्पितै ।
क्षौमवस्त्रैश्च राजान तोषयेन्नियत शनै ॥६७
अष्टाष्टिपलेनैव हेम्ना कृत्वा सुदर्शनम् ।
नवरत्नैरलङ्कृत्य दद्या द्वै दक्षिणा गुरो ॥६८
दशधेनु सवत्स्य च दद्यात्क्षेत्र सुशोभनम् ।
शतद्रोणानिल चैव शन्द्रोणाश्च तडुनान् ॥६९
शयन वाहन शय्या सोपधाना प्रदापयेत् ।
योगिना चव सर्वेषा त्रिशत्पलमुदाहृतम् ॥७०
अशेषाश्च तदर्धेन शिवभक्तास्तदर्धत ।
महापूजा तत कुर्यान्महादेवस्य वै नृप. । २७१

इस प्रकार से हेम कुम्भ तोरण आदि से भूषित नृप का स्नपन कराना चाहिए। सब के ऊपर समास्थित राजा का शिव कुम्भ से सेचन करे ॥६४॥ "तन्महेशाय विद्महे वाग्वि शुद्धाय धीमहि । तन्नः शिव. प्रचोदयात्"—इस मन्त्र से विधि के साथ—वर्धनी गौरी गायत्री से-

रुद्राध्याय से अथवा सब अघोर मन्त्र से करे ॥६५॥६६॥ दिव्य आभरण और युगल मुकुट आदि से जो कि भली-भाँति निर्मित किये गये हों तथा क्षौम वस्त्रों से नियत रूप से धीरे से राजा को लोप देना चाहिए ॥६७॥ अड़सठ पल सुवर्ण से बहुत सुदर्शनीय बनवा कर तथा नौ रत्नों से विभूषित करके गुरु की दक्षिणा देनी चाहिए ॥६८॥ दश धेनु जो कि वस्त्रों के सहित हों—परम शोभन क्षेत्र एक सौ द्रोण तिल सौ द्रोण तण्डुल-शयन वाहन-उपधान के सहित शय्या दिलानी चाहिए । समस्त योगियों को तीस पल कहा गया है ॥२६९॥२७०॥ शेष अन्यों को उससे आधा देवे और जो शिव के भक्त हों उनको इनसे भी आधा भाग दक्षिणा के रूप में देना चाहिए । इसके अनन्तर राजा को महादेव की महापूजा करनी चाहिए ॥२७१॥

एव समासतः प्रोक्त जयसेचनमुत्तमम् ।
एव पुराभिषिक्तस्तु शक्रः शक्रत्वमागत ॥२७२
ब्रह्मा ब्रह्मत्वमापन्ना विष्णुर्विष्णुत्वमागतः ।
अ बिका चाविमत्व च सौभाग्यमतुल तथा ॥७३
सावित्री च तथा लक्ष्मीर्देवी कात्यायनी तथा ।
नदिनाथ पुरा मृत्यु रुद्राध्यायेन वै जितः ॥७४
अभिषिक्तोऽसुरः पूर्वं तारक रवो महाबलः ।
विद्युन्माली हिरण्य क्षो विष्णुना वै विनिर्जितः ॥७५
नृसिंहेन पुरा दैत्यो हिरण्यकशिपुर्हतः ।
स्कदेन तारकाद्यश्च मौलिकया च पुरा बया ॥७६
शुंदोपसु दतनयो जितौ दैत्येन्द्रपूजितौ ।
वसुदेवसुदेवौ तु निहतौ कुलगुरवया ॥२७७

प्रकार से अपने २ पदों की प्राप्ति की थी। पहिले नन्दिनाथ ने रुद्राध्याय के द्वारा ही मृत्यु को जीत लिया था ॥७२॥७३॥७४॥ महाबलवान् तारक नाम वाले असुर को पहिले अभिषिक्त किया था और विद्युन्माली बहु देवों के द्वारा भी अजेय हो गया था। भगवान् विष्णु ने स्नान योग से ही हिरण्याक्ष को विनिर्जित किया था ॥७५॥ इसी योग के प्रभाव से नृसिंह ने हिरण्यकशिपु दैत्य का हनन किया था। स्कन्द ने तारक आदि दैत्यों को तथा पहिले कौशिकी अम्बा देवी ने दैत्येन्द्रों के द्वारा पूजित शुम्भ उपशुम्भ के पुत्रों को जीता था। कृतदृष्टा ने वसुदेव और सुदेव को हत किया था ॥२७६॥२७७॥

स्नानयोगेन विधिना ब्रह्मणा निर्मितेन तु।
देवासुरे दितिसुता जिता देवैरनिंदिता ॥७८
स्नाप्यैव सर्वभूपैश्च तथान्यैरपि भूसुरैः।
प्राप्ताश्च सिद्धयो दिव्या नात्र कार्या विचारणा ॥७९
अहोऽभिषेकमाहात्म्यमहो शुद्धसुभाषितम्।
येनैवमभिषिक्तेन सिद्धं मृत्युजितस्त्विति ॥८०
कल्पकोटिशतेनापि यत्पापं समुपार्जितम्।
स्नाप्यैवं मुच्यते राजा सर्वपापैर्न संशयः ॥८१
ध्यापितो मुच्यते राजा दायगुह्यादिभि पुन।
स नित्यं विजयी भूत्वा पुत्रपौत्रादिभिर्युतः ॥८२
जनानुरागसंपन्नो देवराज इवापर।
मोदते पारलोकञ्च प्रियया धर्मनिष्ठया ॥८३
उद्वासनार्थं कथितं पञ्च परमशोभनम्।

है जिस के द्वारा इस प्रकार से अभिषेक करने से सिद्धि को प्राप्त करने वालो ने मृत्यु को भी जीत लिया था ॥८०॥ सैंकडो करोड कल्पों मे भी जो-जो पाप किया गया है उससे इस विधान से अभिषेचन करके राजा सभी पापो से मुक्त हो जाता है—इसमें कुछ भी सशय नही है ॥८१॥ व्याधि से युक्त राजा क्षय-कुष्ठ आदि रोगो से छुटकारा पा जाता है और वह नित्य विजयी होकर पुत्र पौत्रादि से समन्वित होता है ॥८२॥ समस्त जनो के अनुराग का पात्र होकर दूसरे देवराज के तुल्य पाप हीन होकर धर्म मे निष्ठा वाली भार्या के साथ प्रसन्न होता है। हे स्वायम्भुव मनो ! मैंने नृपो के उपकार के लिये थोडा सा कुछ कहा है। इसका फल तो परम शोभन होता है ॥२८३॥२८४॥

॥ ६७—रुद्रादि देवता स्थापन विधि ॥

रुद्रादित्यवसूना च शक्र दीना च सुव्रत ॥१
प्रतिष्ठा कीदृशो शंभोर्लिगमूर्तेश्च शोभना ॥२
विष्णो शक्रस्य देवस्य ब्रह्मणश्च महात्मनः ।
अग्नेर्यमस्य निऋ तेर्वरुणस्य महाद्युते ॥३
वायोः सोमस्य यक्षस्य कुबेरस्यामितात्मन. ।
ईशानस्य धरायाश्च श्रीप्रतिष्ठाय वा कथम् ॥४
दुर्गाशिवाप्रतिष्ठा च हैमवत्याश्च शोभना ।
स्कदस्य गणराजस्य नदिनश्च विशेषत ॥५
तथान्येषा च देवानां गणानामपि वा पुन. ।
प्रतिष्ठालक्षण सर्व विस्तराद्वक्तुमर्हसि ॥६
भवान्मर्यादितत्वज्ञो रुद्रभक्तश्च सुव्रत ।
कृष्णाद्वैपायनस्याशि शाक्षादरमपरा तनु ॥७

वायु सोम-यक्ष अमित आत्मा वाले कुवेर-ईशान-और धरा की प्रतिष्ठा कैसे की जाती है ? ॥१॥२॥३॥४॥ दुर्गा शिव्य और हैमवती की शोभन प्रतिष्ठा-स्कन्द तथा गणराज और विशेष रूप से नन्दी की प्रतिष्ठा एवं अन्य देव तथा गणों की प्रतिष्ठा का लक्षण सब कृपा करके विस्तार के साथ आप बताने को योग्य होते हैं ॥५॥६॥ हे सुव्रत ! आप सम्पूर्ण तत्त्वों के ज्ञाता और रुद्र के परम भक्त हैं । आप भगवान् कृष्णद्वैपायन के तो एक दूसरे शरीर ही हैं ॥७॥

सुमतुर्जैमिनिश्चैव पैलश्च परमर्षयः ।
गुरुभक्ति तथा कर्तुं समर्थो रोमहर्षणः ॥८
इति व्यासस्य विपुला गाथा भागीरथीतटे ।
एकः समो वा भिन्नो वा शिष्यस्तस्य महाद्युतेः ॥९
वैशपायनतुल्योऽसि व्यासशिष्येषु भूतले ।
तस्मादस्माकमखिलं वक्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥१०
एवमुक्त्वा स्थितेष्वेव तेषु सर्वेषु तत्र च ।
बभूव विस्मयोऽतीव मुनीनां तस्य चाग्रतः ॥११
अथान्तरिक्षे विपुला साक्षाद्देवी सरस्वती ।
अलं मुनीनां प्रश्नोऽयमिति वाचा बभूव ह ॥१२
सर्वं लिङ्गमयं लोकं सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य स्थापयेत्पूजयेच्च तत् ॥१३
लिंगस्थापनसन्मार्गनिहितस्वायतासिना ।
आशु ब्रह्माद्यमुद्दिश्य निर्गच्छेद्विशङ्कया ॥१४

परम ऋषिगण सुमन्तु-जैमिनि और पैल जैसे हैं वैसे ही गुरु की भक्ति करने में समर्थ रोमहर्षण हैं ॥८॥ भागीरथी के तट पर भगवान् व्यासदेव की बहुत सी गाथा हुई हैं। आप एक ही उनके समान तथा अभिन्न तद्रूप वाले उन महान् द्युति वाले के शिष्य हैं ॥९॥ इस भूतल में व्यासदेव के शिष्यों में वैशम्पायन के तुल्य आप हैं । इसलिये अब हमारे सामने सम्पूर्ण वर्णन करने के योग्य होते हैं ॥१०॥ इस प्रकार से कहकर वहाँ पर उन सब के स्थित होने पर उनके आगे समस्त मुनियों

को बड़ा भारी विस्मय हुआ था ॥११॥ इसके अनन्तर आकाश में साक्षात् देवी सरस्वती प्रादुर्भूत हुई और वाणी से बोली—यह मुनियों का प्रश्न बहुत ही अच्छा है ॥१२॥ यह समस्त लोक लिङ्गमय है और सभी कुछ लिङ्ग में ही प्रतिष्ठित है। इसलिये सब का परित्याग करके लिङ्ग की स्थापना करे और उसकी अर्चा करनी चाहिए ॥१३॥ लिङ्ग के स्थापन-मार्ग में स्थापित जो सुविस्तीर्ण पङ्क है उससे ब्रह्माण्ड का उद्धरण करके बिना किसी शङ्का के स्थापक मुक्त हो जाता है ॥१४॥

उपेंद्रांभोजगर्भेंद्रयमांबुधनदेश्वराः ।
तथान्ये च शिवं स्थाप्य लिंगमूर्ति महेश्वरम् ॥१५
स्वेषुस्वेषु च पक्षेषु प्रधानास्ते यथा द्विजाः ।
ब्रह्मा हरश्च भगवान्विष्णुर्देवी रमा धरा ॥१६
लक्ष्मीर्धृतिः स्मृतिः प्रज्ञा धरा दुर्गा शची तथा ।
रुद्राश्च वसवः स्कंदो विशाखः शाख एव च ॥१७
नैगमेशश्च भगवाँल्लोकपाला ग्रहास्तथा ।
सर्वे नंदिपुरोगाश्च गणा गणपतिः प्रभुः ॥१८
पितरो मुनयः सर्वे कुबेराद्याश्च सुप्रभाः ।
आदित्या वसवः सांख्या अश्विनौ च भिषग्वरौ ॥१९
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च पशवः पक्षिणो मृगाः ।
ब्रह्मादिस्थावरांतं च सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् ॥२०
तस्मात्सर्वं परित्यज्य स्थापयेल्लिंगमव्ययम् ।
यत्नेन स्थापितं सर्वं पूजितं पूजयेद्यदि ॥२१

पशुगण-पक्षि वृन्द और मृग ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सभी लिङ्ग में प्रतिष्ठित होते हैं। इस लिये सब का त्याग करके अव्यय एक लिङ्ग की स्थापना करनी चाहिए। यत्न पूर्वक लिङ्ग की स्थापना करके उसका पूजन करे ॥१५ से २१॥

॥ ९८—लिंग स्थापन और फल श्रुति ॥

इति निशम्य कृतांजलय स्तदा दिवि महामुनयः कृतनिश्चयाः।
शिवतरं शिवमीश्वरमव्ययं मनसि लिंगमयं प्रणिपत्य ते ॥१
सकलदेवपतिर्भगवानजो हरिरशेषपति गुरुणा स्वयम्।
मुनिवराश्च गणाश्च सुरासुरा नरवराः शिवलिंगमयाः पुनः ॥२
श्रुत्वैवं मुनयः सर्वे षट्कुलीयाः समाहिताः।
संत्यज्य सर्वं देवस्य प्रतिष्ठां कर्तुमुद्यताः ॥३
अपृच्छन्सूतमनघ हर्षगद्गदया गिरा।
लिंगप्रतिष्ठां विपुलां सर्वे ते शमितव्रताः ॥४
प्रतिष्ठां लिंगमूर्तेर्वो यथावदनुपूर्वशः।
प्रवक्ष्यामि समासेन धर्मकामार्थमुक्तये ॥५
कृत्वैव लिंगं विधिना भुवि लिंगेषु यत्नतः।
लिंगमेकतमं शैलं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥६
हेमरत्नमयं वापि राजतं ताम्रजं तु वा।
सवेदिकं ससूत्र च सम्यग्विस्तृतमस्तकम् ॥७
विशोध्य स्थापयेद्भक्त्या सवेदिकमनुत्तमम्।
लिंगवेदी उमा देवी लिंगं साक्षान्महेश्वरः ॥८
तयोः सपूजनादेव देवी देवश्च पूजितौ।
प्रतिष्ठया च देवेशो देव्या सार्धं प्रतिष्ठितः ॥९

लिङ्ग स्थापन फलश्रुति-इतना श्रवण करके उस समय में आकाश में निश्चय करने वाले महा मुनिगण ने शिव तर अव्यय ईश्वर लिङ्गमय शिव का मन में प्रणिपात किया था ॥१॥ समस्त देवों के स्वामी भगवान् अज-अशेषों के पति हरि स्वयं गुरु और मुनिवर-गण-सुरासुर और नरवर

सब लिङ्गमय हैं-इस प्रकार से श्रवण कर दट् कुलों में समुत्पन्न मुनिगण समाहित हुए और जो प्रतिष्ठा सम्पूर्ण देव की करने को उद्यत थे उस परित्याग करके निष्पाप सूतजी से उन्होंने हर्ष से गद्गद वाणी से पूछा था कि लिङ्ग की प्रतिष्ठा किस प्रकार से की जाती है क्योंकि वे सभी संशित व्रत वाले थे ॥२॥३॥४॥ सूतजी ने कहा-मैं आनुपूर्वी के सहित यथावत् आप लोगों को लिङ्ग मूर्ति की प्रतिष्ठा को धर्मार्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिये संक्षेप से बतलाता हूँ ॥५॥ भूलोक में आगे बतलाये जाने वाले शैलादि लिङ्गों में से विधि-विधान के साथ कोई-सा एक लिङ्ग ब्रह्मा-विष्णु और शिवात्मक लिङ्ग की रचना करावे ॥६॥ वह लिङ्ग हेम और रत्नों के द्वारा निर्मित हो चाहे चाँदी या ताम्र धातु से विरचित कराया गया हो किन्तु परिनालिको पेत और पंच सूत्रादि से युक्त विस्तृत मस्तक वाला होना चाहिए। ऐसी लिङ्ग मूर्ति बनवा कर उसका भली-भाँति विशोधन करे वैदिक के सहित उस उत्तम लिङ्ग मूर्ति की स्थापना करनी चाहिए। अब उस लिङ्ग का माहात्म्य बतलाते हैं-लिङ्ग वेदी देवी उमा है और लिङ्ग साक्षात् महेश्वर हैं ॥७॥८॥ उन दोनों के भली-भाँति पूजन करने से देवी और देव का पूजन हो जाता है। प्रतिष्ठा के द्वारा देवी के साथ ही देव प्रतिष्ठित होते हैं ॥९॥

तस्मात्सवेदिकं लिंगं स्थापयेत्स्थापकोत्तम ॥१०
मूले ब्रह्मा वसति भगवान्मध्यभागे च विष्णुः
सर्वेशानः पशुपतिरजो रुद्रमूर्ति र्वरेण्यः।
तस्माल्लिंग गुरुतरतर पूजयेत्स्थापयेद्वा यस्मात्पूज्यो
गणपतिरसौ देवमुख्यं. समस्तैः ॥ ११
गंधैः स्रग्धूपदीपैः स्नपनहुतबलि स्तोत्रमंत्रोपहारैर्नित्यं
येऽभ्यर्चयंति त्रिदशवरतनुं लिंगमूर्ति महेशम्।
गर्भाधानादिनाशक्षयभयरहिता देवगंधर्वमुख्यैः सिद्धैर्वैद्यास्त
पूज्या गणवरममितास्ते भवंत्यप्रमेयाः ॥१२
तस्माद्भस्मयोपचारेण स्थापयेत्परमेश्वरम्।
पूजयेच्च विशेषेण लिंगं सर्वार्थसिद्धये ॥१३

समर्च्य स्थापयेल्लिङ्ग तीर्थमध्ये शिवासने ।
कूर्चवस्त्रादिभिर्लिंगमाच्छाद्य कलशी पुनः ॥१४
लोकपालादिदैवत्यं सकूर्चं साक्षतं शुभं ।
उत्कूर्चं स्वस्तिकाद्यैश्च चित्रतन्तुवेष्टितं ॥१५
वज्रादिकायुधोपेतं सवस्त्रं सपिधानकं ।
लक्षयेत्परितो लिंग मीशानेन प्रतिष्ठितम् ॥१६

इसलिये उत्तम स्थापना करने वाले पुरुष को सवेदिक लिङ्ग की स्थापना करनी चाहिए ॥१०॥ इसके मूल मे ब्रह्मा निवास किया करते हैं-मध्य भाग मे भगवान् विष्णु का निवास होता है और सब के ईशान पशुपति अज परम वरेण्य रुद्र मूर्ति का निवास होता है। इस लिये लिंग सबसे गुरुतर होता है। इसकी स्थापना करे और इसका पूजन करना चाहिए। इससे सम्पूर्ण देव मुखों के द्वारा गणपति पूज्य होते हैं ॥११॥ जो लोग निस्य ही गन्ध माला धूप दीप-स्नपन हुत वह्नि स्तोत्र मन्त्र और उपहारो के द्वारा त्रिदशो अर्थात् देवो मे श्रेष्ठतम लिङ्ग मूर्ति महेश का अभ्यर्चन किया करते हैं वे गर्भाधानादि नाश से रहित एव सब प्रकार के क्षय के भय से विमुक्त होते हैं तथा देव गन्धर्व और सिद्धो के द्वारा भी वन्दनीय होते हैं पूजा के योग्य बन जाते हैं तथा गण वरों से नमित और अप्रमेय हो जाया करते हैं ॥१२॥ इस लिये परम भक्ति से सम्पूर्ण उपचारों क द्वारा परमेश्वर की स्थापना करनी चाहिए तथा उसकी अर्चना करे। धर्मादि सब प्रकार की सिद्धि के लिये लिङ्ग की विशेष रूप से पूजा करनी चाहिए ॥१३॥ क्षेत्र के मध्य मे शिवासन अर्थात् वेदिका में लिङ्ग मूर्ति की स्थापना करे तथा पूजन करना चाहिए। कूर्च वस्त्रादि से लिङ्ग का समाच्छादन करे और लोकपाल आदि दैवत्य वाले कलशो की स्थापना करे जो कि कूर्च के तथा शुभ अक्षतो के सहित होने चाहिए। लिङ्ग मूर्ति के चारो ओर ईशान के द्वारा प्रतिष्ठित वहिर्निगत कूर्च वाले स्वस्तिकादि मूल सूत से युक्त चित्र तन्तुक से वेष्टित वज्र आदि आयुधों से समन्वित-वस्त्र और पिधान के सहित ये समस्त कलश होने चाहिए। ॥१४॥१५॥१६॥

धूपदीपसमोपेत वितानविततांबरम् ।
लोकपालध्वजैश्चैव गजादिमहिषादिभिः ॥१७
चित्रितैः पूजितैश्चैव दर्भमाला च शोभना ।
सर्वलक्षणसंपूर्णा तस्या बाह्ये च वेष्टयेत् ॥१८
ततोधिवासयेत्तोये धूपदीपसमन्विते ।
पंचाहं वा त्र्यहं वाथ एकरात्रमथापि वा ॥१९
वेदाध्ययनसंपन्नो नृत्यगीतादिमंगलैः ।
किंकिणीरवकोपेतं तालवीणारवैरपि ॥२०
ईक्षयेत्कालमव्यग्रो यजमानः समाहितः ।
उत्थाप्य स्वस्तिकं ध्यायेन्मंडपे लक्षणान्विते ॥२१
संस्कृते वेदिसंयुक्ते नवकुंडेन संवृते ।
पूर्वोक्त विधिना युक्ते सर्वलक्षणसंयुते ॥२२
अष्टमंडलसंयुक्ते दिग्ध्वजाढ्यकसंयुते ।
पूर्वोक्तलक्षणोपेतैः कुंडैः प्रागादितः क्रमात् ॥२३

ऊपर आकाश में एक वितान वितत किया जावे और धूप-दीप आदि से युत हो। वहाँ लोकपालों की ध्वजाऐं लगाई जावें गज और महिष आदि के द्वारा चित्रित एवं पूजित किया जावे। परम शोभन दर्भों की माला जो कि सभी लक्षणों से युक्त हो। इससे बाहिर के भाग में वेष्टन किया जावे ॥१७॥१८॥ इस समस्त प्रकार की सज्जा से समन्वित धूप-दीप से युक्त मण्डप में जल में देवदेव का अधिवास पाँच दिन-तीन दिन अथवा केवल एक रात्रि में करे ॥१९॥ यजमान को उस अधिवास के समय में परम सावधान रहते हुए वेदाध्ययन से सुसम्पन्न होना चाहिए तथा नृत्य-गीत आदि की मङ्गल ध्वनि-किङ्किणी ध्वनि से युक्त ताल-वीणा की ध्वनि आदि वहाँ पर होवे। इस प्रकार से वह समय अव्यग्रता से यापन करना चाहिए। फिर उठाकर उस सर्व लक्षण समन्वित मण्डप में पुण्याह वाचन करे ॥२०॥२१॥ वहाँ पूर्व में बताई विधि के द्वारा संस्कृत वेदि से युक्त और नव कुण्डों से संवृत तथा आठ मण्डलों से समन्वित जिसमें आठों दिशाओं की ध्वजाऐं लगी हों ऐसे पूर्व में कथित

लक्षणो से सयुत कुण्डो की रचना होनी चाहिए जिन की स्थिति प्रागादि के क्रम से की जावे ।।२२।।२३।।

प्रधान कुंडमीशान्या चतुरस्रं विधीयते ।
अथवा पचकुंडैक स्थंडिल चैकमेव च ।।२४
यज्ञोपकरणं सर्वे शिवार्चाया हि भूपणं ।
वेदिमध्ये महाशय्या पचतूलीप्रकल्पिताम् ।।२५
कल्पयेत्काचनोपेता सितवस्त्रावगुंठिताम् ।
प्रकल्प्यैव शिव चैव स्थापयेत्परमेश्वरम् ।। ६
प्राक्शिरस्कं न्यसेल्लिंगमीशानेन यथाविधि ।
रत्नन्यासे कृते पूर्वं केवल कलश न्यसेत् ।।२७
लिगमाच्छा द्य वस्त्र स्त्रा कूर्चेन च समंतत· ।
रत्नन्यासे प्रसक्तेऽथ वामाद्या नव शक्तयः ।।२८
नवरत्न हिरण्याद्यं पचगव्येन सयुतं ।
सर्वधान्यसमोपेत शिलायामपि विन्यसेत् ।।२९
स्थापयेद्ब्रह्मलिंग हि शिवगायत्रिसयुतम् ।
केवल प्रणवेनापि स्थापयेच्छिवमव्ययम् ।।३०
ब्रह्मजज्ञानमत्रेण ब्रह्मभाग प्रभोस्तथा ।
विष्णुगायत्रिया भाग वैष्णव त्वथ विन्यसेत् ।।३१

इनमे प्रधान कुण्ड ईशानी दिशा में चौकोर बनाया जाता है अथवा पाँच कुण्डों का एक ही कुण्ड और एक ही स्थण्डिल बनाया जावे ।।२४।। इस शिव की अर्चना मे समस्त भूपण एव सभी यज्ञ के उपकरणों से युक्त वेदि के मध्य मे पाँच तुलियों से प्रकल्पित अर्थात् मृदुघ महाशय्या की कल्पना करे जो कि सुवर्ण की पट्टिका से युक्त होनी चाहिए तथा श्वेत वस्त्र से अवगुण्ठित होवे । इस प्रकार से परिकल्पित करके उस पर परमेश्वर शिव की स्थापना करे ।।२५।।२६।। विधिपूर्वक ईशान के द्वारा पूर्व में शिर वाले लिङ्ग का न्यास करे । पहिले रत्न न्यास करने पर केवल मुख्य कलश का न्यास करना चाहिए ।।२७।। वस्त्रों से तथा कूर्च से चारों ओर से लिङ्ग को समाच्छादित करे और रत्न न्यास के

प्रसक्त होने पर वामादि नौ शक्तियों की स्थापना करनी चाहिए। पञ्च गव्य से युक्त हिरण्य आदि के साथ समस्त धान्य से समोपेत नवरत्नों की जो आधार शिला है उस पर विन्यास करना चाहिए ॥२८॥२६॥ ब्रह्म लिङ्ग को शिव गायत्री से संयुत स्थापित करे। अथवा केवल प्रणव से ही अव्यय भगवान् शिव की स्थापना करनी चाहिए ॥३०॥ ब्रह्मजज्ञान मन्त्र से प्रभु के ब्रह्म भाग को वेदिका के अधो भाग में तथा विष्णु गायत्री से वैष्णव भाग का विन्यास करे ॥३१॥

सूत्रे तत्त्वत्रयोपेते प्रणवेन प्रविन्यसेत् ।
सर्वं नमः शिवायेति नमो हंसः शिवाय च ॥३२
रुद्राध्यायेन वा सर्वं परिमृज्य च विन्यसेत् ।
स्थापयेद्ब्रह्मभिश्चैव कलशान्वै समंततः ॥३३
वेदिमध्ये न्यसेत्सर्वान्पूर्वोक्तविधिसंयुतान् ।
मध्यकुंभे शिवं देवीं दक्षिणे परमेश्वरीम् ॥३४
स्कंद तयोश्च मध्ये तु स्कंदकुंभे सुचिन्तिते ।
ब्रह्माणं स्कंदकुंभे वा ईशकुम्भे हरिं तथा ॥३५
अथवा शिवकुंभे च ब्रह्मांगानि च विन्यसेत् ।
शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ॥३६
ब्रह्म ण्येव समासेन हृदयादीनि चांबिका ।
वेदिमध्ये न्यसेत्पर्वान्पूर्वोक्तविधिसंयुतान् ॥३७
वर्धन्यां स्थापयेद्देवीं गधतोयेन पूर्य च ॥३८
वर्धन्यामपि यत्नेन गायत्र्यर्घश्च सुव्रताः ।
विद्येश्वरान्दिशां कुंभे ब्रह्मकूर्चेन पूरिते ॥३९

तीन तत्त्वों से समुपेत सूत्र में जो कि वेदिका के ऊर्ध्व पूर्व पश्चिम भाग रूप है, केवल प्रणव के द्वारा विन्यास करे। 'नमः शिवाय:-'नमो हंस शिवाय' इन मन्त्रों से विन्यास करने का भी एक अन्य पक्ष है ॥३२॥ अथवा रुद्राध्याय से सब का परिमृजन करके विन्यास करना चाहिए। और चारों ओर पाँच ब्रह्म मन्त्रों के द्वारा कलशों की स्थापना करे ॥३३॥ पूर्व में वर्णित विधान से सब को वेदि के मध्य में विन्यस्त करे। मध्य में

स्थित कुम्भ में भगवान् शिव तथा जगदम्बा का और दक्षिण में परमेश्वरी का विन्यास करे। ॥३४॥ सुनिश्चित स्कन्द के कुम्भ मे उन दोनों के मध्य में स्कन्द का विन्यास करना चाहिए। स्कन्द के कुम्भ मे ब्रह्मा का अथवा ईश के कुम्भ मे हरिका विन्यास शिव कुम्भ मे ब्रह्माङ्गों का विन्यास करना चाहिए। शिव-महेश्वर-रुद्र-विष्णु-पितामह ये सब ब्रह्मांग ही हैं। ॥३५॥३६॥ इस प्रकार मे संक्षेप से ब्रह्मो को तथा हृदयादि अङ्ग उमा इन सब को पूर्व वर्णित विधि से युक्त वेदि के मध्य मे विन्यस्त करे ॥३७॥ खङ्गाकारा वर्धनी मे देवी को स्थापित करे। सुगन्धित जल से पूरित करके हिरण्य-रजत और रत्न शिव के कुम्भ में विन्यस्त करे॥३८॥ वर्धनी कुम्भ में भी यत्न पूर्वक गायत्री के अङ्ग मन्त्रों के द्वारा हिरण्यादि विद्येश्वर आठो को ब्रह्मकूर्च से पूरित दिशा कुम्भ मे विन्यस्त करना चाहिए ॥३९॥

> अनंतेशादिदेवांश्च प्रणवादिनमोंतकम्।
> नववस्त्रं प्रतिघटमष्टकुंभेषु दापयेत् ॥४०
> विद्येश्वराणां कुंभेषु हेमरत्नादि विन्यसेत्।
> वक्त्र क्रमेण होतव्य गायत्र्यंगक्रमेण च ॥४१
> जयादिस्विष्टपर्यंतं सर्वं पूर्ववदाचरेत्।
> सेचयेच्छिवकुंभेन वर्धन्या वैष्णवेन च ॥४२
> पैतामहेन कुंभेन ब्रह्मभागं विशेषतः।
> विद्येश्वराणां कुंभैश्च सेचयेत्परमेश्वरम् ॥४३
> विन्यसेत्नवमंत्राणि पूर्ववत्पूमसाहितः।
> पूजयेत्स्नपनं कृत्वा सहस्राद्यिषु संभवैः ॥४४
> दक्षिणा च प्रदातव्या सहस्रगुणमुत्तमम्।
> इतरेषां तदर्धं स्यात्तदर्धं वा विधीयते ॥४५

प्रणव आदि मे लगाकर तथा 'नमः'–इसे अन्त मे जोड़ कर अनन्तेशादि देवो को विन्यस्त करे और इन आठों कुम्भों मे प्रत्येक पर को नवीन वस्त्र दिलाना चाहिए ॥४०॥ विद्येश्वरों के कुम्भों मे हेम और रत्न आदि का विन्यास करना चाहिए। विद्येश्वर आठ दिक्पालों के

लिये ईशानादि मुख के क्रम से तथा गायत्री के अङ्ग क्रम से हवन करना चाहिए ॥४१॥ जय से आदि लेकर स्विष्ट पर्यन्त सम्पूर्ण पूर्व की भाँति करना चाहिए । शिव कुम्भ से-देवी कुम्भ से और विष्णु कुम्भ से सेचन करना चाहिए ॥४२॥ पैतामह कुम्भ से विशेष रूप से ब्रह्म भाग को और विद्येश्वरों के कुम्भों से परमेश्वर का सेचन करे ॥४३॥ ईशानादि सम्पूर्ण मन्त्रों को पूर्व की भाँति सुसमाहित होकर विन्यास करे । सहस्र मुखों में यथोपग्र कुम्भों के द्वारा स्नपन करके पूजन करे ॥४४॥ उत्तम स्वर्णादि सहस्र कर्ष दक्षिणा देनी चाहिए । इतरों को उसका आधा अर्थात् सह स्थापित अन्य देवों को उसके अर्ध भाग का विधान होता है ॥४५॥

वस्त्राणि च प्रधानस्य क्षेत्रभूषणगोधनम् ।
उत्सवश्च प्रकर्तव्यो होमयागबलिः क्रमात् ॥४६
नवाहं वापि सप्ताहमेकाहं च त्र्यहं तथा ।
होमश्च पूर्ववत्प्रोक्तो नित्यमभ्यर्च्य शंकरम् ॥४७
देवानां भास्करादीनां होमं पूर्ववदेव तु ।
अभ्यंतरे तथा बाह्ये वह्नौ नित्यं समर्चयेत् ॥४८
य एवं स्थापयेल्लिंग स एव परमेश्वरः ।
तेन देवगणा रुद्रा ऋषयोऽप्सरसस्तथा ॥४९
स्थापिताः पूजिताश्चैव त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥५०

प्रधान शिव को क्षेत्र गोधन भूषण और वस्त्रों का स ंण करके क्रम से होम-याग और बलि से युक्त उत्सव करना चाहिए ॥४६॥ नित्य प्रति भगवान् शङ्कर की अभ्यर्चना करके यह उत्सव नौ दिन का-सात दिन वाला-तीन दिवस का और एक दिन करे । तथा होम पूर्व में वर्णित विधि से ही करे ॥४७॥ भास्कर आदि देवों का होम पूर्व के समान ही करे तथा अभ्यन्तर एवं बाह्य वह्नि में नित्य समर्चन करना चाहिए ॥४८॥ जो इस प्रकार से लिङ्ग की स्थापना करता है वह ही परमेश्वर है । उससे सब देवगण-सम्पूर्ण रुद्र-समस्त ऋषि और अप्सराएँ एवं चराचर त्रैलोक्य स्थापित तथा पूजित हो जाते हैं ॥४९॥५०॥

॥ ६६-सर्व देवता स्थापन विधि निरूपण ॥

सर्वेषामपि देवाना प्रतिष्ठामपि विस्तरात् ।
स्वैर्मन्त्रैर्यागकु ड न विन्य य कमेव च ॥१
स्थापयेदुत्सव कृत्वा पूजयेच्च विधानत ।
भानो पंचाग्निना कार्यं द्वादशाग्निक्रमेण वा ॥२
सर्वकु डानि वृत्तानि पद्म काराणि सुव्रताः ।
प्र वाया योनिकु ड स्यादर्धन्येका विधीयते ॥३
शक्तीना सर्वकार्येषु योनिकु ड विधीयते ।
गायत्री कल्पयेच्छम्भो सर्वेषामपि यत्नत ।
सर्वे रुद्रांशजा यस्मात्संक्षेपेण वदामि वः ॥४
तत्पुरुषाय विद्महे वागिवशुद्धाय धीमहि ।
तन्नः शिव प्रचोदयात् ॥५
गणाम्बिकायै विद्महे कर्मसिद्ध्यै च धीमहि ।
तन्नो गौरी प्रचोदयात् ॥६
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥७

सर्व देवता स्थापन विधि निरूपण । सूतजी ने कहा-समस्त देवों की प्रतिष्ठा को भी विस्तार से बतलाता हूँ । अपने उनके मन्त्रों के द्वारा याग कुण्डों का विन्यास करके एक-एक देवता की स्थापना करे ॥१॥ स्थापना करने के उपरान्त उत्सव करके विधि विधान से उनका पूजन करना चाहिए । हे सुव्रतो ! भानु की स्थापना करे । पञ्चाग्नि अथवा द्वादशाग्नि के क्रम से करना चाहिए । समस्त कुण्ड वृत्त और पद्म के समान आकार वाले करि करे । प्रमा का योनि कुण्ड करे और एक अर्धनी की जाती है ॥२॥ ३॥ शक्तियों का सम्पूर्ण कार्यों में योनि कुण्ड का विधान किया जाता है । शम्भु की और सभी की गायत्री का यत्न पूर्वक कल्पना करे । सब रुद्र के अंश से समुत्पन्न हैं इसलिये संक्षेप में आपको बतलाता हूँ ॥४॥ अब गायत्री के भेद बतलाये जाते हैं शिव की गायत्री यह है— "तत्पुरुषाय विद्महे वागिव शुद्धाय धीमहि । तन्नः

शिव: प्रचोदयात्" ॥५॥ गौरी गायत्री यह है-"गणाम्बिकायै विद्महे। कर्म सिद्धयै च धीमहि। तन्नो गौरी प्रचोदयात्"-हम गणों की अम्बिका का ज्ञान प्राप्त करते हैं और कर्मों की सिद्धि के लिये उनका हम ध्यान करते हैं। वह भगवती गौरी हमको प्रेरणा प्रदान करे ॥६॥ रुद्र गायत्री यह है—"तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्र प्रचोदयात्"। ॥७॥

तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुंडाय धीमहि।
तन्नो दंति: प्रचोदयात् ॥८
महासेनाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि।
तन्न: स्कंद: प्रचोदयात् ॥६
तीक्ष्णशृंगाय विद्महे वेदपादाय धीमहि।
तन्नो वृष: प्रचोदयात्। १०
हरिवक्त्राय विद्महे रुद्रवक्त्राय धीमहि।
तन्नो नंदी प्रचोदयात् ॥११
नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि।
तन्नो विष्णु प्रचोदयात् ॥१२
महांबिकायै विद्महे कर्म सिद्धंय च धीमहि।
तन्नो लक्ष्मी प्रचोदयात् ॥१३
समुद्धृतायै विद्महे विष्णुनेकेन धीमहि।
तन्नो धरा प्रचोदयात् ॥१४

अब दन्ती गायत्री बतलाते हैं-"तत्पुरुषाय विद्महे, वक्र तुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ति: प्रचोदयात्" ॥८॥ स्कन्द गायत्री यह है-"महासेनाय विद्महे। वाग्विशुद्धाय धीमहि। तन्नः स्कन्दः प्रचोदयात्" अर्थ तो सभी गायत्रियों का समान ही होता है। केवल देवता के नाम का ही भेद होता है ॥६॥ वृष गायत्री यह है-'तीक्ष्ण शृङ्गाय विद्महे, वेद पादाय धीमहि। तन्नो वृष: प्रचोदयात्"। इसके अनन्तर नन्दी गायत्री है—"हरिवक्त्राय विद्महे। रुद्र वक्त्राय धीमहि। तन्नो नन्दी प्रचोदयात्" इसके उपरान्त विष्णु गायत्री है-"नारायणाय विद्महे। वासुदेवाय धी-

महि । तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्" । प्रत्येक गायत्री के तीन भाग होते हैं । इनमे जिस देवता का नाम है उसके आगे चतुर्थी विभक्ति होती है और जानते हैं–ध्यान करते हैं और प्रेरणा करो-ये सब मे होता है ।।१० ।।११।।१२।। लक्ष्मी गायत्री यह है-"महाम्बिकायै विद्महे । कर्म सिद्धयै च धीमहि । तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्" । अब यह धरा गायत्री है–"समुद्धृतायै विद्महे । विष्णुनैकेन धीमहि । तन्नो धरा प्रचोदयात्" ।।१३-१४।।

वैनतेयाय विद्महे सुवर्णपक्षाय धीमहि ।
तन्नो गरुडः प्रचोदयात् ।।१५
पद्मोद्भवाय विद्महे वेदवक्त्राय धीमहि ।
तन्नः स्रष्टा प्रचोदयात् ।।१६
शिवास्यजायै विद्महे देवरूपायै धीमहि ।
तन्नो वाचा प्रचोदयात् । १७
देवराजाय विद्महे वज्रहस्ताय धीमहि ।
तन्नः शक्रः प्रचोदयात् ।।१८
रुद्रनेत्राय विद्महे शक्तिहस्ताय धीमहि ।
तन्नो वह्निः प्रचोदयात् ।।१६
वैवस्वताय विद्महे दंडहस्ताय धीमहि ।
तन्नो यमः प्रचोदयात् ।।२०
निशाचराय विद्महे खड्गहस्ताय धीमहि ।
तन्नो निर्ऋति प्रचोदयात् ।।२१

इसके अनन्तर गरुड गायत्री बताते हैं—"वैनतेयाय विद्महे । सुवर्णपक्षाय धीमहि । तन्नो गरुड प्रचोदयात्" ।।१५।। स्रष्टा गायत्री यह है— "पद्मोद्भवाय विद्महे । वेद वक्त्राय धीमहि । तन्नः स्रष्टा प्रचोदयात्" । ।।१६।। अब वाचा गायत्री है-"शिवस्यजायै विद्महे । देव रूपायै धीमहि । तन्नो वाचा प्रचोदयात्" ।।१७।। शक्र अर्थात् इन्द्र गायत्री है-"देवराजाय विद्महे । *वज्र हस्ताय धीमहि । तन्नः शक्रः प्रचोदयात्" ।।१८।। अब वह्नि* गायत्री यह है-"रुद्रनेत्राय विद्महे । शक्ति हस्ताय धीमहि । तन्नो वह्निः प्रचोदयात्" । ।।१९।। इसके पश्चात् यम गायत्री यह है-' वैवस्वताय वि-

ग्रहे । दण्ड हस्ताय धीमहि । तन्नो यमः प्रचोदयात्" ॥२०॥ अब निर्ऋ-ति गायत्री बताई जाती है–"निशाचराय विद्महे । खड्ग हस्ताय धीमहि। तन्नो निर्ऋतिः प्रचोदयात्" ॥२१॥

युद्धहस्ताय विद्महे पाशहस्ताय धीमहि ।
तन्नो वरुणः प्रचोदयात् ॥२२
सर्वप्राणाय विद्महे यष्टिहस्ताय धीमहि ।
तन्नो वायुः प्रचोदयात् ॥२३
यक्षेश्वराय विद्महे गदाहस्ताय धीमहि ।
तन्नो यक्षः प्रचोदयात् ॥२४
सर्वेश्वराय विद्महे शूलहस्ताय धीमहि ।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥२५
कात्यायन्यै विद्महे कन्याकुमार्यै धीमहि ।
तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् ॥२६
एवं प्रभिद्य गायत्री तत्तदेवानुरूपतः ।
पूजयेत् स्थापयेत्तेषामासनं प्रणवं स्मृतम् ॥२७
अथवा विष्णुमतुल सूक्तेन पुरुषेण वा ।
विष्णुं चैव महाविष्णुं सदाविष्णुमनुक्रमात् ॥२८

यह वरुण गायत्री है–"शुद्धहस्ताय विद्महे । पाश हस्ताय धीमहि । तन्नो वरुणः प्रचोदयात्" अब वायु गायत्री बतलाई जाती है–'सर्व प्राणाय विद्महे । यष्टि हस्ताय धीमहि । तन्नो वायुः प्रचोदयात्" ॥२२॥ ॥२३॥ इसके अनन्तर यक्ष गायत्री है—"यक्षेश्वराय विद्महे। गदा हस्ताय धीमहि । तन्नो यक्षः प्रचोदयात्" । ॥२४॥ रुद्र गायत्री यह है—"सर्वेश्वराय विद्महे । शूल हस्ताय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्" ॥२५॥ इसके पश्चात् दुर्गा गायत्री बताई जाती है–'कात्यायन्यै विद्महे । कन्या कुमार्यै धीमहि । तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्" । ॥२६॥ इस प्रकार से तत्तद् देव के अनुरूप गायत्री की भिन्नता करके उन देवों के लिये प्रणव का आसन कहा गया है । उनकी स्थापना करे और फिर पूजन करना चाहिए ॥२७॥ अथवा अतुल विष्णु का पुरुष सूक्त से और अनुक्रम से विष्णु-

महाविष्णु और सदाविष्णु को स्थापित करे ॥२८॥

स्थापयेद्देवगायत्र्या परिकल्प्य विधानतः ।
वासुदेवः प्रधानस्तु ततः संकर्षणः स्वयम् ॥२९
प्रद्युम्नो ह्यनिरुद्धश्च मूर्तिभेदास्तु वै प्रभोः ।
बहूनि विविधानीह तस्य शापोद्भवानि च ॥३०
सर्वावर्तेषु रूपाणि जगतां च हिताय वै ।
मत्स्यः कूर्मोऽथ वाराहो नारसिंहोऽथ वामनः ॥३१
रामो रामश्च कृष्णश्च बौद्धः कल्की तथैव च ।
तथान्यानि च देवस्य हरेः शापोद्भवानि च ॥३२
तेषामपि च गायत्री कृत्वा स्थाप्य च पूजयेत् ।
गुह्यानि देवदेवस्य हरेर्नारायणस्य च ॥३३
विज्ञानानि च यन्त्राणि मंत्रोपनिषदानि च ।
पंच ब्रह्मांगजानीह पंचभूतमयानि च ॥३४
नमो नारायणायेति मंत्रः परमशोभनः ।
हरेरष्टाक्षराणीह प्रणवेन समासतः ॥३५
ओं नमो वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च ।
प्रद्युम्नाय प्रधानाय अनिरुद्धाय वै नमः ॥३६

देव गायत्री से परि कल्पन करके विधान से स्थापना करे । विष्णवादि व्यूह में वासुदेव प्रधान है । इसके पश्चात् स्वयं सङ्कर्षण हैं तथा प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये सब प्रभु के ही मूर्त्ति भेद हैं । इस संसार में शाप से उत्पन्न होने वाले अनेक रूप हैं ॥२९॥३०॥ समस्त कृत युग आदि आवर्त्तों में इनके ये स्वरूप जगतों के हित के ही लिये हैं। भगवान् विविध स्वरूपों में ही मत्स्य-कूर्म-वराह-नारसिंह वामन-राम-परशुराम-बलराम-कृष्ण-बौद्ध और कल्की ये रूप हैं । तथा देव हरि के इनके अतिरिक्त भी शापोद्भव रूप हैं ॥३१॥३२॥ उनकी भी गायत्री की कल्पना करके स्थापना तथा उनकी पूजा करनी चाहिए । देवों के देव हरि नारायण के विज्ञान यन्त्र और मन्त्रोपनिषद् अत्यन्त गुह्य हैं । जो प्रसिद्ध हैं वे पाँच ब्रह्माङ्गज अर्थात् सद्योजातादि स्वरूप हैं और पाँच पार्थिवादि

त्र हैं। इनके द्वारा स्थापन करके पूजन करे ॥३३॥३४॥ अब नारायण आदि मुख्य मन्त्रों को बताते हैं– 'नमो नारायणाय"—यह नारायण का परम शोभन मन्त्र है। प्रणव के सहित हरि का अष्टाक्षरीय मन्त्र होता है–'ओम् नमो वासुदेवाय"–इसी प्रकार से "ओम् नमः"–यह जोडकर सङ्कर्षणाय-प्रद्युम्नाय-प्रधानाय अनिरुद्धाय-इन शब्दों से भी मन्त्रों की रचना होती है ॥३५॥३६॥

एवमेतेन मन्त्रेण स्थापयेत्परमेश्वरम् ।
चिह्नानि यानि देवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः ॥३७
प्रतिष्ठा चैव पूजा च लिङ्गस्यमुनिसत्तमा ।
रत्नविन्यासस हितं कौतुकं नि हरेरपि ॥३८
अचले कारयेत्सर्वं चलेष्वेव विधानतः ।
तन्नेत्रोन्मीलनं कुर्यान्नेत्रमन्त्रेण सुव्रता ॥३९
ग्रामप्रदक्षिणं चैव आरामस्य पुरस्य च ।
जलाधिवासनं चैव पूर्ववत्परिकीर्तितम् ॥४०
पुंडमण्डपनिर्माणं शयनं च विधीयते ।
कुर्यात् नवाग्निभागेन नवकुण्डे यथाविधि ॥४१
अथवा पञ्चकुण्डेषु प्रधाने केवलेऽथ वा ।
प्रतिष्ठा कथिता दिव्या पारंपर्यक्रमागता ॥४२
शिलादिमयानां चित्रानां चित्राभासस्य वा पुनः ।
जलाधिवासनं प्रोक्तं रूपेऽस्य प्रकीर्तितम् ॥४३

चाहिए ॥४०॥ कुण्ड और मण्डप की रचना तथा शयन का विधान करे। नौ कुण्डो नौ अग्नि के भाग से हवन यथा विधि करे ॥४१॥ अथवा पाँच कुण्डों में ही केवल प्रधान मे परम्परा से समागत दिव्य प्रतिष्ठा कही गई है ॥४२॥ शिलोद्भव जो पाषाण मूर्तियाँ होती है उनका शक्ताशक्त विवेक के द्वारा जल में अधिवास आदि किया जाता है। जो चिन्मयी मूर्तियाँ हैं उनका जलाधिवास नही बताया गया है। वृषेन्द्र का तो जलाधिवासन निश्चय ही कहा गया है ॥४३॥

प्रासादस्य प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठा परिकीर्तिता।
प्रासादांगस्य सर्वस्य यथांगानां तनोरिव ॥४४
वृषाग्निमातृविघ्नेशकुमारानपि यत्नतः।
श्रेष्ठां दुर्गा तथा चंडी गायत्र्या वै यथाविधि ॥४५
प्रागाद्यं स्थापयेच्छंभोरक्षावरणमुत्तमम्।
लोकपालगणेशाद्यानपि शभोः प्रविन्यसेत् ॥४६
उमा चडी च नंदी च महाकालो महामुनिः।
विघ्नेश्वरो मह भृङ्गी स्कदः सौम्यादितः क्रमात् ॥४७
इन्द्रादीन्स्वेपु स्थानेपु ब्रह्माणं च जनार्दनम्।
स्थापयेच्चैव यत्नेन क्षेत्रेश वंशगोचरे ॥४८
सिंहासने ह्यनंतादीन् विद्येशामपि च क्रमात्।
स्थापयेत्प्रणवेनैव गुह्यांगादीनि पंकजे ॥४९
एवं संक्षेपतः प्रोक्तं चलस्थानमुत्तमम्।
सर्वेषामपि देवाना देवीनां च विशेषतः ॥५०

अब देव प्रासाद की प्रतिष्ठा की विधि के विषय मे बताया जाता है कि प्रासाद की प्रतिष्ठा तो कीर्तित कर दी गई है। जिस तरह इस शरीर के अङ्ग होते हैं उसी भाँति प्रासाद के भी अङ्गों की भी सब की प्रतिष्ठा आदि की जाती है ॥४४॥ अब आठ आवरण देवो के विषय मे कहते हैं कि वृषाग्नि मातृ विघ्नेश और कुमार आदि का तथा श्रेष्ठ दुर्गा और चण्डी का गायत्री मन्त्र के द्वारा विधि पूर्वक विन्यास एवं स्थापना आदि करने चाहिए ॥४५॥ शम्भु के लोकपाल-रुद्रगण गणेशादि प्रमथगण

स्वादियों का जो कि परमोत्तम आठ आवरण है प्रागाद्य विन्यास तथा स्थापन करना चाहिए ॥४६॥ उमा चण्डी-नन्दी-महाकाल-महामुनि-विघ्नेश्वर-महाभृङ्गी स्कन्द इनका उत्तर दिशा आदि के क्रम से विन्यास करना चाहिए ॥४७॥ अपने-अपने स्थानों में इन्द्र आदि का तथा ब्रह्मा और जनार्दन एवं क्षेत्रपाल का ईशान दिग्भाग में यत्न पूर्वक स्थापन करे ॥४८॥ सिंहासन पर अनन्त आदि की और क्रम से वागीश्वरी की और पद्म में गुरुगन्द धर्मादि को प्रणव के ही द्वारा स्थापना करे। इस प्रकार से अति संक्षेप से चल बिम्बों की स्थापना-विधि बतादी गई है। इसी तरह से समाज देवों तथा विशेष करके देवियों की स्थापना की जाया करती है ॥५०॥

॥ १००—अघोर रूपी शिव की प्रतिष्ठा ॥

अघोरेशस्य माहात्म्यं भवता कथित पुरा ।
पूजा प्रतिष्ठां देवस्य भगवन्वक्तुमर्हसि ॥१
अघोरेशाय मुखेन विधिवत्तु विशेषतः ।
प्रतिष्ठा लिंगविधिना नान्यथा मुनिपुंगवाः ॥२
तथाग्निपूजा यं कुर्याद्यथा पूजा तथैव च ।
स्नानं वा तर्पणं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥३
[illegible] अवगंतव्यो [illegible] ।
[illegible] । न संदेह [illegible] ॥४
इदं [illegible] मुनिदः ।
सहस्र वा महाभूतिः [illegible] ॥५

को बताया जाता है। ऋषियों ने कहा—हे सूतजी, आपने पहिले अघोर शिव की महिमा बतलाई थी हे भगवन् ! अब उन अघोर रूपी देव शिव की पूजा की पद्धति तथा प्रतिष्ठा के बता देने की कृपा कीजिए ॥१॥ सूतजी ने कहा हे मुनिश्रेष्ठो ! हृदयादि अङ्गों से युक्त अघोर के द्वारा विधिवत् जिस प्रकार लिङ्ग की प्रतिष्ठा और पूजा होती है उसी विशेष प्रकार से यह भी की जाती है और अन्य इसका कोई विशेष प्रकार नहीं है ॥२॥ जैसे लिङ्गादि पूजा है वैसे ही अग्नि मे पूजा होती है। उसे निश्चय रूप से करना चाहिए। एक सहस्र या इसका अर्ध भाग अथवा अष्टोत्तर शत मधु-दधि और घृत से युक्त तिलों के द्वारा होम करना चाहिए। घृत-सक्तु (सतुआ) और मधु के द्वारा हवन सम्पूर्ण दुःखों का मिटा देने वाला होता है ॥२॥३। ४॥ यह हो समस्त व्याधियों के नाश करने वाला होता है। तिलों के द्वारा किया हुआ होम भूति (वैभव) के प्रदान करने वाला होता है। एक सहस्र अघोर मन्त्र के जाप से महा विभूति की प्राप्ति होती है और एक शत के जप से व्याधि का नाश होता है। ॥५॥ अघोर मन्त्र के जप से सम्पूर्ण प्रकार के दुःखों से छुटकारा हो जाया करता है-इसमे कुछ भी संशय नहीं है। तीनों कालों मे अष्टोत्तर शत ही विधि के सहित जप करना चाहिए ॥६॥ अष्टोत्तर सहस्र जप से छै मास मे राज्य मण्डलियों की भी सिद्धियाँ होती हैं-इसमे तनिक भी सन्देह नहीं है ॥७॥

सहस्रेण ज्वरो याति क्षीरेण च जुहोति यम् ।
त्रिकाल मासमेकं तु सहस्रं जुहुयात्पयः ॥८
मासेन सिद्धयते तस्य महासौभाग्यमुत्तमम् ।
सिद्धयते चाब्दहोमेन क्षौद्राज्यदधिसंयुतम् ॥६
यवक्षीराज्यहोमेन जातितडुलकेन वा ।
प्रीयेत भगवानीशो ह्यघोरः परमेश्वरः ॥१०
दध्ना पुष्टिर्नृपाणां च क्षीरहोमेन शांतिकम् ।
षण्मासं तु घृतं हुत्वा सर्वव्याधिविनाशनम् ॥११
राजयक्ष्मा तिलैर्होमान्नश्यते वत्सरेण तु ।

यवहोमेन चायुष्य घृतेन च जयस्तदा ॥१२

जिस उद्देश्य का लेकर क्षीर से हवन करे तो एक सहस्र आहुतियो स ज्वर चला जाता है। तीनो कालो मे एक मास पर्यन्त एक सहस्र दूध की आहुतियाँ देनी चाहिए ॥८॥ एक मास मे उसको महान् उत्तम सौभाग्य की सिद्धि हो जाती है। मधु घृत और दधि से युक्त एक वर्ष पर्यन्त होम करे अथवा जो दुग्ध और घृत से किम्वा जातिपुष्प और तण्डुलों से हवन करे तो भगवान् ईश परमेश्वर अघोर परम प्रसन्न हो जाते हैं ॥९॥ ॥१०॥ दही से नृपो की पुष्टि होती है और क्षीर के होम से परम शान्ति का लाभ होता है और छै मास तक घृत का हवन करने से समस्त प्रकार की व्याधियो का विनाश हो जाता है ॥११॥ राजयक्ष्मा की भयानक बीमारी भी एक वर्ष तक तिलो के द्वारा हवन करने से नष्ट हो जाया करती है। यवो के होम से आयु की वृद्धि होती है तथा घृत के होम से सर्वदा एव सर्वत्र जय की प्राप्ति हुआ करती है ॥१२॥

सर्वकुष्ठक्षयार्थं च मधुनाक्तैश्च तडुलै ।
जुहुयादयुत नित्य षण्मासान्नियत. सदा ॥१३
आज्य क्षीर मधुश्चैव मधुरत्रयमुच्यते।
समस्त तुष्यते तस्य नाशयेद्व भगदरम् । १४
केवल घृतहोमेन सर्वरोगक्षय स्मृत ।
सर्वव्याधि र ष्ठान स्थापन विधिनार्चनम् ॥१५
एव सक्षेपत प्रोक्तमघो रस्य महात्मन ।
प्रतिष्ठा यजन सर्वं नदिना कथित पुरा ॥१६
ब्रह्मपुत्राय शिष्याय तेन व्यासाय सुव्रता ॥१७

समस्त प्रकार के कुष्ठो के विनाश करने के लिये मधु से युक्त तण्डुलो से नित्यप्रति नियत होकर छै मास तक दस सहस्र आहुतियाँ देवे ॥१३॥ घृत क्षीर और मधु इन तीनो का नाम मधुर त्रय कहा जाता है। इसके द्वारा यजन करने वाले व्यक्ति से समस्त विश्व परम तुष्टि को प्राप्त होता है। यह मधुर त्रय भगन्दर रोग को नाश कर देता है ॥१४॥ केवल — के होम करने से ही समस्त रोगो का क्षय हो जाता है। सब प्रकार

व्याधियों का नाश स्नान-स्थापन और विधिपूर्वक अर्चन करने से होता है ॥१५॥ इस प्रकार से महात्मा अघोर की प्रतिष्ठा तथा यजार्चना जैसी कि पहिले नन्दी ने कही थी मैंने आपको बताई गई है। हे सुव्रतो ! नन्दी ने ब्रह्मा के पुत्र शिष्य व्यास को बताई थी। ॥१७॥

॥ १०१—अघोरेश-आराधन निग्रह ॥

निग्रहः कथितस्तेन शिववक्त्रेण शूलिना ।
कृतापराधिनां तं तु वक्तुमर्हसि सुव्रत ॥१
त्वया न विदितं नास्ति लौकिकं वैदिकं तथा ।
श्रौतं स्मार्तं महाभाग रोमहर्षण सुव्रत ॥२
पुरा भृगुसुतेनोक्तो हिरण्याक्षाय सुव्रता ।
निग्रहोऽघोरशिष्येण शुक्रेणाक्षयतेजसा ॥३
तस्य प्रसादाद्दैत्येन्द्रो हिरण्याक्ष प्रतापवान् ।
त्रैलोक्यमखिलं जित्वा सदेवासुरमानुषम् ॥४
उत्पाद्य पुत्र गणप चान्धकं चारुविक्रमम् ।
वराह लोके देवेन वराहेण निषूदित ।५
स्त्रीबाधा बालबाधा च गवामपि विशेषतः ।
कुर्वतो नास्ति विजयो मार्गणानेन भूतले ॥६
तेन दैत्येन सा देवी धरा नीता रसातलम् ।
तेनाघोरेण देवेन निष्फलो निग्रह कृतः ॥७

इस अध्याय मे भगवान् अघोरेश के आराधन से शुक्र प्रोक्त निग्रह विधि का निरूपण किया जाता है। ऋषियो ने कहा—शिववक्त्र शूली के द्वारा आपने निग्रह तो वर्णित कर दिया है। अब आप कृपा करके कृतापराधियो के निग्रह की विधि को बताने के योग्य होते हैं। हे सुव्रत रोमहर्षण ! हे महान् भाग वाले ! लौकिक वैदिक और स्मार्त्त आपको ज्ञात न हो-ऐसा तो है ही नही अर्थात् सभी कुछ भली-भाँति जानते हैं। सूतजी ने कहा—हे सुव्रतो ! पहिले भृगु सुत ने इसे हिरण्याक्ष को बताया था क्योकि अघोरेश भगवान् के शुक्राचार्य परम शिष्य थे और अक्षय तेज

वाले थे ॥१॥२॥३॥ उसी के प्रसाद का यह प्रभाव था कि दैत्येन्द्र परम प्रतापी हिरण्याक्ष सम्पूर्ण त्रैलोक्य को जिससे देव असुर और मनुष्य सभी थे जीत लिया था। वह चारु विक्रम वाले गणप अन्धक पुत्र को उत्पन्न करके लोक में सुशोभित हुआ था। अन्त मे भगवान् वराह देव के द्वारा मारा गया था ॥४॥५॥ इस निग्रह विधि मे जो बाधक होते हैं उन्हे बतलाते हैं-इसमे तीन बाधाऐं हैं स्त्री बाधा, बाल बाधा और विशेष करके गो बाधा हुआ करती हैं। इस भूतल इनको करने वाले का विजय नही होता है और इसी कारण से यह हिरण्याक्ष मारा गया था ॥६॥ उस दैत्य ने देवी धरा को पाताल मे पहुँचा दिया था। अतएव उस अघोर देव ने यह निग्रह निष्फल कर दिया था ॥७॥

सवत्सर सहस्राते वराहेण च सूदित ।
तस्मादघोरसिद्ध्यर्थं ब्रह्मणान्नैव बाधयेत् ॥८
स्त्रीणामपि विशेषेण गवामपि न कारयेत् ।
गुह्याद्गुह्यतमं गोप्यमतिगुह्यं वदामि व· ॥९
आततायिनमुद्दिश्य कर्तव्यं नृपसत्तमे ।
ब्रह्मणस्यो न कर्तव्यं स्वराष्ट्रगस्य वा पुन. ॥१०
अतीव दुर्जये प्राप्ते वने सर्वं निषूदिन ।
अधर्मयुद्धे सम्प्राप्ते कुर्याद्धर्ममनुत्तमम् ॥११
अघृणेनैव [illegible] घृणेनैव कारयेत् ।
कृतमात्रे न सन्देहो निग्रह [illegible] ॥१२
लक्षमेकं [illegible] अघोर [illegible] ।
दशांश विधिना हुत्वा तिलेन द्विजसत्तमा ॥१३
सपूज्य लक्षपुष्पेण सितेन विधिपूर्वकम् ।
ब्राह्मणेभ्यश्च [illegible] दक्षिणा [illegible] ॥१४

एक सहस्र वर्ष के पश्चात् भगवान् वराह ने उसका वध किया था। इसलिए अघोर की सिद्धि करने में ब्राह्मणों को कभी बाधा नहीं पहुँचानी चाहिए। विशेष करके स्त्रियों को और गौओं को भी बाधित नहीं करना चाहिए। मैं तुमको यह परम गोपनीय से भी अधिक गुह्य बात बता

रहा है ॥८॥९॥ इसे राजाओं के द्वारा जो आततायी अर्थात् मारने को उद्यत हो उसी का उद्देश्य लेकर करना चाहिए। ब्राह्मणों के लिये और अपने राष्ट्र के स्वामी के लिये इसे कभी नहीं करना चाहिए ॥१०॥ इस परम उत्तम विधि को उसी समय करे जब कि यह देखने कि अपना ही दुर्जय प्राप्त हो गया है और सम्पूर्ण बल का क्षय हो गया है तथा अधर्म युद्ध सम्प्राप्त हो गया है ॥११॥ इस विधि को क्रूर के द्वारा ही करना चाहिए और किसी क्रूर ब्राह्मण के द्वारा ही कराना भी चाहिए क्योंकि यह एक अनाग्न कृत्य ही होता है। इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि इसके करने मात्र से ही निग्रह समुत्पन्न हो जाया करता है ॥१२॥ हे द्विजसत्तमो! इस घोर रूप वाले अघोर मन्त्र का एक लक्ष जाप करके फिर उस जापक पूरा को जा के पश्चात् विधिपूर्वक तिलों के द्वारा जप संख्या का दशांश भाग का हवन करना चाहिए ॥१३॥ इसके अनन्तर बाण लिङ्ग में अथवा वह्नि में दक्षिणा मूर्ति का आश्रित होकर [illegible] एक लक्ष पुष्प से विधि के सहित पूजन करने से मन्त्र सिद्ध होता है ॥१४॥

ब्राह्मण इसे करे। शिव का भक्त ब्राह्मण केवल गुरु के प्रसाद आदि से मन्त्र सिद्ध धीमान् को चाहिए इस विधि का उपयोग अपने लिये या राजा के उपकारार्थ ही करे। अब निग्रह का विधान बतलाते हैं पूर्वादि दिशा के स्वामियों के अन्त तक शूलाष्टक का न्यास करे। किस प्रकार का शूलाष्टक होना चाहिए—इसके विषय में कहते हैं वह तीन शिखा वाला शूल होना चाहिए और चौबीस जिसके अग्र भागों में शिखाएँ होनी चाहिए। फिर वीरासन आदि के द्वारा अपने शरीर को सकुचित करके भयङ्कर विग्रह सर्वनाश कर शरीर बनाकर ही प्रलयकारक अघोरेश का ध्यान करे और समस्त कर्म करे करावे। कालाग्नि कोटि के समान ही अपने भी शरीर की भावना करनी चाहिए ॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥

शूलं कपाल पाशं च दडं चैव शरासनम् ।
बाण डमरुकं खड्गमष्टायुधमनुक्रम त् ॥२०
अष्टहस्तश्च वरदो नीलकठो दिगबर. ।
पचतत्त्वसमारूढो ह्यर्धचद्रधर प्रभु ॥२१
दष्ट्राकरालवदनो रौद्रदृष्टिर्भयकरः ।
हुफट्कारमहाशब्दशब्दिताखिलदिङ्मुख ॥२२
त्रिनेत्र नागपाशेन सुबद्धमुकुट स्वयम् ।
सर्वाभरणसपन्न प्रेतभस्मावगुंठितम् ॥२३
भूतैं प्रेतैं पिशाचैश्च डाकिनाभिश्च राक्षसै ।
सवृत गजकृत्त्या च सर्पभूषणभूषितम् ॥२४
वृश्चिकाभरण देव नीलनीरदनिस्वनम् ।
नीलाजन द्रिपकाश सिंहचर्मोत्तरायकम् ॥२५
ध्यायेदेवमघोरेश घ रघोरतर शिवम् ।
षट्त्रिंशदुक्तमानाभि प्राणायामेन सुव्र ॥ ॥ ६
महामुद्रासम युक्त सर्वकर्माणि कारयेत् ।
सिद्धमंत्रश्चितानौ या प्रेतस्थाने यथाविधि ॥२७

अब अघोरेश प्रभु का ध्यान क्रम बताया जाता है—अघोरेश प्रभु के आठ हाथ हैं उनमें क्रम से शूल-कपाल पाश-दण्ड शरासन-बाण-डमरु

और खड्ग धारण किये हुए हैं। अष्ट हस्त वरदान प्रदान करने की मुद्रा मे विराजमान हैं। प्रभु का कण्ठ नील वर्ण का है और आप स्वयं दिगम्बर हैं। पांच तत्वों पर समारूढ हैं। नन्दिकेश्वर में पृथिव्यादि पाँचों तत्त्व विद्यमान हैं। मस्तक पर अर्ध चन्द्र धारण किये हुए हैं ।।२०।। ।।२१।। दष्ट्राओं से विकराल मुख वाले हैं। रौद्र दृष्टि से युक्त अत्यन्त भयङ्कर स्वरूप वाले हैं। हुङ्कार और फट् इन महान् शब्दों के द्वारा समस्त दिशाओं के मुखों को शब्दायमान करने वाले हैं ।।२२।। तीन नेत्रों से युक्त हैं और नाग रूपी पाश से स्वयं अपना मुकुट बाँधे हुए हैं। सम्पूर्ण आभरणों से समन्वित और श्मशान की भस्म से अवगुण्ठित शरीर वाला आपका समस्त शरीर है ।।२३।। उनके चारों ओर प्रेत भूत-पिशाच डाकिनी और राक्षस घिरे हुए हैं। गज चर्म धारण किये हुए तथा सर्पों के भूषणों से भूषित वपु वाले हैं ।।२४।। बिच्छुओं के आभरण धारण करने वाले नील नीरद के समान ध्वनि वाले तथा नीलाञ्जन गिरि के सदृश और सिंह चर्म का उत्तरीयक धारण करने वाले हैं। ऐसे घोर से भी महाघोर स्वरूप वाले प्रभु अघोरेश शिव का ध्यान करना चाहिए, हे सुव्रतो! पूरक कुम्भक और रेचक के भेद से छत्तीस मात्रा से समन्वित प्राणायाम के द्वारा भगवान् का ध्यान करना चाहिए ।।२५।।२६।। महा मुद्रा से समायुक्त होकर सब कर्म करने कराने चाहिए। चिन्ता की अग्नि में अथवा प्रेतों के स्थान श्मशान में विधि पूर्वक करने से यह मन्त्र सिद्ध होता है ।।२७।

स्थापयेन्मध्यदेशे तु ऐन्द्रे याम्ये च वारुणे।
कावेर्यां विधिवत्कृत्वा होमकुण्डानि शास्त्रतः ।।२८
आचार्यो मध्यकुण्डे तु साधकाश्च दिशासु च।
परिस्तीर्य विलोमेन पूर्ववच्छूलसम्भृत ।।२९
कालाग्निपीठमध्यस्थं स्वयं शिष्यैश्च तावृशैः।
ध्यात्वा घोरमघोरेशं द्वात्रिंशाक्षरमद्भुतम् ।।३०
बिभीतकेन वै कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः।
पुटे न्यस्य नृपेन्द्रस्य शत्रुमगारकेण तु ।।३१

कुंडस्याधः खनेच्छत्रुं ब्राह्मणः क्रोधमूर्च्छितः ।
अधोमुखोर्ध्वपादं तु सर्वकुंडेषु यत्नतः ॥३२
श्मशानांगारमानीय तुषेण सह दाहयेत् ।
तत्राग्नि स्थापयेत्तूष्णी ब्रह्मचर्यपरायणः ॥३३
मायूरास्त्रेण नाभ्यां तु ज्वलन दीपयेत्ततः ।
कचुक तुषसंयुक्ते. कार्पासास्थिसमन्विते. ॥३४
रक्तवस्त्रमं मिश्रं होमद्रव्यंविशेषतः ।
·हस्तयंत्रोद्भवैस्तैले· सह होमं तु कारयेत् ॥३५

अब पंच कुण्डो के विधान को बतलाते हैं—आचार्य को मध्य कुण्ड मे और साधक अन्य ऋत्विजो को चारो दिशाओ के कुण्डों मे हवन करना चाहिए। पाँचो कुण्डो मे मध्य देश मे और ऐन्द्र-वारुण याम्य तथा कौवेरी दिशाओ मे चार कुण्ड विधि पूर्वक शास्त्र की पद्धति के अनुसार निर्मित करावे ॥२८॥ प्रातिलोम्य क्रम से पूर्व की भाँति शूलो से सवेष्टित होकर स्थिति होवे ॥२९॥ कालाग्नि पीठ के मध्य मे स्थित होकर स्वयं और उसी प्रकार के शिष्यो से सयुत द्वात्रिंशदक्षरो से युक्त तेतीस वर्णों वाले घोर अघोरेश का ध्यान करे ॥३०॥ अब शत्रु के निग्रह को कैसे करे-इसका प्रकार बताया जाता है—विभीतक (भिलावा) की लकडी से नृपेन्द्र के शत्रु की प्रतिमा बारह अङ्गुल प्रमाण वाली बनवावे और उसे मन्त्रारक के द्वारा पीठ मे विन्यस्त करे ॥३१॥ इसके पश्चात् क्रोध से मूर्च्छित होकर ब्राह्मण कुण्ड के नीचे शत्रु का खनन करे। इस तरह समस्त कुण्डो मे यत्न पूर्वक नीचे की ओर मुख तथा ऊपर की ओर पैर वाला करे ॥३२॥ फिर श्मशान की चिता का अङ्गार लाकर तुषों के साथ उसका दाह कर देवे। वहाँ पर मौन रहते हुए ब्रह्मचर्य मे परायण होकर अग्नि का स्थापित करना चाहिए ॥३३॥ मयूरास्त्र से नाभि मे अग्नि का दीपन करे। रक्त वस्त्र के मध्य मधुर को धारण करके तुषों से युक्त तथा कपास के अस्थि बीजों से समन्वित इस्त यन्त्र से उत्पन्न तैल के साथ निश्चित होम द्रव्यों से हवन करना चाहिए ॥३४॥३५॥

अष्टोत्तरसहस्रं तु होमयेदनुपूर्वशः ।

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां समारभ्य यथाक्रमम् ॥३६
अष्टम्यंत तथांगारमंडलस्थानवर्जितः ।
एवं कृते नृपेंद्रस्य शत्रवः कुलजैः सह ॥३७
सर्वदुःखसमोपेताः प्रयाति यमसादनम् ।
मंत्रेणानेन चादाय नृकपाले नख तथा ॥३८
केशं नृणां तथागारं तुषं कंचुकमेव च ।
चीरच्छटां राजधूली गृहसमार्जनस्य वा । ३९
विषसर्पस्य दंतानि वृषदंतानि यानि तु ।
गवां चैव क्रमेणैव व्याघ्रदन्तनखानि च ॥४०
तथा कृष्णमृगाणां च बिडालस्य च पूर्ववत् ।
नकुलस्य च दंतानि वराहस्य विशेषतः ॥४१
दंष्ट्राणि साधयित्वा तु मन्त्रेणानेन सुव्रताः ।
जपेदष्टोत्तरशतं मंत्रं चाघोरमुत्तमम् ॥४२

कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी से आरम्भ करके यथाक्रम अष्टमी पर्यन्त अङ्गार मण्डल के स्थान को वर्जित करने वाले आचार्य को अष्टोत्तर सहस्र आहुतियों द्वारा होम करना चाहिए । ऐसे विधान से करने पर नृपेन्द्र के शत्रु कुलजों के सहित सब तरह के दुःखों से पूर्ण होकर यमसादन का प्रयाण कर जाते हैं । अब दूसरा शत्रु के विनाशन का विधान बतलाया जाता है – इस अघोर मन्त्र से मृत मनुष्य के मस्तक के कपाल में नख-मनुष्यों के केश-अङ्गार तुष कंचुली-वस्त्राञ्चल-राजमार्ग की धूलि-घर के समार्ज की धूलि विष सर्प के दाँत बैल के दाँत वराह की दाढ इन सब को इस मन्त्र से साधित करके उक्त अघोर मन्त्र का अष्टोत्तर शत जाप करे । इन उक्त वस्तुओं के साथ गोदन्त- व्याघ्र के दाँत और नाखून-काले हिरनों के दाँत तथा बिडाल के दाँत नकुल (न्योला) दाँत भी रक्खे । ॥४०॥४१॥४२॥

तत्कपालं नवं क्षेत्रे गृहे वा नगरेऽपि वा ।
प्रेतस्थानेऽपि वा राष्ट्र मृतवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥४३
शत्रोरष्टमराशौ वा परिदिष्टे दिवाकरे ।

सोमे वा परिविष्टे तु मन्त्रेणानेन सुव्रताः ॥४४
स्थाननाशो भवेत्तस्य शत्रोर्नाशश्च जायते ।
शत्रुं राज्ञः समालिख्य गमने समवस्थिते ॥४५
भूतले दर्पणप्रख्ये वितानोपरि शोभिते ।
चतुस्तोरणसयुक्ते दर्भमालासमावृते ॥४६
वेदाध्ययनसंपन्ने राष्ट्रे वृद्धिप्रकाशके ।
दक्षिणेन तु पादेन मूर्ध्नि सताडयेत्स्वयम् ॥४७
एवं कृते नृपेंद्रस्य शत्रुनाशो भविष्यति ।
स्वराष्ट्रपतिमुद्दिश्य यः कुर्यादाभिचारिकम् ॥ ८
स आत्मानं निहत्यैव स्वकुलं नाशयेत्कुधीः ।
तस्मात्स्वराष्ट्रगामार नृपतिं पालयेत्सदा ॥४६
मन्त्रौषधिक्रियाद्यैश्च सर्वयत्नेन सर्वदा ।
एतद्रहस्य कथितं न देयं यस्य कस्यचित् ॥५०

इस पूर्वोक्त कपाल को परिपूर्ण करके शत्रु के क्षेत्रादि मे अष्टम राशि मे सूर्य अथवा चन्द्र के परिविष्ट होने पर अथवा राहु ग्रस्त होने पर गृह-क्षेत्र-नगर-प्रेत स्थान अथवा राष्ट्र मे हे सुव्रतो ! इस मन्त्र से मृत वस्त्र से द्वारा वेष्टित करे ॥४३॥४४॥ उसके स्थान का नाश होता है और शत्रु का नाश भी हो जाता है। अब निग्रह का तीसरा विधान बताते हैं— विजय करने के लिए गमन के सम्प्राप्त होने पर भूतल मे दर्पण प्रख्य-वितान के ऊपर शोभित-चार तोरणों से सयुक्त-दर्भों की माला से समा-वृत-वेदाध्ययन से सम्पन्न और वृद्धि के प्रकाशक राष्ट्र मे दक्षिण पाद से स्वयं नृपति उस शत्रु की लिखित प्रतिमा के मस्तक में सन्ताडना करे ॥४५॥४६॥४७॥ इस प्रकार से करने पर नृपेन्द्र के शत्रु का नाश हो जायगा। जो अपने राष्ट्र के पति का उद्देश्य करके इस तरह इस अभि-चारिक कर्म करेगा तो वह बुरी बुद्धि वाला अपनी ही आत्मा का निहनन करके अपने कुल का नाश करेगा। इसलिये अपने राष्ट्र के रक्षक नृपति का सदा पालन करना चाहिए ॥४८॥४६॥ मन्त्र औषधि और क्रिया आदि से युक्त यह विधान है। इसका परम गोपनीय सर्वदा सभी प्रकार

से रखना चाहिए। मैंने तुमको यह बता दिया है किन्तु इसे जिस किसी चाहे जिसको कभी नहीं बताना चाहिए ।।५०।।

।। १०२—पाराशर वरदान वर्णन ।।

राक्षसो रुधिरो नाम वसिष्ठस्य सुतं पुरा ।।१
शक्ति स भक्षयामास शपते शापात्महानुजं. ।।२
वसिष्ठयाज्यं विप्रेन्द्रास्तदादिश्यैव भूमतिम् ।
कल्मापपाद रुधिरो विश्वामित्रेण चोदित. ।।३
भक्षित. स इति श्रुत्वा वसिष्ठस्तेन रक्षसा ।
शक्ति शक्तिमना श्रेष्ठो भ्रातृभिः सह धर्मवित् ।।४
हा पुत्र पुत्र पुत्रेति क्रंदमाना मुहुर्मुहु. ।
अरुंधत्या सह मुनि पपात भुवि दुःखितः ।।५
नष्टं कुलमिति श्रुत्वा मतुं चक्रे मतिं तदा ।
स्मरन्पुत्रशतं चैव शक्तिज्येष्ठं च शक्तिमन् ।।६
न तं विनाहं जीविष्ये इति निश्चित्य दु.खितः ।।७
आरुह्य मूर्धानमजात्मजोऽसौ तयान्तवान् सर्वविदात्मविद्य ।
धराधरस्यैव तदा धराया पपात पत्न्या सहसाश्रुदृष्टि ।।८

सूतजी ने कहा—प्राचीन काल मे रुधिर नाम वाला एक राक्षस हुआ था। उसने वसिष्ठ मुनि के पुत्र शक्ति का भक्षण कर लिया था। त्रिशङ्कु के यज्ञ निमन्त्रण के अवसर पर विश्वामित्र दत्त शक्ति शाप के कारण सानुज भक्षण किया था। इस कथा का विशेष विवरण बाल्मीकीय रामायण में दिया गया है ।।१।।२।। हे विप्रगण ! उस समय में कल्माष पाद भूपति को वसिष्ठ याज्य न होने में आदेश देकर ही विश्वामित्र ने रुधिर नामक राक्षस को प्रेरणा प्रदान की थी अर्थात् प्रेरित किया था ।।३।। शक्ति धारियों में परम श्रेष्ठ धर्म का ज्ञाता शक्ति अपने भाइयों के सहित उस रुधिर नाम वाले राक्षस के द्वारा भक्षण कर लिया गया है—यह जब वसिष्ठ मुनि ने श्रवण किया था तो वह 'हा पुत्र ! हा पुत्र !"—इस प्रकार से बारम्बार क्रन्दन करने लगे और पुत्र वियोग के

महान् शोक से आविष्ट होकर अरुन्धती के सहित परम दुःखित होते हुए भूमि पर गिर पड़े थे ॥३॥४॥५॥ मेरा सम्पूर्ण कुल ही नष्ट हो गया है—यह सुनकर उस समय में वसिष्ठ मुनि ने मरन का निश्चय किया था। उन्हें बार-बार अपने सौ पुत्रों का स्मरण होता था जिन में शक्ति सबसे ज्येष्ठ था और बहुत ही शक्तिशाली था ॥६॥ वसिष्ठ मुनि ने उस समय अत्यन्त दुःखित होकर यही निश्चय किया था कि मैं उनके बिना जीवित नहीं रहूँगा ॥७॥ ब्रह्मा के मानस पुत्र वसिष्ठ यद्यपि आत्म वेत्ता और सर्व वेत्ता थे तो भी शोकाकुल होकर पर्वत की चोटी पर चढ़कर अपनी आँखों से आँसू बहाते हुए अपनी पत्नी के सहित सहसा पृथ्वी पर गिर पड़े थे ॥८॥

धराधरात्त पतितं धरा तदा दधार तत्रापि विचित्रकण्ठी।
करांबुजाभ्यां कलिलेक्षणा मिनी रुदन्तमादाय रुरोद सा च ॥९
तदा तस्य स्नुषा प्राह पत्नी शक्तेर्महामुनिम्।
वसिष्ठं वदतां श्रेष्ठं रुदन्ती भयविह्वला ॥१०
भगवन्ब्रह्मणश्रेष्ठ तव देहमिदं शुभम्।
पालयस्व विभो द्रष्टुं तव पौत्रं ममात्मजम् ॥११
न त्याज्यं तव विप्रेन्द्र देहमेतत्सुशोभनम्।
गर्भस्थो मम सर्वार्थसाधकः शक्तिजो यतः ॥१२
एवमुक्त्वा च धर्मज्ञा कराभ्यां कमलेक्षणा।
उत्थाप्य श्वशुरं तस्या नेत्रे संमृज्य वारिणा ॥१३
दुःखिताऽपि पतिनाशात् श्वशुरं दुःखितं तदा।
पश्यन्ती च कल्याणी प्रार्थयामास दुःखिताम् ॥१४

उस समय में वसिष्ठ की स्नुषा। पुत्र वधू) शक्ति की पत्नी महामुनि

और वहाँ पर ही करिके समान गमन करने वाली विचित्र कण्ठो ने (पुत्र वधू ने। अपने कर कमलो से रोते हुए उनको पकड लिया था और स्वय भी वह रोने लगी थी ।।६।।१०।।११। फिर उसने कहा—हे विप्रेन्द्र! आपका यह शरीर अत्यन्त शोभन है अतएव इसका त्याग आपको नहीं करना चाहिए क्योंकि मेरे गर्भ मे स्थित शक्ति मेरे पति देव का पुत्र विद्यमान है। वह समस्त अर्थों का साधन करने वाला होगा ।।१२।। इस तरह से कह कर कमल के समान सुन्दर नेत्रो वाली उस पुत्र वधू ने जो कि धर्म के ज्ञान वाली थी, हाथो से श्वशुर (वसिष्ठ) को उठाकर प्रणाम किया था और जल से नेत्रो को धोकर स्वय अत्यन्त दु खित होते हुए भी उस समय मे दु खित श्वशुर की रक्षा करने के लिये अति दु खित कल्याणी अरुन्धती से उसने प्रार्थना की थी ।।१३।।१४।।

स्नुषावाक्य तत श्रुत्वा वसिष्ठोत्थाय भूतलात् ।
सज्ञामवाप्य चालिग्य सा पपात सुदु खिता ।।१५
अरुधती कराभ्या ता सम्पृश्य स्व कुलेक्षणाम् ।
रुरोद मुनिशार्दूलो भार्यया सुतवत्सल. ।।१६
अथ नाम्यबुजे विष्णोर्यथा तस्याश्चतुर्मुख ।
आसीनो गर्भशय्याया कुमार ऋचमाह स ।।१७
ततो निशम्य भगवान्वसिष्ठ ऋचमादरात् ।
केनोक्तमिति सचित्य तदातिष्ठत्समाहितः ।।१८
व्योमागणस्थोथ हरि पुंडरीकनिभेक्षण ।
वसिष्ठमाह विश्वात्मा घृणया स घृणानिधि ।।१६
भो वत्सवत्स विप्रे द्र वसिष्ठ सुतवत्सल ।
तव पौत्रमुखाभोजाद्गेयाद्य विनि सृता ।।२०
मत्समस्तव पौत्रासो शक्तिज शक्तिमान्मुने ।
तस्मादुत्तिष्ठ सत्यस्य शोक ब्रह्मसुतोत्तम ।।२१

अपनी पुत्र वधू के वाक्य का श्रवण कर फिर वसिष्ठ मुनि भूतल से उठ गये थे और होश में आकर अरुन्धती का उन्होंने आलिङ्गन किया था। आँसुओ से भरे हुए नेत्रो वाली अतएव किसी को देखने में असमर्थ

उस अरुन्धती का हाथों से स्पर्श करके फिर अपनी भार्या के सहित वसिष्ठ रुदन करने लगे तथा न देखती हुई वह अरुन्धती भूमि पर गिर पड़ी थी। ॥१५॥१६॥ इसके अनन्तर नाभि कमल अर्थात् अर्णव शायी भगवान् विष्णु की नाभि से समुत्पन्न कमल मे जिस प्रकार से चार मुख वाले ब्रह्मा जी थे उसी भाँति उस वसिष्ठ की पुत्र वधू के गर्भ की शय्या मे समासीन उस कुमार ने वेद की ऋचा बोली थी ॥१७॥ इसके पश्चात् वसिष्ठ महामुनि ने उस ऋचा का श्रवण बहुत ही आदर के साथ किया था और मन मे यह विचार किया था कि यह वेद की ऋचा किसने बोली है और फिर वह समाहित होकर स्थित हो गये थे ॥१८॥ इसके अनन्तर अन्तरिक्ष के आँगन मे स्थित पुण्डरीक के सदृश सुन्दर नेत्रों वाले भगवान् हरि ने जो कि इस सम्पूर्ण विश्व की आत्मा और अनुकम्पा के आगार है कृपा करके वसिष्ठ महा मुनीन्द्र से बोले—॥१६॥ हे वत्स ! हे वसिष्ठ ! तुम तो विप्रो मे परम श्रेष्ठ एवं शिरोमणि हो और अपने पुत्र पर अत्यन्त प्यार करने वाले हो। इस समय तुम्हारे ही गर्भ मे स्थित पौत्र के मुख से यह वेद की ऋचा निकली है ॥२०॥ हे महामुने ! यह शक्ति का आत्मज आपका पौत्र बहुत ही शक्तिशाली है और यह मेरे ही समान है। हे ब्रह्मा के परमोत्तम पुत्र ! इसलिये इस पुत्र मरण से समुत्पन्न शोक का त्याग करके उठ जाओ ।। २ ॥

रुद्रभक्तश्च गर्भस्थो रुद्रपूजापरायणः।
रुद्रदेवप्रभावेण कुलं ते संतरिष्यति ॥२२
एवमुक्त्वा घृणो विप्रं भगवान् पुरुषोत्तमः।
वसिष्ठं मुनिशार्दूलं तत्रैवान्तरधीयत। २३
ततः प्रणम्य शिरसा वसिष्ठो वारिजेक्षणम्।
अदृश्यंस्या महातेजाः पस्पर्शोदरमादरात् ॥२४
हा पुत्र पुत्र पुत्रेति पपात च सुदुःखितः।
ललापारुंधती प्रेक्ष्य तदासौ रुदती द्विजाः ॥२५
स्वपुत्रं च स्मरन् दुःखात्पुनरेह्येहि पुत्रक।
तव पुत्रमिमं दृष्ट्वा भो शक्ते कुलधारणम् ॥२६

तवांतिक गमिष्यामि तव माशा न संशय ।
एवमुक्त्वा रुदन्विप्र आलिग्याऽरुंधती तदा ।।२७
पप त ताडयनीव स्वस्य कुक्षी करण वै ।
प्रदृश्यंती जघानाथ शक्तिजस्यालय शुभा ।।२८
स्वोदर दु खिता भूमौ ललाप च पपात च ।
अरुंधती तदा भीता वसिष्ठश्च महामनि ।।२९
समुत्थाप्य स्नुषा बालामूचतुर्भयविह्वलौ । ३०

यह तुम्हारी पुत्र वधू के गर्भ मे स्थित बालक भगवान् रुद्र देव का परम भक्त है और रुद्र देव की पूजा मे ही सतत तत्पर रहने वाला है। रुद्रदेव के प्रभाव तुम्हारा कुल सन्तीर्ण हो जायगा ।।२२।। इस प्रकार से परम कृपालु पुरुषोत्तम भगवान् विप्र वसिष्ठ से कहकर वहाँ पर अन्तर्ध्यान हो गये थे ।।२३।। इसके अनन्तर वसिष्ठ मुनि ने कमल के सदृश नेत्रों वाले भगवान् विष्णु को प्रणाम शिर से किया था और फिर महान् तेजस्वी मुनि ने परम आदर से अदृश्यन्ती का स्पर्श किया था ।।२४।। फिर "हा पुत्र ! हा पुत्र !"–यह कहते हुए अत्यन्त शोक से दु खित होकर गिर पडे। हे द्विजगण ! उस समय यह रुदन करती हुई अरुन्धती को देखकर बोले–।।२५।। अपने पुत्र का स्मरण करते हुए दु ख से बार बार हे पुत्र ! यहाँ आओ ऐसा कहती हो सो शक्ति के कुल का धारण करने वाले तुम अपने इस पुत्र को देखो। ।।२६।। मैं तुम्हारे ही समीप मे तुम्हारी माता अरुन्धती के साथ आ जाऊंगा–इसमे कुछ भी संशय नहीं है। सूतजी ने कहा–इस प्रकार से कहकर हे विप्र ! उस समय में रुदन करती हुई अरुन्धती का आलिङ्गन किया था ।।२७।। इसके अनन्तर हाथ से अपने कुक्षियों को ताडित करती हुई वह गिर पडी थी। उस शुभा अदृश्यन्ती ने शक्तिज के आलय का हनन किया था ।।२८।। अपने उदर को पीटती हुई वह अत्यन्त दु खित होकर आलाप करने लगी और फिर भूमि मे गिर पडी थी। उस समय अरुन्धती बहुत भयभीत हुई और उसने तथा महान् मति वाले वसिष्ठ मुनि ने अपनी पुत्र वधू को उठाकर भय से विह्वल होकर दोनो ने उस बाला से कहा था ।।२९।।३०।।

विचारमुग्धे तव गर्भमंडलं करांबुजाभ्या विनिहत्य दुर्लभम् ।
कुल वसिष्ठस्य समस्तमप्यहो निहंतुमार्ये कथमुद्यता वद ॥३१
तवात्मजं शक्तिसुतं च दृष्ट्वा चास्वाद्य वक्त्रामृतमार्यसूनोः ।
त्रातुं यतो देहमिमं मुनीद्र. सुनिश्चितः पाहि ततः शरीरम्॥३२
एव स्नुषामुपालभ्य मुनि चारुंधती स्थिता ।
अरुंधती वसिष्ठस्य प्राह चार्तातिविह्वला ॥३३
त्वय्येव जीवित चास्य मुनेर्यत्सुव्रते मम ।
जीवितं रक्ष देहस्य धात्री च कुरु यद्धितम् ॥३४
मया यदि मुनिश्रेष्ठो त्रातुं वै निश्चितं स्वकम् ।
ममाशुभ शुभ देह कथंचित्पालयाम्यहम् ॥३५
भ्रियदु खमह प्रामा ह्यसती नात्र संशयः ।
मुने दु खादहं दग्धा यतः पुत्री मुने तव ॥३६
अहोद्भुत मया दृष्ट दु खपात्री ह्यहं विभो ।
दु खत्राता भव ब्रह्मन्ब्रह्मसूनो जगद्गुरो ॥३७

हे विचार करने मे मुग्धता धारण करने वाली ! तू अपने कर कमलों से अपने इस दुर्लभ गर्भ मण्डल का हनन करके हे आर्य्ये ! वसिष्ठ के समस्त कुल का नाश करने के लिये क्यों उद्यत हो रही है ? यह हमें बतलादे ॥३१॥ शक्ति का पुत्र इस तेरे आत्मज को देखकर और आर्य पुत्र के मुख रूपी अमृत का पान करके मुनीन्द्र मैं इस अपने शरीर की रक्षा करने का निश्चय कर चुका हूं। अतएव तू भी अपने शरीर की रक्षा कर ॥३२॥ सूतजी ने कहा—अरुन्धती ने इस तरह से अपनी स्नुषा अर्थात् पुत्र वधू को उपालम्भ देकर और मुनि वसिष्ठ से कह कर वहाँ पर स्थित हो गई थी। उसने फिर कहा—हे सुव्रते ! इस गर्भ में स्थित बालक का-मुनि वसिष्ठ का और मेरा जीवन तुझ में ही है अर्थात् तेरे ही जीवन के रहने से हम सब का जीवन रह सकता है। अतएव अपने जीवन की रक्षा करो और धात्री जो हित हो उसी को करो ॥३३॥३४॥ अरुन्धती ने कहा—यदि मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ मेरे ही द्वारा अपने देह और जीवन की रक्षा करने को सुनिश्चित हो चुके हैं तो मैं अपने इस शुभ

अथवा असुभ देह की किसी भी प्रकार से रक्षा करूंगी ॥३५॥ मैं अपने परम प्रिय पति के वियोग जन्य दुःख को प्राप्त हो गई हूँ और मैं अमती हूँ–इसमें तनिक भी संशय नहीं है। हे मुनिवर! मैं दुःख से दग्ध हो गई हूँ किन्तु आपकी मैं पुत्री हूँ॥३६॥ हे विभो! मैंने यह अत्यन्त अद्भुत देखा है और मैं दुःख की पात्री हूँ। हे ब्रह्मन्! आप तो ब्रह्मा के पुत्र हैं और इस जगत् के गुरु हैं। आप मेरे दुःख के त्राता बनें॥३७॥

तथापि भर्तृरहिता दीना नारी भवेदिह।
पाहि मां तत्र आर्येन्द्र परिभूता भविष्यति ॥३८
पिता माता च पुत्राश्च पौत्राः श्वशुर एव च।
एते न बांधवाः स्त्रीणां भर्ता बंधुः परा गतिः ॥३९
आत्मनो यद्धि कथितमप्यधर्ममिति पंडितैः।
तदप्यत्र मृषा ह्यासीद्गतः शक्तिरहं स्थिता ॥४०
अहो ममात्र काठिन्य मनसो मुनिपुंगव।
पतिं प्राणसमं त्यक्त्वा स्थिता यत्र क्षणं यतः ॥४१
वसिष्ठाश्वत्थमाश्रित्य ह्यमृता तु यथा लता।
निर्मूलाप्यमृता भर्त्रा त्यक्ता दीना स्थिताप्यहम् ॥४२
स्नुषा वाक्य निशम्यैव वसिष्ठो भार्यया सह।
तदा चक्रे मतिं धीमान् यातु स्वाश्रममाश्रमी ॥४३
कृच्छ्रात्सभार्यो भगवान्वसिष्ठः स्वाश्रमं क्षणात्।
अदृश्यत्या च पुण्यात्मा शविवेश स चिंतयन् ॥४४

इस ससार मे अपने स्वामी से रहित नारी बहुत ही दीन-हुआ करती है तो भी आप मेरी रक्षा करें। हे आर्येन्द्र! परिभूत हो जायगी ॥३८॥ ससार मे स्त्रियों के माता-पिता, पुत्र पौत्र और श्वशुर ये सब बान्धव नहीं हुआ करते हैं। स्त्रियों का एक मात्र पति ही परम बन्धु और परम गति होता है ॥३९॥ पण्डित जनों के द्वारा जो आत्मा का अधर्म कहा गया है वह भी यहाँ पर मिथ्या हो गया था क्योंकि मेरे स्वामी शक्ति तो परलोक प्रवासी हो गये हैं और मैं इस संसार में जीवित स्थित हूँ ॥४०॥ हे मुनियों में परम श्रेष्ठ! अहो! यह भी मेरे

मन की यहाँ पर एक प्रकार की कठिनता ही है कि अपने प्राणों के तुल्य पति के अनुगमन करने का त्याग करके यहाँ संसार में इन क्षणों में जीवित रहती हुई विद्यमान हूँ ।।४१।। वसिष्ठ रूपी अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष का आश्रय ग्रहण करके न मुरझाने वाली लता के समान बिना मूल वाली भी स्वामी के द्वारा त्यक्त दीन-हीन मैं जीवित यहाँ पर स्थित हूँ ।।४२।। वसिष्ठ मुनि ने अपनी भार्या अरुन्धती के सहित अपनी पुत्र वधू के इन वचनों का श्रवण कर परम बुद्धिमान् आश्रमी वसिष्ठ ने अपने आश्रम में जाने का विचार किया था । ।।४३।। बड़ी क्लेश की कठिनाई के साथ भार्या के सहित अदृश्यन्ती को साथ में लेकर पुण्यात्मा भगवान् वसिष्ठ ने मन में चिन्तन करते हुए अपने आश्रम में प्रवेश किया था ।४४।

सा गर्भं पालयामास कथंचिन्मुनिपुंगवाः ।
कुलसंधारणार्थाय शक्ति पत्नी पतिव्रता ।।४५
ततः सासूत तनयं दशमे मासि सुप्रभम् ।
शक्तिपत्नी यथा शक्ति शक्तिमंतमरुंधती ।।४६
असूत सादितिर्विष्णुं यथा स्वाहा गुहं सुतम् ।
अग्निं यथारणिः पत्नी शक्तेः साक्षात्पराशरम् ।।४७
यदा तदा शक्तिसूनुरवतीर्णो महीतले ।
शक्तिस्त्यक्त्वा तदा दुःखं पितृणां समतां ययौ ।।४८
भ्रातृभिः सह पुण्यात्मा आदित्यैरिव भास्करः ।
रराज पितृलोकस्थो वासिष्ठो मुनिपुंगवाः ।।४९
जगुस्तदा च पितरो ननृतुश्च पितामहाः ।
प्रपितामहाश्च विप्रेन्द्रा ह्यवतीर्णे पराशरे ।।५०
ये ब्रह्मवादिनो भूमौ ननृतुर्दिवि देवताः ।
पुष्कराद्याश्च ससृजुः पुष्पवर्षं च खेचराः ।।५१
पुरेषु राक्षसानां च प्रणादं विषमं द्विजाः ।
आश्रमस्थाश्च मुनयः समूहहर्षसंततिम् ।।५२

हे मुनिश्रेष्ठो ! परम पतिव्रता उस शक्ति की पत्नी ने अपने कुल के संधारण करने के लिये किसी प्रकार से बड़ी कठिनाई के साथ अपने

उदरस्थ गर्भ का पालन किया था ।।४५।। इसके अनन्तर उस शक्ति की पत्नी ने दशवें मास मे जिस तरह से अरुन्धती वसिष्ठ की पत्नी ने शक्तिमान् को समुत्पन्न किया था उसी भाँति सुन्दर प्रभा से सम्पन्न पुत्र को प्रसूत किया था ।।४६।। उस शक्ति की पत्नी ने दिति ने विष्णु की भाँति स्वाहा ने अपने सुत गुह के समान और अरणि ने अग्नि के तुल्य साक्षात् पराशर पुत्र को जन्म प्रदान किया था ।।४७।। जिस समय मे इस महीतल मे शक्ति का पुत्र पराशर अवतीर्ण हुआ था उस समय में शक्ति ने दुःख को त्याग करके पितृ गणों की समता को ग्रहण किया था ।।४८।। हे मुनियो मे परम श्रेष्ठगण ! वह पुण्यात्मा वसिष्ठ का पुत्र भास्कर आदित्यो के साथ जैसे दीप्तिमान् होता है वैसे ही अपने भाइयों के साथ पितृ लोक मे स्थित होकर दीप्ति से युक्त हुए थे ।।४६।। उस समय में समस्त पितृगण आनन्द में मग्न होकर गायन करने लगे हे विप्रेन्द्रो ! पराशर के इस संसार मे अवतीर्ण होने पर पितामहो का समुदाय हर्ष से नृत्य करने लगा था और जो प्रपितामहो का गण था वह भी हर्षातिरेक में निमग्न हो गया था ।।५०।। इस क्षिति तल मे जो ब्रह्मवादी लोग थे वे और स्वर्गलोक मे देवगण भी परम प्रसन्नता से उस समय नृत्य करने लगे थे। पुष्कर आदि जो खेचर थे वे अन्तरिक्ष से पुष्पो की वृष्टि करने लगे थे ।।५१।। गिद्ध आदि पक्षी राक्षसों के नगरों मे अमङ्गल शब्द कर रहे थे। आश्रमो मे स्थित रहने वाले मुनिगण अत्यन्त हर्ष प्रकट कर रहे थे ।।५२।।

अवतीर्णो यथा ह्यंशुमानु सोपि पराशरः ।
अदृश्यंत्याश्चतुर्वक्त्रो मेघजालाद्दिवाकरः ।।५३
सुखं च दुःखमभवददृश्यंत्यास्तथा द्विजाः ।
दृष्ट्वा पुत्रं पतिं स्मृत्वा अरुंधत्या मुनेस्तथा ।।५४
दृष्ट्वा च तनयं बाला पराशरमति शुतिम् ।
ललाप विह्वला बाला सन्नकंठी पपात च ।।५५
सा पराशरमहो महामतिं देवदानवगणैश्च पूजितम् ।
जातमात्रमनघं शुचिं स्मिता बुध्य साश्रुनयना ललाप च ।।५६

हा वसिष्ठसुत क्वचिद्गतः पश्य पुत्रमनघ तवात्मजम् ।
त्यज्य दीनवदना वनान्तरे पुत्र दर्शनपरामिमां प्रभो ।।५७
शवते स्व च सुतं पश्य भ्रातृभिः सह षण्मुखम् ।
यथा महेश्वरोपश्यत्सगणो हृषिताननः ।।५८
अथ तस्यास्तदालाप वसिष्ठो मुनिसत्तमः ।
श्रुत्वा स्नुषामुवाचेद मारोदीरिति दुःखितः ।।५९
आज्ञया तस्य सा शोकं वसिष्ठस्य कुलांगना ।
त्यक्त्वा ह्यप लयद्बालं बाला बालमृगेक्षणा ।।६०

जिस प्रकार से अण्ड से चार मुख वाले ब्रह्मा समुत्पन्न हुए थे उसी भाँति अदृश्यन्ती के गर्भ से वह पराशर भी अवतीर्ण हुए थे मानो मेघों की घटा मे से निकलकर सूर्य ने अपनी प्रभा का प्रकाश फैला दिया हो ।।५३।। हे द्विजगण ! उस समय मे पराशर की माता अदृश्यन्ती को अपने पुत्र का मुखावलोकन कर पति का स्मरण हो जाने से सुख और दुःख दोनो ही हुए थे । इसी तरह मुनि वसिष्ठ को एव अरुन्धती को भी पौत्र को देखकर तो सुख हुआ किन्तु पुत्र का स्मरण हो जाने से हृदय म दुःख भी हुआ था ।।५४।। उस बाला ने अत्यन्त अधिक द्युति वाले अपने पुत्र पराशर को देखकर बहुत ही विह्वल होते हुए विलाप किया था और वह सन्त कष्ठ वाली होकर भूमि पर गिर पडी थी ।।५५।। उसने महा मति वाले-देवगणों के द्वारा पूजित निष्पाप उत्पन्न हुए ही पुत्र को जान कर शुचि स्मित वाली आँखो मे आँसू भरकर वह विलाप करने लगी थी ।।५६।। हा वसिष्ठ मुनि के पुत्र ! आप कहाँ चले गये है ? अपने इस पापरहित पुत्र को तो देख लो । पुत्र के दर्शन मे परायण दीन मुख वाली इसको । मुझे त्याग करके बनान्तर मे आप कहाँ चले गये है ? ।।५७।। हे शक्ते ! जिस तरह गणो के सहित प्रसन्न मुख वाले महेश्वर भाइयो के साथ षण्मुख को देखते है उसी भाँति आप इस अपने पुत्र को देखिये । ।।५८।। इस प्रकार से अदृश्यन्ती के विलाप करने के अनन्तर मुनियों म श्रेष्ठ वसिष्ठ ने उसके इस विलाप का श्रवण कर अपनी पुत्र वधू से कहा था और बहुत ही अधिक दुःखित हुए थे—हे पुत्र वधू ! न मत

रुदन मत कर ॥५९॥ उस वसिष्ठ मुनि की आज्ञा से कुलाङ्गना ने शोक को त्याग दिया था और बालमृग के तुल्य सुन्दर नेत्रों वाली उस बाला ने अपने बालक का पालन किया था। ॥६०॥

दृष्ट्वा तामबला प्राह मङ्गलाभरणैर्विना ।
आसीनामाकुला साध्वी ब ष्पपर्याकुलेक्षणाम् ॥६१
अंब मालविभूषणैर्विना देहयष्टिरनघे न शोभते ।
वक्तुमर्हसि तवाद्य कारण चन्द्रबिंबरहितेव शर्वरी ॥६२
मातर्मानि कथं त्यक्ता मङ्गलाभरणानि वै ।
आसीना भर्तृहीनेव वक्तुमर्हसि शोभने ॥६३
अदृश्यन्ती तदा वाक्यं श्रुत्वा तस्य सुतस्य सा ।
न किंचिदब्रवीत्पुत्र शुभं वा यदि वेतरत् ॥६४
अदृश्यतीं पुनः प्राह शाक्तेयो भगवान्मम ।
म तः कुत्र महातेजा पिता वद वदेति ताम् ॥६५
श्रुत्वा रुरोद सा वाक्यं पुत्रस्यातीव विह्वला ।
भक्षितो रक्षसा तातस्तवेति निपपात च ॥६६
श्रुत्वा वसिष्ठोऽपि पपात भूमौ पौत्रस्य वाक्यं स रुदन्दयालुः ।
अरुन्धती चाश्रमवासिनस्तदा मुनेर्वसिष्ठस्य मुनीश्वराश्च ॥६७

उस बालक पराशर ने अपनी माता उस अबला को मङ्गलमय आभरणों से रहित देखकर उस से कहा जो कि अपनी आँखों में आँसू भरे हुए बहुत ही बेचैन साध्वी बैठी हुई थी ॥६१॥ शक्ति के पुत्र शाक्तेय अर्थात् पराशर ने कहा—हे अनघे ! हे माता ! आपका यह परम सुन्दर शरीर भूषणों के बिना शोभा नहीं देता है। हे माता ! आप मुझे इसका वास्तविक कारण बताइये। आप बिना अलङ्कारों के तो चन्द्र के बिम्ब के बिना अँधेरी रात के समान दिखलाई दे रही हैं ॥६२॥ हे माता ! आपने ये परम मङ्गलमय आभरणों को क्यों त्याग दिया है ? हे शोभने ! आप स्वामी से हीना के समान क्यों बैठी हुई हैं। इस सब का जो भी कारण हो मुझे स्पष्ट बताने के योग्य हैं ॥६३॥ उस समय में अदृश्यन्ती ने उस अपने बालक पुत्र के वचन सुनकर फिर उस बालक से उसने शुभ

अथवा अशुभ कुछ भी नहीं बताया था। इसके पश्चात् शाक्तेय (पराशर) ने फिर अदृश्यन्ती अपनी माता से कहा-हे माता! मुझे यह बताओ कि महान् तेजस्वी मेरे भगवान् पिता जी कहाँ पर है ॥६४॥६५॥ वह अदृश्यन्ती वसिष्ठ की पुत्र वधू पुत्र के इस वाक्य को सुनकर अत्यन्त विह्वल हो गई और रुदन करने लगी थी। उसने अपने पुत्र से कहा—बेटा! तुम्हारे पिता को राक्षस ने खा लिया था और वह मृत्यु को प्राप्त हो गये थे ॥६६॥ अपने पौत्र के इस वाक्य का श्रवण कर परम दयालु वसिष्ठ भी रुदन करते हुए भूमि पर गिर पडे थे। अरुन्धती और वसिष्ठ मुनि के समस्त आश्रम मे निवास करने वाले मुनीश्वर भी रुदन करते हुए क्षिति तल पर गिर गये थे ॥६७॥

भक्षितो रक्षसा मातुः पिता तव सुवादिति।
श्रुत्वा पराशरो धीमान्प्राह चास्राविलेक्षण. ॥६८
अभ्यर्च्य देवदेवेश त्रैलोक्य सचराचरम्।
क्षणेन मातः पितरं दर्शयामीति मे मतिः ॥६९
सा निशम्य वचनं तदा शुभं सस्मिता तनयमाह विस्मिता।
तथ्यमे तदिति तं निरीक्ष्य सा पुत्रपुत्र भवमर्चयेति च ॥७०
ज्ञात्वा शक्तिसुतस्यास्य संकल्प मुनिपुंगवः।
वसिष्ठो भगवान्प्राह पौत्रं धीमान् घृणानिधि. ॥७१
स्थाने पौत्र मुनिश्रेष्ठ सकल्पस्तव सुव्रत।
तथापि शृणु लोकस्य क्षयं कर्तुं न चार्हसि ॥७२
रक्षसामामभावाय कुरु सर्वेश्वरार्चनम्।
त्रैलोक्य शृणु शाक्तेय अपराधानि किं तव ॥७३
ततस्तस्य वसिष्ठस्य नियोगाच्छक्तिनन्दनः।
राक्षसानामभाव य मति चक्रे महामतिः। ७४

तेरे पिता को राक्षस ने भक्षण कर लिया था - इस उत्तर वाक्य को माता के मुख से सुनकर परम बुद्धिमान् पराशर के नेत्र भी अश्रुओं से मलीन हो गये थे ।६८॥ पराशर ने कहा—हे माता! मैं चराचर त्रैलोक्य को दग्ध करके देवेश भगवान् भव का अभ्यर्चन करके एक क्षण

में ही पिता को दिखा देता हूँ-ऐसी मेरी बुद्धि होती है ॥६६॥ उस समय में पराशर के इस शुभ वचन का श्रवण कर स्मित से युक्त परम विस्मय के साथ वह अदृश्यन्ती अपने पुत्र से बोली-क्या यह तथ्य है—ऐसा कहकर पुत्र की ओर देखकर फिर उसने कहा—बेटा, तुम भव की अभ्यर्चना करो ॥७०॥ शक्ति के पुत्र पराशर के इस सत्य संकल्प को जान कर मुनियों मे श्रेष्ठ अत्यन्त बुद्धिमान् और दया के निधि वसिष्ठ ने अपने पौत्र से कहा—हे सुन्दर व्रत वाले ! हे मुनियों मे श्रेष्ठतम ! तुम्हारा यह सङ्कल्प बहुत ही समुचित है तो भी मेरा यह कथन है जिस को तुम श्रवण कर लो। तुम को इस लोक का क्षय नहीं करना चाहिये ॥७१॥ ॥७२॥ केवल राक्षसो के अभाव या नाश के लिये ही तुम सर्वेश्वर का अर्चन करो। हे शाक्तेय ! तुम यह तो विचार करो भला समस्त त्रैलोक्य ने तुम्हारा क्या अपराध किया है। ॥७३॥ इसके अनन्तर वसिष्ठ महामुनि के नियोग से उस शक्ति के पुत्र ने जो कि महान् मति से सम्पन्न था, केवल राक्षसो के नाश के लिये ही शिवार्चन करने का विचार स्थिर किया था ॥७४॥

अदृश्यंती वसिष्ठं च प्रणम्याऽरुन्धती ततः।
कृत्वैकलिंगं क्षणिकं पांसुना मुनिसन्निधौ। ७५
संपूज्य शिवसूक्तेन त्र्यंबकेन शुभेन च।
जप्त्वा त्वरितं रुद्रं च शिवसंकल्पमेव च ॥७६
नीलरुद्रं च शाक्तेयस्तथा रुद्रं च शोभनम्।
वामीयं पवमानं च पंचब्रह्म तथैव च ॥७७
होतारं लिंगसूक्तं च अथर्वशिर एव च।
अष्टांगमर्घ्यं रुद्राय दत्वाभ्यर्च्य यथाविधि ॥ ७८
भगवन्भक्षिता रुद्र भक्षितो रुधिरेण वै।
पिता मम महातेजा भ्रातृभिः सह शंकर ॥७९
द्रष्टुमिच्छामि भगवन् पितरं भ्रातृभिः सह।
एवं विज्ञाप्य लिङ्गं प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ॥८०
हा रुद्र रुद्र रुद्रेति रुरोद निपपात च।

तं दृष्ट्वा भगवान्रुद्रो देवीमाह च शंकरः । ८१
पश्य बाल महाभागे बाष्पपर्याकुलेक्षणम् ।
ममानुस्मरणे युक्तं मदाराधनतत्परम् ॥८२

इसके अनन्तर शाक्तेय ने सर्वप्रथम अपनी माता अदृश्यन्ती को प्रणाम किया था, उसके पश्चात् वसिष्ठ मुनि और अरुन्धती को प्रणाम करके फिर मुनि के समीप मे ही मृत्तिका से क्षणिक एक लिङ्ग अर्थात् पार्थिव शिव लिङ्ग का निर्माण करके उसका शिव सूक्त से एव परम शुभ त्र्यम्बक सूक्त से भली-भाँति पूजन किया था। फिर त्वरित रुद्र और शिव सकल्प का तथा नील रुद्र का जाप किया था। शोभन रुद्र-वामीय-पदमान और पञ्च ब्रह्म का जाप किया था। ॥७५॥७६॥७७॥ होता-लिङ्ग सूक्त तथा अथर्व शिर को जप कर रुद्र को अष्टाङ्ग अर्घ्य समर्पित कर यथा विधि उसका अभ्यर्चन किया था ॥७८॥ फिर पराशर ने भगवान् भव से प्रार्थना की थी। पराशर ने कहा—हे भगवन्! हे शङ्कर! हे रुद्रदेव! दुष्ट राक्षस ने मेरे महान् तेजस्वी पिता का भाइयो के साथ भक्षण कर रुधिर का पान किया है ॥७६॥ हे भगवन्! अब मैं अपने पिता को अपने भाइयो के सहित देखने की उत्कट इच्छा रखता हूँ। इस प्रकार से उस शाक्तेय ने रुद्रदेव के लिङ्ग के समक्ष मे सविनय निवेदन करते हुए बार-बार प्रणाम किया था ॥८०॥ और फिर 'हा रुद्र! हा रुद्र!'-यह उच्चारण करते हुए रुद्र की पार्थिव लिङ्ग मूर्ति के सामने रुदन किया और क्षिति तल मे गिर पडा था। उस शाक्तेय को इस दशा मे देखकर भगवान् शङ्कर रुद्रदेव देवी से बोले—हे महाभागे! इस बालक को देखो जिसके नेत्र अश्रुओ से समाकुलित हो गये हैं और यह मेरी आराधना करने मे परायण तथा मेरा स्मरण करने मे युक्त हो रहा है। ॥८१॥८२॥

सा च दृष्ट्वा महादेवी पराशरमनिन्दिता ।
दुःखास्रंक्लिन्नसर्वाङ्गं नम्रकुलविलोचनम् ॥८३
लिंगार्चनविधौ सक्तं हर रुद्र ति वादिनम् ।
प्राह भर्तारमीशानं शंकरं जगतामुमा ॥८४

ईप्सितं यच्छ सकलं प्रसीद परमेश्वर ।
निशम्य वचनं तस्याः शंकरः परमेश्वरः ॥८५
भार्यामार्यामुमां प्राह ततो हालहलाशनः ।
रक्षाम्येनं द्विजं बालं फुल्लेन्दीवरलोचनम् ॥८६
ददामि दृष्टिं मद्रूपदर्शनक्षमं एव वै ।
एवमुक्त्वा गणैर्दिव्यैर्भगवान्नीललोहितः ॥८७
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैः संवृतः परमेश्वरः ।
ददौ च दर्शनं तस्मै मुनिपुत्राय धीमते ॥८८
सोपि दृष्ट्वा महादेवमानन्दास्राविलेक्षणः ।
निपपात च हृष्टात्मा पादयोस्तस्य सादरम् ॥८९

अति श्लाघ्य उम महादेवी ने पराशर को देखा था जो कि दुःख से क्लिष्ट अङ्गों वाला और आँसुओ से भरे तथा मलीन नेत्रों वाला था। ॥८३॥ देवी ने देखा था कि वह पराशर पार्थिव लिङ्ग के अर्चन करने में पूर्णतया संलग्न हो रहा था और बार बार हा रुद्र ! हा रुद्र !—इस तरह बोलकर भगवान् शिव को पुकार रहा था। यह देखकर समस्त जगतो के ईश अपने स्वामी भगवान् शङ्कर से उमादेवी ने कहा—॥८४॥ हे परमेश्वर ! इस दीन पर कृपा करिये और इसकी अभीष्ट वस्तु इसे प्रदान कर दीजिए। भगवान् शङ्कर ने उस उमादेवी के इस वचन को सुनकर अपनी पत्नी प्रिय उमा से हालाहल के पान करने वाले शङ्कर ने कहा—विकसित कमलो के समान सुन्दर नेत्रो वाले इस द्विज बालक की मैं रक्षा करता हूँ ॥८५॥८६॥ सर्वप्रथम मैं इसको वह दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ जिससे यह मेरे रूप के दर्शन करने मे समर्थ हो जावे। यह इस तरह से उमादेवी से कहकर नील लोहित भगवान् शङ्कर अपने दिव्यगण और ब्रह्मा विष्णु इन्द्र तथा रुद्र आदि के साथ संवृत होकर वहाँ उस मुनि बालक के पास पहुँचे तथा धीमान् उस मुनि पुत्र को अपना दर्शन दिया था ॥८७॥८८॥ उस मुनि पुत्र ने भी महादेव का दर्शन प्राप्त किया था और वह अपार आनन्द के अश्रुओं को नेत्रो मे भरकर परम प्रसन्न होकर बहुत ही आदर के साथ उनके चरणों मे गिर पड़ा था ॥८९॥

पुनर्भवान्याः पादौ च नंदिनश्च महात्मनः ।
सफलं जीवित मेद्य ब्रह्माद्यांस्तां स्नदाह सः ॥६०
रक्षार्थमागतस्त्वद्य मम बालेन्दुभूषणः ।
कोन्यः समो मया लोके देवो वा दानवोपि वा ॥६१
अथ तस्मिन्क्षणादेव ददर्श दिवि सस्थितम् ।
पितरं भ्रातृभिः सार्धं शाक्तेयस्तु पराशर. ॥६२
सूर्यमंडलसकाशे विमाने विश्वतो मुखे ।
भ्रातृभिः सहित दृष्ट्वा ननाम च जहर्ष च ॥६३
तदा वृषध्वजो देव. सभार्यः सगणेश्वरः ।
वसिष्ठपुत्रं प्राहेदं पुत्रंदर्शनतत्परम् ॥६४
शक्तं पश्य सुत वालमानन्दास्र विलेक्षणम् ।
अदृश्यन्ती च विप्रेन्द्र वसिष्ठं पितर तव ॥६५
अरुन्धती महाभागा कल्याणी देवनोपमाम् ।
मातरं पितर चोभौ नमस्कुरु महामते ॥६६
तदा हरं प्रणम्याशु देवदेवमुमा तथा ।
वसिष्ठं च तदा श्रेष्ठं शक्तिर्वै शंकराज्ञया ॥६७
मातर च महाभागा कल्याणी पतिदेवताम् ।
अरुधती जगन्नाथनियोगात्प्राह शक्तिमान् ॥६८

इसके अनन्तर फिर वह भवानी के चरणों मे तथा महान् आत्मा वाले नन्दी के चरणो मे गिर गया था उस समय ब्रह्मा आदि जो देवगण शिव के साथ थे उनसे बोला-आज मेरा जीवन सफल हो गया है ॥६०॥ आज बाल चन्द्र के भूषण वाले भगवान् शिव स्वय मेरी रक्षा करने के लिये यहाँ पर आ गये हैं। इस समय लोक मे मेरे समान बडभागी अन्य कौन होगा चाहे कोई भी देव तथा दानव क्यो न हो अर्थात् ऐसा भाग्यशाली अन्य कोई भी नही है ॥६१॥ इसके अनन्तर उस शक्ति के पुत्र पराशर ने एक क्षण मात्र मे ही दिव लोक में सस्थित अपने पिता को भाइयो के साथ देखा था ॥६२॥ सूर्य मण्डल के समान विश्व तो मुख विमान मे भाइयो के सहित अपने पिता शक्ति को देखकर पराशर को

बहुत अधिक प्रसन्नता हुई थी और उसने अपने पिता को प्रणाम किया था ।।६३।। इसके अनन्तर अपनी भार्या उमा और समस्त गणों के साथ वहाँ पर सस्थित भगवान् वृषध्वज देव ने उस समय मे पुत्र के दर्शन मे तत्पर वसिष्ठ के पुत्र शक्ति से यह कहा था श्री देव ने कहा–हे शक्ते ! आनन्द के आँसुओं के बहाने वाले अपने बालक पुत्र को देख लो । हे विप्रेन्द्र ! अपनी पत्नी अदृश्यन्ती और अपने पिता वसिष्ठ को भी देख लो । हे महा मति वाले ! देवता के समान परम पूज्या कल्याण कारिणी माता अरुन्धती का दर्शन भी करलो तथा अपने इन दोनो माता और पिता को नमस्कार करो ।।६४।।६५।।६६।। उस समय मे भगवान् देवो के देव शिव को शीघ्र ही प्रणाम करके शक्ति ने उमादेवी को प्रणाम किया था । भगवान् शङ्कर की आज्ञा से परम श्रेष्ठ अपने पिता वसिष्ठ तथा पति को ही देवता के समान मानने वाली परम कल्याण कारिणी महाभागा माता अरुन्धती को प्रणाम किया था । फिर जगत् के स्वामी की आज्ञा से वह शक्तिमान् अपनी माता अरुन्धती के सामने बोला— ।।६७।।६८।।

भो वत्सवत्स विप्रेन्द्र पराशर महाद्युते ।
रक्षितोह् त्वया तात गर्भस्थेन महात्मना ।।६६
अणिमादिगुणैश्वर्यं मया वत्स पराशर ।
लब्धमद्यानन दृष्ट तव बाल ममाज्ञया ।।१००
अदृश्यन्ती महाभागां रक्ष वत्स महामते ।
अरुन्धती च पितर वसिष्ठं मम सर्वदा ।।१०१
अन्वय सकलो वत्स मम मतारितस्त्वया ।
पुत्रेण लोक ञ्जयतीत्युक्त सद्भि सदैव हि ।। ०२
ईप्सित व॰ यैशानं जगता प्रभव प्रभुम् ।
गमिष्याम्यभिवद्येश श्र तुभि सह शंकरम् ।। ०३
एवं पुत्रमुपामन्त्र्य प्रणम्य च महेश्वरम् ।
निरीक्ष्य भार्या सदसि जगाम पितर वशी ।।१०४
गत दृष्ट्वाथ पितर तदाम्यर्च्यैव शंकरम् ।

तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः शाक्तेयः शशि भूषणम् ॥१०५

वसिष्ठ ने कहा हे वत्स ! हे पराशर ! तुम विप्रो मे शिरोमणि हो और महान् द्युति वाले हो । हे तात ! अपनी माता के गर्भ मे ही स्थित रहते हुए महात्मा तूने मेरी रक्षा की है । ॥६६॥ हे वत्स पराशर ! इस समय मे मैंने अणिमा आदि के गुणो से युक्त ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया है कि हे बच्चे ! आज तुम्हारा मुख मैंने देख लिया है । अब मेरी आज्ञा से हे महाव्रते ! हे वत्स ! महाभागा इस अदृश्यन्ती की रक्षा करना । और सर्वदा मेरी माता अरुन्धती पिता वसिष्ठ की भी रक्षा तुम करना ॥१००॥ ॥१०१॥ हे वत्स ! तूने मेरा सम्पूर्ण वंश ही तार दिया है । सत्पुरुषो के द्वारा सर्वदा यही कहा गया है कि सत्पुत्र के द्वारा मानव लोको मे जय प्राप्त किया करता है ॥१०२॥ अब तू समस्त जगतो के समुत्पन्न करने वाले ईशान प्रभु से अपना इच्छित वरदान प्राप्त करले । मैं तो अपने भाइयो के सहित ईश शंकर भगवान् की वन्दना करके चला जाऊंगा । ॥१०३॥ इस तरह से अपने पुत्र को परामर्श देकर और महेश्वर को प्रणाम करके तथा अपनी भार्या को वहीं सभा मे स्थित देखकर वह वशी पितृ लोक मे चला गया था ॥१०४॥ अपने पिता को गया हुआ देखकर भगवान् शंकर की पराशर ने अभ्यर्चना की थी और शाक्तेय ने अत्यभीष्ट वाणियो के द्वारा शशिभूषण शिव का स्तवन किया था ॥१०५॥

ततस्तुष्टो महादेवो मन्मथाधकमर्दनः ।
अनुगृह्याथ शाक्तेयं तत्रैवांतरधीयत ॥१०६
गते महेश्वरे साबे प्रणम्य च महेश्वरम् ।
ददाह राक्षसाना तु कुलं मन्त्रेण मंत्रवित् ॥१०७
तदाह पौत्रं धर्मज्ञो वसिष्ठो मुनिभिर्वृतः ।
अलमत्यतकोपेन तात मन्युमिम जहि ॥१०८
राक्षसा नापराध्यन्ति पितुस्ते विहित तथा ।
मूढानामेव भवति क्रोधो बुद्धिमतां न हि ॥१०९
हन्यते तात कः केन यतः स्वकृतभुक्पुमान् ।
संचितस्यातिमहता वत्स क्लेशेन मानवैः ॥११०

यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः स्मृतः ।
अलं हि राक्षसैर्दग्धैर्दीनैरनपराधिभिः ॥१११
सत्रं ते विरमत्वेतत्क्षमासारा हि साधवः ।
एवं वसिष्ठवाक्येन शाक्तेयो मुनिपुंगवः ॥११२
उपसंहृतवान् सत्रं सद्यस्तद्वाक्यगौरवात् ।
ततः प्रीतश्च भगवान्वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥११३

इसके अनन्तर भगवान् शिव परम सन्तुष्ट होकर जिन्होने मन्मथ (कामदेव और अन्धक का मर्दन कर दिया था, शक्ति के पुत्र पर अपनी पूर्ण कृपा की वृष्टि करके वही पर अन्तर्हित हो गये थे ॥१०६॥ भगवान् महेश्वर के चले जाने पर साम्ब महेश्वर को प्रणाम करके उस मन्त्रों के ज्ञाता पराशर ने मन्त्र के द्वारा राक्षसों के कुल का दाह कर दिया था ॥१०७॥ उस अवसर पर धर्म के ज्ञान वाले तथा अन्य मुनियों से परिवृत (घिरे हुए) वसिष्ठ ने अपने पौत्र पराशर से कहा-हे तात ! अत्यन्त कोप मत करो । अब इस क्रोध का परित्याग करदो ॥१०८॥ तुम्हारे पिता को जो उस प्रकार से हुआ था उसमे ये समस्त राक्षस को कोई अपराध नही है । क्रोध तो मूढपुरुषों को ही हुआ करता है । बुद्धिमान् लोगो को क्रोध कभी नही होता है ॥१०६॥ हे तात ! कौन किस के द्वारा मारा जाता है ? अर्थात् कोई भी किसी को नही मारता है क्योकि यहाँ सभी जीव अपने किये हुए कर्मों का भोग ही भोगा करते हैं । मानव अपने सञ्चित कर्मो-को ही बडे क्लेश से भोगते हैं ॥११०॥ क्रोध यश और तपश्चर्या दोनों का ही नाश करने वाला बताया गया है । अब तुम इन विचारे निरपराध दीन राक्षसों को दग्ध करना छोड दो ॥१११॥ अब तुम्हारा राक्षसो के दाह करने का यह सत्र समाप्त हो जाना चाहिए क्योंकि साधु पुरुष तो सर्वदा क्षमा के सार रखने वाले होते हैं। इस प्रकार से वसिष्ठ मुनि के वाक्य से मुनियो मे श्रेष्ठ शाक्तेय ने अपने पितामह के वचनों के गौरव की रक्षा करते हुए अपने राक्षसों के दाह के सत्र को समाप्त कर दिया था । उस समय मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ उस पर परम प्रसन्न हुए थे । ॥११३॥

संप्राप्तश्च तदा सत्र पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः ।
वसिष्ठेन तु दत्तार्घ्यः कृतासनपरिग्रहः ॥११४
पराशरमुवाचेदं प्रणिपत्य स्थित मुनिः ।
वैरे महति यद्वाक्याद्गुरोरद्याश्रिताक्षमा ॥११५
त्वया तस्मात्समस्तानि भवाञ्छास्त्राणि वेत्स्यति ।
संततेर्मम न च्छेदः क्रुद्धेनापि यतः कृतः ॥११६
त्वया तस्मान्महाभाग ददाम्यन्यं महावरम् ।
पुराणसंहिताकर्ता भवान्वत्स भविष्यति ॥११७
देवतापरमार्थं च यथावद्वेत्स्यते भवान् ।
प्रवृत्तौ वा निवृत्तौ वा कर्मणस्तेऽमला मतिः ॥११८
मत्प्रसादादसंदिग्धा तव वत्स भविष्यति ।
ततश्च प्राह भगवान्वसिष्ठो वदतां वरः ॥११९
पुलस्त्येन यदुक्तं ते सर्वमेतद्भविष्यति ।
अथ तस्य पुलस्त्यस्य वसिष्ठस्य च धीमतः ॥१२०
प्रसादाद्वैष्णवं चक्रे पुराणं वै पराशरः ।
षट्प्रकारं समस्तार्थसाधकं ज्ञानसंचयम् ॥१२१
षट्साहस्रमितं सर्वं वेदार्थेन च संयुतम् ।
चतुर्थं हि पुराणानां संहितासु सुशोभनम् ॥१२२
एष व. कथितः सर्वो वासिष्ठाना समासत. ।
प्रभवः शक्तिसूनोश्च प्रभावो मुनिपुङ्गवाः ॥१२३

उस समय मे ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य मुनि उस सत्र मे आ गये थे। वसिष्ठ मुनि ने उनको अर्घ्य समर्पित किया था और फिर आसन दिया था। उस समय मे आसन पर स्थित होकर पुलस्त्य मुनि ने प्रणाम करके पराशर से यह वचन कहा—हे तात ! महान् वैर के होने पर भी तुमने गुरुदेव वसिष्ठ के वचनो से जो इस समय क्षमा को ग्रहण किया है। इस का परिणाम यह होगा कि आप समस्त शास्त्रों को भली-भाँति जान जाओगे। आपने क्रुद्ध होकर जो मेरी सन्तति का उच्छेद किया है वह न होवे ॥११६॥ इसलिये हे महान् भाग्य वाले ! मैं तुमको एक और महान्

वरदान देता हूँ हे वत्स ! आप पुराण संहिता के करने वाले होगे ॥११७॥ आप वास्तव स्वरूप को यथावत् जान लेगे । प्रवृत्ति मार्ग में और निवृत्ति मार्ग मे आप जो भी कर्म करेंगे उसमे आप की मति मल रहित होगी ॥११८॥ हे वत्स ! यह मेरी अनुकम्पा होगी कि आपकी बुद्धि सर्वदा सन्देह से रहित रहा करेगी अर्थात् आपको कभी भी किसी विषय मे सदिग्धता नही होगी । इतना पुलस्त्य के कहने के अनन्तर बोलने वालो मे परम श्रेष्ठ वसिष्ठ मुनि ने कहा – हे वत्स ! पुलस्त्य मुनि ने जो कुछ भी इस समय कहा है यह निश्चय ही सभी कुछ होगा—इसमें कुछ भी सन्देह नही है । इसके अनन्तर धीमान् पुलस्त्य और वसिष्ठ की कृपा एवं प्रसाद से पराशर ने वैष्णव पुराण की रचना की थी । वह पुराण षट् अंश रूप वाला था और सम्पूर्ण अर्थ का साधन करने वाला एवं ज्ञान का एक सचित भण्डार था । ॥११९॥१२०॥१२१॥ यह सब छै सहस्र सख्या मे युक्त और वेदार्थ से समन्वित था । यह परम शोभन संहिता पुराणो मे चौथे नम्बर की थी । ॥१२२॥ यह सम्पूर्ण वासिष्ठों का सर्ग संक्षेप मे वर्णन कर दिया गया है । हे मुनिश्रेष्ठो ! इसमे शक्ति के पुत्र का जन्म और प्रभाव भी वर्णित कर दिया गया है । ॥१२३॥

॥ १०३–त्रिपुर निवासी दैत्यों का देव पीड़न ॥

समासाद्विस्तराच्चैव सर्गः प्रोक्तस्त्वया शुभः ।
कथ पशुपतिश्चासीत्पुरं दग्धुं महेश्वरः ॥१
कथ च पशवश्चासन्देवाः सब्रह्मकाः प्रभोः ।
मयस्य तपसा पूर्वं सुदुर्गं निर्मितं पुरम् ॥२
हैमं च राजतं दिव्यमयस्मय मनुत्तमम् ।
सुदुर्गं देवदेवेन दग्धमित्येव नः श्रुतम् ॥३
कथं ददाह भगवान् भगनेत्रनिपातनः ।
एकेनेषुनिपातेन दिव्येनापि तदा कथम् ॥४
विष्णुनोत्पादितैर्भूतैर्न दग्धं तत्पुरत्रयम् ।
पुरस्य संभवः सर्वो वरलाभः पुरा श्रुतः ॥५

इदानीं दहनं सर्वं वक्तुमर्हसि सुव्रत ।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः ॥६
यथा श्रुतं तथा प्राह व्यासाद्विश्वार्थसूचकात् ।
शैलोक्यस्यास्य शापाद्धि मनोवाक्कायसम्भवात् ॥७
निहते तारके दैत्ये तारपुत्रे सबांधवे ।
एकदेन वा प्रयत्नेन तस्य पुत्रा महाबलाः ॥८
विद्युन्माली तारकाक्ष कमलाक्षश्च वीर्यवान् ।
तपस्तेपुर्महात्मानो महाबलपराक्रमा. ॥९

इस अध्याय में त्रिपुरौकसों का चरित और उन के नाश के लिये देवताओं के समस्त यत्नों का निरूपण किया जाता है। ऋषियों ने कहा-आपने संक्षेप से तथा विस्तार से शुभ सर्ग का निरूपण कर दिया है। अब यह बताइये कि पशुपति महेश्वर ने पुर को दग्ध कैसे किया था? और ब्रह्मा के सहित समस्त देवता पशु कैसे हो गये थे? प्रभुमय की तपस्या से पहिले सुन्दर दुर्ग वाला पुर निर्मित किया गया था। वह सुन्दर दुर्ग सुवर्णमय-रजतमय और लोहमय अत्यन्त उत्तम था। उसको देवों के देव ने दग्ध कर दिया था-यही हम लोगों ने सुना है ॥१॥२॥३॥ भग के नेत्रों को निपतित करने वाले भगवान् ने उस पुर को कैसे दग्ध किया था और केवल एक ही दिव्य बाण के निपात से उस समय में उसे कैसे जला दिया था? ॥४॥ [illegible] द्वारा उत्पन्न किये हुए भयों के द्वारा

पराक्रम वालों ने तपस्या का तवन किया था ॥९॥

तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः ।
तपसा कर्शयामासुर्देहान् स्वान्दानवोत्तमा. ॥१०
तेपा पितामहः प्रीतो वरद प्रददौ वरम् ।
अवध्यत्व च सर्वेपा सर्वभूतेपु सर्वदा ॥११
सहिता वरयामासु सर्वलोकपितामहम् ।
तानब्रवीत्तदा देवो लोकाना प्रभुरव्ययः ॥१२
नास्ति सर्वामरत्वं वै निवर्त ध्वमतोसुराः ।
अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृश सम्प्ररोचते ॥१३
ततस्ते सहिता दैत्याः सम्प्रधार्य परस्परम् ।
ब्रह्माणमब्रुवन्दैत्याः प्रणिपत्य जगद्गुरुम् ॥१४
वय पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम् ।
विचरिष्याम लोकेश त्वत्प्रसाद ज्जगद्गुरो ॥१५

वे अत्यन्त उग्र तप में समास्थित होकर परम नियम मे स्थित हुए थे। इन उत्तम दानवों ने तपस्या के द्वारा अपने शरीरों का कृश कर दिया था ॥१०॥ उनकी तपस्या से पितामह बहुत प्रसन्न हुए और वर देने वाले ने वरदान प्रदान किया था। दैत्यों ने कहा सर्वदा समस्त प्राणियों मे सब का अवध्यत्व सहित सर्व लोकों के पितामह से वरदान मांगा था। तब लोकों के प्रभु और अव्यय देव ने उनसे कहा था ॥११॥ ॥१२॥ सब को अमरत्व नहीं हुआ करता है अतः इससे हे असुरो ! आप लोग निवृत्त हो जाओ। इसके अतिरिक्त कोई अन्य वर मांगो जैसा कि आपको रुचि कर होता हो ॥१३॥ इसके उपरान्त समस्त दैत्यों ने परस्पर में भली-भाँति विचार पूर्वक निश्चय करके वे दैत्य जगत् गुरु ब्रह्माजी को प्रणाम करके यह से बोले। हम इस भूमण्डल मे तीन पुर समास्थित करके हे लोकेश ! हे जगद्गुरो ! आपके प्रसाद से विचरण करेंगे। ॥१४॥१५॥

तथा वर्षसहस्रेषु समेष्यामः परस्परम् ।
एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चानघ ॥१६

समागतानि चैतानि यो हन्याद्भगवंस्तदा ।
एकेनैवेषुणा देव: स नो मृत्युर्भविष्यति ॥१७
एवमस्त्विति तान्देव. प्रत्युक्त्वा प्राविशद्दिवम् ।
ततो मयः स्वतपसा चक्रे वीरः पुराण्यथ ॥१८
काञ्चन दिवि तत्रासीदन्तरिक्षे च राजतम् ।
आयसं चाभवद्भूमौ पुर तेषां महात्मनाम् ॥१९
एकैकं योजनशत विस्तारायामतः समम् ।
काञ्चनं तारकाक्षस्य कमलाक्षस्य राजतम् ॥२०
विद्युन्मालेश्चायस वै त्रिविध दुर्गमुत्तमम् ।
मयश्च बलवांस्तत्र दैत्यदानवपूजितः ॥२१
हैरण्ये राजते चैव कृष्णायसमये तथा ।
आलयं चात्मन कृत्वा तत्रास्ते बलवांस्तदा ॥२२
एवं बभूवु दैत्यानामतिदुर्गाणि सुव्रताः ।
पुराणि त्रीणि विप्रेन्द्रास्त्रैलोक्यमिव चापरम् ॥२३
पुरत्रये तदा जाते सर्वे दैत्या जगत्त्रये ।
पुरत्रय प्रविश्यैव बभूवुस्ते बलाधिका. ॥२४

हे अनघ ! तथा एक सहस्र वर्षों मे परस्पर मे आयेंगे और ये पुर एकी भाव को प्राप्त होंगे ॥१६॥ समागत इनको हे भगवन् ! उस समय मे जो कोई हनन करेगा वह देव हमारे एक ही बाण से मृत्युगत हो जायगा ॥१७॥ "ऐसा ही होवे"-यह वरदान देकर देव दिव लोक को चले गये थे । इसके अनन्तर वीरमय ने अपने तपो बल से पुरो को किया था ॥१८॥ उन महात्माओ के तीन पुर थे-सुवर्ण का पुर दिव लोक में था, अन्तरिक्ष मे राजत अर्थात् चाँदी का पुर था और भूमि मे उनका आयस अर्थात् लोह निर्मित पुर था ॥१६॥ एक-एक विस्तार और आयाम मे सौ योजन का समान था । जो काञ्चन पुर था वह तारकाक्ष का था, राजत कमलाक्ष का था और विद्युन्माली का आयस था ऐसे ये तीन प्रकार के सर्वोत्तम दुर्ग थे । बलवान् दैत्य और दानवों के द्वारा सम्मान मय वहाँ पर रहता था ॥२०॥२१॥ हैरण्य-राजत और कृष्णायस मय

पुर मे अपना आलय बनाकर उस समय मे वहाँ पर वह बलवान् रहा करता था ॥२२॥ हे सुव्रत वालो ! इस प्रकार से दैत्यो के ये अतिदुग थे। ये तीन पुर हे विप्रेन्द्रगण ! दूसरे त्रैलोक्य के समान थे ॥२३॥ उस समय मे इन तीन पुरो के हो जाने पर जगत् त्रय मे समस्त दैत्यगरा पुर त्रय मे प्रवेश करके ही वे अत्यन्त अधिक बल वाले हो गये थे ॥२४॥

शास्त्रं च शास्ता सर्वेषामकरोत्कामरूपधृक् ।
सर्वसंमोहनं मायी दृष्टप्रत्ययसंयुतम् ॥२५
एतत्स्वांगभवायैव पुरुषायोपदिश्य तु ।
मायी मायामयं शास्त्रं ग्रंथषोडशलक्षकम् ॥२६
श्रौतस्मार्तविरुद्धं च वर्णाश्रमविवर्जितम् ।
इहैव स्वर्गनरकं प्रत्ययं नान्यथा पुनः ॥२७
तच्छास्त्रमुपदिश्यैव पुरुषायाच्युतः स्वयम् ।
पुरत्रयविनाशाय प्राहैनं पुरुषं हरिः ॥२८
स्त्रीधर्मं चाकरोत्स्त्रीणां दुश्चारफलसिद्धिदम् ।
चक्रुस्ताः सर्वदा लब्ध्वा सद्य एव फलं स्त्रियः ॥२९
जनासक्ता बभूवुस्ता विनिंद्य पतिदेवताः ।
अद्यापि गौरवात्तस्य नारदस्य कलौ मुनेः ॥३०
नायश्चरंति संत्यज्य भर्तृन्स्वैरं वृथाधमाः ।
स्त्रीणां माता पिता बंधुः सखा मित्रं च बांधवः ॥३१
भर्ता एव न संदेहस्तथाप्यासहपापया ।
कृत्वापि सुमहत्पापं या भर्तुः प्रेमसंयुता ॥३२

तब भगवान् ने एक मायामय मनुष्य उन दैत्यो के विनाश के उद्देश्य से प्रकट किया। उसने दैत्यो के पास जाकर कहा कि अपनी इच्छा से रूप धारण करने वाले तथा माया से परिपूर्ण भगवान् सब के शासन करने वाले हैं। उन्होंने दृष्ट प्रत्यय (विश्वास) से संयुत अतएव सबको मोहन करने वाला शास्त्र बनाया था ॥२५॥ इस शास्त्र का अपने अङ्ग से समुत्पन्न पुरुष को माया से भरा हुआ यह सोलह लक्ष वाला ग्रन्थ का उपदेश किया था ॥२६॥ जिसमें प्रतिपादन किया गया था कि यहाँ पर

ही स्वर्ग और नरक है । इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी प्रत्यय नही है । यह शास्त्र श्रौत तथा स्मार्त्त धर्म के बिलकुल विपरीत था और वर्ण एव आश्रम के नियमो से रहित था ।।२७।। इस शास्त्र का अच्युत भगवान् ने स्वय ही उस पुरुष को पुर त्रय विनाश के लिये उपदेश किया था और फिर हरि भगवान् ने उस पुरुष से कहा था ।।२८।। तब माया से परिपूर्ण वह पुरुष वहाँ पहुँच कर त्रिपुर में अपने उपदेश से दुश्चार से फल की सिद्धि देने वाला स्त्रियो का धर्म कर दिया था और उन स्त्रियो ने सद्य एव (तुरन्त ही) फल को प्राप्त कर वैसा ही किया था ।।२६।। वे अपने पति और देवता की बुराई कर जनो मे आसक्त हो गई थी । अब भी कलियुग मे उस मायी नारद मुनि के गौरव से अधम स्त्रियाँ अपने स्वामियो का त्याग कर स्वच्छ दता से आचरण किया करती है । स्त्रियो का माता पिता ब धु सखा मित्र और बान्धव भर्त्ता ही है । उस प्रसह माया से वे महान् पाप कर्म करके अपने भर्त्ता के प्रेम से सयुत रहा करती हैं ।।३०।।३१।।३२।।

पाषडे स्थापिते तेन विष्णुना विश्वयोनिना ।
त्यक्ते महेश्वरे दैत्यैस्त्यक्त लिगार्चने तथा ।।३३
स्त्रीधर्मे निखिले नष्टे दुराचारे व्यवस्थिते ।
कृतार्थ इव देवेशो देवै सार्धमुमापतिम् ।।३४
तपसा प्राप्य सर्वज्ञ तुष्टाव पुरुषोत्तम ।
महेश्वराय देवाय नमस्ते परमात्मने ।।३५
नारायणाय शर्वाय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे ।
शाश्वताय ह्यनन्ताय अव्यक्ताय च ते नम ।।३६
एव स्तुत्वा महादेव दडवत्प्रणिपत्य च ।
जजाप रुद्र भगवान्कोटिवार जले स्थित ।।३७
देवाश्च सर्वे ते देव तुष्टुवु परमेश्वरम् ।
सेंद्रा ससाध्या सयमा सरुद्रा समरुद्गणा ।।३८

इस प्रकार से विश्व के योनि अर्थात् कारण विष्णु भगवान् के द्वारा वहाँ पाषण्ड पूर्णतया स्थापित हो गया था और त्रिपुर वासियो ने सब

दैत्यों ने महेश्वर देव का त्याग कर दिया था तथा लिङ्गार्चन करना भी सर्वथा छोड़ दिया था ॥३३॥ स्त्रियों का धर्म पूर्ण तथा नष्ट भ्रष्ट हो गया था और दुराचार सर्वत्र छट गया था। ऐसा जब हो गया तो इसके होने पर देवेश विष्णु कृतार्थ जैसे हो गये थे और फिर वे समस्त देवों को साथ मे लेकर भगवान् उमापति के प्रसन्न करने के कार्य मे प्रवृत्त हो गये थे ॥३४॥ तपस्या के द्वारा सर्वज्ञ महेश्वर को प्राप्त करके पुरुषोत्तम भगवान् ने उनका स्तवन किया था श्री भगवान् ने कहा – महेश्वर देव एव परमात्मा आपके लिये नमस्कार है। आप साक्षात् नारायण हैं सर्व ब्रह्म और ब्रह्म रूपी हैं। आप शाश्वत स्वरूप वाले हैं तथा अनन्त एव अव्यक्त हैं ऐसे आपके लिये नमस्कार है ॥३५॥३६॥ सूतजी ने कहा—इस तरह से विष्णु ने स्तुति करके उनको दण्ड की भाँति भूमि पड कर प्रणाम किया था और इसके अनन्तर भगवान् ने जल मे स्थित होकर एक करोड रुद्र मन्त्र का जप किया था ॥३७॥ उन समस्त देव गण ने इन्द्र साध्य-यम-रुद्र और मरुद्गण के सहित परमेश्वर शिव का स्तवन किया था ॥३८॥

स्तुतस्त्वेव सुरैर्विष्णोर्जपेन च महेश्वर. ।
सोमः सोमामथालिग्य नदि दत्तकरः स्मयन् ॥३९
प्राह गभीरया वाचा देवानालोक्य शकर ।
ज्ञात मयेदमधुना देवकार्यं सुरेश्वरा ॥४०
विष्णोर्मायाबल चैव नारदस्य च धीमत ।
तेपामधर्मनिष्ठाना दैत्याना देवसत्तमा. ॥४१
पुरत्रयविन श च करिष्येहृ सुरात्तमा ।
अथ सब्रह्मका देवा सेंद्रोपेंद्राः समागता ॥४२
एतस्मिन्नतरे तेपा श्रुत्वा शब्दाननेकश ।
कुंभोदरो महातेजा दडेनाताडयत्सुरान् ॥४३
दुद्रुवुस्ते भयाविष्टा देवा ह हेतिवादिनः ।
अपतन्मुनयश्चान्ये देवाश्च धरणीतले ॥४४
अहो विधेर्बल चेति मुनयः कश्यपादय ।
दृष्ट्वापि देवदेवेश देवानां चासुरद्विपाम् ॥४५

इस प्रकार से सुरगण के द्वारा स्तुत होने वाले तथा भगवान् विष्णु के द्वारा किये हुए जप से प्रसन्न महेश्वर उमा का आलिङ्गन करके उमा के सहित नन्दी के ऊपर अपने हाथ को रखकर मुस्कराते हुए आये॥३६॥ और वहाँ शङ्कर ने देवो को देखकर अत्यन्त गम्भीर वाणी से कहा—हे सुरोत्तमो ! अब मैंने देवो के कार्य को समझ लिया है ।।४०।। भगवान् विष्णु के तथा धीमान् नारद के माया के बल को भी मैंने जान लिया है। देव श्रेष्ठो ! वे अधर्म मे निष्ठा रखने वाले जो दैत्य हैं उनके तीनो पुरो का विनाश मैं करूगा ।।४१।। इसके अनन्तर ब्रह्मा और विष्णु के सहित देवगण आ गये थे ।।४२।। इसी बीच मे उन देवगणो के शब्दो का श्रवण करके जो कि उनके मुख से शकर भगवान् के स्तवन तथा प्रसन्न महेश्वर के आश्वासन से आनन्द के अनेक शब्द निकल रहे थे, कुम्भोदर महान् तेज से युक्त वहाँ आ गया था और दण्ड से उसने देवो को ताडित किया था ।।४३।। वे देवता सब हाहाकार करते हुए भय से आविष्ट होकर वहाँ से भाग गये थे और अन्य मुनिगण तथा देव भूमि पर गिर गये थे ।।४४।। तब कश्यप आदि मुनिगण कहने लगे कि विधाता का बल कैसा अद्भुत है। असुरो के शत्रु देवो को देवो के देव का दर्शन भी हो गया तो भी इनकी कैसी दुर्दशा है ।।४५।।

अभाग्यादत्र समाप्तं तु कार्यमित्यपरे द्विजा: ।
प्रोचुर्नम शिवायेति पूज्य चाल्पतरं हृदि ।।४६
तत्र कपर्दी नदीशो महादेवप्रियो मुनि: ।
शूली माली तथा हाली कुंडली वलयी गदी ।।४७
वृषमारुह्य सुश्वेतं ययौ तस्याज्ञया तदा ।
ततो वै नंदिनं दृष्ट्वा गण. कुंभोदरोऽपि सः ।।४८
प्रणम्य नंदिन मूर्ध्ना सह तेन स्वरन्ययौ ।
नंदी भाति महातेजा वृषपृष्ठे वृषध्वजः ।।४६
तुष्टुवुर्गणपेशानं देवदेवमिवापरम् ।
नमस्ते रुद्रभक्ताय रुद्रजाप्यरताय च ।।५०
रुद्रभक्तार्तिनाशाय रौद्रकर्मरताय ते ।

कूष्मांडगणनाथाय योगिनां पतये नमः ॥५१
सर्वदाय शरण्याय सर्वज्ञायार्तिहारिणे।
वेदाना पतये चैव वेदवेद्याय ते नमः ॥५२

हे द्विजो ! अन्य कह रहे थे कि इनके अभाग्य से ही यह कार्य पूर्ण-तया समाप्त नहीं हुआ है । सब हृदय में थोड़ा समर्थन करके 'नमः शिवाय' अर्थात् शिव के लिये नमस्कार है-यह कहने लगे थे ॥४६॥ इस के अनन्तर महादेव के प्रिय मुनि कपर्दी नन्दीश शूली माली-हाली-कुण्डली वलयी गदी श्वेत वृष पर समारोहण करके उस समय मे उसकी आज्ञा से गये थे । उस समय उस कुम्भोदर ने भी नन्दी को देखा था और उसने नन्दी को प्रणाम शिर से किया था और शीघ्रता करते हुए उसके साथ ही चला गया था । वृषध्वज नन्दी वृष के पृष्ठ पर महान् तेजस्वी विशेष रूप से दीप्तिमान् हो रहे थे ॥४७॥४८॥४६॥ देवो ने स्तवन करते हुए कहा—रुद्र के जाप्य मे रति रखने वाले रुद्र के भक्त आपको हमारा नमस्कार है ॥५०॥ आप रुद्र के भक्तो की पीडा के नाश करने वाले हैं और रौद्र कर्म मे रति रखने वाले हैं । कूष्माण्ड गण के स्वामी तथा योगियों के पति आपके लिये हमारा नमस्कार है ॥५१॥ आप सब कुछ प्रदान करने वाले शरण मे आये हुओं की रक्षा करने वाले-सभी कुछ के ज्ञाता और आर्ति के हरण करने वाले हैं। आप वेदो के पति और वेदो के द्वारा जानने के योग्य है ऐसे आपको नमस्कार है ॥५२॥

वज्रिणे वज्रदंष्ट्राय वज्रिवज्रनिवारिणे ।
वज्रालङ्कृतदेहाय वज्रिणाराधिताय ते ॥५३
रक्ताय रक्तनेत्राय रक्ताम्बरधराय ते ।
रक्तानां भवपादाब्जे रुद्रलोकप्रदायिने ॥५४
नमः सेनाधिपतये रुद्राणां पतये नम ।
भूताना भुवनेशानां पतये पापहारिणे ॥५५
रुद्राय रुद्रपतये रौद्रपापहराय ते ।
नमः शिवाय सौम्याय रुद्रभक्ताय ते नमः ॥५६
तत प्रीतो गणाध्यक्ष प्राः देवान्द्विजात्मजः ।

रथं च सारथिं शंभोः कार्मुकं शरमुत्तमम् ॥५७
कर्तुमर्हथ यत्नेन नष्टं मत्वा पुरत्रयम् ।
अथ ते ब्रह्मणा सार्धं तथा वै विश्वकर्मणा ॥५८

आप वज्र धारण करने वाले हैं—वज्र के तुल्य दंष्ट्रा वाले हैं इन्द्र के वज्र को भी निवारण करने वाले-वक्ष से अलङ्कृत देह वाले हैं और वज्री (इन्द्र) के द्वारा आराधित है ऐसे आपको हमारा नमस्कार है ॥५३॥ रक्त वर्णा से युक्त रक्त नेत्र वाले-रक्त वस्त्र धारण करने वाले आपको नमस्कार है। भव के चरण कमल मे अनुराग करने वालो को रुद्र लोक प्रदान करने वाले आपको हमारा नमस्कार है ॥५४॥ सेवा के अधिपति और रुद्रो के पति आपके लिये नमस्कार है। भूतो के तथा भुवनेशो के स्वामी और पापो के हरण करने वाले आपके लिये प्रणाम है ॥५५॥ रुद्र रुद्रो के पति तथा रौद्र पापो के हरण करने वाले आपको नमस्कार है। शिव सौम्य और रुद्र भक्त आपके लिये नमस्कार है ॥५६॥ सूतजी ने कहा—इस प्रकार से स्तवन करने के अनन्तर गणाध्यक्ष बहुत ही प्रसन्न हुए थे और शिलात्मज देवो से बोले—शम्भु के रथ-सारथि-कार्मुक और उत्तम शर यत्न से करने के योग्य होते हैं और पुरत्रय को विनष्ट हुआ मान ले ॥५७॥ इसके अनन्तर उन्होने ब्रह्मा तथा विश्व कर्मा के साथ सुसरब्ध होकर धीमान् देवो के देव के लिये रथ किया था ॥५८॥

॥ १०४–शिवजी का युद्ध-अभियान और त्रिपुर का ध्वंस ॥

अथ रुद्रस्य देवस्य निर्मितो विश्वकर्मणा ।
सर्वलोकमयो दिव्यो रथो यत्नेन सादरम् ॥१
सर्वभूतमयश्चैव सर्वदेवनमस्कृतः ।
सर्वदेवमयश्चैव सौवर्णः सर्वसमतः ॥२
रथांगं दक्षिणं सूर्यो वामांग सोम एव च ।
दक्षिणं द्वादशारं हि षोडशारं तथोत्तरम् । ३
अरेषु तेषु विप्रेंद्राश्चादित्या द्वादशैव तु ।
शशिनः षोडशारेषु कला वामस्य सुव्रताः ॥४

ऋक्षाणि च तदा तस्य वामस्यैव तु भूषणम् ।
नेम्यः षड्टतव श्चैव तयोर्वै विप्रपुंगवाः ॥५
पुष्करं चांतरिक्षं वै रथनीडश्च मंदरः ।
अस्ताद्रिरुदयाद्रिश्च उभौ तौ कूबरौ स्मृतौ ॥६
अधिष्ठानं महामेरुराश्रयाः केसराचलाः ।
वेगः संवत्सरस्तस्य अयने चक्रसंगमौ ॥७

इस अध्याय मे महान् आरोप से शिव का यान त्रिपुर के नाश करने के लिये तथा कार्य की सिद्धि आदि का निरूपण किया जाता है। सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर देवों के देव भगवान् रुद्र का सर्व लोकमय परम दिव्य रथ विश्वकर्मा के द्वारा आदर के साथ बड़े यत्न पूर्वक निर्मित किया गया था ॥१॥ वह रथ सर्वभूतमय-समस्त देवों से नमस्कृत-सर्वदेव मय-सुवर्ण रचित और सर्व सम्मत था ॥२॥ दक्षिण सूर्य रथाङ्ग है अर्थात् दाहिना रथ का चक्र सूर्य है और चन्द्र बाँया रथ का चक्र है। दक्षिण द्वादश अरों वाला है तथा वाम सोलह अरों से युक्त है ॥३॥ हे विप्रेन्द्र वृन्द ! उन द्वादश अरों मे द्वादश ही आदित्य हैं और चन्द्र के सोलह अरों मे सोलह कलाएँ हैं ॥४॥ नक्षत्र उस समय मे उस वाम चक्र के ही भूषण थे। हे विप्र श्रेष्ठो ! उन दोनों की नेमियाँ षट् ऋतुएँ ही थीं ॥५॥ अवकाश अन्तरिक्ष था और सारथि के स्थान में मन्दराचल था। पूर्व और अपर युग-धर अस्ताचल और उदयाद्रि पर्वत कहे गये हैं ॥६॥ उसका मुख्य स्थान पूज्य सुमेरु पर्वत था और मेरु के आश्रय केशराचल प्रत्यन्त पर्वत थे। उसका वेग सम्वत्सर था तथा उसके चक्र सगम अयन थे ॥७॥

मुहूर्ता वंधुरास्तस्य शम्याश्चैव कलाः स्मृताः ।
तस्य काष्ठाः स्मृता घोणा चाक्षदंडाः क्षणाश्च वै ॥८
निमेषाश्चानुकर्षाश्च ईषा चास्य लवाः स्मृताः ।
द्यौर्वरूथं रथस्यास्य स्वर्गमोक्षावुभौ ध्वजौ ॥९
धर्मो विसर्गो दंडोस्य यज्ञा दंडाश्रयाः स्मृताः ।
दक्षिणाः संधयस्तस्य लोहाः पंचाशदग्नयः ॥१०
युगान्तकोटी तौ तस्य धर्मकामावुभौ स्मृतौ ।

ईषादंडस्तथाऽव्यक्त बुद्धिस्तस्यैव नड्वलः ॥११
कोणस्तथा ह्यहंकारो भूतानि च बलं स्मृतम् ।
इन्द्रियाणि च तस्यैव भूषणानि समंततः ॥१२
श्रद्धा च गतिरस्यैव वेदास्तस्य हया. स्मृताः ।
पदानि भूषणान्येव षडंगा न्युपभूषणम् ॥१३
पुराणन्यायमीमासाधर्मशास्त्राणि सुव्रताः ।
बालाश्रया पटाश्चैव सर्वलक्षणसंयुता. ॥१४

उस रथ के तुल्य मुहूर्त्त थे और उसकी वर्त्तुल पट्टिका तीस कला थी। उसकी नासिका काष्ठा थी और क्षण अक्षदण्ड थे। ॥८॥ उसके अघ स्थदारु निमेष थे तथा अक्षियो के स्पन्दकाल ईषा एव लव कहे गये हैं। इस रथ का वरुथ द्यौ था तथा स्वर्ग और मोक्ष ये इस रथ की ध्वजाएँ थी ॥६॥ धर्म विसर्ग इसका दण्ड तथा यज्ञ दण्ड के आश्रय थे। दक्षिणा इसकी सन्धियाँ थी और पचास अग्नियाँ आयस कीलक थे ॥१०॥ उस रथ की दो युगान्त कोटि धर्म और काम ये दोनो कहे गये हैं। उसका ईषा दण्ड अव्यक्त था तथा बुद्धि नड्वल था ॥११॥ अहङ्कार कोण था तथा गगनादि भूत उसका बल बताया गया है। उस रथ के भूषण इन्द्रियाँ थी जो उसके चारो ओर हैं ॥१२॥ श्रद्धा इस रथ की गति थी तथा वेद इस के अश्व बताये गये हैं। वेद के पद विभाग शिक्षादि षडङ्ग उपभूषण थे ॥१३॥ पुराण न्याय मीमांसा और धर्म शास्त्र ये उसके बालाश्रय पट थे जो कि सर्व लक्षणो से सयुत थे ॥१४॥

मन्त्रा घण्टा स्मृता स्तेषां वर्णा पादास्तथाश्रमा ।
अवच्छेदा ह्यनतस्तु सहस्रफणभूषित. ॥१५
दिश पादा रथस्यास्य तथा चोपदिशश्च ह ।
पुष्कराद्या पताकाश्च सौवर्णा रत्नभूषिता ॥१६
समुद्रास्तस्य चत्वारो रथकम्बलिकाः स्मृता. ।
गगाद्या. सरित श्रेष्ठा सर्वाभरण भूषिता ॥१७
चामरासक्तहस्ताग्राः सर्वा स्त्रीरूपशोभिता ।
तत्रतत्र कृतस्थाना शोभयांचक्रिरे रथम् ॥१८

आवहाद्यास्तथा सप्त सोपानं हैममुत्तमम् ।
सारथिर्भगवान्ब्रह्मा देवाभीपुधराः स्मृताः ॥१६
प्रतोदो ब्रह्मणस्तस्य प्रणवो ब्रह्मदैवतम् ।
लोकालोका चलस्तस्य ससोपानः समंततः ॥२०
विपमश्च तदाबाह्यो मानसाद्रिः सुशोभनः ।
नासा. समंततस्तस्य सर्व एवाचलाः स्मृताः ॥२१

उस रथ के घण्टा मन्त्र थे। उसके वर्णादि और पाद छन्द का चतुर्थ भाग आश्रम ये सब कम्बलो के घण्टा कहे गये हैं। उसका बन्धन रज्जु शेष था जो कि एक सहस्र फनो से भूषित है ॥१५॥ दिशाऐं और उपदिशाऐं इस रथ के पाद थे। पुष्करादि जो मेघ थे वे ही इसके रत्नो से भूषित सुवर्ण की पताकाऐं थी ॥१६॥ चारो समुद्र उस रथ की बाह्य कम्बल थे। गङ्गा आदि श्रेष्ठ सरिताऐं समस्त आभरणो से भूषित हाथो के अग्र भाग मे चमर लिये हुए सब स्त्री रूप मे शोभित थी। वहाँ-वहाँ अपना स्थान बनाकर उस रथ की शोभा को कर रही थी ॥१७॥१८॥ आवहाद्य सात वायु नेमियाँ सुवर्ण की सोपान थी। भगवान् ब्रह्मा इसके सारथि थे और देवता रथ की रश्मियो के ग्रहण करने वाले थे ॥१६॥ उसका प्रतोद ब्रह्म दैवत ब्रह्मा का प्रणव था। सात वायु स्कन्धात्मक सोपान से समन्वित सम प्रमाण से विस्तृत लोका लोकाचल था ॥२०॥ उस रथ का आभ्यन्तर विपम अर्थात् पाद न्यासाशोभाग सुन्दर मनसाद्रि था। उस रथ के चारो ओर समस्त पर्वत नासा कहे गये हैं ॥२१॥

तलाः कपोता कापोताः सर्वे तलनिवासिनः ।
मेरुरेव महाछत्र मदरः पार्श्वडिंडिमः ॥२२
शैलेंद्रः कार्मुक चैव ज्या भुजगाधिपः स्वयम् ।
कालरः त्र्या तथैवेह तथेन्द्रधनुषा पुनः ॥२३
घंटा सरस्वती देवी धनुषः श्रुतिरूपिणी ।
इपुर्विष्णुर्महातेजा. शल्यं सोम. शरस्य च ॥२४
कालाग्निस्तच्छरस्यैव साक्षात्तीक्ष्ण. सुदारुण ।
अनीकं विपसभूतं वायवो वाजकाः स्मृताः ॥२५

एवं कृत्वा रथं दिव्यं कार्मुकं च शरं तथा ।
सारथि जगतां चैव ब्रह्माणं प्रभुमीश्वरम् । २६
आरुरोह रथं दिव्यं रणमंडनधृग्भवः ।
सर्वदेवगणैर्युक्तं कंपयन्निव रोदसी ॥२७
ऋषिभिः स्तूयमानश्च वंद्यमानश्च वंदिभिः ।
उपनृत्यश्चाप्सरसां गणैर्नृत्यविशारदैः ॥२८

सातल मज्जन थे और सम्पूर्ण तलवासी कपोत पक्षियों के समान थे जो कि प्रायः कूपादि दरियों मे रहा करते हैं । मेरु पर्वत ही इसका महान् छत्र है और मन्दर पर्वत इसका पृष्ठ वाद्य है ॥२२॥ शैलो का स्वामी मेरु-भुजङ्गो का प्रभु वासुकि इसका स्वयं धनुष की ज्या अर्थात् मौर्वी है जो कि कालरात्रि और इन्द्र के धनुष के साथ होती है ॥२३॥ श्रुतियो के रूप वाली सरस्वती देवी धनुष के घण्टा हैं । महान् तेज वाले विष्णु बाण हैं और शर का शल्य अर्थात् आयस निर्मित अग्रभाग चन्द्र है ॥२४॥ प्रलय की अग्नि उस शर का निशित अग्रभाग वाला कालकूट विष से समुत्पन्न अनीक अर्थात् बल है । आवहाद्य वायु उसके विच्छ कहे गये हैं ॥२५॥ इस प्रकार से देवो के द्वारा परम दिव्य रथ-धनुष शर और जगत् के प्रभु ब्रह्मा को सारथि बनाकर प्रस्तुत किया गया था । उस पर कवच-मुकुट आदि रण के मण्डन धारण करने वाले भव समस्त देवगणों से युक्त समग्र रोदसी को कम्पित करते हुए आरूढ हुए थे ॥२६॥२७॥ उस समय में शिव ऋषियो के द्वारा स्तुति किये गये थे और वन्दी गण के द्वारा वन्द्यमान हुए थे । अप्सराऐं उनके समक्ष मे नृत्य करती थीं जो कि नृत्य कला की महान् पण्डित थीं ॥२८॥

सुशोभमानो वरदः संप्रेक्ष्यैव च सारथिम् ।
तस्मिन्नारोहति रथं कल्पितं लोकसंभृतम् ॥२६
शिरोभिः पतिता भूमि तुरगा वेदसंभवाः ।
अथाधस्ताद्रथस्यास्य भगवान् धरणीधरः ॥३०
वृषेन्द्ररूपी चोत्थाय स्थापयामास वै क्षणम् ।
क्षणांतरे वृषेंद्रोपि जानुभ्यामगमद्धराम् ॥३१

अभीपुहस्तो भगवानुद्यम्य च हयान् विभुः ।
स्थापयामास देवस्य वचनाद्वै रथ शु भम् । ३२
ततोऽश्वाश्चोदयामास मनोमारुतरंहसः ।
पुराण्युद्दिश्य खस्थानि दानवानां तरस्विनाम् ॥३३
अथाह भगवान् रुद्रो देवानालोक्य शंकरः ।
पशूनामाधिपत्यं मे दत्तं हन्मि ततोऽसुरान् ॥३४
पृथक्पशुत्व देवानां तथान्येषां सुरोत्तमाः ।
कल्पयित्वैव वध्यास्ते नान्यथा नैव सत्तमाः ॥३५

परम सुन्दर शोभा से सम्पन्न होते हुए वरद प्रभु शंकर सारथि को देखकर ही उस लोक संभृत कल्पित रथ पर आरोहण कर रहे थे। वेदों से सम्भूत तुग्ग शिरो से भूमि पर गिर गये थे। इसके अनन्तर भगवान् धरणी धर इस रथ के नीचे के भाग मे थे उन वृषेन्द्र रूपी शेष ने रथ के नीचे से उठाकर क्षण मे स्थापित किया था। एक क्षण के अन्तर मे वृषेन्द्र भी जानुओं से धरा मे चले गये थे ॥२६॥३०॥३१॥ अभीपु हस्त वाले विभु भगवान् ने हयो को उद्यत करके देव के वचन से उस शुभ रथ को स्थापित किया था ॥३२॥ इसके अनन्तर मन और वायु के समान वेग वाले उन अश्वो को सम्प्रेरित किया था और आकाश में स्थित परम तरस्वी दानवों के पुरों को उद्देश्य करके उसी ओर रथ प्रेरित किया गया था ॥३३॥ इसके अनन्तर भगवान् रुद्र शङ्कर ने देवो को देखकर कहा था—मैंने ही पशुओं का आधिपत्य दिया था अब मैं उन असुरों का हनन करता हूँ ॥३४॥ अब हे सुरोत्तमो ! अन्य देवो का पृथक् पशुत्व कल्पित करके उनका वध किया जाना चाहिए। अन्य किसी प्रकार से उनका वध नही होगा ॥३५॥

इति श्रुत्वा वचः सर्वं देवदेवस्य धीमतः ।
विषादमगमन् सर्वे पशुत्वं प्रति शंकिताः ॥३६
तेषां भाव ततो ज्ञात्वा देवस्तानिदमब्रवीत् ।
मा वोऽस्तु पशुभावेस्मिन् भयं विबुधसत्तमाः ॥३७
श्रूयतां पशुभावस्य विमोक्षः क्रियतां च सः ।

यो वै पाशुपत दिव्यं चरिष्यति स मोक्ष्यति ।।३८
पशुत्वादिति सत्यं च प्रतिज्ञातं समाहिताः ।
ये च प्यन्ये चरिष्यंति व्रत पाशुपतं मम ।।३९
म क्ष्यंति ते न सदेह- पशुत्वात्सुर सत्तमाः ।
नैष्ठिकं द्वादशाब्दं वा तदर्धं वर्षकत्रयम् ।।४०
शुश्रूषां कारयेद्यस्तु स पशुत्वाद्विमुच्यते ।
तस्मात्परमिदं दिव्यं चरिष्यथ सुरोत्तमाः ।।४१
तथेति चाब्रुवन्देवाः शिवे लोकनमस्कृते ।
तस्माद्वं पशव. सर्वे देवासुरनराः प्रभोः ।।४२

देवो के देव धीमान् भगवान् शङ्कर के इस समस्त वचन को सुनकर समस्त देवगण पशुत्व के प्रति शङ्कित होते हुए अत्यन्त विषाद से युक्त हो गये थे ।।३८।। इसके उपरान्त उन देवताओं के भाव को जानकर शङ्कर देव उनसे बोले—हे विबुध श्रेष्ठो ! इस पशुभाव मे आपको भय नही करना चाहिए । ।।३७।। अब पशुभाव का विमोक्ष आप लोग श्रवण करलो और फिर उसे करना चाहिए । जो पाशुपत दिव्य व्रत का चरण करेगा वह ही उसका भोग करेगा ।।३८।। पशुत्व से समाहित होकर सत्य की प्रतिज्ञा की गई है । अन्य भी जो कोई मेरे इस पाशुपत व्रत का चरण करेगा वे पशुत्व से मुक्त हो जायगे—इसमे कुछ भी सन्देह नही है । वह नैष्ठिक द्वादश वर्ष का है उसका आधा और तीन वर्ष का भी है । जो सुश्रूषा करावेगा वह पशुत्व मे मुक्त हो जायगा । इसलिये हे देवो मे श्रेष्ठो ! इस परम दिव्य का आप लोग समाचरण करेंगे ।।३९।।४०।। ।।४१।। समस्त देवों ने ऐसा ही होगा—यह सर्व लोकों के द्वारा नमस्कृत शिव के विषय में यह कहा था । इससे प्रभु के समस्त देवता-असुर और नर पशु हैं ।।४२।।

रुद्र. पशुपतिश्चैव पशुपाशविमोचकः ।
यः पशुस्तत्पशुत्व च व्रतेनानेन संत्यजेत् ।।४३
सत्कृत्वा न च पापीयानिति शास्त्रस्य निश्चयः ।
ततो विनायकः साक्षाद्बालोऽबालपराक्रमः ।।४४

अपूजितस्तदा देवं प्राह देवान्निवारयन् ।
मामपूज्य जगत्यस्मिन् भक्ष्यभोज्यादिभिः शुभैः ॥४५
कः पुमान्सिद्धिमाप्नोति देवो वा दानवोऽपि वा ।
ततस्तस्मिन् क्षणादेव देवकार्ये सुरेश्वराः ॥४६
विघ्नं करिष्ये देवेश कथ कर्त्तुं समुद्यताः ।
तत सेन्द्रा सुराः सर्वे भीता सपूज्य त प्रभुम् ॥४७
अथ निरीक्ष्य सुरेश्वरमीश्वरं सगणमद्रिसुतासहित तदा ।
त्रिपुरंगतलोपरि सस्थित सुरगणोनुजगाम स्वयं तथा ॥४८
जगत्त्रय सर्वमिवापर तत् पुरत्रय तत्र विभाति सम्यक् ।
नरेश्वरैश्चैव गणैश्च देवै सुरेतरैश्च त्रिविधैर्मुनीन्द्राः ॥४९

पशुपति रुद्र पशुपाश के विमोचन करने वाले हैं। जो पशु है वह इस पशुत्व को इस व्रत से त्याग देवे ॥४३॥ इस करके वह पापीयान् नहीं रहा करता है-यह शास्त्र का निश्चय है। इसके अनन्तर बाल स्वरूप भी विनायक महान् पराक्रम वाले हैं ॥४४॥ उस समय मे देवो के द्वारा पूजित न होकर देवो को निवारण करते हुए विनायक ने कहा—श्री विनायक ने कहा—शुभ भक्ष्य और भोज्य आदि पदार्थों के द्वारा इस जगत् में मुझको न पूजकर कौन पुरुष देव हो या दानव हो सिद्धि को प्राप्त करता है। हे सुरेश्वरो! इसके पश्चात् क्षण भर मे ही देव कार्य मे विघ्न कर दूंगा। हे देवेश! आप लोग कैसे करने को समुद्यत हो गये हैं? इसके अनन्तर इन्द्र के सहित समस्त देवगण भयभीत हो गये थे और उस प्रभु की उन्होंने भली-भाँति पूजा की थी ॥४५॥४६॥४७॥ इसके अनन्तर उस समय में गणों के सहित तथा अद्रि सुता पार्वती से युक्त सुरो के ईश्वर भगवान् ईश्वर को देखकर त्रिपुर के रगतल के ऊपर स्थित देवो का गण स्वय पीछे चला गया था ॥४८॥ वह पुरत्रय वहाँ पर दूसरे सम्पूर्ण जगत् त्रय की ही भाँति अच्छी तरह से प्रकाशित हो रहा है। हे मुनेन्द्र गण! वहाँ नरेश्वर गण-देव तीनों प्रकार के असुर सभी से वह युक्त था ॥४९॥

अथ सज्यं धनु कृत्वा शर्वः संधाय त शरम् ।

युक्त्वा प शुपतास्त्रेण त्रिपुर समचिंतयत् ॥५०
तस्मिंस्थिते महादेवे रुद्रे विततकार्मुके ।
पुराणि तेन कालेन जग्मुरेकत्वमाशु वै ॥५१
एकीभावं गते चैव त्रिपुरे समुपागते ।
बभूव तुमुलो हर्षो देवताना महात्मनाम् ॥५२
ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षय ।
जयेति वाचो मुमुचु संस्तुवंतोष्टमूर्तिनम् ॥५३
अथाह भगवा ब्रह्मा भगनेत्रनिपातनम् ।
पुष्ययोगेपि संप्राप्ते लीलावशमुमापतिम् ॥५४
स्थाने तव महादेव चेष्टेय परमेश्वर ।
पूर्वदेवाश्च देवाश्च समास्तव यतः प्रभो ॥५५
तथापि देवा धर्मिष्ठाः पूर्वदेवाश्च पापिनः ।
यतस्तस्माज्जगन्नाथ लीला त्यक्तुमिहार्हसि ॥५६

इषुणा भूतसंघैश्च विष्णुना च मया प्रभो ॥५७
पुण्ययोगे त्वनुप्राप्ते पुर दग्धुमिहार्हसि ।
यावन्न यांति देवेश वियोगं तावदेव तु ॥५८
दग्धुमर्हसि शीघ्रं त्व त्रीण्येतानि पुराणि वै ।
अथ देवो महादेवः सर्वज्ञस्तदवैक्षत ॥५९
पुरत्रयं विरूपाक्षस्तत्क्षणाद्भस्म वै कृतम् ।
सोमश्च भगवान्विष्णुः कालाग्निर्वायुरेव च ॥६०
शरे व्यवस्थिताः सर्वे देवमूचुः प्रणम्य तम् ।
दग्धमप्यथ देवेश वीक्षणेन पुरत्रयम् ॥६१
अस्मद्धितार्थं देवेश शरं मोक्तुमिहार्हसि ।
अथ संमृज्य धनुषो ज्यां हसन् त्रिपुरार्दनः ॥६२
मुमोच बाणं विप्रेंद्रा व्याकृष्याकर्णमीश्वरः ।
तत्क्षणात्त्रिपुरं दग्ध्वा त्रिपुरांतकरः शरः ॥६३
देवदेवं समासाद्य नमस्कृत्वा व्यवस्थितः ।
रेजे पुरत्रयं दग्धं दैत्यकोटिशतैर्वृतम् ॥६४

हे प्रभो ! हे ईश ! पुरत्रय को दग्ध करने के लिये आपको रथ और ध्वजा से क्या प्रयोजन है ! बाण से-भूतों के संघों से-विष्णु से और मुझसे पुष्य नक्षत्र के योग अनुप्राप्त हो जाने पर इस पुर को आप दग्ध करने के लिये योग्य हैं। हे देवेश, जब तक वियोग नहीं होता है तभी तक आप शीघ्र इन तीन पुरो को दग्ध करने को योग्य होते हैं। इसके पश्चात् सर्वज्ञ महादेव देव ने उसे देखा था ॥५७॥५८॥५९॥ विरूपाक्ष ने उसी क्षण में पुरत्रय को भस्म कर दिया था। सोम-भगवान् विष्णु-कालाग्नि-वायु ये सब शर मे व्यवस्थित थे। उन्होंने देव को प्रणाम करके कहा—हे देवेश ! यह पुरत्रय तो आपके वीक्षण से ही दग्ध हो गया है ॥६०॥६१॥ हे देवेश ! हमारे हित के लिये आप इस शर को मुक्त करने के योग्य होते हैं। इसके अनन्तर त्रिपुरार्दन ने धनुष की भली-भाँति शुद्ध करके हँसते हुए ज्या को चढ़ा कर हे विप्रेन्द्रगण ! भगवान् ईश्वर ने कर्ण पर्यन्त खींचकर बाण को छोड़ दिया था। उसी समय मे त्रिपुरान्तर

के कर वाला शर त्रिपुर मे पहुँचा और तुरन्त उसे दग्ध करके फिर वापिस देवेश के आ गया था और महादेव को नमस्कार करके स्थित हो गया था शत करोड दैत्यो से युक्त वह पुरत्रय दग्ध होकर दीति वाला हुआ था ॥६२॥६३॥६४॥

इपुणा तेन कल्पाते रुद्रेणेव जगत्त्रयम् ।
ये पूजयंति तत्रापि दैत्या रुद्रं सबाधवाः ॥६५
गाणपत्यं तदा शभोर्ययुः पूजाविधेर्बलात् ।
न किंचिदब्रुवन्देवाः सेंद्रोपेंद्रा गणेश्वराः ॥६६
भयाद्देवं निरीक्ष्यैव देवी हिमवतः सुताम् ।
दृष्ट्वा भीत तदानीक देवानां देवपुंगवः ॥६७
किं चेत्याह तदा देवान्प्रणेमुस्त समंततः ॥६८
ववंदिरे नंदिनमिंदुभूषणं ववंदिरे पर्वतराजसंभवाम् ।
ववंदिरे चाद्रिसुतासुतं प्रभु ववंदिरे देवगणा महेश्वरम् ॥६९
तुष्टाव हृदये ब्रह्मा देवैः सह समाहितः ।
विष्णुना च भवं देव त्रिपुराराितिमीश्वरम् ॥७०

कल्पान्त मे रुद्र से जगत् त्रय की भाँति उस इषु से जो बान्धवो के सहित दैत्य वहाँ पर भी पूजा किया करते हैं उस समय शम्भु की पूजा विधि के बल से गाणपत्य पद को प्राप्त हो गये थे और इन्द्र तथा उपेन्द्र के सहित गणेश्वर देव कुछ भी नही बोले ॥६५॥६६॥ इस प्रकार से देव पुङ्गव शिव ने देव को और हिमवान् की सुता को देखकर उस समय में देवों की अनीक को भीत देखा ॥६७॥ और देवो से कहा, उन देवो ने उसको प्रणाम किया था ॥६८॥ इन्दु भूषण वाले नन्दी की वन्दना की तथा पर्वत राज की पुत्री की वन्दना की थी । और अद्रि सुता के सुत प्रभु की वन्दना की थी तथा देवगणों ने महेश्वर की वन्दना की थी ॥६९॥ देवताओं के सहित ब्रह्मा ने पूर्णतया समाहित होकर हृदय मे स्तवन किया था और विष्णु ने भी त्रिपुर के अराति ईश्वर भव देव का स्तवन किया था ॥७०॥

॥ १०५—लिंगार्चन और लिंग पूजा फल ॥

गते महेश्वरे देवे दग्ध्वा च त्रिपुरं क्षणात् ।
सदस्याह सुरेंद्राणां भगवान्पद्मसंभवः ॥१
संत्यज्य देवदेवेश लिंगमूर्ति महेश्वरम् ।
तारपौत्रो महातेजास्तारकस्य सुतो बली ॥२
तारकाक्षोपि दितिजः कमलाक्षश्च वीर्यवान् ।
विद्युन्माली च दैत्येशः अन्ये चापि सबांधवाः ॥३
त्यक्त्वा देवं महादेवं मायया च हरेः प्रभोः ।
सर्वे विनष्टाः प्रध्वस्ताः स्वपुरैः पुर संभवैः ॥४
तस्मात्सदा पूजनीयो लिंगमूर्तिः सदाशिवः ।
यावत्पूजा सुरेशानां तावदेव स्थितिर्यतः ॥५
पूजनीयः शिवो नित्यं श्रद्धया देवपुंगवैः ।
सर्वलिंगमयो लोकः सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् । ६
तस्मात्सपूजयेल्लिंगं य इच्छेत्सिद्धिमात्मनः ।
सर्वे लिंगार्चनादेव देवा दैत्याश्च दानवाः ॥७

इस अध्याय में देवों को ब्रह्मा के द्वारा कहा हुआ लिङ्गार्चन की विधि और उसका फल निरूपित किया जाता है । सूतजी ने कहा—क्षण भर में त्रिपुर का दाह करके देव वर महादेव के चले जाने पर पद्म सम्भव भगवान् ब्रह्मा ने देवों की सभा में कहा था ॥१॥ पितामह बोले—देवों के भी देवेश लिङ्ग मूर्ति महेश्वर का त्याग करके तार का पौत्र महान् तेज वाला अति बलवान् तारक का पुत्र-दिति से जन्म लेने वाला तारकाक्ष और वीर्यवान् कमलाक्ष तथा दैत्येश विद्युन्माली और बान्धवों के सहित अन्य भी प्रभु हरि की माया से महादेव देव का त्याग करके सब विनष्ट हो गये थे और पुर में होने वाले एव पुरों के साथ पूर्णतया विध्वस्त हो गये थे ॥२॥३॥४॥ इसलिये लिङ्ग मूर्ति भगवान् सदा शिव का सर्वदा पूजन करना चाहिए । क्योंकि जब तक सुरेशों की पूजा का क्रम है तभी तक स्थिति है ॥५॥ देव पुङ्गवों को अति श्रद्धा से शिव का नित्य ही पूजन करना चाहिए । यह लोक सर्व लिङ्गमय है और सब

लिङ्ग में ही प्रतिष्ठित है ॥६॥ जो अपनी कोई सिद्धि की इच्छा करता है तो लिङ्ग की पूजा करे। लिङ्ग पूजा से ही समस्त देव-दैत्य और दानव सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥७॥

यक्षा विद्याधराः सिद्धा राक्षसाः पिशिताशनाः।
पितरो मुनयश्चापि पिशाचाः किन्नरादयः ॥८
अर्चयित्वा लिंगमूर्ति संसिद्धा नात्र संशयः।
तस्माल्लिंगं यजेन्नित्यं येन केनापि वा सुराः ॥९
पशवश्च वयं तस्य देवदेवस्य धीमतः।
पशुत्वं च परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं ततः ॥१०
पूजनीयो महादेवो लिंगमूर्तिः सनातनः।
विशोध्य चैव भूतानि पंचभिः प्रणवैः समम् ॥११
प्राणायामैः समायुक्तैः पंचभिः सुरपुंगवाः।
चतुभिः प्रणवैश्चैव प्राणायामपरायणैः ॥१२
त्रिभिश्च प्रणवैर्देवाः प्राणायामैस्तथाविधैः।
द्विधा न्यस्य तथाकार प्राणायामपरायण ॥१३
ततश्चोंकारमुच्चार्य प्राणापानौ नियम्य च।
ज्ञानामृतेन सर्वांगान्या पूर्य प्रणवेन च ॥१४

यक्ष विद्याधर-सिद्ध और मांस भोजी राक्षस-पितृगण-मुनि लोग-पिशाच और किन्नर गण आदि सब भगवान् शिव की लिङ्ग मूर्ति का अर्चन करके ससिद्ध हुए हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस कारण से सुरों में जिस किसी को भी नित्य ही लिङ्ग की समर्चना अवश्य करनी चाहिए ॥८॥९॥ उन देवों के देव धीमान् के हम सब पशु हैं और पशुत्व का त्याग करके पाशुपत करना चाहिए। पाँच प्रणवों के द्वारा भूतों की विशुद्धि करके सनातन शिव की लिङ्ग मूर्ति की पूजा करनी ही चाहिए ॥१०॥११॥ अब उन का प्रकार बताते हुए कहते हैं कि गगनादि जो पाँच महाभूत हैं उन्हें पाँच प्रणवों के समायुक्त प्राणायामों के द्वारा विशोधन करे। चार प्रणवों से युक्त प्राणायामों द्वारा-तथाविध तीन प्रणव युक्त प्राणायामों से-दो बार ही प्रणव सहित प्राणायाम से तथा ओङ्कार

का उच्चारण कर और प्राणापान को नियमित कर और ज्ञानामृत प्रणव से समस्त अङ्गों को आपूरित करे ।।१२।।१३।।१४।।

गुणत्रयं चतुर्धाख्यमहंकारं च सुव्रताः ।
तन्मात्राणि च भूतानि तथा बुद्धीन्द्रियाणि च ।।१५
कर्मेंद्रियाणि सशोध्य पुरुषं युगलं तथा ।
चिदात्मानं तनुं कृत्वा चाग्निर्भस्मेति संस्पृशेत् ।।१६
वायुर्भस्मेति च व्योम तथाम्भो पृथिवी तथा ।
त्रियायुषं त्रिसध्य च धूलयेद्भसितेन यः ।।१७
स योगी सर्वतत्त्वज्ञो व्रतं पाशुपतं त्विदम् ।
भवेन पाशमोक्षार्थं कथितं देवसत्तमाः ।।१८
एव पाशुपतं कृत्वा सपूज्य परमेश्वरम् ।
लिंगे पुरा मया दृष्टे विष्णुना च महात्मना ।।१९
पशवो नैव जायंते वर्षमात्रेण दवताः ।
अस्माभि. सर्वकार्याणां देवमभ्यर्च्य यत्नतः ।।२०
वाह्ये चाभ्यतरे चैव मन्ये कर्तव्यमीश्वरम् ।
प्रतिज्ञा मम विष्णोश्च द्विव्यपा सुरसत्तमाः ।।२१

तीनो गुण चतुर्धाख्य अर्थात् मन, बुद्धि, महङ्कार और चित्त को तथा अहङ्कार को पञ्चतन्मात्रा-पचभूत ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ इन सब का सशोधन करके तैजस प्राज्ञ दोनो प्रकार के युगल पुरुष का सशोधन करे । चैतन्य रूप तनु की भावना करके 'अग्नि'–इत्यादि मन्त्रो से भस्म का स्पर्श करना चाहिए ।।१५।।१६।। वायु-व्योम-अम्भ और पृथ्वी को त्रिया-युष जमदग्ने –इत्यादि मन्त्रों के द्वारा तीनो सन्ध्या काल में भस्म से जो धूलित करता है वह सर्व तत्वज्ञाता योगी है यह पाशुपत व्रत है । हे देव सत्तमो ! यह भव देव ने पाश के मोक्ष के लिये कहा है ।।१७।।१८।। इस प्रकार से पाशुपत व्रत करके मेरे द्वारा और महात्मा विष्णु के द्वारा प्रथम दृष्ट लिङ्ग में परमेश्वर का पूजा करे तो एक वर्ष में देवता पशु नहीं होंगे । हम ब्रह्मा विष्णु और रुद्रो के साथ वाह्य और आभ्यन्तर में ईश्वर की अभ्यर्चना करके समस्त कार्यों की कर्त्तव्यता होती है यह

मानते हैं। हे सुरश्रेष्ठो ! मेरी और विष्णु की यह दिव्य प्रतिज्ञा है और मुनियों की भी ऐसी ही प्रतिज्ञा है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इससे शिव का पूजन करना ही चाहिए ॥१९॥२०॥२१॥

मुनीनां च न संदेहस्तस्मात्संपूजयेच्छिवम् ।
सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः सा च मूकता । २२
यत्क्षणं वा मुहूर्तं वा शिवमेकं न चिंतयेत् ।
भवभक्तिपरा ये च भवप्रणतचेतसः ॥२३
भवसंस्मरणोद्युक्ता न ते दुःखस्य भाजनम् ।
भवनानि मनोज्ञानि दिव्यमाभरणं स्त्रियः ॥२४
धनं वा तुष्टिपर्यंतं शिवपूजाविधेः फलम् ।
ये वांछंति महाभोगान् राज्यं च त्रिदशालये ।
तेऽर्चयंतु सदा कालं लिंगमूर्तिं महेश्वरम् ॥२५
हत्वा भित्वा च भूतानि दग्ध्वा सर्वमिदं जगत् ॥२६
यजेदेकं विरूपाक्षं न पापैः स प्रलिप्यते ।
शैलं लिंगं मदीयं हि सर्वदेवनमस्कृतम् ॥२७
इत्युक्त्वा पूर्वमभ्यर्च्य रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम् ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभि र्देवदेवं त्रियंबकम् ॥२८
तदाप्रभृति शक्राद्याः पूजयामासुरीश्वरम् ।
साक्षात्पाशुपतं कृत्वा भस्मोद्धूलितविग्रहाः ॥ ९

वह हानि है महान् छिद्र है-वह मोह है और वह मूकता है जिस क्षण और मुहूर्त मे एक शिव का चिन्तन नहीं करता है। जो भव की भक्ति मे परायण हैं और भव के चरणों मे जिनका चित्त प्रणव रहता है तथा भव के सदा संस्मरण मे जो उद्युक्त रहते हैं वे कभी भी दुःख के भाजन नही हुआ करते हैं। भव भक्तों के भवन परम मनोज्ञ होते हैं— दिव्य आभरण-स्त्रियाँ और तुष्टि पर्यन्त धन इन सब का होना शिव की पूजा का प्रत्यक्ष फल होता है। जो पुरुष महान् भोगों के प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं तथा देवों के स्थान मे राज्य की कामना करते हैं उन्हें सर्वकाल मे लिङ्ग मूर्ति महेश्वर की पूजा करनी चाहिए ॥२२॥२३॥२४॥

॥२५॥ भूतो का हनन और भेदन करके और इस समस्त जगत् को दग्ध करके भी एक भगवान् विरूपाक्ष का जो यजन करता है वह कभी भी पापो से प्रलिप्त नही होता है। मेरा शिलामय सर्व देवो से नमस्कृत लिङ्ग है-यह कहकर पहिले त्रिभुवनेश्वर रुद्र की अभ्यर्चना करे और फिर इष्ट व शिवो के द्वारा त्रियम्बक देव का स्तवन करे। ब्रह्मा के इस उपदेश काल से आरम्भ करके इन्द्र आदि देवो ने ईश्वर की पूजा की थी और साक्षात् पाशुपत व्रत करके भस्म से उद्धूलित विग्रह वाले हुए थे। ॥२६॥२७॥२८॥२९॥

॥ १०६-वज्रवाहिनिका विद्या निरूपण ॥

निग्रहोऽघोररूपोयं कथितोऽस्माकमुत्तमम् ।
वज्रवाहनिका विद्या वक्तुमर्हसि सत्तम ॥१
वज्रवाहनिका नाम सर्वशत्रुभयंकरी ।
अनया सेचयेद्वज्र नृपाणां साधयेत्तथा ॥२
वज्र कृत्वा विधानेन तद्वज्रमभिषिच्य च ।
अनया विद्यया तस्मिन्विन्यसेत्काचनेन च ॥३
ततश्चाक्षरलक्ष च जपेद्विद्वान्समाहितः ।
वज्री दशाश जुहुयाद्वज्रकुंडे घृतादिभिः ॥४
तद्वज्रं गोपयेन्नित्य दापयेन्नृपतेस्ततः ।
तेन वज्रेण वै गच्छञ्छत्रूञ्जीयाद्रणाजिरे ॥५
पुरा पिता महेनैव लब्ध्वा विद्या प्रयत्नतः ।
दवी शक्रोपकारार्थं साक्षाद्वज्रेश्वरी तथा ॥६

ऋषियो ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! आपने यह अघोर रूप निग्रह हम लोगो के समक्ष मे बता दिया है जो कि अति उत्तम है। अब वज्रवाहनिका विद्या के बताने के आप योग्य होते हैं ॥१॥ सूतजी ने कहा वज्र वाहनिका विद्या समस्त शत्रुओ के लिये भय के उत्पन्न करने वाली है। इसके द्वारा वज्र का सेवन करे तथा नृपो को उस प्रकार का वज्र समर्पित कर देना चाहिए ॥२॥ विधि-विधान से वज्र की रचना कराकर

उस वज्र का अभिषेक करे फिर इस विद्या के द्वारा उस पर सुवर्ण से विन्यास करे अर्थात् लिखना चाहिए ।।३।। इसके अनन्तर वज्र से विशिष्ट विद्वान् समाहित होकर अक्षर लक्ष जाप करे अर्थात् मन्त्र के जितने वर्ण हो उतने ही लाख सख्या वाला जप होना चाहिए । जप सख्या का दशवाँ भाग वज्र कुण्ड में घृत आदि से हवन करना चाहिए ।।४।। फिर उसकी नित्य रक्षा करे और राजा को दिला देवे । उस वज्र को साथ लेकर जाने वाला राजा रण क्षेत्र मे विजय प्राप्त किया करता है ।।५।। अब इस विद्या के प्राप्त होने की प्रकार बताया जाता है—पहिले प्राचीन काल मे यह वज्रेश्वरी महा विद्या पितामह ब्रह्मा ने भगवान् महेश्वर से बहुत प्रयत्न से प्राप्त की थी और इन्द्र के उपकारार्थ इस साक्षात् वज्रेश्वरी विद्या देवी का उपयोग किया गया था ।।६।।

पुरा त्वष्टा प्रजानाथो हतपुत्रः सुरेश्वरात् ।
विद्यया हरत सोममिन्द्रवरेण सुव्रता ।।७
तस्मिन्यज्ञ यथाप्राप्त विधिनोपकृतं हवि ।
तदैच्छन महाबाहुर्विश्वरूपविमर्दन' ।।८
मत्पुत्रमवधी शक न दास्ये तव शोभनम् ।
भाग भ.ग हंता नैव विश्वरूपो हतस्त्वया ।।९
इत्युक्त्वा चाश्रम सर्व माहयाम स मायया ।
ततो माया विनिर्भिद्य विश्वरूपविमर्दन ।।१०
प्रमह्य सोममपिवत्सगणैश्च शचीपति ।
ततस्तच्छेषमादाय क्रोधाविष्ट प्रजापति ।।११

पहिले समय मे विश्वरूपोपदिष्ट विद्या से सोम का हरण करने वाले सुरेश्वर से हतपुत्र त्वष्टा प्रजानाथ उस सोमयाग में यथा प्राप्त विधि से उपहृत हवि महाबाहु विश्वरूप विमर्दन ने इच्छा की थी ।।७।।८।। हे शक्र ! मेरे पुत्र का हनन किया है और आपके शोभन भाग को नहीं देगा । हे सुव्रतो ! आपने विश्वरूप का हनन किया है । भाग के प्राप्त करने की योग्यता वाले न नहीं—यह शक्र को पैर से कहकर माया से सम्पूर्ण आश्रम को मोहित किया था । इसके अनन्तर माया का भेदन

कर विश्वरूप के विमर्दन करने वाले शची के पति इन्द्र ने बलात् गणों के सहित सोम का पान किया था। उस शेष सोम को लाकर प्रजापति क्रोध मे भर गये थे ॥६॥१०॥११॥

इंद्रस्य शत्रो वर्धस्व स्वाहेत्यग्नौ जुहाव ह।
ततः कालाग्निसकाशो वर्तनाद्वृत्रसंज्ञित. ॥१२
प्रादुरासीत्सुरेशारिर्दुद्राव च वृषातकः।
ततः किरीटी भगवान्परित्यज्य दिवं क्षणात् ॥१३
सहस्रनेत्रः सगणो दुद्राव भयविह्वलः।
तदा तमाह स विभुर्दृष्टो ब्रह्मा च विश्वसृट् ॥१४
त्यक्त्वा वज्रं तमेतेन जहीऽरिमरिंदमः।
सोऽपि सन्नह्य देवेद्रो देवैः सार्धं महाभुजः ॥१५
निहत्य चाप्रयत्नेन गतवान्विगतज्वरः।
तस्माद्वज्रेश्वरीविद्या सर्वशत्रुभयकरी ॥१६
मंदेहा राक्षसा नित्य विजिता विद्ययैव तु।
तां विद्यां संप्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रमोचनीम् ॥१७
ॐ भूर्भुवस्व तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।
ॐ फट् जहि हुं फट् छिंधि भिंधि जहि हनहन स्वाहा।
विद्या वज्रेश्वरीत्येषा सर्वशत्रुभयंकरी।
अनया संहृतिः शंभोर्विद्य या मुनिपुंगवाः ॥१८

फिर "इन्द्रस्य शत्रो वर्धस्व स्वाहा"—इस मन्त्र से अग्नि मे होम किया था। इसके पश्चात् कालाग्नि के सदृश व्यवहार वाला होने से वृत्र संज्ञा वाला देव शत्रु प्रादुर्भूत हुआ था। उस समय किरीटी वृषान्तक भगवान् तुरन्त स्वर्ग को छोड़कर भय से विह्वल होते हुए इन्द्र सहस्र नेत्र वाला गणो के सहित भाग खड़े हुए थे। उस समय में विश्व के स्रष्टा विभु ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उससे कहा था ॥१२॥१३॥१४॥ इस वज्रेश्वरी मन्त्र से वज्र को त्याग कर अर्थात् वज्र मे इस मन्त्र का प्रयोग कर इस शत्रु का वध करो। उस देवेन्द्र ने जिसकी बड़ी २ भुजाऐं थी

देवो के साथ सन्नद्ध होकर उसका वध बिना ही विशेष प्रयत्न के करके दु:ख रहित हुए थे। इससे यह वज्रेश्वरी विद्या समस्त शत्रुओं के लिये महा भयङ्करी है ॥१५॥१६॥ मन्देह नाम वाले राक्षस इसी विद्या के द्वारा निहत एवं विजित हुए थे। अब मैं उसी सम्पूर्ण पापों के विमोचन करने वाली विद्या को भली भाँति वर्णित करूँगा ॥१७॥ वह वज्रेश्वरी मन्त्र का आकार स्वरूप यह है—"ॐ भूर्भुवः स्व तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न. प्रचोदयात्। ॐ फट् जहि हु फट् छिन्दि भिन्दि जहि हन हन स्वाहा" यही वज्रेश्वरी विद्या का मन्त्र है जो समस्त शत्रुओं को भय करने वाली है। इसी विद्या के द्वारा भगवान् शम्भु का सहार होता है। हे मुनिश्रेष्ठो! यही शम्भु की विद्या है जिस से प्रलय हुआ करता है ॥१८॥

॥ १०७—गायत्री मंत्र पूर्वक वज्रेश्वरी विद्या ॥

श्रुता वज्रेश्वरी विद्या ब्रह्मी शक्रोपकारिणी।
अनया सर्वकार्याणि नृपाणामिति न. श्रुतम् ॥१
विनियोगं वदस्वास्या विद्याया रोम हर्षण।
वश्यमाकर्षणं चैव विद्वेषणमत परम् ॥२
उच्चाटनं स्तभनं च मोहन ताडनं तथा।
उत्सादन तथा छेद मारणं प्रतिबधनम् ॥३
सेनास्तभनकादीनि साविञ्या सर्वमाचरेत्।
आगच्छ वरदे देवि भूम्या पवनमूर्धनि ॥४
ब्रह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्।
उद्वास्यानेन मन्त्रेण गन्तव्य नान्यथा द्विजा ॥५
प्रतिकार्य तथा बाह्य हुत्वा वश्यादिका क्रियाम्।
उद्वास्य वह्निमाधाय पुनरन्य यथाविधि ॥६
देवीमावाह्य च पुनर्जपेत्सपूजयेत्पुनः।
होम च विधिना वह्नौ पुनरेव समाचरेत् ॥७

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! हम लोगो ने इन्द्र के उपकार करने

वाली यह ब्राह्मी वच्चेश्वरी विद्या का भली-भाँति श्रवण कर लिया है और यह भी सुन लिया है कि इस विद्या के द्वारा नृपो के सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हुआ करते हैं ।।१।। हे रोम हर्षण ! अब इस महा विद्या विनियोग किस तरह किया जाता है–यह कृपा करके बतलाइये । सूतजी ने कहा—वश्य अर्थात् किसी का भी वशीकरण (वश मे कर लेना) आकर्षण (अपनी ओर खीचकर बुला लेना)–विद्वेषण अर्थात् किन्ही दो मे द्वेष भाव उत्पन्न करा देना–इसके आगे उच्चाटन अर्थात् किसी के भी मनमे स्थिरता का नाश कर स्थान के त्याग की भावना उत्पन्न कर देना–स्तम्भन (जहाँ के तहाँ स्तम्भित कर देना अर्थात् क्रिया शून्य बना देना)-मोहन अर्थात् मोहित बना देना ताडन-उत्सादन छेदन मारण और प्रतिबन्धन तथा सेना का स्तम्भन आदि करना ये सम्पूर्ण कार्य सावित्री के द्वारा ही करने चाहिए । इस सावित्री के आवाहन करने का मन्त्र यह है-"आगच्छ वरदे देवि भूम्यां पर्वत मूर्धनि" । अर्थात् हे वर देने वाली ! हे देवि ! भूमि में पर्वत के शिखर पर आओ । फिर इस देवी के विसर्जन कर देने का मन्त्र यह है-'ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथा सुखम्" अर्थात् ब्राह्मणों के द्वारा अनुज्ञात होती हुई आप हे देवि ! सुख पूर्वक पधारो । हे द्विजगण ! इसी मन्त्र से देवी का उद्वासन करके जाना चाहिए अन्यथा नही जाना चाहिए । अर्थात् पूर्वोक्त शत्रु के वश्याकर्षण आदि क्रिया करके इस मन्त्र के द्वारा पूर्ण काम होते हुए जाना उचित है । प्रत्येक कार्य मे अर्थात् वश्यादिक कार्य की क्रिया मे देवी का विसर्जन करके फिर वह्नि मे नित्य प्रति हवन करे । पुन पुन देवी का आवाहन पूजन हवन और अन्त मे विसर्जन किया करे ।।२।।३।।४।।५।।६।।७।।

सर्वकार्याणि सिद्धिना साधयेद्विधया पुन ।
जातीपुष्पैश्च वश्यार्थी जुहुय दयुतत्रयम् ।।८
घृतेन करवीरैश्च कु शिवर्षेण द्विजा ।
विद्वेषण विशेषेण कुर्यात्लाङ्गलकस्य च ।।९
तैलेनोच्चाटन प्रोक्त स्तम्भन मधुना स्मृतम् ।
तिलेन मोहन प्रोक्त ताडन रुधिरेण च ।।१०

खरस्य च गजस्याथ उष्ट्रस्य च यथाक्रमम् ।
स्तंभन सर्षपेणापि पाटन च कुशेन च ॥११
मारणोच्चाटने चैव रोहीबीजेन सुव्रता ।
व न स्वल्लिपत्रेण सेनारतभमत परम् ॥१२

इसी विधि विधान से इस विद्या के द्वारा समस्त कार्यों का साधन करना चाहिए। कामनाऐ भिन्न २ प्रकार की हुआ करती हैं। अतएव उनके भेद के अनुसार हवन के द्रव्य भी भिन्न २ होते हैं। उन्हें अब बतलाते हैं — जो किसी को अपने वश मे करना चाहता है वह उस वशीकरण के करने के लिये जाती के पुष्पो से तीन अयुत अर्थात् तीस हजार आहुतियाँ देवे ॥८॥ हे द्विजो ! यदि आकर्षण करना है तो करवीर के पुष्प और घृत से हवन करे। अगर किन्ही दो मे विद्वेषण करना अभीष्ट हो तो लाङ्गल लता के पुष्पो मे होम करना चाहिए ॥९॥ उच्चाटन की क्रिया के लिये तैल से और स्तम्भन के वास्ते मधु से आहुतियाँ देनी चाहिए-ऐसा बताया गया है। तिलो से हवन करने से मोहन होता है और रुधिर के द्वारा होम से ताडन क्रिया सम्पन्न हुआ करती है ॥१०॥ गधा-हाथी और उट इन तीन के रुधिर स यथाक्रम हवन का क्रम बताया गया है। स्तम्भन सरसो के हवन से भी होता है और पाटन कुश के होम से सम्पन्न हुआ करता है ॥११॥ हे सुव्रत वालो ! रोही अर्थात् रक्त रोहिड इस प्रसिद्ध औषधि के बीजा से हवन करने पर मारण तथा उच्चाटन हुआ करते हैं। नाग वल्ली के पत्रो से हवन करने से सेना का स्तम्भन हो जाता है अर्थात् सेना बिल्कुल निश्चेष्ट एव क्रिया शून्य जैसी की तैसी रह जाया करती है ॥१२॥

कुनट्या नियत विद्यात्पूजयेत्वरमेश्वरीम् ।
घृतेन सर्वसिद्धिः स्यात्पयसा वा विशुद्धचने ॥१३
तिलन रोगनाशश्च कमलेन धन भवेत्।
कातिर्मधूकपुष्पेण सावित्र्या ह्ययुतत्रयम् ॥१४
जयादिप्रभृतीन्सर्वान् स्विष्टांत पूर्ववत्स्मृतम् ।
एवं सक्षेपतः प्रोक्तो विनियोगोतिविस्तृतः ॥१५

जपेद्वा केवला विद्यां संपूज्य च विधानतः ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥१६

भृकुटी अर्थात् मैनसिल के द्वारा हवन करने से भी सेना का स्तम्भन होता है। नियम पूर्वक परमेश्वरी का पूजन करे। उपर्युक्त कामनाऐं दूसरो को पीडा पहुँचाने वाली होने से असात्विक होती हैं। यदि सात्विक कामनाएँ ही हो तो केवल घृत से हवन करे। इस से सर्व सिद्धि होती है और पय (दूध) से विशुद्धि हुआ करती है। ॥१३॥ तिलो से आहुतियाँ देने से रोग का नाश और कमला के दलो से हवन करने पर धन की वृद्धि होती है। तीन अयुत (दश हजार को अयुत कहते हैं) सावित्री मन्त्र के द्वारा मधूक के पुष्पो से हवन करने पर कान्ति का वृद्धि होती है ॥१४॥ जयादि प्रभृति सब को करके पूर्व की भाँति स्विष्टान्त अर्थात् स्विष्ट कृत् के अन्त तक अग्नि कार्य कहा गया है। इस प्रकार से इसका अति विस्तृत विनियोग भी मैंने सक्षेप से ही वर्णित किया है ॥१५॥ अथवा केवल विद्या का भली-भाँति पूजन करके विधान से जप करे तो समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं—इसमे कुछ भी विचार नही करना चाहिए ॥१६॥

॥ १०८—मृत्युंजय और त्र्यंबक महामंत्र ॥

मृत्युंजयविधि सूत ब्रह्मक्षत्रविशामपि ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं सर्वज्ञोऽसि महामते ॥१
मृत्युंजयविधि वक्ष्ये बहुना किं द्विजोत्तमाः ।
रुद्राध्यायेन विधिना घृतेन नियुतं क्रमात् ॥२
सघृतेन तिलेनैव कमलेन प्रयत्नत. ।
दूर्वया घृतगोक्षीरमिश्रया मधुना तथा ॥३
चरुणा सघृतेनैव केवल पयसापि वा ।
जुहुयात्काल मृत्योर्वा प्रतीकारः प्रकीर्तितः ॥४
त्रियंबकेण मंत्रेण देवदेव त्रियंबकम् ।
पूजयेद्बाणलिंगे वा स्वयम्भूतेऽपि वा पुनः ॥५

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप तो महती मति वाले हैं और सभी शुद्ध के पूर्ण ज्ञाता भी हैं। ब्राह्मण-क्षत्रिय और वैश्यों के लिये मृत्युञ्जय की विधि हो उसे कृपा कर बतलाइये, हम बहुत इच्छुक हैं ॥१॥ सूतजी ने कहा—हे द्विजोत्तमो ! अब मैं अधिक क्या बताऊँ आप लोगों के समक्ष में मृत्युञ्जय की विधि बतलाऊँगा रुद्राध्याय के द्वारा विधि पूर्वक क्रम से घृत से एक नियुत हवन करे। रुद्राध्याय का तात्पर्य शिव रहस्य दशमाशादि विधान से होता है ॥२॥ घृत के सहित तिलों से-कमल के दलों से-दूर्वा (दूब) से-घृत, गाय का दूध से मिश्रित मधु से-घृत के सहित चरु से और केवल दूध से हवन करने से काल मृत्यु का प्रतीकार कहा गया है। घृतादि का होम मृत्यु के निरास करने वाला और शिव को तोष उत्पन्न करने वाला होता है। जप से अपवर्ग की प्राप्ति होती है और रुद्राध्याय से रक्षा होती है ॥३॥४॥ सूतजी ने कहा-त्रियम्बक मंत्र से देवों के देव भगवान् त्रियम्बक का बाण लिङ्ग में अथवा स्वयम्भू लिङ्ग में पूजन करना चाहिए ॥५॥

आयुर्वेदविदैर्वापि यथावदनुपूर्वशः।
अष्टोत्तरसहस्रेण पुंडरीकेण शंकरम् ।६
कमलेन सहस्रेण तथा नीलोत्पलेन वा।
संपूज्य पायसं दत्त्वा सघृतं चोदनं पुनः ॥७
मुद्गान्नं मधुना युक्तं भक्ष्याणि सुरभीणि च।
अग्नौ होमश्च विपुलो यथावदनुपूर्वशः ॥८
पूर्वोक्तैरपि पुष्पैश्च चरणा च विशेषतः।
जपेद्वै नियुतं सम्यक् समाप्य च यथाक्रमम् ॥९
ब्राह्मणानां सहस्रं च भोजयेद्वै सदक्षिणम्।
गवां सहस्रं दत्त्वा तु हिरण्यमपि दापयेत् ॥१०
एतद्व. कथितं सर्वं सरहस्यं समासतः।
शिवेन देवदेवेन सर्वेणात्मुपन्निना ॥११
कथितं मेरुशिखरे स्कन्दायामिततेजसे।
स्कंदेन देवदेवेन प्रद्युम्नाय धीमते ॥१२

साक्षात्सनत्कुमारेण सर्वलोकहितैषिणा ।
पाराशर्याय कथितं पारार्यक्रम गतम् ॥१३

आयु वेद के ज्ञाता अर्थात् आयु के वर्धन के उपायों को जानने वाले द्विजों के द्वारा यथाविधि अनुपूर्वंश अष्टोत्तर सहस्र भगवान् शङ्कर के नामों से अष्टोत्तर सहस्र श्वेत कमलों से-सहस्र पद्म पत्रों से अथवा अष्टोत्तर सहस्र नीलोत्पलों से भली भाँति अर्चना करे । घृत के सहित पायस (खीर) ओदन-मधु से युक्त मुद्गान्न और अन्य लेह्य, चोष्य, पेय, भक्ष्य सुस्वादु एव सुगन्ध समन्वित पदार्थ समर्पित करे । फिर पूर्वोक्त घृतादि द्रव्यों के क्रम से यथाविधि पुण्डरीक आदि पुष्पों के सहित चरु से होम करे तथा नियम पूर्वक नियुत जाप करे । इस तरह क्रम के अनुसार भली-भाँति समाप्त करके एक सहस्र ब्राह्मणों को दक्षिणा के सहित भोजन करावे । एक सहस्र गोदान करे और सुवर्ण का भी दान कराना चाहिए ॥६॥७॥८॥९॥१०॥ यह सम्पूर्ण रहस्य के सहित सक्षेप मे तुमको बता दिया है । यह उग्र शूली देवों के भी वन्दनीय देव शर्व शिव ने मेरु के शिखर पर अपरिमित तेज वाले स्कन्द को बताया था । देवदेव स्वामी स्कन्द ने परम बुद्धिमान् ब्रह्मा के पुत्र से कहा था । सम्पूर्ण लोकों के हित की कामना से युक्त साक्षात् सनत्कुमार ने पाराशर्य को इसे बताया था । इस तरह से यह परम्परा से ज्ञान प्राप्त होता चला आया है ॥११॥ ॥१२॥१३॥

शुके गते परधाम दृष्ट्वा रुद्र प्रियवकम् ।
गतशोको महाभागो व्यास पर ऋषि. प्रभु ॥१४
स्कदस्य सभव श्रुत्वा शिवताय च महात्मने ।
नियंवकस्य माहात्म्य ममस्य च विशेषत ॥१५
कथित बहुना तस्मै कृष्णद्वैपायनाय वै ।
तत्सर्वं कथयिष्यामि प्रसादादेव तस्य वै ॥१६
देश सपूज्य विधिना जपेन्मंत्रं प्रियवकम् ।
मुच्यते सर्वपापैश्च सप्तजन्मकृतैरपि ॥१७
सग्रामे विजय लब्ध्वा सौभाग्यमतुल भवेत् ।

लक्षहोमेन राज्यार्थी राज्य लब्ध्वा सुखी भवेत् ॥१८

त्रियम्बक भगवान् रुद्र का दर्शन करके शुक्र मुनि के परम धाम चले जाने पर शोक को प्राप्त होने वाले परम ऋषि महाभाग व्यास मुनि ने स्वामी स्कन्द का जन्म श्रवण करके सस्थित महान् आत्मा वाले कृष्ण द्वैपायन से त्रियम्बक का माहात्म्य और विशेष रूप से मन्त्र कहा था। अब उन्हीं के प्रसाद से प्राप्त हुआ यह सब कुछ तुमको बतलाता हूँ ॥१४॥ ॥१५॥१६॥ इस तरह विधि के सहित देव का पूजन करके त्रियम्बक के मन्त्र का जप करना चाहिए। इसके जाप से सात जन्मों के किये हुए भी पापों से मुक्ति हो जाया करती है ॥१७॥ सग्राम मे विजय प्राप्त करके इसके जप से मानव अतुल सौभाग्य की प्राप्ति किया करता है। त्रियम्बक मन्त्र से एक लक्ष आहुतियाँ देने से राज्य प्राप्त करने की इच्छा वाला राज्य का लाभ कर परम सुख को प्राप्त करता है ॥१८॥

पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति नियुतेन न सशय ।
धनार्थी प्रयुतेनैव जपेदेव न सशय ॥१६
धनधान्यादिभि सर्वै. सपूर्णं सर्वमगलै ।
क्रीडते पुत्रपौत्रैश्च मृत स्वर्गे प्रजायते ॥२०
नानेन सदृशो मत्रा लोके वेदे च सप्रना ।
तस्मात्त्रियवक देव तेन नित्य प्रपूजयेत् ॥२१
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमष्टगुण भवेत् ।
त्रयाणामपि लोकाना गुणानामपि च प्रभु ॥२२
वेदानामपि देवाना ब्रह्मक्षत्रविशामपि ।
अकारोकारमकाराणा मात्राणामपि धारक ॥२३
तथा सोमस्य सूर्यस्य वह्नेरग्नित्रयस्य च ।
अ वा उमा महादेवो ह्यम्बकस्त त्रियबक ॥२४
सुपुष्पितस्य वृक्षस्य यथा गध सुशोभन. ।
वाति दूरात्तथा तस्य गधः शभोर्महात्मनः ॥२५
तस्मात्सुगधो भगवान्धपारयति शङ्करः ।
यांचारश्च महादेवो देवानामपि लीनया ॥२६

पुत्र की चाहना रखने वाला एक नियुत जाप करने से पुत्र की प्राप्ति करता है—इसमे कुछ भी संशय नही है। जो धन का अर्थी होता है उसको एक प्रयुत जप करने से ही निस्सन्देह उसकी प्राप्ति होती है। इस मन्त्र के जप करने वाला धन-धान्यादि समस्त मङ्गल पदार्थो से परिपूर्ण होकर पुत्र-पौत्रादि के सहित आनन्द क्रीडा करता है और अन्त मे मर कर वह स्वर्ग का निवास पाता है ॥१६॥२०॥ हे सुव्रतो ! ससार मे और वेद मे इसके समान दूसरा कोई भी मन्त्र नही है। इसलिये त्रियम्बक देव को इस मन्त्र से नित्य ही पूजना चाहिए ॥२१॥ इससे अग्निहोम यज्ञ का जो फल है उससे आठ गुना फल होता है। अब 'त्रियम्बक'-इस पद के विभिन्न अर्थों को बताया जाता है—'त्रयाणा भूरादीना लोकाना-सत्त्वादि गुणाना-ऋगादि वेदाना ब्रह्मादि देवाना मम्बकः अतएव प्रभु' अर्थात् भूर्भुव आदि तीनो लोको क-सत्व, रज और तम-इन तीना गुणो के ऋग्वेदादि समस्त वेदो के और सम्पूर्ण ब्रह्मा आदि देवो के अम्बक यह पिता हैं। 'त्र्यम्बक'—इस शब्द का दूसरा अर्थ यह होता है-अकार उकार और मकार ये तीन अम्ब अर्थात् शब्द जिससे होते हैं वह त्र्यम्बक है। इसमे 'क' सज्ञा मे प्रत्यय होकर त्र्यम्बक शब्द की सिद्धि होती है। यह मात्राओ का भी वाचक होता है ॥२२॥२३॥ त्र्यम्बक—इस शब्द के अन्य अर्थ किये जाते हैं सोम-सूर्य वह्नि ये तीन अम्बक अर्थात् नेत्र जिसके हैं वह त्र्यम्बक शिव हैं। तीनो की अम्बा जननी जिसकी स्त्री है वह त्र्यम्बक शिव हैं-यह भी एक अर्थान्तर होता है ॥२४॥ जिस प्रकार से सुन्दर पुष्पो से युक्त वृक्ष की बहुत अच्छी गन्ध होती है उसी भाँति उस महान् आत्मा वाले शम्भु की गन्ध भी दूर से ही होती है। इसलिये भगवान् शम्भु सुगन्ध कहे जाते हैं। इसकी व्युत्पत्ति यह होती सुष्ठु तदृग गीत च सुगदधातीति-सुगन्ध। महादेव का नाम गान्धार होता है। इस की व्युत्पत्ति यह है गा गायन रूपा वाणी को धारण करने वाले हैं इसे देवो की भी लीला से पोषित किया करते हैं। ॥२५॥२६॥

सुगधस्तस्य लोकेस्मिन्वायुर्वाति नभस्तले।

तस्मात्सुगंधिरस्तं देवं सुगंधि पुष्टिवर्धनम् ॥२७
यस्य रेतः पुरा शंभोर्हरेर्योनौ प्रतिष्ठितम् ।
तस्य वीर्यादिभूदंडं हिरण्मयमजोद्भवम् ॥२८
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ भूर्भुवःस्वर्महस्तपः ।
सत्यलोकमतिक्रम्य पुष्टिर्वीर्यस्य तस्य वै ॥२९
पंचभूतान्यहंकारो बुद्धि: प्रकृतिरेव च ।
पुष्टिर्बीजस्य तस्यैव तस्माद्वै पुष्टिवर्धनः ॥३०
तं पुष्टिवर्धनं देवं घृतेन पयसा तथा ।
मधुना यवगोधूममाषबिल्वफलेन च ॥३१
कुमुदार्कशमीपत्रगौरसर्षपशालिभिः ।
हुत्वा लिंगे यथान्यायं भक्त्या देवं यजामहे ॥३२

उस भगवान् शिव का सुगन्ध वायु इस लोक में और नभ स्तल में वहन करता है। इसलिये उस देव को सुगन्धि कहते हैं। इसमें इसार समाधान हो जाता है। पहिले जिस शम्भु का वीर्य हरि की नाभि स्वरूप योनि में प्रतिष्ठित होता था। उसके वीर्य से अज का उत्पत्ति स्थान हिरण्मय दण्ड हुआ था। नक्षत्रों के सहित चन्द्र और सूर्य्य-भूर्भुवःस्वर्महस्तप और सत्य लोक का अतिक्रमण करके उसके वीर्य की पुष्टि होती है। पाँच भूत-अहङ्कार-बुद्धि और प्रकृति सब उस शम्भु के ही वीर्य की पुष्टि है अतएव शिव का नाम पुष्टि वर्धन होता है ॥२७॥२८॥ ॥२९॥३०॥ अब 'यजामहे' —इस शब्द का अर्थ बतलाते हैं—उस पुष्टि के वर्धन करने वाले देव का घृत-दुग्ध-मधु-यव-गोधूम-माष-बिल्व फल-कुमुद-अर्क शमी पत्र-गौर सर्षप (सरसो) और शाली से लिङ्ग में हवन करके यथा न्याय भक्ति भाव के साथ यजन (अर्चना) करते हैं। ॥३१॥३२॥

ऋतेनानेन मां पाशाद्बंधनात्सर्वतोगतः ।
मृत्योश्च बंधनाच्चैव मुक्षीय भव तेजसा ॥३३
उर्वारुकाणां पक्वानां यथा कालादभूत्पुनः ।
तथैव कालः संप्राप्तो मनुना तेन यत्नतः ॥३४

पुत्र की चाहना रखने वाला एक नियुत जाप करने से पुत्र की प्राप्ति करता है—इसमे कुछ भी सशय नही है। जो धन का अर्थी होता है उसको एक प्रयुत जप करने से ही निस्सन्देह उसकी प्राप्ति होती है। इस मन्त्र के जप करने वाला धन-धान्यादि समस्त मङ्गल पदार्थों से परिपूर्ण होकर पुत्र-पौत्रादि के सहित आनन्द क्रीडा करता है और अन्त मे मर कर वह स्वर्ग का निवास पाता है ॥१६॥२०॥ हे सुव्रतो ! ससार मे और वेद मे इसके समान दूसरा कोई भी मन्त्र नही है। इसलिये त्रियम्बक देव को इस मन्त्र से नित्य ही पूजना चाहिए ॥२१॥ इससे अग्निष्टोम यज्ञ का जो फल है उससे आठ गुना फल होता है। अब 'त्रियम्बक'- इस पद के विभिन्न अर्थों को बताया जाता है—'त्रयाणा भूरादीना लोकाना सत्त्वादि गुणाना-ऋगादि वेदाना ब्रह्मादि देवाना अम्बकः अतएव प्रभु ' अर्थात् भूर्भुव आदि तीनो लोको के-सत्त्व, रज और तम-इन तीनो गुणो के ऋग्वेदादि समस्त वेदो के और सम्पूर्ण ब्रह्मा आदि देवो के अम्बक यह पिता हैं। 'त्र्यम्बक'—इस शब्द का दूसरा अर्थ यह होता है-अकार उकार और मकार ये तीन अम्ब अर्थात् शब्द जिससे होते हैं वह त्र्यम्बक है। इसमे 'क' सज्ञा मे प्रत्यय होकर त्र्यम्बक शब्द की सिद्धि होती है। यह मात्राओ का भी वाचक होता है ॥२२॥२३॥ त्र्यम्बक— इस शब्द के अन्य अर्थ किये जाते हैं सोम सूर्य वह्नि ये तीन अम्बक अर्थात् नेत्र जिसके हैं वह त्र्यम्बक शिव है। तीनो की अम्बा जननी जिसकी स्त्री है वह त्र्यम्बक शिव हैं—यह भी एक अर्थान्तर होता है ॥२४॥ जिस प्रकार से सुन्दर पुष्पो से युक्त वृक्ष की बहुत अच्छी गन्ध होती है उसी भाँति उस महान् आत्मा वाले शम्भु की गन्ध भी दूर से ही होती है। इसलिये भगवान् शम्भु सुगन्ध कहे जाते हैं। इसकी व्युत्पत्ति यह होती सुष्ठु तदग गीत च सुगदधातीति-सुगन्ध। महादेव का नाम गान्धार होता है। इस की व्युत्पत्ति यह है गा गायन रूपा वाणी को धारण करने वाले हैं इसे देवो की भी लीला से पोषित किया करते हैं। ॥२५॥२६॥

सुगधस्तस्य लोकेस्मिन्वायुर्वाति नभस्तले।

तस्म त्सुगंधिस्त देवं सुगधि पुष्टिवर्धनम् ॥२७
यस्य रेत· पुरा शम्भोर्हरेर्योनौ प्रतिष्ठितम् ।
तस्य वीर्यादभूदण्डं हिरण्मयमजोद्भवम् ॥२८
चद्रादित्यौ सनक्षत्रौ भूर्भुव स्वर्महस्तप· ।
सत्यलोकमतिक्रम्य पुष्टिर्वीर्यस्य तस्य वै ॥२६
पचभूतान्यहंकारो बुद्धि प्रकृनिरेव च ।
पुष्टिर्बीजस्य तस्यैव तस्माद्वै पुष्टिवर्धनः ॥३०
स पुष्टिवर्धन देव घृतेन पयसा तथा ।
मधुना यवगोधूममाषबिल्वफलेन च ॥३१
कुमुदार्कशमीपत्रगौरसर्षपशालिभिः ।
हुत्वा लिंगे यथान्याय भक्त्या देवं यजामहे ॥३२

उस भगवान् शिव का सुगन्ध वायु इस लोक मे और नभ स्तल मे वहन करता है। इसलिये उस देव को सुगन्धि कहते है। इसमे इकार समासान्त हो जाता है। पहिले जिस शम्भु का वीर्य हरि की नाभि स्वरूप योनि मे प्रतिष्ठित होता था। उसके वीर्य से अज का उत्पत्ति स्थान हिरण्मय दण्ड हुआ था। नक्षत्रो के सहित चन्द्र और सूर्य्य-भूर्भुव स्वर्महस्तप और सत्य लोक का अतिक्रमण करके उसके वीर्य की पुष्टि होती है। पाँच भूत अहङ्कार-बुद्धि और प्रकृति सब उस शम्भु के ही वीर्य की पुष्टि है अतएव शिव का नाम पुष्टि वर्धन होता है ॥२७॥२८॥ ॥२६॥३०॥ अब 'यजामहे' — इस शब्द का अर्थ बतलाते हैं — उस पुष्टि के वर्धन करने वाले देव का घृत-दुग्ध-मधु-यव गोधूम-माष बिल्व फल-कुमुद अर्क शमी पत्र-गौर सर्षप (सरसो) और शाली से लिङ्ग मे हवन करके यथा न्याय भक्ति भाव के साथ यजन (अर्चना) करते हैं। ॥३१॥३२॥

ऋतेनानेन मा पाशाद्बंधनात्कर्मयोगतः ।
मृत्योश्च बधनाच्चैव मुक्षीय भव तेजसा ॥३३
उर्वारुकाणां पक्वानां यथा कालादभूत्पुन. ।
तथैव काल. संप्राप्तो मनुना तेन यत्नत. ॥३४

एवं मंत्रविधि ज्ञात्वा शिवलिंगं समर्चयेत् ।
तस्य पाशक्षयोऽतीव योगिनो मृत्युनिग्रहः ॥३५
त्रियंबकसमो नास्ति देवो वा घृणयान्वितः ।
प्रसादशील: प्रीतश्च तथा मंत्रोपि सुव्रताः ॥३६
तस्मात्सर्वं परित्यज्य त्रियंबकमुमापतिम् ।
त्रियबकेण मत्रेण पूजयेत्सुसमाहितः ॥३७
सर्वावस्थां गतो वापि मुक्तोऽयं सर्वपातकैः ।
शिवध्यानान्न संदेहो यथा रुद्रस्तथा स्वयम् ॥३८
हत्वा भित्त्वा च भूतानि भुक्त्वा चान्यायतोऽपि वा ।
शिवमेकं सकृत्स्मृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥३६

अब 'ऋतादित्य' का अर्थ स्पष्ट किया जाता है--हे भव ! इस ऋत तेज से मुझ को कर्म योग के पाश बन्धन से-मृत्यु से और बन्धन से मुक्त करदो ॥ ३३ ॥ अब 'उर्वारुकम्'--इस का अर्थ दिखाया जाता है--उर्वारुक पक्वो का जिस तरह काल से पुनः हुआ था उसी प्रकार का काल उस मनु ने यत्न से प्राप्त कर लिया है ॥३४॥ इस तरह से मन्त्र की विधि को जान कर शिव लिङ्ग का यजन करे। मन्त्र आदि के योग से उसका मृत्यु निग्रह और अतीव पाप क्षय होता है ॥३५॥ कोई भी देव कृपा से पूर्णतया समन्वित शिव के समान नही है। हे सुव्रतो ! त्रियम्बक प्रसन्न शीघ्र होने के स्वभाव वाले हैं। सर्वदा परम प्रसन्न देव हैं और मन्त्र स्वरूप भी है ॥३६॥ अतएव सब का परित्याग करके अति समाहित होकर त्रियम्बक मन्त्र से उमा के स्वामी त्रियम्बक का पूजन करना चाहिए ॥३७॥ यह त्रियम्बक का पूजक सभी अवस्थाओ मे रहते हुए भी सम्पूर्ण पातको से वियुक्त हो जाता है शिव के ध्यान से पूर्णतया छुटकारा हो जाया करता है। यह शिव के ध्यान की महिमा है। इसमे लेश मात्र भी सन्देह नही है, वह उसी भांति हो जाता है जैसे स्वय रुद्र होते हैं। हनन करके भेदन करके और भूतों को अन्याय से खाकर या भोग करके भी एक बार शिव का स्मरण करने से समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ॥३८॥३६॥

॥ १०६–शिवार्चन में अहिंसा को महत्व ॥

वस्त्रपूतेन तोयेन कार्यं चैवोपलेपनम् ।
शिवक्षेत्रे मुनिश्रेष्ठा नान्यथा सिद्धिरिष्यते ॥१
आपः पूता भवंत्येता वस्त्रपूताः समुद्धृताः ।
अफेना मुनिशार्दूला नादेयाश्च विशेषत. ॥२
तस्माद्वै सर्वकार्याणि दैविकानि द्विजोत्तमाः ।
अद्भिः कार्याणि पूताभिः सर्वकार्यप्रसिद्धये ॥३
जंतुभिर्मिश्रिता ह्यापः सूक्ष्माभिस्तान्निहत्य तु ।
यत्पापं सकल चाद्भिरपूताभिश्चिरं लभेत् ॥४
समार्जने तथा नृणा मार्जने च विशेषतः ।
अग्नौ कडनके चैव पेषणे तोयसंग्रहे ॥५
हिंसा सदा गृहस्थाना तस्माद्धिंसा विवर्जयेत् ।
अहिंसेयं परो धर्मः सर्वेषां प्राणिना द्विजा. ॥६
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतं समाचरेत् ।
सद्दानमभय पुण्य सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥७

इस अध्याय मे वस्त्र से पवित्र किये हुए जल से समस्त क्रियाओं का तथा अहिंसा की भक्ति का महत्व निरूपित किया गया है । सूतजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठो ! शिव के क्षेत्र मे वस्त्र द्वारा पूत जल से उपलेपन करना चाहिए । अन्यथा सिद्धि इष्ट नही होती है ॥१॥ हे मुनिशार्दूलो ! ये जल वस्त्र से पूत करके समुद्धृत किये हुए पवित्र होते हैं । जल फेन से रहित होने चाहिए नदी के जल विशेष पवित्र माने गये है ॥२॥ इस कारण से दैविक समस्त कार्य सब प्रकार के कार्यों की सिद्धि के लिये परम पवित्र जल से ही करने चाहिए ॥३॥ जल सूक्ष्म जन्तुओं से मिश्रित होते हैं उनको मारकर अपने जल से सम्पूर्ण पाप प्राप्त होता है क्योंकि सूक्ष्म जन्तुओं की वहाँ हिंसा हो जाती है ॥४॥ गृहस्थो को सम्मार्जन में तथा विशेष कर मार्जन में अर्थात् घर की सफाई करने मे—अग्नि जलाने मे—छड़ने मे—पीसने मे और जल के सग्रह करने मे नित्य प्रति सदा हिंसा हुआ ही करती है अतएव इस हिंसा का त्याग करना चाहिए । हे द्विजो !

यह अहिंसा समस्त प्राणियों का परम धर्म होता है ।।५।।६।। इसलिये सब प्रकार के प्रयत्न से जल को वस्त्र से छान कर पवित्र अवश्य ही कर लेना चाहिए । अभय का दान बड़ा भारी पुण्य होता है और अन्य सब तरह के दानों में यह उत्तम दान होता है ।।७।।

तस्मात्तु परिहर्तव्या हिंसा सर्वत्र सर्वदा ।
मनसा कर्मणा वाचा सर्वदाऽहिंसकं नरम् ।।८
रक्षन्ति जन्तवः सर्वे हिंसकं बाधयंति च ।
त्रैलोक्यमखिलं दत्वा यत्फलं वेदपारगे ।।९
तत्फलं कोटिगुणितं लभतेऽहिंसको नरः ।
मनसा कर्मणा वाचा सर्वभूतहिते रताः ।।१०
दयादर्शितपंथानो रुद्रलोकं व्रजंति च ।
स्वामिवत्परिरक्षंति बहूनि विविधानि च ।।११
ये पुत्रपौत्रवत्स्नेहाद्रुद्रलोकं व्रजंति ते ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वस्त्रपूतेन वारिणा ।।१२
कार्यमभ्युक्षणं नित्यं स्नपनं च विशेषतः ।
त्रैलोक्यमखिलं हत्वा यत्फलं परिकीर्त्यते ।।१३
शिवालये निहत्यैकमपि तत्सकलं लभेत् ।।१४

इसलिये सर्वत्र और सर्वदा हिंसा का परिहार करना चाहिए । मन से-कर्म से और वचन से जो मनुष्य अहिंसक होता है उसकी सभी जन्तु रक्षा किया करते हैं और जो हिंसा करने वाला होता है उसको सभी बाधा पहुँचाया करते हैं । किसी वेद के पारगामी विद्वान् को सम्पूर्ण त्रैलोक्य का दान करके जो फल प्राप्त होता है उस फल से भी कोटि गुना फल सदा अहिंसक मानव प्राप्त किया करता है । अतएव मन के द्वारा-वचन से तथा कर्म से सदा समस्त प्राणियों के हित में अनुराग रखने के अनुराग वाले पुरुष सद्गति को प्राप्त किया करते हैं ।।८।।९।।१०।। दया से मार्ग को दिखाने वाले लोग सीधे रुद्र लोक में जाया करते हैं । जो पुरुष बहुत और अनेक प्रकार के प्राणियों की एक सच्चे स्वामी की भाँति रक्षा किया करते हैं और जो अपने पुत्र तथा पौत्रों के समान स्नेह का

सब प्राणियों में व्यवहार करते हैं वे पुरुष सीधे रुद्र लोक को चले जाते हैं। इसलिये सभी प्रयत्नों से वस्त्र द्वारा छाने हुए जल से अभ्युक्षण तथा विशेष रूप से नित्य स्नपन करना चाहिए। समस्त त्रैलोक्य का हनन करके जो बुरा फल कहा जाता है वह शिवालय में एक के हनन करने से पूर्ण बुरा फल मिला करता है ॥११॥१२॥१३॥१४॥

शिवार्थं सर्वदा कार्या पुष्पहिंसा द्विजोत्तमाः ॥१५
यतस्तस्मान्न हतव्या निषिद्धानां निषेवणात् ।
सर्वकर्माणि विन्यस्य संन्यस्ता ब्रह्मवादिनः ॥१६
न हंतव्याः सदा पूज्याः पापकर्मरता अपि ।
पवित्रास्तु स्त्रियः सर्वा अत्रेश्च कुलसंभवाः ॥१७
ब्रह्महत्यासमं पापमात्रेयी विनिहत्य च ॥१८
स्त्रियः सर्वा न हंतव्याः पापकर्मरताः अपि ॥१९
मलिना रूपवत्यश्च विरूपा मलिनाम्बराः ।
न हतव्या सदा मर्त्यैः शिवचच्छंकया तथा ॥२०
वेदबाह्यव्रताचारा श्रौतस्मार्तबहिष्कृताः ।
पाखंडिन इति ख्याता न सभाष्या द्विजातिभिः ॥२१

हे द्विज श्रेष्ठो ! शिव के लिये सर्वदा पुष्प हिंसा करनी चाहिए ॥१५॥ इसलिये किसी की भी हिंसा नहीं करनी चाहिए। निषिद्ध वस्तुओं के निषेवण से समस्त कर्मों को विशेष रूप से त्याग करके ब्रह्मवादी लोग सन्यस्त हो जाते हैं ॥१६॥ स्त्रियाँ पाप कर्मों में रत भी हो तो भी वे सदा पूज्य होती हैं। इनको नहीं मारना चाहिए स्त्रियाँ अत्रि के कुल में समुत्पन्न हैं और सब परम पवित्र हुआ करती हैं ॥१७॥ एक स्त्री का वध करने से ब्रह्महत्या के समान ही पाप होता है। इसलिये सभी स्त्रियों का, चाहे वे पाप कर्म में भी रति रखने वाली होवें, कभी हनन नहीं करना चाहिए ॥१८॥ मलिन और रूप लावण्य से युक्त-विरूप तथा मलिन वस्त्र धारण करने वाली इन सभी को सदा शिव के समान शङ्का से मनुष्यों को कभी भी हनन नहीं करना चाहिए ॥१९॥२०॥ जो वेद से बाह्य व्रत तथा आचार वाले पुरुष हैं तथा श्रौत एवं स्मार्त कर्मों से भी बहिष्कृत

और पाषण्डी कहे जाते हैं इनके साथ द्विजातियों को कभी भी सम्भाषण नही करना चाहिए ॥२१॥

न स्पृष्टव्या न द्रष्टव्या दृष्ट्वा भानुं समीक्षते ।
तथापि तेन वध्याश्च नृपैरन्यैश्च जंतुभिः ॥२२
प्रसंगाद्वापि यो मर्त्यः सतां सकृदहो द्विजाः ।
रुद्रलोकमवाप्नोति समभ्यर्च्य महेश्वरम् ॥२३
भवंति दुःखिताः सर्वे निर्दया मुनिसत्तमाः ।
भक्तिहीना नराः सर्वे भवे परमकारणे ॥२४
ये भक्ता देवदेवस्य शिवस्य परमेष्ठिनः ।
भाग्यवतो विमुच्यते भुक्त्वा भोगानिहैव ते ॥२५
पुत्रेषु दारेषु गृहेषु नृणा भक्तं यथा चित्तमथादिदेवे ।
सकृत्प्रसगाद्यतितापसानां तेषां न दूरः परमेशलोकः ॥२६

यदि पाखण्डी पुरुष का दर्शन भी कहीं हो जाता है तो भी उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए और वह सूर्य दर्शन करना ही अति सरल होता है। तो भी वे पाखण्डी पुरुष राजाओं के द्वारा या अन्य पुरुषों के द्वारा वध करने के योग्य नहीं हैं ॥२२॥ सत्पुरुषों के प्रसङ्ग से जो कोई पुरुष एक बार भी महेश्वर की अभ्यर्चना करके रुद्र लोक की प्राप्ति कर लेता है। यह महेश्वर की पूजा की महा महिमा है। ॥२३॥ हे मुनि सत्तमो ! दया रहित और भव की भक्ति से हीन पुरुष सब दुःखित रहा करते हैं। भगवान् भव तो सब के परम कारण होते हैं ॥२४॥ देवों के भी देव परमेष्ठी शिव के जो भक्त होते हैं वे बड़े ही भाग्यशाली हुआ करते हैं और वे यहाँ पर ही समस्त सुखद भोगों का उपभोग करके अन्त में मुक्त हो जाया करते हैं ॥२५॥ जिस तरह मनुष्यों की भक्ति यहाँ संसार में अपने पुत्रों में-स्त्रियों में और गृह आदि में होती है उसी प्रकार की भक्ति आदि देव भगवान् भव में होनी चाहिए और चित्त शिव भक्ति में लगाना चाहिए। जो यति और तपस्वी हैं वे एक बार के प्रसङ्ग से ही परमेश के लोक को प्राप्त कर लेते हैं और वह उनको कुछ भी दूर नहीं रहता है ॥२६॥

११०-योगमार्ग से त्र्यंबक ध्यान-लिंगपुराण श्रवण पठन फल

कथं त्रियम्बको देवो देवदेवो वृषध्वजः ।
ध्येयः सर्वार्थसिद्ध्यर्थं योगमार्गेण सुव्रत ॥१
पूर्वमेवापि निखिलं श्रुतं श्रुतिसमं पुनः ।
विस्तरेण च तत्सर्वं संक्षेपाद्वक्तुमर्हसि ॥२
एवं पैतामहेनैव नन्दी दिनकरप्रभः ।
मेरुपृष्ठे पुरा पृष्टो मुनिसंघैः समावृतः ॥३
सोऽपि तस्मै कुमाराय ब्रह्मपुत्राय सुव्रताः ।
मिथः प्रोवाच भगवान्प्रणताय समाहितः ॥४
एवं पुरा महादेवो भगवान्नीललोहितः ।
गिरिपुत्र्या च देव्या भगवान्पर्यपृच्छ्यत ॥५
पृष्टः कैलासशिखरे रुद्रपुत्रसमूहतः ।
योगं चतुर्विधं प्रोक्तस्तत्स्वरूपं चैव कीदृशम् ॥६
ज्ञानं च मोक्षदं दिव्यं मुच्यते येन जन्तवः ।
प्रथमो मन्त्रयोगश्च स्पर्शयोगो द्वितीयकः ॥७
भावयोगस्तृतीयः स्यादभावश्च चतुर्थकः ।
सर्वोत्तमो महायोगः पञ्चमः परिकीर्तितः ॥८

प्रश्न पहिले नील लोहित भगवान् महादेव से उनकी शय्या में एक ही साथ स्थित होकर गिरिजा भगवती जगदम्बा देवी ने पूछा था जब कि कैलास पर्वत पर भगवान् शिव परम प्रसन्न विराज रहे थे। श्री देवी ने कहा—हे भगवान्! योग कितने प्रकार का कहा गया है और वह किस प्रकार का होता है तथा कैसा है? जो योग ज्ञान परम दिव्य ज्ञान तथा मोक्ष के प्रदान करने वाला कहा जाता है जिसको प्राप्त कर जीवात्मा मुक्त हुआ करते हैं। श्री भगवान् ने कहा—पहिला तो मन्त्र योग होता है और दूसरा स्पर्श योग है ॥५॥६॥७॥ भाव योग तीसरा है और चौथा अभाव योग होता है। सबसे अत्युत्तम महायोग होता है जो पाँचवाँ होता है ॥८॥

ध्यानयुक्तो जपाभ्यासो मन्त्रयोग प्रकीर्तित ।
नाडीशुद्धयधिको यस्तु रेचकादिक्रमान्वितः ॥६
समस्तव्यस्तयोगेन जयो वायो प्रकीर्तित ।
बलस्थिरक्रियायुक्तो धारणाद्यैश्च शोभने. ॥१०
धारणात्रयसंदीप्तो भेदत्रयविशोधकः ।
कुंभकावस्थितोऽभ्यास स्पर्शयोग प्रकीर्तितः ॥११
मन्त्रस्पर्शविनिर्मुक्तो महादेव समाश्रित ।
बहिरन्तर्विभागस्थस्फुरत्संहरणात्मकः ॥१२
भावयोग समाख्यातश्चित्तशुद्धिप्रदायक ।
विलीनावयव सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥१३
शून्य सर्वं निराभास स्वरूप यत्र चिन्त्यते ।
अभावयोग सप्रोक्तश्चित्तनिर्वाणकारक ॥१४

ध्यान से युक्त और जिसमें जप करने का अभ्यास किया जाता है वह मन्त्र योग कहा गया है। अब स्पर्श योग को बताते हैं—जिसमें विशेष रूप से सुषुम्ना नाडी की शुद्धि होती है और जिसमें समस्त और व्यस्त योग से वायु का प्रधान रूप से जप किया जाता है तथा बन्धी आदि साधनों के द्वारा बल के स्थिर करने की क्रिया होती है जो परम शोभन धारणा आदि अङ्गों से युक्त है एवं सात्विकादि तीन धारणाओं से संदीप्त

है और विश्व प्राज्ञ तैजस इन तीनों का विशोधक है अर्थात् कुम्भक में निर्मलता का करने वाला ध्यान का अभ्यास होना है वह स्पर्श योग कहा जाता है ॥६॥१०॥११॥ मन्त्र योग और स्पर्श योग इन दोनो से अतीत जो कि केवल महादेव के ही समाश्रित होना है। बाहिर तथा अन्दर स्फुर भाग मन मे विलसमान भावो के सहार करने के स्वरूप वाला भाव योग कहा गया है जो चित्त की शुद्धि करने वाला है। अब अभाव योग को बतलाया जाता है-जिस मे समस्त अवयव विलीन होने वाला सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम यह जगत् सम्पूर्ण शून्य विश्वरूप निराभास अर्थात् भेदाभास से रहित चिन्तन किया जाता है वह अभाव योग होता है और यह चित्त के निर्वाण का करने वाला होता है। ॥१२॥१३॥ ४॥

नीरूप. केवल शुद्ध· स्वच्छदं च सुशोभनः।
अनिर्देश्यः सदालोकः स्वयवेद्य. समततः ॥१५
स्वभावो भासते यत्र महायोग प्रकीर्तित·।
नित्योदितः स्वयंज्योति. सर्वचित्तसमुत्थितः ॥१६
निर्मलः केवलो ह्यात्मा महायोग इति स्मृतः।
अणिमादिप्रदाः सर्वे सर्वे ज्ञानस्य दायका ॥१७
उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यमेषु योगेष्वनुक्रमात्।
अह सग विनिर्मुक्तो महाकाशोपम. पर ॥१८
सर्वावरणनिर्मुक्तो ह्यचित्य स्वरसेन तु।
ज्ञयमेतत्समाख्यातमग्राह्यमपि दैवतं ॥१६
प्रविलीनो महान्सम्यक् स्वयवेद्य स्वसाक्षिक।
चकास्त्य नश्वपुरा तेन ज्ञेयमिद मतम् ॥२०
परीक्षिताय शिष्य य ब्राह्मणायाहित गये।
धार्मिकायाकृतघ्नाय दातव्य क्रमपूर्वकम् ॥२१

अब महायोग का निरूपण किया जाता है—जिसमे रूप से शून्य-अद्वितीय-निर्मल-स्वच्छन्दता के सहित परम शोभन अर्थात् अत्यन्त रमणीय श्रुतियो के द्वारा भी जिस का स्वरूप निर्देश नही किया जा सकता है ऐसा अप्रमेय-सर्वदा प्रकाशमान-स्वयं ही जानने के योग्य-समानता के साथ

विस्तृत अर्थात् सर्व व्यापी-अपनी आत्मा की पूर्व विशेषण विशिष्ट सत्ता अव भासित होने वाला हो वह महायोग कहा गया है। पुनः उसी महा-योग प्रकारान्तर से बताते हैं कि वह नित्य प्रकाश मान-स्वयमेव प्रकाश मान-सम्पूर्ण चित्तो के उत्थापित करने वाला और निर्मल केवल आत्मा पर शिव ही महायोग कहा गया है। ये समस्त योग अणिमा-महिमा आदि अष्ट सिद्धियो के प्रदान करने वाले और सभी ज्ञान के देने वाले होते हैं ॥१५॥१६॥१७॥ इन योगो मे क्रम से उत्तरोत्तर विशेषता होती है। मोक्षद ज्ञान अह् शब्द से विनिर्मुक्त सबसे पर महाकाश की उपमा वाला होता है ॥१८॥ याथ्य तथ्य रूप से चिन्तन न कर सकने के योग्य ज्ञान वाला है। सर्व आवरणो से विनिर्मुक्त होता है। यह मैंने समाख्यात कर दिया है जो कि देवो के द्वारा भी ग्रहण करने के योग्य नही है। अविलीन-महान् सम्यक् स्वय ही जानने के योग्य और अपने से ही साक्षी वाला है। आनन्द के स्वरूप वाले शरीर से प्रकाशित होता है। इसी से ज्ञेय यह माना गया है ॥१६॥२०॥ इसके ज्ञान को पूर्णतया परखे हुए ब्राह्मण शिष्य को जो कि आहिताग्नि हो तथा परम धार्मिक एवं अकृतघ्न हो उसे ही क्रम पूर्वक देना चाहिए ॥२१॥

गुरुदैवतभक्ताय अन्यथा नैव दापयेत्।
निंदितो व्याधितोल्पायुस्तया चैव प्रजायते ॥२२
दातुरप्येवमनघे तस्माज्ज्ञात्वैव दापयेत्।
सर्वसगविनिर्मुक्तो मद्भक्तो मत्परायण. ॥२३
साधको ज्ञानसंयुक्त श्रौतस्मार्तविशारदः।
गुरुभक्तश्च पुण्यात्मा य.स्या योगरत: सदा ॥२४
एव देवि सम ख्याता योगमार्गः सनातनः।
सर्ववेदागमाभोजमकरंद. सुमध्यमे ॥२५
पीत्वा योगामृतं योगी मुच्यते ब्रह्मवित्तम।
एवं पाशुपत योगं योगश्चयमनुत्तमम् ॥२६

जो शिष्य अपने गुरु का तथा देवता का भक्त हो उसे ही देवे। अन्यथा इसे किसी को भी नहीं देना चाहिए। यदि किसी इसके अनधि-

कारी को दे दिया जाता है तो वह देने वाला संसार में अत्यन्त निन्दित और रोग सम्पन्न तथा अल्प आयु वाला हो जाया करता है ॥२२॥ इस प्रकार से देने वाले को भी इस का दण्ड भोगना होता है । अतएव जो निष्पाप हो उसे ही भली-भाँति समझ बूझ कर ही इस विद्या को देना चाहिए । मेरा जो भी कोई भक्त होता है वह समस्त प्रकार के संसर्गों से विनिर्मुक्त होता है और केवल मुझ में ही परायण रहा करता है ॥२३॥ ज्ञान से संयुक्त रहने वाला साधक और एवं स्मृति वर्णित धर्म तथा ज्ञान का परम पण्डित तथा गुरु के चरणों में प्रगाढ़ भक्ति-भाव रखने वाला-पुण्यात्मा अत्यन्त योग्य तथा योग में सर्वदा रति रखने वाला हुआ करता है ॥२४॥ इस प्रकार से हे देवि ! परमेश शम्भु ने जगज्जननी गौरी से कहा कि मैंने यह योगों का मार्ग जो कि सर्वदा से चला आ रहा है वह तुम्हारे सामने कह दिया है । हे सुन्दर मध्यभाग वाली ! यह योग मार्ग सम्पूर्ण वेद और आगम रूपी कमलों का मकरन्द है ॥२५॥ योगाभ्यासी पुरुष इस मकरन्द का पान करके अर्थात् इस योगात्मक अमृत को पीकर ब्रह्म के वेत्ता समस्त बन्धनों से छुटकारा पा जाया करता है । इस तरह से यह पाशुपत-योग योग रूपी सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य होता है ॥२६॥

अत्याश्रममिदं ज्ञेयं मुक्तये येन लभ्यते ।
तस्मादिष्टं समाचारं शिवार्चनरतं प्रिये ॥२७
इत्युक्त्वा भगवान्देवीमनुज्ञ च वृषध्वजः ।
शंकुकर्णं समागाद्य गुपाजाटलानगात्मनि ॥२८
तस्मात्त्वमपि योगीन्द्र योगाभ्यासरतो भव ।
स्वयंभुव परा मूर्तिर्नूनं ब्रह्ममयी वरा ॥२९
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मोक्षार्थी पुरुषोत्तमः ।
भस्मस्नायी सर्वनित्यं योगे पाशुपते रतः ॥३०
ध्येया यथाक्रमेणैव वैष्णवी च ततः परा ।
माहेश्वरी परा पश्चात्सैव ध्येया यथाक्रमम् ॥३१
योगेश्वरस्य या निष्ठा सैषा महत्स्य वर्णिता ॥३२

एवं शिलादपुत्रेण नंदिना कुलनन्दिना ।
योगः पाशुपतः प्रोक्तो भस्मनिष्ठेन धीमता ॥३३
सनत्कुमारो भगवान्व्यासायामिततेजसे ।
तस्मादहमपि श्रुत्वा नियोगात्सत्रिणामपि ॥३४
कृतकृत्योऽस्मि विप्रेभ्यो नमो यज्ञेभ्य एव च ।
नमः शिवाय शांताय व्यासाय मुनये नमः ॥३५

इस प्रकार से यह पूर्व वर्णित योग रूपी वैभव आश्रमों की अपेक्षा न करते हुए जानने के योग्य होता है इसलिये इष्ट समाचरण वाले सम्पूर्ण प्राणियों के हितों के सम्पादक विश्वेश्वर की समार्चना में सदा तत्पर रहने वाले व्यक्तियों से ही हे प्रिये ! यह किसी अनिर्वचनीय भाग्योदय के प्रभाव से ही मुक्ति के लिये प्राप्त किया जाया करता है ॥२७॥ इस तरह से भगवान् शम्भु वृषभध्वज ने देवी जगदम्बा पार्वती को अनुज्ञापित करके शंकुकर्ण नाम वाले गण को द्वारदेश में निवेशित कर अपने आपको आत्मा नन्दानुभव करने में युक्त कर दिया था अर्थात् ध्यानावस्थित हो गये थे । २८॥ शैलादि ने कहा—हे योगीन्द्र ! अतएव तुम भी योग के अभ्यास करने में रत हो जाओ । स्वयम्भू की परा मूर्ति निश्चय ही परम श्रेष्ठ एवं ब्रह्ममयी है ॥२९। इसलिये परम प्रयत्नों से मोक्ष की इच्छा रखने वाला श्रेष्ठ पुरुष को नित्य ही भस्म से स्नान करने वाला अर्थात् शरीराङ्गों पर भस्म लगाने वाला होना चाहिए तथा पाशुपत योग में रति रखने वाला रहना चाहिए ॥३०॥ क्रम के अनुसार ही वैष्णवी का ध्यान करे इसके अनन्तर परा माहेश्वरी का ध्यान करे । योगेश्वर की जो निष्ठा है वह मैंने संहृत करके भली-भाँति वर्णित कर दी है ॥३१॥३२॥ सूतजी ने कहा—कुल को आनन्द देने वाले शिलाद के पुत्र भगवान् नन्दी ने जो कि भस्म में परम निष्ठा रखने वाला और परम धीमान् थे यह पाशुपत योग मार्ग बतलाया था ॥३३॥ फिर इस योग मार्ग के ज्ञान को भगवान् सनत्कुमार ने अपरिमित तेज वाले महा मुनीन्द्र व्यास जी को बतलाया था । उन्हीं व्यास देव से इसका श्रवण मैंने किया था । अब इन सत्र धारियों के नियोग से अर्थात् आप सब लोगों को इसे

करने वाला है, विपुल वैदिकी शास्त्र विद्या होती है और मिश्रित कर्म से अथवा केवल उस विद्या से ही शाश्वती शिव की भक्ति और निवृत्ति अर्थात् मुक्ति हो जाती है। और उस महान् आत्मा वाले पुरुष की मुझ नारायण देव मे परम श्रद्धा हो जाया करती है ॥३६॥३७॥३८॥३९॥ उस पुरुष के वश मे यह विद्या अक्षय होकर रहती है और किसी प्रकार की किसी भी ओर से प्रमाद नही हुआ करता है। यह महात्मा ब्रह्मा की आज्ञा है ॥४०॥ ऋषियो ने कहा—परमर्षि सूत देव की और तीर्थो की यात्रा मे रति रखने वाले भगवान् नारद की जो सिद्धि है और अति विपुला प्रीति है हे रोमहर्षण! वह भगवान् विरूपाक्ष के प्रसाद से हम सब को भी सर्वदा होवे। विप्रो के ऐसा कहने पर भगवान् नारद देवर्षि ने अपने परम शुभ करो के अग्र भागो से सूत की त्वचा पर स्पर्श किया था और उनने कहा था—हे सूत! तुम्हारा स्वस्ति अर्थात् कल्याण होवे-भद्र हो और वृषध्वज महादेव मे तुम्हारी श्रद्धा होवे। हम सब का उन परम मङ्गल स्वरूप भगवान् शिव के लिये बारम्बार नमस्कार है ॥४१॥४२॥४३॥४४॥४५॥

॥ श्री लिङ्ग पुराण (द्वितीय खण्ड) समाप्त ॥

मुद्रक-प० पुरषोत्तमदास कटारे, हरीहर इलैक्ट्रिक मशीन प्रेस, मथुरा।